प्रमुख देशों की शासन प्रणालियाँ

प्राक्कथन

राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन होने के उपरान्त हिन्दी साहित्य में एक नवीन युग का आविर्भाव हो रहा है। हिन्दी का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ ही हिन्दी भाषा-भाषियों और हिन्दी के हित-चिन्तकों पर नित नयी जिम्मेदारियां आती जा रही हैं। वास्तव में हिन्दी का भविष्य और उसकी मान-मर्यादा का मूल्यांकन इन जिम्मेदारियों के भली-भांति पूरे होने पर ही निर्भर है। विभिन्न विषयों पर हिन्दी साहित्य में आधुनिक दृष्टिकोण का समावेश करने का भार बहुत कुछ हमारे विश्व-विद्यालयों पर है। विश्व-विद्यालय बौद्धिक विकास के केन्द्र माने गये हैं और वहीं से समाज को कला और विज्ञान के क्षेत्र में प्रेरणा प्राप्त होती है। अब तक हमारे विश्व-विद्यालयों में अपने हृदय के भाव अपनी भाषा में प्रकट करने की शिक्षा नहीं दी जाती रही है। हमारे मानसिक विकास पर इसका अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा है। विद्यार्थियों और अध्यापकों का अधिकांश समय तो अपने अपने विचारों को अंग्रेजी में सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने की कला को सीखने में ही खप जाता है और उन्हें स्वतन्त्र और स्वाभाविक रूप से विचार करने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। इस तथ्य को विश्व-विद्यालय कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है। इस प्रकार की शिक्षा से जो कुछ ज्ञान-वृद्धि हुई भी है उसका शतांश लाभ भी सर्वसाधारण को नहीं मिल सका है। खेती सरीखे विषयों पर वृहत् ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित किये जा रहे हैं, परन्तु उनका उपयोग जनता के लिये कुछ भी नहीं है। किन्तु अब इस भूल को सुधारने के लिये व्यापक प्रयत्न किये जा रहे हैं। कई विश्व-विद्यालयों ने मातृ-भाषा द्वारा ही ज्ञान दान का संकल्प करके इस सुधार-मार्ग को और भी प्रशस्त बना दिया है।

विश्व-विद्यालयों द्वारा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने से एक नितान्त नयी दिशा में कार्य करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। अभी तक हमारा हिन्दी जगत समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि विविध विषयों के सम्बन्ध में अत्यन्त अविकसित है। हिन्दी में इन विषयों पर जो पुस्तकें हैं भी, वे मुख्यत: अन्य भाषाओं की प्रति-छाया-मात्र ही हैं। इन पर हिन्दी में आधुनिक विचारधाराओं को लेकर

मौलिक पुस्तकें तो नहीं के बराबर ही लिखी गई हैं। निस्संदेह हिन्दी में अनुवादों का अपना एक स्थान है और उनकी उपादेयता भी संशय से परे है। उदाहरणार्थ बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी और फ्रेंच से अनुवादित कविताओं, कहानियों और उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य में नवीन लेखन-शैलियों तथा विचार-धाराओं को जन्म दिया है। किन्तु अनुवादित साहित्य एक प्रकार से माँगी हुई वस्तु होती है, उसमें जाति की प्रकृति दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो पर-जाति की भावनाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन-मात्र होता है। कोई भी भाषा इस प्रकार के मांगे हुये साहित्य में परितुष्ट और गौरवमयी नहीं हो सकती। यह तो तभी सम्भव है, जब कि लेखकगण मौलिक रूप से हिन्दी में मनन करें और हिन्दी में ही लिखें, विचारों तथा लेखनी में ओज और स्वाभाविकता भी तभी आ सकती है।

इस समय विश्व-विद्यालयों में अङ्गरेजी में पाठ्य पुस्तकों का स्थान लेने के लिये उच्च कोटि की हिन्दी की पुस्तकों की अत्याधिक आवश्यकता है। मौलिक पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आरम्भ में हमें अनुवादों का ही सहारा लेना होगा। स्वतन्त्र साहित्य की रचना का युग सम्भवतः अनुवाद-युग के बाद ही आयेगा। इस सम्बन्ध में बहुत से अंग्रेजीदां महानुभाव मातृ-भाषा द्वारा राष्ट्र-सेवा करने के लिये इस क्षेत्र में उतर पड़े हैं। यह हिन्दी का सौभाग्य ही है। इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। परन्तु उन्हें विद्यार्थी जीवन में हिन्दी की अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण, वे अपनी भाषा में अपने विचार और भाव प्रकट करने की शक्ति भली-भांति विकसित नहीं कर सके हैं। वे मूल के शब्दों और शब्दार्थों पर ही सबसे अधिक ध्यान रखते हैं, भावार्थ उनकी दृष्टि के सामने प्रायः आने ही नहीं पाते। उनकी कृतियों में शब्द तो हिन्दी—वे भी कभी कभी अशुद्ध और अ-हिन्दी होते हैं, किन्तु वाक्य-विन्यास, लेखन-शैली और मुहावरे प्रायः अङ्गरेजी से उधार लिये होते हैं। डा० व्रजमोहन शर्मा की प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रकार का एक प्रयास है। उन्होंने इस समय प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों पर योग्यतापूर्ण पुस्तक लिखकर हिन्दी और विशेषकर विश्व-विद्यालयों के छात्रों की बड़ी सेवा की है। इस समय हमारा देश एक लोकतन्त्रात्मक युग में पदार्पण कर रहा है। हमें अपने नवनिर्मित विधान को सफल बनाने के लिये

समस्त देशवासियों में लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के प्रति आस्था और श्रद्धा का भाव जाग्रत करना होगा। देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने के लिये काफी समय तक धैर्यपूर्वक कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता है। मेरा विचार है, संसार के अन्य प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों का इतिहास और कार्य-कलाप का अध्ययन, इस सम्बन्ध में अत्यन्त फलदायक होगा। इसके द्वारा हमें यह भी ज्ञान हो जायगा कि जिन परम्पराओं को हम भारत में स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें अन्य देशवासी अपने देशों में किस प्रकार स्थापित कर सके हैं। डा० शर्मा की यह पुस्तक सर्वसाधारण और विशेषकर विद्यार्थियों तथा उन लोगों के लिए, जिन्हें अन्य भाषाओं का ज्ञान नहीं है अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इस सम्बन्ध में उनका प्रयास प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रथम तीन अध्यायों में 'वैधानिक सरकार', 'संघ शासन का सिद्धान्त' तथा 'सरकार के स्वरूप और कर्त्तव्य' का निरूपण कर देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। यदि डाक्टर साहब ने स्थान-स्थान पर अन्य देशों के विधानों का भारत के नवीन विधान के साथ तुलनात्मक विश्लेषण कर दिया होता, तो निस्संदेह सोने में सुगन्ध आ जाती।

पुस्तक की भाषा पर अंग्रेजी की छाया स्पष्ट है। भाषा कहीं कहीं गुठल हो गई है और उसमें प्रवाह की भी कमी है। अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों में बहुत से पर्याय भारतीय विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत पर्यायों से भिन्न हैं और कुछ स्थलों पर अंग्रेजी के एक ही शब्द के लिये कई पर्याय अनिश्चित रूप से प्रयोग किये गये हैं। पाठकों और विशेषकर विद्यार्थियों को इससे किंचित असुविधा होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हिन्दी के पर्याय के साथ कोष्टक में अंग्रेजी का पारिभाषिक शब्द दे देने के कारण, आशा है, यह कठिनाई काफी कम हो जायगी।

हिन्दी जगत में इस समय ऐसी पुस्तकों की अत्याधिक कमी है। मुझे विश्वास है, डा० शर्मा की यह पुस्तक इस कमी को पूरा करने में सहायक होगी और साथ ही अन्य लेखकों तथा अध्यापकों को इस प्रकार की पुस्तकें लिखने की सद् प्रेरणा प्रदान करेगी।

लखनऊ,
२६ अप्रैल, १९५० ई०

चन्द्रभानु गुप्त

दो शब्द

—:*०*:—

गत तीन वर्षों में भारत में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, विशेषतया राजनीतिक क्षेत्र में इनका प्रभाव भारतीयों के जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा है। साहित्यिक क्षेत्र में भी जो जाग्रति और उन्नति हो रही है उससे आशा की जा सकती है कि भारतीय भाषाओं में और विशेषतया हिन्दी भाषा में, जो राष्ट्रीय भाषा मान ली गई है, साहित्य के प्रत्येक अंग पर नित नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। जैसा कि माननीय चन्द्रभानु गुप्त ने प्राक्कथन में कहा है, विश्वविद्यालय के अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है (और मैं तो इसे उनका धर्म ही कहूँगा) कि वे हिन्दी में उन विषयों पर पुस्तकें लिखें जो विश्वविद्यालय में पाठविधि के ही लिए उपयोगी सिद्ध न हों, वरन् जनसाधारण में भी ज्ञानवृद्धि करने में सहायक हों।

हिन्दी भाषा में राजनीति विषय पर अभी तक अधिक नहीं लिखा गया है। विश्वविद्यालय में राजशास्त्र का अध्यापक होने की हैसियत से मैंने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि मैं अपनी शक्ति का कुछ भाग हिन्दी साहित्य की सेवा में लगा दूँ। इसी कारण मैंने संसार के 'प्रमुख देशों की शासन प्रणालियाँ' लिखने का उद्योग किया। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में ऐसी पुस्तकें लिखने में अनेक कठिनाइयाँ होंगी और इसी कारण पुस्तकों में त्रुटियाँ रह जाना भी आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का उस समय तक अभाव ही था जिस समय यह पुस्तक लिखी गई है। भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञों ने हिन्दी पर्यायों को जिस समय निश्चित रूप से स्वीकार किया था उससे पूर्व ही यह पुस्तक तीन-चौथाई से अधिक मुद्रित हो चुकी थी। उन पर्यायों के स्थान पर मैंने उन्हीं पारिभाषिक

शब्दों का प्रयोग किया जो साधारणतया प्रचलित थे अथवा पाठकों की समझ में आ सकते थे, अगले संस्करणों में सर्वमान्य पर्यायों का ही प्रयोग होगा। पुस्तक की अन्य त्रुटियों को भी दूर करने का मैं प्रयत्न करूँगा। जो सज्जन इस कार्य में मुझे त्रुटियाँ बना-कर अथवा अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर सहायता देंगे उनका मैं आभारी हूँगा।

मैं माननीय चन्द्रभानु जी गुप्त को विशेषतया धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अपने बहुमूल्य समय को देकर पुस्तक को पढ़ा और प्राक्कथन लिखा। मैं उन्हें आश्वासन देता हूँ कि अगले संस्करण में मैं पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करूँगा।

राजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
१ मई १९५०

ब्रजमोहन शर्मा

समर्पण !

हिन्दी के परम-प्रेमी तथा उच्च-शिक्षा के समर्थक
राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान्

माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त

मंत्री

उत्तर प्रदेश सरकार

को

सादर समर्पित !

—*ब्रजमोहन शर्मा*

विषय-सूची

प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां

अध्याय १

वैधानिक सरकार

'यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आदर्श शासन पद्धति वह नहीं जो सब सभ्य राष्ट्रों में वांछनीय और साध्य हो पर वह है जो जिन परिस्थितियों में वांछनीय और साध्य समझी जाती है उनमें उससे अधिक से अधिक निकटवर्ती व दूरवर्ती लाभ होता हो। एक पूर्णप्रजातन्त्र सरकार ही ऐसी सत्ता है जो आदर्श सत्ता कहलाने की अधिकारी है'—(जे० एस० मिल)

समाज का सबसे उन्नत रूप राज्य है—मनुष्य ने अपने जीवन के विभिन्न स्वरूपों को तरह तरह के समुदाय बनाकर व्यक्त किया है, पर समाज का राजनैतिक संगठन करने में उसने मानव चतुरता की पराकाष्ठा कर दी है। इस प्रक्रिया में बहुत से प्रयोग किये गये। आरम्भ में पर्यटनशील टोलियों से लेकर पशु चराने वाली जातियां, कुटुम्ब समुदाय और अन्त में आधुनिक राजनैतिक समाज का विकास हुआ। ऐसे सामाजिक जीवन में ही मनुष्य ने अपना पूर्ण विकास पाया है और साथ-साथ उन लोगों का हित साधन किया है जिनसे उसका कौटुम्बिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध है।

ऐसे ही समाज में, जिसको हम राज्य कह कर पुकारते हैं, सभ्यता का विकास, विज्ञान की वृद्धि, कला की प्रगति, सिद्धान्तों का प्रतिपादन व व्याख्या और प्रगतिशील मानव का निर्माण सम्भव है।

मानव जाति अपने इतिहास के बहुत से उतार-चढ़ावों के पश्चात् अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँची है। मानवजाति को कई घातों और प्रतिघातों के बीच से होकर निकलना पड़ा है। सभ्यता प्राकृतिक-मनुष्य का वह भार है जो उसने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये थोड़ा थोड़ा करके लाद लिया है। इसलिये संस्कृति मानव-इतिहास का विस्तृत लेख है।

राज्य का ऐतिहासिक आधार—मानव समुदायों का अध्ययन करने में यह आवश्यक है कि उनकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर बराबर दृष्टि रखी जाय। पर ऐतिहासिक घटनाओं की जटिलता ऐसी है कि किसी मानव समाज या जाति की संस्कृति को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वह समाज किन-किन विशिष्ट अवस्थाओं व परिस्थितियों में रहा है। इसलिये किसी समाज के आचरण को केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर समझ कर उसकी वर्तमान संस्कृति के रूप को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।

व्यक्ति में अपनी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की क्या मानसिक प्रतिक्रिया होती है, इसका चाहे हमको कितना ही अधिक ज्ञान क्यों न हो जाय पर केवल मनोविज्ञान की सहायता से हम किसी समाज की संस्कृति का सच्चा रूप स्थिर करने में सफल नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त विश्व में जो वातावरण आदि की विविधता है, बहुत कुछ उसके ही कारण मानव संस्थाओं, उनके मूल तत्वों, प्रकारों और सिद्धान्तों में भेद है।

विधान ही सामाजिक संगठन की रूप-रेखा का द्योतक है—मानव संस्थाओं का सबसे अधिक व्यापक गुण व्यक्तियों और संस्थाओं के बीच शक्ति-मूलक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को विधान द्वारा स्पष्ट किया जाता है। विधान में संस्था के आधारभूत सिद्धान्तों का ही समावेश नहीं होता पर उसमें राजनैतिक संगठन की रूपरेखा भी निश्चित कर दी जाती है। अर्थात् उसमें यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि सरकार किस प्रकार बनाई जायगी और उसका कार्यक्रम किस प्रकार का होगा। मानव-इतिहास के भिन्न-भिन्न विकास युगों में विभिन्न शासन पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। पुरानी और आजकल की शासन पद्धति का सबसे प्रमुख भेद यह है कि जहाँ प्राचीन काल में लोगों की कुल संख्या का एक बहुत थोड़ा अंश राज्य कार्य में सम्मिलित होता था वहाँ अब प्रवृत्ति यह है कि राज्य कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार प्रत्येक ऐसे पुरुष या स्त्री को हो, जो परिपक्व बुद्धि रखता हो और प्रत्येक समूह या जाति का हो, अर्थात् जो राज्य-निष्ठ हो।

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य अपने लिये ऐसे विधान की रचना करता है जो उसकी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। ये परिस्थितियां सब जगह एकसी नहीं हैं इसलिये सब राष्ट्रों के विधान भी एक से नहीं हैं। इसी विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न शासन प्रणालियां

संसार में प्रचलित हैं। किसी भी मानव समूह की समृद्धि अधिकतर उसके राजनैतिक संगठन और शासन पद्धति पर निर्भर है। आचार्य बर्क ने कहा था कि "सरकार मानव बुद्धि का वह आविष्कार है जिसको उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाया है, मनुष्यों का यह नैसर्गिक अधिकार है कि यह बुद्धि या अनुभव-जन्य ज्ञान उसकी इच्छाओं की पूर्ति होने की उचित व्यवस्था करे।" इस कथन में बुद्धि या अनुभव-जन्य ज्ञान शब्द महत्वपूर्ण है। यदि कोई सरकार बुद्धिमानों के अनुभव-जन्य ज्ञान पर आधारित नहीं है और व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है तो वह सरकार एक कौड़ी की भी नहीं। कजिन (Cousin) का यह कथन सत्य है कि व्यक्तियों पर शासन उनकी सेवा करके ही किया जा सकता है, इस नियम में कोई अपवाद नहीं मिलता। शासन करना और सेवा करना ये दोनों विरोधी बातें मालूम होती हैं पर निस्संदेह ये शासन की आधुनिक कल्पना की द्योतक हैं। इस कल्पना को तब तक कार्यरूप में परिणत करना कठिन है जब तक राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को, उनकी निर्विरोध एकता की नींव पर, दृढ़ता से व स्थायी रूप में नहीं स्थिर किया जाता। मानव सुख के लिये केवल यह पर्याप्त नहीं कि किसी विशेष समय पर ऐसी सरकार है जो सब प्रकार से अच्छी है। उसके लिये इस बात की आवश्यकता है कि सरकार का संगठन किस प्रकार होता है और सासन पद्धति कैसी है। हम आचार्य पोप के इस कथन का आजकल बिल्कुल आदर नहीं कर सकते कि मूर्ख ही शासन पद्धति के बारे में लड़ते-भिड़ते हैं, जो सरकार अच्छा शासन करती है वही अच्छी है। सरकार में कौन-कौन व्यक्ति शासन सूत्र को हाथ में लिये हुये हैं और शासन प्रणाली कैसी है ? इन दोनों का उतना ही महत्व है जितना कि उनके शासन प्रबन्ध की अच्छाई या बुराई। इससे स्पष्ट है कि राज्य में ऐसा संगठन होना चाहिये, जिसमें शासितों के ही हाथ में राज्यशक्ति हो और वे अपनी बुद्धि के अनुसार उस शक्ति का संचालन करने में स्वतन्त्र हों। आत्म अनुशासन में ही जीवन सुधरता है और राज्य का उद्देश्य जीवन को सुधार कर उन्नत करना है। आत्म-अनुशासन राज्य संगठन में तभी होगा जब सरकार लोक प्रतिनिधियों की होगी और वह लोकसम्मति से ही शासन करेगी, अर्थात् जब प्रजा का सरकार पर पूर्ण नियंत्रण होगा। प्रजातन्त्रात्मक शासन में यह आवश्यक है कि राज्य शक्ति को लोकहित की दृष्टि से मर्यादित कर दिया जाय और इस पर नियंत्रण रखा जाय। इसी उद्देश्य से आधुनिक सरकार किसी विधान से मर्यादित रहती है।

संविधान की परिभाषा—प्रसिद्ध राजशास्त्री ब्राइस ने कहा है कि किसी राज्य या राष्ट्र का संविधान वे नियम या विधि हैं जो उसकी सरकार का

रूप निश्चित करते हैं और इस सरकार के नागरिकों के प्रति क्या कर्तव्य हैं और क्या अधिकार हैं इनका निर्णय करते हैं। पैली (Paley) के अनुसार किसी देश के विधान से उन निबन्धों का निर्देश है जिनका सम्बन्ध, देश के व्यवस्थापक मण्डल के नाम-रूप, व्यवस्थापक-मण्डल के भिन्न-भिन्न अवयवों के पारस्परिक सम्बन्ध और न्यायालयों के बनने व उनके अधिकार क्षेत्र से है। विधान राज्य विधि का ही एक प्रमुख विभाग है जिसको दूसरी विधियों से इसी आधार पर पृथक् किया जा सकता है कि वह राज्य संगठन के एक प्रमुख व महत्वशाली विषय से संबंधित है, जिनसे राज्यशक्ति के सूत्रधारों का परिचय और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन होता है, या जो उस रीति का क्रम निर्णय करते हैं जिससे राज्यसत्ता या सत्ताधारी अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। गिलक्रिस्ट (Gil-christ) ने उन लिखित या अलिखित विधियों को संविधान कहा है जिनसे राज्यसत्ता के संगठन की रूप-रेखा निश्चित होती है या जो सरकार के विभिन्न अंगों में राज्यशक्ति-वितरण को तथा उन सिद्धान्तों को निश्चित करते हैं जिनके अनुसार इस राज्यशक्ति का संचालन हो। यह स्पष्ट है कि संविधान में हमें किसी समाज की उन राजनीतिक संस्थाओं का चित्र देखने को मिलता है जिनमें रह कर उस समाज के व्यक्ति अपना जीवन बिताते हैं। इस चित्र में केवल मोटा आकार ही दिखाई देता है, उसके भीतर भरे हुये विविध रंग दिखाई नहीं पड़ते। इन रंगों को समझने के लिये हमें कुछ और प्रयत्न करना पड़ेगा। हमें उस राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा, उसकी संस्कृति की परम्परा जाननी होगी और उसके प्राचीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर अपनी दृष्टि डालनी पड़ेगी।

संविधान की आवश्यकता—मानव इतिहास के लम्बे समय में कई युग हुये हैं जिनकी अपनी-अपनी पृथक विशेषतायें रही हैं। सुदूर अतीत काल में जिसका धुंधला ज्ञान अब हमें पुरातत्वज्ञों के पुरविशेषज्ञों या आविष्कारों से होता जा रहा है, हमें कठिनता से कोई ऐसे नियम मिलते हैं जो मनुष्य की प्रतिभा या कर्तव्य शक्ति के परिचायक हों। कदाचित् वह समय ऐसा था जब दंड का जोर था और मत्स्यन्याय की प्रबलता थी। अर्थात् जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे को कुचल कर अपना हित साधन करता था। ऐसी अवस्था में जो अधिक शक्तिशाली था वही अपनी जीवन-रक्षा कर सकता था। सबसे शक्तिशाली जीव ही की जीवन संघर्ष में जीत होती है, उस समय निस्सन्देह व्यावहारिक रूप में दिखाई पड़ता होगा। उस समय में सिद्धान्तों व नियमों का शासन न होता

था, पुरुष विशेष ही शासन करता था। उसकी आज्ञा का पालन इसलिए किया जाता था क्योंकि वह अपने बल प्रयोग द्वारा दूसरों को अपने आधीन कर निरंकुश होकर उनसे काम करा सकता था और अपने नियन्त्रण में विभिन्न वर्गों या व्यक्ति समूहों को रखने में समर्थ था। पर जैसे जैसे मानव बुद्धि का विकास हुआ और बर्बर मनुष्य सभ्य हुआ, शताब्दियों पश्चात् जब देह-बल के स्थान पर बुद्धि-बल व विवेक की प्रधानता हुई, तब एक नए युग का श्री गणेश हुआ और मानव ने उस युग में पदार्पण किया। इस नये युग में प्राचीन क्रम बिलकुल उल्टा हो गया और पुरुष विशेष के स्थान पर नियमों का शासन होने लगा। राजा के साथ साथ समाज के दूसरे व्यक्ति भी शासन में भाग लेने लगे। इसी समय वैधानिक सरकार की भी उत्पत्ति हुई और शासन कार्य व उसकी पद्धति बुद्धि गम्य होने लगी।

संविधान का इतिहास—यूरोप में सबसे प्रथम यूनानी दार्शनिकों ने इस ओर ध्यान दिया कि राज्य का रूप क्या होना चाहिए। उन्होंने राज्यतन्त्र के मूल-तत्त्वों पर विचार किया और उन तत्त्वों के अनुसार राज्य का संगठन कैसा होना चाहिये, किन व्यक्तियों के हाथ में राज्य शक्ति रहनी चाहिये और उनको उस शक्ति का किस उद्देश्य से प्रयोग करना चाहिये, इन सब बातों की विस्तृत विवेचना की। प्लेटो और विशेषकर अरस्तू ने विभिन्न राज्य संस्थाओं का वर्गीकरण किया और उस वर्गीकरण के आधार भूत सिद्धान्तों को बतला कर उन राज्य संगठनों की आलोचना की। उन्होंने यह स्थिर किया कि राज्य में किन नियमों की आवश्यकता होती है। उनके पश्चात् पन्द्रह शताब्दियों तक बराबर यह प्रयत्न होता रहा कि राज्य को एक सुसंगठित संस्था किस प्रकार बनाया जाय जिसके निवासियों में सामाजिक और सांस्कृतिक विरोधाभाव हो और जो सद्भाव और प्रेमपूर्वक मिलकर रह सके। ऐसे राज्य संगठन का विकास धीरे धीरे हुआ। जागीरदारी प्रथा के समाप्त होने पर एक नई विचार-धारा का आविर्भाव हुआ, जिसने निरंकुश शासन की जड़ हिला दी और राज्य के प्रति प्राचीन मनोवृत्ति क्रान्तिकारी हलचल और परिवर्तन कर दिया। उस हलचल के फलस्वरूप राजनैतिक जीवन को ये ज्ञात व ज्ञातव्य सिद्धान्तों के आधार पर सुदृढ़ बनाने में बड़ा प्रोत्साहन मिला।

यूरोप में इंग्लैण्ड ऐसा देश था जहां सबसे प्रथम प्रजा के अधिकारों की प्रधानता को मान्य कराने का प्रयास किया गया और इस विचार को दृढ़ बनाया गया कि राज्य में प्रजा का ही अधिक महत्व है और राज्य-कार्य लोक

सम्मति से ही चल सकता है और चलना चाहिए। इसलिए वैधानिक शासन पद्धति का जन्म पहले पहल इंगलैण्ड में हुआ। उसके पश्चात् इसका प्रचार यूरोप के दूसरे देशों में, अमरीका में और विश्व के दूसरे राष्ट्रों में हुआ और यह पद्धति सर्वत्र अपना ली गयी।

वैधानिक सरकार इसलिये ऐसी शासन पद्धति है जिसमें नियमों के अनुसार शासन कार्य होता है। शासकों की सनक, व उनकी स्वेच्छाचारिता की प्रभुता नहीं होती वरन् प्रजा के योग-क्षेम का विचार ही राजनैतिक संगठन की रूप रेखा निश्चित करता है। इतना ही नहीं, प्रजा थोड़ा या बहुत राजकाज में भाग लेती है और राजनीति, शासन नीति तथा शासकों पर अपने नियंत्रण रखती है।

इंगलैण्ड में संविधान का विकास– इंगलैण्ड में 'कन्स्टीटयूशन' या संविधान शब्द का प्रयोग सबसे प्रथम उन प्राचीन प्रचलित रीति-रिवाजों के लिये किया गया था जिनकी वहां के तत्कालीन राजा ने अपनी परिषद् की सम्मति से घोषणा की थी। हैनरी द्वितीय ने सन् ११६४ ई० में ऐसे नियमों का प्रचार किया जिनसे उस समय की लौकिक और धार्मिक न्याय संस्थाओं का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित हुआ। ये नियम क्लेरण्डन के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Clarendon) के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये कोई नये नियम न थे जिनका नये सिरे से निर्माण किया गया था। वे तो केवल पुरानी प्रचलित प्रथायें थीं जिनको लिखित रूप में लाया गया था और यथाविधि घोषित कर दिया गया था। यही बात उन प्रविधानों के सम्बन्ध में भी लागू होती है जिनकी घोषणा १२१५ ई० में जोन नामक राजा से उसके जागीरदारों ने करवाली थी। मैग्ना कार्टा (Magna Carta) में ऐसी ही मौलिक या प्राथमिक रीति रिवाजों का विस्तृत वर्णन था। इस प्रलेख में केवल उन रीति-रिवाजों की परिभाषा कर दी गई थी। कोई नये नियम या विधियां प्रतिपादित नहीं किये थे। इनको भी क्लेरैण्डन के कन्स्टीट्यूशन्स के समान रनीमीड के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Runnymede) कह सकते हैं। दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। पर इनका महत्व इसलिये माना जाता है कि उनके द्वारा राजा ने जो रीति रिवाजों एवं परम्पराओं के सामने आत्म-समर्पण किया उससे वैधानिक सरकार का यूरोप में बीजारोपण हुआ। यह सिद्धान्त मान लिया गया कि राज्यतंत्र का आधार लोकसम्मति है। परन्तु आने वाली

शताब्दियों में जो शासन नीति इंगलैंड में मान्य हुई उसके आधारभूत सब सिद्धान्त इन विधानों और अधिकार पत्रों में वर्णित नहीं हैं। समय-समय पर इन प्रलेखों में पारिभाषित रीति—रिवाजों एवं परम्पराओं को दूसरे विधानों द्वारा स्वीकृत किया गया और उनमें नये सिद्धान्तों को जोड़ दिया गया। ये दूसरे विधान, आक्सफोर्ड के प्रविधान (Provisions of Oxford) सन १२५८ ई०, मार्टमेन का विधान (Statute of Mortmain) सन्१२७८ ई०, विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) सन् १२८५ ई० आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पश्चात् सन् १६४७ ई० में क्रौमवेल के सिपाहियों ने एक जनता का करार (Agreement of the People) बनाया और १६५३ ई० में क्रौमवेल ने एक शासन विलेख (Instrument of Government) घोपित किया। यह अन्तिम विलेख एक विधिवत् लिखा हुआ सम्पूर्ण संविधान था। इसमें संविधान के अन्तर्गत जो प्रमुख बातें आती हैं उनका विस्तृत वर्णन था और विधान मण्डल तथा कार्यपालिका के अधिकारों का उल्लेख कर दिया गया था। इस संविधान के द्वारा एक अंगरेजी प्रजातंत्र राज्य की स्थापना करने का विचार था, जिसके व्यवस्थापक अधिकार एक विधान मण्डल को और एक आजीवन राष्ट्रपति को सुपुर्द थे। पर यह संविधान पार्लियामेंट ने कभी स्वीकार नहीं किया और क्रौमवेल की मृत्यु के पश्चात् जब फिर राजतंत्र की स्थापना हुई तब सम्राट ने केवल यही घोषणा की कि इंगलैंड का शासन फिर से उन्हीं मौलिक रीति-रिवाजों के आधार पर होगा जो प्राचीन काल में राज्य में प्रचलित थीं। इस प्रकार लिखित और निर्मित शासन विधान के अनुभव का अन्त हुआ जिसका इंगलैण्ड के इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं मिलता यह सन् १६५३ ई० का विधान यूरोप के लिखित विधानों में सबसे प्राचीन माना जाता है। इसके पूर्व इंगलैण्ड की प्रजा को लिखित शासन विधान का अनुभव न था। इसीलिये तत्कालीन परिस्थितियों में उसका अन्त भी तुरन्त ही हो गया और उसकी जड़ जमने न पायी।

अमरीका में—सन् १७७३ की स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद जब १३ अमरीकी उपनिवेश यह निश्चय करने बैठे कि उनके राष्ट्र का संविधान कैसा हो और यह निर्णय किया कि संविधान लिखित हो, उस समय उनके मन में उसी १६५३ के शासन विधान का चित्र खिंचा हुआ था जो क्रौमवेल ने घोषित किया था। उनकी लिखित संविधान की कल्पना इसी पर आधारित थी। संविधान या "कन्स्टीट्यूशन" शब्द का प्रयोग वे सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही अपनी मौलिक विधियों के लिये करते चले आ

रहे थे, विशेषकर उन विधियों के लिये जिनसे उनका शासन संगठन प्रतिबन्धित था। इसी नाम का प्रयोग उन्होंने स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात् उसने शासन विधान के लिये किया जो उन्होंने नये राष्ट्र के लिए अपनाया। इस प्रकार लिखित संविधान का जन्म सर्वप्रथम अमरीका में हुआ। पर संविधान या 'कन्स्टीट्यूशन' शब्द का जन्म-स्थान इंगलैण्ड में ही है। अमरीका के १३ प्रदेशों ने उसे वहीं से लिया और उसको अधिक निश्चित रूप देकर अपनाया। अमरीका की देखा देखी और राष्ट्रों ने भी उस शब्द का ज्यों का त्यों प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। दक्षिणी कैरोलीना प्रदेश का शासन-विधान लाक (Locke) नामक राजनीतिज्ञ ने लिखा था और रोजर विलियम्स (Roger Williams) ने रोड द्वीप (Rhode Island) का संविधान बनाया था।

यूरोप में—अमरीका के पश्चात् लिखित संविधान बनाने का दूसरा प्रयत्न फ्रांस में किया गया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय १७९१ ई० में एक लिखित शासन तैयार किया गया जो एक वर्ष से कम ही चल सका। उसके समाप्त होने के बाद सन् १७९२ से सन् १८१५ ई० तक कई लिखित संविधान तैयार हुये किन्तु समाप्त हो गये। जर्मनी में भी लिखित विधान का प्रचार हुआ और शायद इस प्रणाली को वहां फ्रांस की राज्यक्रान्ति से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। सन् १८१५ से लेकर सन् १८३० ई० तक जर्मनी के छोटे-छोटे कुछ उपराष्ट्रों ने लिखित संविधान पद्धति अपनाई थी किन्तु जर्मनी में लिखित संविधान की प्रथा असफल ही रही। सन् १८३० ई० में जब बेल्जियम का नया राष्ट्र स्थापित हुआ तो वहाँ लिखित विधान का निर्माण हुआ। स्पेन के आधीन दक्षिणी अमरीका में जो उपनिवेश थे उन्होंने भी स्वतन्त्र होने पर वैधानिक शासन पद्धति अपनाई और लिखित संविधान तैयार किये। यूरोप में और भी कई राज्यों में लिखित विधान की प्रणाली को सन् १८४८ ई० की क्रान्ति से अधिक प्रोत्साहन मिला। प्रशिया और इटली में तभी से लिखित विधान की प्रथा आरम्भ हुई। सन् १८७० ई० के लगभग जो राष्ट्रीय एकता की भावना जागृत हुई और जिसके फलस्वरूप जर्मनी के छोटे छोटे राज्यों का एक राष्ट्र में एकीकरण हुआ, उससे भी कई लिखित संविधानों का जन्म हुआ। इनमें आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मन साम्राज्य के लिखित विधान उल्लेखनीय हैं।

दूसरे स्थानों में—सन् १८८९ में जापान में एक लिखित शासन विधान की घोषणा हुई और जापान राज्य भी वैधानिक राज्यों में गिना जाने लगा। पिछले

कुछ ही वर्षों में टर्की, ईरान, चीन, मिश्र और ईराक में लिखित संविधान बनाये गये। सन् १९३२ ई० में स्याम में भी लिखित संविधान बना।

इस प्रकार लिखित संविधान बनाने की जिस प्रथा का अमरीका में सन् १७७६ में सूत्रपात हुआ वह बढ़ते बढ़ते सारे संसार में फैल गई। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का शासन विधान वहाँ के कुछ उपराष्ट्रों के विधानों को छोड़कर संसार में सबसे पुराना लिखित संविधान है और यद्यपि सन् १७८९ से लेकर जब उसको पहले पहल कार्यान्वित किया गया तब प्रायः १६० वर्ष का समय बीत चुका है पर अब भी वह वैसा ही कार्यान्वित हो रहा है। इस लम्बे समय में उसमें केवल थोड़े से संशोधन ही आवश्यक समझे गये हैं।

संविधानों का वर्गीकरण—अलिखित संविधान से साधारणतया यह भास होता है कि वह संविधान अस्पष्ट और अनिश्चित है। पर अस्पष्ट या अनिश्चित होना अलिखित विधानों का कोई आवश्यक गुण नहीं है उदाहरण के लिये, इंगलैंड का संविधान यद्यपि लिखित विधानों की श्रेणी में नहीं आता पर उसके प्रतिबन्ध कुछ बातों मे लिखित विधानों की अपेक्षा अधिक निश्चित एवं स्पष्ट हैं। भाषा में चाहे वह अनिश्चित हो जाय पर नागरिकों के मन में वह स्पष्टतया लिखित है। इसलिये लिखित और अलिखित विधानों का विभेद अधिक महत्व का नहीं है। यदि उस विभेद को विकसित या अधिनियमित संविधान कह कर प्रकट किया जाय तो अधिक उपयुक्त रहेगा। इंग्लैंड के जैसे विकसित संविधान की जड़ प्राचीन प्रचलित रीति रिवाजों एवं प्रायः सर्व मान्य परम्पराओं में होती है और धीरे धीरे उनका विकास होता रहता है। इसके विपरीत बनावटी विधान किसी एक समय सम्पूर्ण अंगों सहित किसी शासन या संविधान सभा के द्वारा बनाया जाता है। इंगलैण्ड और हंगरी का शासन-विधान विकसित संविधानों की श्रेणी में है। पर यह भेद भी प्रायः स्पष्ट नहीं होता। विकसित विधान में भी कुछ अंग अधिनियमित विधान के समान होते हैं। इंगलैण्ड में मैग्नाकार्टा (१२१५) और हंगरी में गोल्डेन बुल (१२२२) बनावटी व्यवस्थायें थीं जो इन दोनों देशों के अपने अपने संविधान की अंग समझी जाती हैं। इसी प्रकार अधिनियमित संविधान भी कोई बिल्कुल नई वस्तु नहीं होती है। कोई भी अधिनियमित संविधान ऐसा नहीं है जिसके नियमों को एक निर्दिष्ट समय में किसी व्यक्तिसमूह या सभा ने केवल तात्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल नये ढंग से बनाया हो। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का लिखित संविधान भी बनना सम्भव न होता यदि पहिले ही से शासन सम्बन्धी कुछ प्रथायें प्रचलित और मान्य न होतीं। इसके अतिरिक्त अधिनियमित

संविधान जिस दिन बन कर तैयार होता है उसी दिन से उसमें विकास भी होने लगता है। कुछ समय के पश्चात् संविधान के मूल तत्वों के अनुकूल ही कुछ रूढ़ियाँ और परम्पराएं उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके विकास में योग देती हैं। इसलिये कोई भी संविधान न पूर्ण रूप से विकसित होता है न अधिनियमित रूप से बनावटी। उसमें दोनों प्रकार के संविधानों के गुण पाये जाते हैं।

संविधानों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि संविधान में संशोधन सुगमता से हो सकता है या कठिनता से। जिस संविधान में संशोधन सीधे सादे ढंग से सुगमता से थोड़े समय के भीतर हो सकता है उसे लचीला (Flexible) विधान कहते हैं। इसके विपरीत जिस संविधान में परिवर्तन करने के लिए ऐसा पेचीदा ढंग अपनाना पड़ता है कि संशोधन करना कठिन हो और उसमें अधिक समय और कष्ट उठाना पड़े उसे क्लिष्ट (Rigid) संविधान कहते हैं। संयुक्तराष्ट्र अमरीका का विधान क्लिष्ट संविधान है, उसमें परिवर्तन करने का क्रम बड़ा पेचीदा और लम्बा है और संशोधन करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इंगलैण्ड का विधान और इटली व हंगरी के विधानों में उसी रीति से परिवर्तन हो जाता है जिस रीति से साधारण कानून बनते हैं। इन देश में विधान को बदलना उतना ही सहज है जितना कोई नया कानून बनाना या पुराने कानून में संशोधन करना सहज है। इन दोनों प्रकार के संविधानों के बीच में एक ऐसे प्रकार के संविधान भी हैं जिनमें राष्ट्र की विधान मंडल सभा को संशोधन करने का अधिकार है पर ऐसा करने के लिये एक विशेष शैली अपनाई जाती है जो साधारण कानून बनाने वाली शैली से अधिक दुष्कर होती है। इस श्रेणी में फ्रांस, जर्मनी और आस्ट्रिया के संविधान आते हैं।

यद्यपि लचीले और क्लिष्ट संविधानों का भेद महत्वपूर्ण है पर आवश्यकता से अधिक महत्व उसको नहीं दिया जा सकता। कोई भी संविधान चाहे कितना ही क्लिष्ट क्यों न हो पर उसमें फिर भी संशोधन हो सकता है और लचीले से लचीले संविधान को संशोधित करने में कुछ न कुछ रुकावटें होती हैं। यह कहा जाता है कि अमरीका के एक राष्ट्रपति ने एक समय यह कहा था कि अमरीका का शासन-विधान किसी पुरुष के छोटे कोट के समान है, जिसको आगे से कस कर बटन लगाया जाय तो पीठ पर से फट जायगा। अमरीका के संविधान का ऐसा चित्रण ठीक नहीं प्रतीत होता। केवल विधिवत् संशोधन ही संविधान के परिवर्तन करने का अकेला ढंग नहीं है। उसको समयानुकूल और स्थिति के उपयुक्त बनाने के लिये बहुत सी शैलियां हैं। विधिवत् संशोधन तो उनमें से

केवल एक ही है। संविधान की धाराओं को उस संविधान के मूल तत्वों और मूल भावनाओं के अनुकूल ही न्यायपालिका भी ऐसी व्याख्या किया करती है, जो यदि न की जाय तो राज्य की स्थिति के बदलने पर संविधान को भी निश्चित बदलने की आवश्यकता पड़ जाय। संविधान राज्य संगठन के लिये की मोटी मोटी रेखाओं को निश्चित कर देता है। दिन प्रतिदिन की समस्याओं का सामना करने के लिये वैधानिक ढांचे के अन्तर्गत बहुत सी व्यावहारिक बातें करनी पड़ती हैं। इनका आधार परम्परा और रूढ़ियाँ रहती हैं। यह रूढ़ियां और परम्पराएँ कभी कभी विधिवत् विधान-संशोधन के स्थान की पूर्ति कर देती हैं। अर्थात् परम्परा के आधार पर बहुत सी बातें कर दी जाती हैं। यद्यपि संविधान में उनके सम्बन्ध में कोई अनुच्छेद उल्लिखित नहीं होते। सन् १७८९ से लेकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका के संविधान में केवल २१ विधिवत् संशोधन हुये हैं, पर अनेकों बार न्यायालय की व्याख्या द्वारा उसके अनुच्छेदों के अभिप्राय में परिवर्तन कर दिया गया है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का संविधान इंगलैण्ड से अधिक क्लिष्ट नहीं है। किसी भी शक्तिशाली और प्रगतिशील राष्ट्र को अत्यन्त क्लिष्ट संविधान वांछनीय नहीं होता। यदि संविधान का विधिवत् संशोधन दुसाध्य होता है तो वह राष्ट्र अपने संविधान को दूसरे तरीकों से बदलने का कोई न कोई मार्ग ढूंढ लेता है। ऐसी ही स्थिति अमेरिका में थी। जब विधान को बदलना सरल न समझा गया तो वहां के सर्वोच्च न्यायालय ने सहायता की और समय समय पर जब संविधान सम्बन्धी प्रश्न उसके सामने प्रस्तुत किये गये तो उसने संविधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ निकाला कि विधान में संशोधन करने की आवश्यकता ही न रही। मूल अनुच्छेदों के अन्तर्गत ही उन प्रश्नों का लोकहित के अनुकूल निपटारा कर दिया गया। सरकार को संविधान में संशोधन करने के लिए कदम न उठाना पड़ता। संविधान का क्लिष्ट अथवा लचीला होना, जिस लोक समाज का वह संविधान है, उसकी प्रकृति पर निर्भर रहता है। जिस समाज में पुरानी परिपाटी पर चलने की और परिवर्तन विरोधी प्रवृत्ति होती है, वह अपने विधान में बड़े सोच विचार के पश्चात् धीमी गति से परिवर्तन करता है चाहे वह विधान कितना ही लचीला हो और उसका परिवर्तन कितना ही सुगम हो।

लिखित विधान केवल एक ढांचा है—हम यह पहले ही कह आये हैं कि शासन-विधान सरकार के संगठन व उसके कर्तव्यों आदि की रूप रेखामात्र खींच देता है। उसमें हमें एक स्थान पर वे सब नियम मिल सकते हैं जिनके अन्तर्गत

राज्यतन्त्र का कार्यरूप होता है। लिखित संविधान वाले राष्ट्र के नागरिक यदि इन नियमो के अनुसार अपना राजकीय जीवन ज्यों का त्यों नियमित करें तब तो हमे उस राष्ट्र के संविधान के देखने से ही वहां के नागरिकों के राजकीय जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है। पर प्राय. बहुत दिनों तक कोई भी समाज अपने शासन विधान के नियमों मे परिमित नही रह पाता और वैधानिक नियमो का व्यवहार मे पालन नही होता। ऐसी स्थिति में राजनैतिक विज्ञान के विद्यार्थी को केवल संविधान के अध्ययन से ही उस राष्ट्र के राजकीय जीवन का वास्तविक ज्ञान नही हो सकता और उसके लिये यह आवश्यक हो जायगा कि संविधान के अध्ययन के अतिरिक्त वह शासन-कार्य के व्यावहारिक रूप का निरीक्षण करे। उदाहरण के लिये पक्षों (Party) को लिजिये, न अमरीका के शासन विधान मे पक्षो का कोई वर्णन है न इंगलैण्ड में ही पक्षों की कोई मान्य संस्था है। पर यह सभी जानते हैं कि इन दोनों राष्ट्रों के राजकीय जीवन व शासन में पक्ष कितने महत्व की वस्तु है। इसलिये शासन पद्धतियों का अध्ययन करते समय केवल विधान की धाराओं का ज्ञान ही आवश्यक नही परन्तु उससे अधिक आवश्यक यह है कि वास्तविक राजकीय जीवन के विकास का अध्ययन किया जाये। इसके लिये यह जानना पड़ेगा कि विविध लोक समाजों की राजनैतिक प्रवृत्ति कैसी है और उनके व्यवहार में उसका क्या प्रभाव पड़ता है। केवल इससे काम न चलेगा कि यह जान लें उनका राजकीय संगठन किन नियमो के आधार पर खड़ा हुआ है।

परम क्लिष्टता अवांच्छनीय है—लिखित संविधान केवल ढांचा होते हुए भी उसको बहुत क्लिष्ट बनाना उचित नही होता। किसी भी शासन विधान को सर्वांग रूप में आदर्श नही बनाया जा सकता कि उसमें कभी संशोधन की आवश्यकता ही न हो। मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है और गतिशील है। समय की प्रगति से परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है और समाज की आवश्यकताये बदलती रहती है। यदि संविधान को इन आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन बनाना है तो यह आवश्यक है कि उसमें समय समय पर स्थिति के अनुसार संशोधन हो। यदि ऐसे संशोधन का पर्याप्त आयोजन न किया तो दो बाते हो सकती है। या तो संविधान समाज की तत्कालीन राजकीय परिस्थितियों से असगति हो जायगा अथवा इसके नियमो की खींचातानी कर ऐसा अर्थ लगाया जायगा कि व्यवहारिक राजकीय संगठन का चित्र वैधानिक चित्र से भिन्न दिखाई पड़ने लगेगा। अमरीका के राष्ट्रपति के वक्तव्य

का जो उल्लेख हमने ऊपर किया है उसका अभिप्राय यही था। उन्होंने अमरीका के शासन-विधान की जो कसे हुए कोट से उपमा दी उसका खुलासा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट हो जायगा।

यदि लिखित सविधान के पक्ष मे और विपक्ष मे कही हुई बातों पर ध्यान देकर यह निर्णय करना हो कि क्या लिखित और क्लिष्ट कहलाने वाला शासन-विधान वाछनीय है तो हम यह कह सकते है कि यूरोप मे जो ऐसे संविधान का अनुभव अब तक प्राप्त हुआ है उससे वहां के लोग उसको वांछनीय समझते हैं। ऐसे विधान के विरोध मे क्लिष्टता या लचीला न होने की जो दलील दी जाती है वह किसी अश तक सत्य है जहा तक उस विधान मे सशोधन करना दुष्कर है।

विधान पर लोक-नियन्त्रण—लोक प्रभुता के सिद्धान्त के अनुसार शासन विधान पर जनता का नियन्त्रण रहना चाहिये। यह नियन्त्रण दो प्रकार से रह सकता है। प्रथम तो इस प्रकार कि मूल सविधान के बनने के पश्चात् यदि इसमे परिवर्तन कराना हो तो यह संशोधन भी जनता से स्वीकृत कराया जाय। अमरीका के उपराष्ट्रो के जब शासन विधान बने उस समय वहां तत्कालीन प्रचलित प्रभुता की भावना का ऐसा प्रभाव था कि उपराष्ट्रो के मूल संविधान और उसके सशोधनो पर भी जनमत लिया जाता था। अमरीका के सघ-शासन-विधान मे उपराष्ट्रो के विधानो का उल्लेख नही है। उपराष्ट्रों के विधान पृथक् पृथक् है। अमरीका के सघ-शासन-विधान में यह आयोजन नही है कि वैधानिक सशोधन पर जनमत लिया जाय। यही बात ससार के दूसरे लिखित शासन संविधानो के लिये भी लागू होती है। विधान-मण्डल जैसे साधारण कानून बनाते है वैसे ही वे विधान-सशोधन भी करते हैं। केवल एक विशेष शैली के द्वारा यह काम करना पड़ता है और इस संशोधन की स्वीकृति साधारण मताधिक्य के द्वारा न होकर विशेष मताधिक्य से होती है। फ्रास के सन् १८७५ ई० के सविधान मे सशोधन किस प्रकार होता था उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी। विधानमण्डल के दोनो आगार पृथक्-पृथक् अपने सदस्यों की सख्या के बहुमत से यह निर्णय करते थे कि संशोधन आवश्यक है। उसके पश्चात् वे एक संयुक्त अधिवेशन मे एकत्रित होते थे और इन एकत्रित सदस्यों के बहुमत् से यदि यह निर्णय होता था कि सशोधन कर दिया जाय तो विधान संशोधित समझा जाता था।

यदि यूरोपीय राष्ट्रों के अनुभव को हम निर्णायक माने तब तो हमें यही कहना पड़ेगा कि प्रत्येक देश मे जहाँ वैज्ञानिक शासन पद्धति है, वहां

शासन संविधान लिखित होना चाहिये और उस लिखित संविधान का संशोधन करने की प्रणाली वैसी ही हो जैसी कि फ्रांस के सन् १८७५ ई० के विधान के लिये प्रचलित थी।

वैधानिक सरकार की परिभाषा—आजकल प्राय सब प्रमुख राज्यो का शासन वैधानिक रीति पर होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वैधानिक शासन किसे कहते है और इसकी विभिन्न-पद्धति मे क्या भेद है? वैधानिक शासन मे कौनसी ऐसी विशेषता है जिसमे उसकी पहिचान हो सकती है? वैधानिक शासन पद्धति मे इसके विपरीत स्वभाव वाली व्यक्तिगत शासन पद्धति के समान किसी एक ऐसी व्यक्ति की स्वेच्छा या सनक से शासन नीति निर्धारित नही होगी, जिसके हाथ मे राजशक्ति हो। परन्तु उस राज्यतन्त्र की जड मे ऐसे नियम होते है जो सर्वसाधारण द्वारा इतने मान्य होते है कि प्रभुताधारी कोई अधिकारी उनकी अवहेलना करने का साहस नही करता और अपना आचरण उन नियमो से परिमित रखता है। वैधानिक शासन इसलिये कानून का शासन है, व्यक्तियो का शासन नही है। और जब यह सही है कि वह नियमो का शासन है तो यह आवश्यक ही है कि ऐसे शासन के लिए वे कानून या नियम बनाये जॉय जो सरकारी अधिकारियो के कार्यो की मर्यादा स्थिर कर दे। ये नियम पुञ्ज ही विधान के नाम से पुकारे जाते है।

संविधान निर्माण के विविधि प्रकार—यद्यपि संविधान-निर्माण की आधार-भूत प्रेरणा सब देशो मे यही रहती है कि निरकुश राज्यशक्ति को नियमो से परिमित और नियन्त्रित रखा जाय पर फिर भी राज्यप्रभुता पर अकुश लगाने की शैली और विकास क्रम विभिन्न प्रकार का होता है। ब्रिटिश शासन-विधान धीरे धीरे बढकर अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँचा है, उसके सब नियम किसी एक लेख्य मे एकत्रित नही मिलते। उसका कारण ही यह है कि ये नियम किसी एक शासक या विधान सभा ने तत्व विचार और वैज्ञानिक ढग से नही बनाये है। ये नियम लम्बे समय मे प्रयुक्त होते होते इतने मान्य हो गये है कि उनका उल्लेख किसी लेख्य मे न रहते हुए भी सब उनको समझते और इससे नियन्त्रित रहते है। ये नियम प्राचीन परम्पराये रूढियाँ, और रीति-रिवाज है जिनका व्यवहार अतीत से होता चला आ रहा है। ऐसे रीति रिवाज और परम्पराये उसी देश या समाज मे बहुत समय तक सुरक्षित रह सकती है जहा समाज का इतिहास लम्बा हो और उसमे अधिक उथल पुथल और विशेषकर हिंसात्मक क्रान्ति न हुई हो। पर ब्रिटेन को छोड कर ऐसे देश और समाज कम है जिनकी

ऐतिहासिक स्थिति इतनी सुदृढ़ और सामाजिक परिवर्तन इतने शान्त व अहिंसात्मक रहे हों। इसलिये उनमें विधान निर्माण का कार्य ब्रिटेन जैसा क्रमबद्ध न रह कर प्रायः हिंसात्मक क्रान्ति के फलस्वरूप ही हुई है। या तो राज्यविद्रोह के डरने या विद्रोह के फलस्वरूप सम्राट् को बाध्य होकर अपने आपको विधान के आधीन करना पड़ा, या सम्राट् को अपनी इच्छा के विरुद्ध विधान परिषद् बुलानी पड़ी जिसने शासन विधान बनाया। कहीं-कहीं पर प्रजा ने स्वतः ही विधान परिषद् बनाई और अपने लिये एक शासन-विधान रच लिया। अमरीका व जर्मनी में उपराष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसने शासन-विधान की रचना की। अमरीका में इस रचना के पश्चात् उपराष्ट्रों में पृथक् पृथक् प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने यह विधान स्वीकृत किया। प्रायः थोड़े हेर फेर के साथ इसी पद्धति से संसार के सब लिखित शासन-विधानों का जन्म हुआ है। एक वैधानिक समिति निर्वाचित होती है और विधान का मसविदा तैयार करती है। उसके पश्चात् या तो वही समिति उसको स्वीकार कर लागू कर देती है या अनुसमर्थन (ratification) की पद्धति से इसका संस्कार होता है। इस अनुसमर्थन में कहीं प्रत्यक्ष व कहीं अप्रत्यक्ष रूप से जनता भाग लेती है।

संविधान में किन किन बातों का समावेश होता है यदि इसकी जानकारी हो जाय तो वैधानिक शासन-पद्धति को भली-भाँति समझने में सुगमता रहेगी। इसलिये नीचे वे बातें दी जाती हैं जिनका नियम विधान द्वारा होना है :—

(१) प्रत्येक संविधान, चाहे वह किसी सम्राट् के आत्मसमर्पण और आत्म-त्याग के फलस्वरूप बना हो या किसी प्रतिनिधि विधान परिषद् ने उसका निर्माण किया हो, राजशक्ति को मर्यादित करता है। सरकार क्या कर सकती है और क्या नहीं कर सकती उसको स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार संविधान राजशक्ति का स्रोत है। सरकार के अधिकार संविधान से प्राप्त होते हैं।

(२) नागरिकों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य क्या हैं और प्रजा व राज्य में किस प्रकार का सम्बन्ध है इसकी निश्चित व्याख्या संविधान में कर दी जाती है।

(३) संविधान निश्चित करता है कि राज्य के शासन कार्य में कौन-कौन व्यक्ति या व्यक्ति समूह भाग ले सकते हैं और किस सीमा तक वे राज्य शक्ति

का उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करना आवश्यक है क्योंकि लोकतन्त्र राज्यों में भी शासन करने का अधिकार सबको नहीं होता, न ऐसा सम्भव है कि प्रत्येक नागरिक शासन सूत्र संभाल सके। जो राज्य पूर्ण रूप से जनतंत्रात्मक नहीं हैं उनमें तो जनता का बहुत बड़ा अंश राज्य कार्य में सम्मिलित होने से वंचित रखा जाता है।

(४) संविधान में उन मौलिक नियमों और सिद्धान्तों का उल्लेख भी कर दिया जाता है जिनके अनुसार राज्य के शासनाधिकारी चुने जायें।

(५) मोटे रूप में संविधान इस बात का निर्देश भी करता है कि सरकार का संगठन किस प्रकार से होगा, सरकार के कौन कौन से अधिकार और शक्तियां होंगी और सरकार के विविध अंगों का एकीकरण किस प्रकार किया जायगा। किसी किसी संविधान में इन बातों का विस्तृत वर्णन भी कर दिया जाता है।

(६) संविधान राज्य का सर्वोच्च और प्रमुख कानून है। इस कानून के विरुद्ध जो कुछ की राज्य कार्य किया जाता है वह अवैध और अनाधिकार चेष्टा समझी जाती है।

संवैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन शैली में भेद—उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जायगा कि वैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन-शैली में क्या भेद है। वैधानिक सरकार का जनतंत्रात्मक होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु कोई भी सरकार जनतंत्रात्मक नहीं हो सकती यदि उसका संगठन ऐसे विधान के अनुसार न हो जिसको जनता ने या उसके बड़े अंश ने अपनी सहमति से तैयार किया हो।

उदाहरणार्थ, जापान का १९४५ तक शासन वैधानिक था पर वह जनतंत्रात्मक नहीं था सन् १९१८ ई० से पूर्व आस्ट्रिया, जर्मनी और टर्की में भी वैधानिक सरकारें थीं पर वे जनतंत्रात्मक नहीं थीं। इन राज्यों के शासन विधान में शासन प्रणाली को बड़े यत्न से विस्तारपूर्वक निश्चित कर दिया गया था पर वह शासन प्रणाली किसी भी प्रकार से प्रजातंत्रात्मक नहीं कही जा सकती थी। इसका कारण यह है कि इन राज्यों में शासन-विधान ने शासन-शक्ति को इस प्रकार वितरित किया था और राज्यतंत्र के संगठन व उसकी कार्य प्रणाली ऐसी बनाई थी कि कुछ व्यक्तियों को या समूहों को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त थे। जनतन्त्रात्मक राज्य में इसके विपरीत शासन के हेतु सरकार का ऐसा संगठन होता है और शासनाधिकार इस प्रकार बांटे जाते हैं जिससे राज्य में रहने वाले सब वर्ग,

समूह और व्यक्ति खुले तौर पर उनसे लाभ उठा सकते है। जनतत्र मे सिद्धाततः नागरिको के अधिकार व कर्तव्य समान समझे जाते है। राज्य से लाभ उठाने का सबको समान अधिकारी समझा जाता है, न किसी को विशेषाधिकार होता है और न विशेष सुविधा दी जाती है।

इसका यह अभिप्राय नही है कि जनतत्र-राज्य मे दिन प्रति दिन के व्यवहार मे राज्य से सबको समान सुविधाएँ मिलती रहती है। सिद्धान्ततः यह बात मान ली गई है किन्तु आदर्श प्राप्त करना दुष्कर है। जनतत्र राज्य में भी भिन्न-भिन्न वर्गो व समूहो मे सघर्ष उसी प्रकार चलता रहता है जैसे दूसरे प्रकार के राज्यो मे। प्रत्येक वर्ग अपने अधिकारो को बढाना चाहता है। इस सघर्ष में अधिकारो का पलडा कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर है जिसके फलस्वरूप व्यवहार मे यह समानता नही होती जो सविधान ने सिद्धान्तत स्वीकार कर ली है। पर जनतंत्र मे विभिन्न समुदायो और व्यक्तियो मे वाछित अन्यायपूर्ण पक्षपात नही होता, या यो कहे कि न होना चाहिये, और प्रत्येक व्यक्ति व समुदाय को अपनी प्रतिभा दिखाने का पूर्ण अवसर मिलता है जैसा कि किसी अन्य प्रकार की शासन प्रणाली मे नही मिलता।

वर्तमान युग मानव इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। राजनीतिक दृष्टि से तो इसकी महत्ता का ज्ञान हमे इस बात से होता है कि दो महासमरों (१९१४-१८ और १९३९-४५) के फलस्वरूप व्यक्ति के अधिकारो और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता को विशेषकर मान्यता दी गई है। साम्राज्यवाद की जड उखड़ गई है और वैधानिक शासन द्वारा प्रत्येक देश स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का अधिकारी हो गया है।

अध्याय २

संघ शासन का सिद्धान्त

"यदि आधुनिक वैधानिक-विचार-शैली से एक ही राज्य में कई सत्ताधारी मान्य हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हम यही कल्पना कर सकते हैं कि वहां कर्तव्यों व अधिकारों का एक पुञ्ज ऐसा है जो सर्वोच्च और अविभाज्य है पर कुछ व्यक्ति सम्मिलित रूप से उसे धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त संघ राज्य में राज्य शक्ति का वही रूप होता है, जैसे एकिक राज्य में। भेद केवल इसी बात का रहता है कि संघ राज्य शक्ति के धारण करने वाली संस्था (व्यक्ति) विशेष प्रकार की होती है। इनका रूप एक व्यक्ति का सा नहीं होता पर अनेक व्यक्तियों के विशेष प्रकार के संगठन से बनती है।"—
(ह्यगो प्रएज़)

हमने शासन संविधानों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। उनमें से एक तो है एकिक और दूसरा संघात्मक। आधुनिक काल में वैज्ञानिक उन्नति के कारण विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में बड़ा परिवर्तन हुआ है, और राष्ट्रों के दृष्टिकोण में इसके फलस्वरूप बड़ा भारी अन्तर होगया है। इस प्रकार राष्ट्र के सम्बन्ध में पुरानी भावना अब बदलती जा रही है। अब कोई राष्ट्र यह दावा नहीं करता कि वह बिल्कुल स्वावलम्बी, स्वेच्छाचारी और निरपेक्ष रह सकता है। यह धारणा पूर्ण रूप से सब राष्ट्रों में जम गई है कि पुरानी राष्ट्र-भावना के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भावना को ग्रहण करने से ही कल्याण हो सकता है।

राजनैतिक संघ के प्रकार (Types of Political Unions)—राजनैतिक संघ का अधिकाधिक प्रचार बढ़ रहा है और प्रोफेसर सिजविक की यह भविष्यवाणी सच्ची सिद्ध होती जा रही है कि "जब हम अतीत से अनागत की ओर दृष्टि डालते हैं तो राज्यतंत्र के संगठन के सम्बन्ध में संघ-प्रणाली की उत्तरोत्तर अपनाये जाने की सम्भावना प्रतीत होती है।" भविष्य में ही नहीं, अतीत में भी प्राचीनयुगीय तथा मध्ययुगीय राजनैतिक संघों के उदाहरण मिलते हैं।

पर इन संघों का बाह्यरूप एक सा नहीं था। इनका यदि अध्ययन किया जाय तो उनके कई भेद मिलेंगे। इन भेदों के आधार पर इनको निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा जा सकता है।

१—व्यक्तिगत संघ (Personal Unions)—ऐसे एक संघ का उदाहरण इंगलैण्ड और हैनोवर का संघ है जो सन् १७१४ से १८३७ ई० तक रहा। जब जार्ज प्रथम इंगलैण्ड के राजसिंहासन पर बैठा तो उसने अपनी पैतृक हैनोवर की जागीर अपने आधीन रखी। सन् १७१४ से १८३७ ई० तक हैनोवर और इगलैण्ड का राज्य एक ही व्यक्ति के हाथ में था। पर दोनों राज्य एक दूसरे से स्वतन्त्र थे, कोई एक दूसरे के आधीन न था। दोनों की आन्तरिक और विदेशीय नीति व शासन स्वतन्त्र रूप से संचालित होता था।

२—वास्तविक संघ (Real Unions)—सन् १६०३ से १७०७ तक इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड अपने घरेलू मामलों में स्वतन्त्र राज्य थे। विदेशी मामलों में वे दूसरे राष्ट्रों के सामने एक इकाई के रूप में उपस्थित होते थे। पर १७०७ ई० के अधिनियम (Act) से घरेलू शासन में भी ये दोनों एक दूसरे से मिल गये। इस अधिनियम की तीसरी धारा इस प्रकार थी। ग्रेट ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में एक ही संसद् (Parliament) होगी, जिसका नाम "ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेंट होगा।" इस अधिनियम की दूसरी कई धाराओं ने मुद्रा, माप और भार की दोनों राज्यों में एकता स्थापित की। दो राजमुद्राओं के स्थान पर एक राजमुद्रा बना दी गई। सबसे महत्वशाली तो २४ वीं धारा थी जिससे संघ को इकाई बना दिया। उस धारा के अनुसार "दोनों राज्यों में इस अधिनियम की धाराओं के असंगत यदि कोई नियम या अधिनियम हो तो वे संघ स्थापना के पश्चात् अवैध माने जायेंगे और दोनों राज्यों की पार्लियामेण्ट इसकी प्रथक् प्रथक् घोषणा करेगी।" यह सम्मिलन पूर्ण सम्मिलन के रूप में था जिससे ऐकिक राज्य की स्थापना हुई।*

३—समूह शासन या अस्थायी संघ (Confederations)—इस प्रकार के संघ का जन्म दो या अधिक राज्यों की मित्रता से उत्पन्न होत है। उसका अभिप्राय किसी विशेष आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि होता है। प्रायः यह मित्रता अस्थाई रहती है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समूह शासन स्थापित किया जाता है उसके लिये संयुक्त संस्थायें बना ली जाती हैं। इस

* शर्मा, फेडरल पोलिटी, पृष्ठ ४।

सहयोग से सम्मिलित राष्ट्रों की व्यक्तिगत शक्ति का तो ह्रास नहीं होता किन्तु केन्द्रित शक्ति एक प्रकार से स्थायी और बलवान बनी रहती है। विदेशीय व अन्तराष्ट्रीय मामलों में ऐसा सामूहिक शासन (Confederacy) में प्रत्येक एक राष्ट्र के समान दिखाई देता है और घरेलू या अन्य असामूहिक मामलों में सदस्य राष्ट्र (Member-state) स्वतन्त्र होता है। फिर भी सामूहिक शासन को सदस्य राष्ट्रों के ऊपर दण्ड लगाने का अधिकार नहीं होता। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने लाभ के सामने समूह की उपेक्षा कर सकता है और फलत वह समूह राष्ट्र (Confederacy) स्थायी नहीं रहता। उदाहरणार्थ, प्रथम् महासमर के पहले आस्ट्रिया-हंगरी एक समूह राष्ट्र था जो केवल ४७ वर्ष तक ही चल सका और उक्त समर की परीक्षा की कठिनाइयों को पार न कर सकने से छिन्न भिन्न हो गया। ऐसे समूह-राष्ट्रों के उदाहरण और भी हैं, जैसे अमरीकन समूह-राष्ट्र (१७७७-१७८९), स्विटज़रलैण्ड का समूह राष्ट्र (१८७४ तक) और जर्मन समूह राष्ट्र (१८७४ तक)।

४—संघ शासन (Federations)—चौथा और अन्तिम सहयोग संघ शासन है जिसमें सम्मिलित राष्ट्र या उपराष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता त्याग देते हैं यद्यपि व्यक्तिगत रूप में उनको कुछ राज्याधिकार अवश्य रहते हैं। बचे हुए अधिकार एक केन्द्रीय सत्ता को सुपुर्द कर दिये जाते हैं जो सामूहिक मामलों में सर्वाधिकारी बन जाती है। ऐसे संघ शासन के उदाहरण संयुक्त-राष्ट्र अमरीका (१७८९ से), स्विटज़रलैण्ड (१८७४ से), कनाडा (१८६७ से), आस्ट्रेलिया (१९०१ से), प्रजातन्त्र जर्मनी (१९१९-१९३३ तक), भारत (१९५० से) और सोवियट रूस (१९२३) में मिलते हैं।

संघ शासन की परिभाषा—संघ शासन एक वह प्रणाली है जिससे राज्यशक्ति "ऐसी अनेक समानाधिकारी संस्थाओं में वितरित होती है जिनकी स्थापना व नियमन एक विधान द्वारा होता है।" * यह विभाजन क्यों आवश्यक है? यह सब जानते हैं कि नागरिक जितना अपने समीपवर्ती और दिन प्रतिदिन सम्पर्क में आने वाली संस्थाओं से दिलचस्पी रखता है उतना दूसरी संस्थाओं से नहीं। नागरिक राष्ट्र और देश की प्रणाली की अपेक्षा अपने नगर, ज़िला और प्रान्त की बातों से अधिक निकट सम्बन्ध रखता है। उसके सुख दुख में, प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में नगर, ज़िला या प्रान्तीय शासन का अधिक हाथ रहता है, केन्द्रीय शासन का काम। नागरिक को शिक्षा, सफाई, सड़कें,

---

* फेडरल पोलिटी, पृष्ठ १।

प्रकाश, विनोद और दूसरी जीवन सुविधाओं की आवश्यकता रहती है इन्हीं से उसका जीवन सुख-पूर्ण बनता है। जहाँ पर ये सब प्राप्त हैं स्वभावतः उस स्थान से और वहां की संस्थाओं से उसे प्रेम और निष्ठा हो जाती है। वह अपनी दृष्टि इनहीं की ओर लगाये रहता है। दूरवर्ती केन्द्रीय शासन का उसके लिये अधिक महत्व नहीं रहता। केवल अप्रत्यक्ष रूप से, और वह भी कभी कभी, वह अपने नगर या प्रान्त से परे केन्द्रीय शासन की ओर अपनी दृष्टि फेरता है। यही कारण है कि प्राचीन युग में जब आने जाने के मार्ग दुरगम थे, शासन का विस्तार छोटा होता था और छोटे राज्य थे। आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने जल, स्थल और वायुयात्रा को सुगम और शीघ्र बना दिया है, दूरियां अब कम हो गई हैं और पृथ्वी सिकुड़ कर छोटी हुई सी प्रतीत होती है। इसलिये राष्ट्र का विस्तार भी पहिले से अधिक बढ़ गया है। अब एक राष्ट्र की सीमा दूसरे राष्ट्र की सीमा से टकराती है, उनके बीच में अब कोई अपरिचित भूमि नहीं है, अब वे एक दूसरे से पृथक रहकर एकांकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। अब सब राज्य परस्परावलम्बी हो गये हैं और उन्होंने पृथकत्व का बाना उतार फेंका है। एक ओर अन्तराष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में नियमन आता जा रहा है, दूसरी ओर उस सहयोग के फलस्वरूप आत्म-प्रकाश और आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि नागरिक स्थानीय संस्थाओं से निकट सम्बन्ध रखते हुये भी यह जानने को उत्सुक रहता है कि दूसरे नगर, ज़िले, प्रान्त या देश में क्या हो रहा है। यह जो बाहर से विरोधी दिखाई देने वाली स्थानीय और राष्ट्रीय भावनायें हैं उनका मेल कराने के लिये ही संघ शासन की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है।

संघ शासन की पद्धति बड़े विचार-विमर्श के पश्चात राजनीतिज्ञों द्वारा निकाली गई है, इसलिये यह पद्धति उस पद्धति की अपेक्षा नई है जिसको एकिक-शासन-पद्धति (Unitary System of Government) के नाम से पुकारा जाता है और जिसका अनजाने तथा धीरे-धीरे विकास हुआ है। वास्तव में संघ-शासन बड़े परिपक्व राजनैतिक अनुभव का परिचायक है और उसका संचालन करने के लिये मजे हुये राजनैतिक अनुभव की आवश्यकता भी है। इसीलिये १७८७ ई० से पूर्व संघशासन प्रणाली प्रचलित न थी। सन १७८७ ई० में बनी संयुक्त राष्ट्र अमरीका की संघशासन प्रणाली एक नई योजना थी। यह ठीक है कि प्राचीन इतिहास में भी हमें संघशासन के उदाहरण मिलते हैं। परन्तु वे उन छोटे प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रों के सामूहिक शासन थे जो उन्होंने युद्ध

में गौरव प्राप्त करने के लिये स्थापित किये थे। प्राचीन काल में बड़े-बड़े साम्राज्य भी थे जिनमें एक सम्राट के आधीन अनेक छोटे छोटे राजा राज्य करते थे परन्तु उन साम्राज्यों में संघशासन के गुण न मिलते थे। क्योंकि फ्रीमैन के कथनानुसार "संघ-शासन" नाम उन्हीं सदस्य राष्ट्रों के संघ को दिया जा सकता है जिसका सम्मिलन केवल मित्रता से अधिक घनिष्ठ हो और जिसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की मात्रा इतनी हो कि हम उसे केवल स्थानीय स्वायत्त शासन (Municipal Government) की स्वतन्त्रता या नगर स्वतन्त्रता (Municipal Freedom) न कह सकें। *

संघ-शासन में दो शासन-शक्तियां होती हैं। पहिली शासन शक्ति वह सरकार है जो सम्पूर्ण राष्ट्र के ऊपर शासन करती है, उसको केन्द्रीय सरकार या संघ सरकार (Federal Government) के नाम से पुकारते हैं, दूसरी वे अनेक सरकार हैं जो संघ के सदस्य-प्रान्तों या उपराज्यों (States) के ऊपर शासन करती हैं। संघ-शासन शक्ति प्रत्येक संघात्मक शासन में इन दो प्रकार की सरकारों में बंटी हुई होती है। संघ सरकार बनाने के लिये दो बातें आवश्यक हैं। एक ओर संघ के सदस्य-राज्य उन विषयों के शासन में पूर्णतया स्वतन्त्र रहने चाहियें जिनका सम्बन्ध एक सदस्य-राज्य से ही है। दूसरी ओर सब सदस्य-उपराष्ट्र अपनी सामूहिक संस्था के आधीन रहने चाहियें।[1] लार्ड चार्नवुड ने संघ-शासन के संविधान की परिभाषा करते हुये कहा है कि "इस संविधान में शासन कार्य का एक भाग राष्ट्र की अनेक प्रान्तीय वा जिले की सरकारों द्वारा सम्पादित होता है और दुसरा भाग इन सरकारों में से भिन्न-भिन्न सारे राष्ट्र की एक सरकार द्वारा सम्पादित होता है।[2]

संघ किस प्रकार बनते हैं—संघ दो प्रकार से बनते हैं, एकीकरण द्वारा और खण्डन द्वारा। जहाँ केन्द्राभिसारी शक्तियाँ प्रबल होती हैं वहां एकीकरण द्वारा संघ स्थापित होता है और इसके विपरीत केन्द्रापसारी प्रवृत्ति जहाँ अधिक बलशाली होती है वहां खण्डन द्वारा संघ-शासन स्थापित होता है।

---

* फ्रीमैन, हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमेण्ट, भाग, १, पृष्ठ ३।

(१) फ्रीमैन हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमेण्ट पृष्ठ २-३।

(२) दी फैडरल सोल्यूशन, पृष्ठ ५५।

पहले अर्थात् एकीकरण में अनेक छोटे-छोटे राज्य जो संघ स्थापित होने से पूर्व घरेलू व विदेशी मामलों में पूर्ण या अर्ध-स्वतन्त्र होते हैं, अपनी इच्छा से सहयोग करते हुए एक केन्द्रीय नई सरकार की स्थापना करते हैं और उसके हाथों में अपनी शासन शक्ति का कुछ भाग सोंप देते हैं। यह नई सरकार सारे राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में शासन शक्ति का उपभोग करती है। उसको छोड़कर बची हुई शासन शक्ति सदस्य-उपराज्य अपने पास रखते हैं और अपने घरेलू एवं व्यक्तिगत मामलों में वे स्वशासन करते हैं। इससे यह प्रकट है कि जब कुछ राज्य मिलना चाहते हैं पर मिलकर एक एकाई बनाना नहीं चाहते तब संघ-शासन की स्थापना करते हैं। इस प्रकार जो संघ-शासन बनते हैं उसका उदाहरण अमरीका का संघ-शासन है। स्विटज़रलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संघ-शासन भी इसी रीति से स्थापित हुए थे। दूसरे, अर्थात् खण्डन, में एक बड़े राज्य को तोड़कर उसको छोटे-छोटे उपराज्यों में विभाजित कर दिया जाता है, इन उपराज्यों को अपने-अपने आन्तरिक या स्थानीय मामलों के शासन का भार सौंप दिया जाता है और इन उपराज्यों का जन्मदाता राष्ट्र बचे हुये सारे राष्ट्र के हित से सम्बन्ध रखने वाले विषय में सब उपराज्यों पर शासन करता है। सन् १८६७ में कनाडा में यही हुआ। वहां पहिले ऐकिक शासन था फिर उसको दो भागों में बाँट दिया गया, क्यूबक और ओन्टेरियो के दो प्रान्तों में प्रान्तीय शासन और सारे कनाडा का संघ-शासन। दक्षिणी अफ्रीका का संघ स्थापित होने से पूर्व वहाँ भी ऐकिक शासन था और इसी क्रम से वहां संघात्मक शासन स्थापित किया गया। यह क्रम ९ जून सन् १८७१ के उस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है जिसको केप(Cape) असेम्बली ने इस विषय में छानबीन करने वाले एक कमीशन की स्थापना के हेतु पास किया था। यह प्रस्ताव इन शब्दों में था "और क्योंकि यह सुविधाजनक हो कि उपनिवेश को तीन या अधिक प्रान्तीय सरकारों में बांट दिया जाये जो अपने घरेलू मामलों का प्रबन्ध करें और एक ऐसे संघ-शासन में संगठित हो जाये जिसमें एक सम्मिलित संघ सरकार हो जिस पर उन मामलों के प्रबन्ध करने का भार हो जो संयुक्त उपनिवेश के सम्मिलित हितों से सम्बन्ध रखते हों...।*

सन् १९३५ के भारतीय संघ-शासन विधान से जो भारतीय संघ स्थापित होने जा रहा था उसमें एकीकरण और खण्डन दोनों क्रमों को अपनाने की

* न्यूटन—दी यूनीफिकेशन आफ साउथ अफ्रीका, भाग १, पृष्ठ १२।

योजना थी। तत्कालीन ब्रिटिश इण्डिया और देशी राज्यों में एकीकरण के क्रम से और ब्रिटिश इण्डिया के प्रान्तों को कुछ अधिक छोटे प्रान्तों में बांटने से संघ-शासन बनाने का प्रस्ताव उस समय विचाराधीन था। भारतीय गण-राज्य का विधान १९५० से ही संघात्मक है।

संघ शासन की विशेषतायें—(Federal Constitutions) अन्य शासनों की अपेक्षा कुछ विशेषतायें रखता है। हर्मन फाइनर (Herman Finer) के कथनानुसार ये विशेषतायें इस प्रकार हैं—विधायिनी शक्ति (Legislative Power) और शासन-अधिकारों का विभाजन, उपराष्ट्रों का संघ संसद् में प्रतिनिधित्व, आय सम्बन्धी विशेष प्रबन्ध, दो शासन शक्तियों का साथ-साथ एक ही क्षेत्र में अधिकार होना, संघ-शासन विधान की क्लिष्टता, न्यायपालिका का विशेष महत्व और राज्य निष्ठा तथा सम्बन्धोच्छेद (Secession) का विशेष सिद्धान्त।

दो सरकारों का साथ-साथ रहना—संघ शासन में सारे राष्ट्र की सम्मिलित सरकार जिसको केन्द्रीय सरकार भी कहते हैं सदस्य उपराज्यों या प्रान्तों की सरकार के सान्निध्य में रहती हैं। शासन की ये दो शक्तियां संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करती हैं इसलिये वे एक दूसरे के आधीन न रह कर अपने-अपने शासन क्षेत्र में, जो विधान द्वारा निश्चित हो जाता है, स्वतन्त्र रहती हैं। "संघ-शासन-विधान" (Federal constitution) और "ऐकिक शासन-विधान" (Unitary constitution) में यही भेद है कि दूसरे प्रकार के संविधान के अन्तर्गत जहां एक ही शासन-शक्ति मान्य होती है जो सब राजकीय मामलों में बिना अपवाद के सर्वशक्तिशाली और सर्वाधिकारी होती है, वहां पहिला अर्थात् संघशासन, विधान शासन-सम्बन्धी अधिकारों और शक्तियों को उपराज्यों की सरकारों व संघ सरकार के बीच बाँट देता है।"* यहां यह तर्क उठ सकता हैं कि ऐकिक-राज्य (Unitary state) में भी अब शक्ति का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) बढ़ता जा रहा है और स्थानीय शासन के हेतु स्थानिक संस्थायें बनती जा रही हैं। इसलिये संघ और ऐकिक राज्य में अन्तर क्या रहा। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि ऐकिक राज्य में शासन के दो स्तर हैं, एक केन्द्रीय और दूसरा स्थानीय पर फिर भी केन्द्रीय शासन का स्थानीय शासन पर आधिपत्य अक्षुण्ण रहता है। स्थानीय या नगर शासन (Municipal Government) की सृष्टि केन्द्रीय शासन शक्ति ही करती है और उस शक्ति को वैधानिक अधिकार प्राप्त रहता

* फेडरल पौलिटी, पष्ठ ७।

है कि इन स्थानीय शासनों के अधिकारों में वृद्धि कर दें या घटती कर दें। यही नहीं बल्कि उसको यह भी अधिकार रहता है कि वह इन शासन संस्थाओं को बिल्कुल तोड़ दे और किसी भी वैधानिक अनौचित्य की दोषी न हो। यदि कोई केन्द्रीय शासन शक्ति ऐसा करने का निश्चय करे तो इस निश्चय के विरुद्ध किसी न्यायालय में पुकार नहीं की जा सकती और न एसा निश्चय अवैध घोषित हो सकता है क्योंकि केन्द्रीय शासन शक्ति स्वेच्छा से इन संस्थाओं की सृष्टि करती है जिससे उसके शासन कार्य में सुविधा रहे। इन संस्थानिक शासन संस्थाओं के नियम केवल उपविधि (Bye-law) ही रहते हैं और वे तभी तक लागू रहते हैं जब तक वे केन्द्रीय शासन शक्ति द्वारा मान्य समझे जाते हैं। संघ शासन में इसके विपरीत शासन के तीन स्तर होते हैं, जो केन्द्रीय, उपराज्यीय या प्रान्तीय, और स्थानिक (एकिक शासन के समान) हैं इससे स्पष्ट है कि उपराज्यीय शासन होने से ही संघ शासन और एकिक शासन मे भेद हो जाता है। उपराज्यों के अधिकार केन्द्रीय सरकार से प्राप्त नहीं होते पर वे सीधे विधान से प्राप्त होते हैं। इससे यह निश्चित है कि उपराज्यों की सरकारें केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा नहीं करतीं, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व संविधान द्वारा सुरक्षित रहता हैं। उपराज्यों की सरकारों के कानून उसी प्रकार वैध (Legal) समझे जाते है जैसे केन्द्रीय सरकार के कानून। उनकी मान्यता केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति या इच्छ पर निर्भर नहीं हो होती।

शासन-अधिकारों का विभाजन—संघ शासन-विधान केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधिकार स्पष्टतया निश्चित कर देता है। शासनाधिकारों का यह विभाजन शासन-क्षेत्र के सब विभागों में कर दिया जाता है। व्यवहार में यह पृथकीकरण बिलकुल पूरा रहता है, इसमें सन्देह के लिये स्थान नहीं रहता, चाहे कानून बनाने का अधिकार हो या उसको कार्यान्वित करने का न्यायिक अधिकार हो या प्रशासनीय, सबके सम्बन्ध में दोनों सरकारों की शक्ति स्पष्टतया मर्यादित कर दी जाती है। आय के स्रोत आदि भी दोनों सरकारों में पृथक् कर दिये जाते हैं। इस अधिकार-विभाजन में साधारणतया यह सिद्धान्त लागू किया जाता है कि वे अधिकार जो राष्ट्रीय महत्व के हितों की रक्षा के लिये आवश्यक है संघ सरकार को दिये जाते हैं जैसे प्रतिरक्षा (Defence) विदेशी सम्बन्ध, बाहरी व्यापार पर कर, रेलवे, डाकघर, तार आदि। इधर भिन्न भिन्न प्रान्तों के आधीन शासन के वे विभाग तथा विषय होते हैं जिनकी देख रेख प्रान्त की सरकार आसानी और अधिक लाभ से कर सकती है तथा

जिन विषयों में सभी प्रान्तों में प्रबन्ध की समानता अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ शिक्षा, न्याय, कलाकौशल, छोटी सड़कें इत्यादि । संघ तथा प्रान्त दोनों ही की सरकार अपने अपने कार्य संचालन के लिये निजी टैक्स लगाती है और दोनों के लिये पृथक् पृथक् कर के साधन निश्चित कर दिये जाते हैं। प्रायः केन्द्रीय संघ सरकार को अप्रत्यक्ष कर के साधन ही सुपुर्द होते हैं, जैसे विदेशी व्यापार कर आदि, पर अब प्रवृत्ति यह होती जा रही है कि संघ सरकार को कर के प्रत्यक्ष साधन भी दिये जाते हैं। इस शक्ति-विभाजन से संघ और प्रान्तों, दोनों ही की सरकारों की स्थिति एक दूसरे से निरपेक्षित रहती है। एक सरकार दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर नहीं सकती।

अवशिष्ट, समवर्ती और निहित शक्तियां—संघ संविधान के निर्माता चाहे इस अधिकार-विभाजन के कार्य में कितने ही दक्ष हों और कितनी ही चतुराई से वे इस काम को करें पर फिर भी राज्य के कर्तव्य इतने अधिक हैं और उनकी संख्या में व विस्तार में समय के बीतने से इतने परिवर्तन होते रहते हैं कि सब कर्तव्यों के सम्बन्ध में दोनों प्रकार की सरकारों के अधिकारों का सर्वदा के लिये और सब तरह पूर्ण वर्गीकरण और वितरण होना किसी भी संविधान निर्माता समिति या व्यक्ति के लिये असम्भव है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका का विधान १७८७ ई०में बनाया गया था जब न वैज्ञानिक आविष्कार हुये थे न आने जाने के आज जैसे साधन ही उपलब्ध थे। विधान के निर्माता उस समय यह कल्पना न कर सकते थे कि १९ वीं व २० वीं शताब्दी में वैज्ञानिक अविष्कारों से ऐसे साधन प्राप्त हो जायेंगे कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के बहुत निकट आ जायगा और आपस में घनिष्ठता तथा सहकारिता की मात्रा इतनी बढ़ जायगी जैसी आजकल वर्तमान है। इसलिये अब राष्ट्र के कामों में जो नवीनता तथा वृद्धि हो गई है उसका उनको अनुमान न हो सकता था और न उसके लिये उन्होंने संविधान में कोई आयोजन किया था।

अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers)—उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिये, सब संघ शासन विधान, जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका का शासन विधान भी शामिल है, अवशिष्ट व अवर्गित शक्तियों के सम्बन्ध में विधान में कुछ धारायें बना देते हैं और इन धाराओं के द्वारा उन्हें या तो केन्द्रीय सरकार को या प्रान्तीय सरकारों को सुपुर्द कर देते हैं। यदि केन्द्रोपसारी (Centrifugal) शक्तियां अधिक प्रबल होती हैं तो ये शक्तियां उपराज्यों के सुपुर्द रहती हैं; यदि केन्द्राभिसारी (Centrifugal) शक्तियां

अधिक बलशाली होती हैं तो केन्द्र को। संयुक्त राज्य अमरीका में संविधान वर्णित शक्तियों से बची हुई शक्तियाँ उपराज्यों को सुपुर्द हैं, वहां खिंचाव केन्द्र से बाहर की ओर को है। कनाडा में ये शक्तियां केन्द्रीय सरकार को हैं क्योंकि वहाँ केन्द्र को शक्तिशाली बनानी की प्रवृत्ति है।

समवर्ती शक्तियाँ (Concurrent Powers)—संघ विधान में प्रायः समवर्ती शक्तियों के सम्बन्ध में भी कुछ न कुछ आयोजन रहता है। कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनको संघ और प्रान्तीय दोनों सरकारों में से किसी एक को नहीं सौंपा जाता या जो प्रान्तीय और राष्ट्रीय दोनों की दृष्टि से महत्वशाली हैं। इन विषयों में, संध और प्रान्तीय दोनों सरकारों को व्यवस्था करने और प्रबन्ध करने का अधिकार रहता है। दोनों सरकारों में परस्पर विरोध न उत्पन्न हो जाये इस अभिप्राय से यह निश्चित कर दिया जाता है कि यदि किसी समवर्ती विषय के सम्बन्ध में दोनों सरकारों में मतभेद हो अथवा दोनों किसी एक ही समवर्ती विषय के सम्बन्ध में व्यवस्था और प्रबन्ध करें तो राष्ट्रीय व्यवस्था और प्रबन्ध अधिक मान्य होगा और प्रान्तीय व्यवस्था अमान्य रहेगी। ऐसा करने से यह लाभ होता है कि जो विषय महत्व के हैं सब उपराज्यों में उनकी व्यवस्था की समानता रहती है और राष्ट्रीय सरकार के काम में दृढ़ता और बल रहता है। उदाहरण के लिए जर्मनी के सन् १९१९ के विधान की १३ वीं धारा में यह दिया हुआ था कि जिन विषयों में केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों को समवर्ती शक्तियां प्राप्त हैं उनमें यदि दोनों सरकारें असमान कानून बनावें तो केन्द्रीय कानून ही लागू होगा, प्रान्तीय कानून रद्द समझा जायेगा।

निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Implied Powers)—इस सिद्धान्त का बड़ा महत्व है। संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे प्रथम किया था। अमीरका के सन् १७८७ के विधान में केन्द्रीय या राष्ट्रीय और उपराज्यों की शक्तियों का निश्चित रूप से वर्णन है और अवर्णित शक्तियाँ उपराज्यों की सरकारों के लिये सौंप दी गई हैं। केन्द्र की उल्लिखित शक्तियाँ बड़ी सीमित हैं।

विधान के पहिले अनुच्छेद (Article) की आठवीं धारा में कांग्रेस की शक्तियां इस प्रकार वर्णित हैं—

"कांग्रेस को टैक्स, ड्यूटी, इमपोरट और एक्साइज लगाने का अधिकार होगा व ऋण चुकाने और सारे राष्ट्र की सुरक्षा और योगक्षेम के हेतु आयो-

जन करने का अधिकार होगा। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि सब ड्यूटियां, इम्पोर्ट और एक्साइज सारे संयुक्त राज्य में एक समान होंगे।"

"संयुक्त राज्य की सम्पत्ति और मान के आधार पर ऋण लेने का अधिकार होगा।"

"उपराज्यों विदेशों व इण्डियन जातियों से व्यापार को नियमन करने का अधिकार होगा......।" इत्यादि, इत्यादि।

आठवीं धारा के अन्तिम शब्द ये हैं "काँग्रेस को इन सब कानूनों के बनाने का अधिकार होगा जो उपर्युक्त शक्तियों को और दूसरी शक्तियों को, जो विधान ने संयुक्त राज्य की सरकार को सुपुर्द की हैं या इसके किसी विभाग या अफसर को सौंपी हैं कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक हों और उचित हों।" इन शब्दों का इतना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकांश काँग्रेस के पक्ष में ही व्याख्या की है और निर्णय देते समय इस व्याख्या का उपयोग करते हुए निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार चाहे यह उल्लेख न हो कि अमुक शक्ति सरकार को प्राप्त है किन्तु यदि किसी सरकार के लिये किसी विशेष शक्ति को कार्यान्वित करने के लिये अनिवार्य या उचित है, तो यह समझा जायेगा कि वह शक्ति दूसरी उल्लिखित शक्तियों में निहित है या दूसरी उल्लिखित शक्तियों को देते समय अमुक शक्ति का देने का तात्पर्य था। इस सिद्धान्त के व्याख्याता सुप्रसिद्ध प्रमुख न्यायाधीश मार्शल (Justice Marshall) थे। उन्होंने इस सिद्धान्त के द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमरीका की संघ-सरकार अर्थात् केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ाई, दूसरे संघ-शासनों में भी सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों पर इस सिद्धान्त का प्रभाव पड़े बिना न रह सका है, और इस प्रकार शक्तियों को वर्णन करने में जो कमी रह जाती है, जैसा कि स्वाभाविक है, तो उनके कारण कोई विशेष कठिनाई उत्पन्न नहीं होती।

(क) दो सरकारों की नागरिकता—संघ शासन में प्रत्येक नागरिक को दो सरकारों के प्रतिनिष्ठा रखनी पड़ती है उन मामलों में जो प्रान्तीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र में है, व्यक्ति अपनी प्रान्तीय सरकार का नागरिक रहता है और उसके बनाये हुये कानूनों का पालन करता व उसकी नागरिकता के स्वत्वों से लाभ उठाता है। इसके साथ वह संघ सरकार का भी नागरिक होता है और संघ सरकार के बनाये हुये कानूनों का पालन करता और उसकी

नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकारों को प्राप्त करना है। एकिक शासन में व्यक्ति एक ही सरकार का नागरिक होता है। सामूहिक संघ (Confederation) में भी संघ के निवासी केन्द्रीय सरकार की प्रजा नहीं होते। वे अपने अपने राज्य के नागरिक रहते हैं और संघ के कानून या आज्ञायें अपने अपने राज्य की मध्यस्थता से उन पर लागू होते हैं। संघ की आज्ञायें बिना राज्य की अनुमति से प्रजा को मान्य नहीं समझी जातीं। राजशास्त्री ब्राइस संघ की द्विनागरिकता की इस प्रकार परिभाषा करते हैं :—"प्रमुख बात तो यह है कि प्रत्येक नागरिक के ऊपर दो सरकारों का आधिपत्य रहता है। एक तो उस उपराज्य या प्रान्त (कनाडा जैसी) या कैन्टन (स्विट्ज़रलैण्ड जैसी) की सरकार का आधिपत्य जिसका वह निवासी है, और दूसरा राष्ट्र या संघ की सरकार का जिस संघ में वे सब उपराज्य या प्रान्त शामिल हैं जिनकी प्रजा पर संघ सरकार समानरूप से शासन करती है। इस प्रकार व्यक्ति की दो निष्ठायें रहती हैं, एक अपने प्रान्त के लिये और दूसरी सारे राष्ट्र के लिये। वह दो कानूनों को मानता है, अपनी प्रान्तीय सरकार के कानून और संघ सरकार के कानून। वह संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार के दो भिन्न भिन्न अफसरों की आज्ञा पालन करता है और उन करों को छोड़कर जो उसकी नगर या ग्राम संस्था उस पर लगाती है, दो सरकारों को कर देता है।"* ब्राइस के मतानुसार संघ शासन उसी को कहा जा सकता है जहां केन्द्रीय या संघ सरकार सदस्य उपराज्यों की प्रजा पर सीधा बिना उपराज्य की सरकार की मध्यस्थता के आधिपत्य रखती है। न्यूटन का भी मत इस विषय में स्पष्ट है। उसका कहना है कि "संघ सरकार केवल सम्मिलित राज्यों पर शासन नहीं करती पर उनकी प्रजा पर भी स्वयं शासन करती है। एक दूसरे लेखक ने एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका में संघ शासन के नागरिक का दो सरकारों से कैसा सम्बन्ध रहता है, समझाते हुए लिखा है कि संघ सरकार अपनी उल्लिखित शक्तियों का उपभोग करने में अपने सदस्य उपराज्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है और उन पर शासन करती है। पर उसके साथ साथ संघ के प्रत्येक व्यक्ति से उसका सीधा सम्बन्ध रहता है।...और फलतः संघ के निवासी दो सरकारों के, संघ सरकार के और प्रान्तीय सरकार के नागरिक रहते हैं।"[१] द्विनागरिकता का यह सिद्धान्त सब संघ

---

* कन्स्टीट्यूशन्स, पृष्ठ २८८।

१. भाग १० पृष्ठ २३३। ब्राइस, स्टडीज़ इन हिस्टरी एण्ड ज्यूरिसप्रूडेन्स, भाग २, पृष्ठ ४६० भी देखिये।

शासनों में बरता जाता है। केवल एक उदाहरण ही यहां दिया जाना पर्याप्त होगा। संयुक्त-राज्य अमरीका के संघ-विधान के १५ वें अनुच्छेद में कहा गया है कि "सब व्यक्ति जो संयुक्त राष्ट्र में उत्पन्न हुए हों या जिनका देशीयकरण (Naturalisation) हो चुका हो और उसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत हों, संयुक्त राज्य के व जिस उपराज्य के निवासी हैं उसके नागरिक हैं......।"

(ख) **लिखित और क्लिष्ट संविधान**—संघ शासन-विधान की दूसरी विशेषता यह है कि वह अनिवार्य रूप से लिखित तथा परिवर्तन करने के लिये विशेषतया क्लिष्ट होता है। यह सच है कि आजकल लिखित संविधान की प्रवृत्ति है चाहे राज्य का रूप एककि (Unitary) हो या संघ-शासनीय (Federal) पर संघ शासन की उस विशेषता से यह अभिप्राय है कि यद्यपि एकिक शासन प्रणाली में अलिखित विधान से भी काम चल सकता है, पर संघ शासन में लिखित विधान अनिवार्य है। एकिक शासन प्रणाली में शासन की सारी शक्ति केवल एक सरकार के पास रहती है और वही सरकार सर्वाधिकारी होती है, किन्तु संघ शासन में शासन शक्ति दो भिन्न भिन्न एक दूसरे से निरपेक्ष, सरकारों में बटी रहती है। कुछ विषयों में केन्द्रीय सरकार का शासन रहता है और दूसरों में प्रान्तीय सरकार का। ये विषय या विभाग दोनों सरकारों में पृथक् पृथक् बंटे रहते हैं। इंगलैण्ड का अब भी ऐसा उदाहरण है जहाँ एकिक शासन का लिखित विधान नहीं है। दूसरे एकिक शासनों में सब जगह लिखित विधान ही है। परन्तु संघ-शासन का एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जहाँ अलिखित संविधान हो। संघ-शासन एक प्रकार का पूर्ण संविदात्मक करार (Contractual agreement) है प्रान्तीय सरकारें आपस मे एक मत होकर इस निश्चित करार पर पहुँचती हैं और अपने ऊपर संघ सरकार की स्थापना कर उसे निश्चित अधिकार देती हैं। यह करार (agreement) बड़ा नाजुक होता है और उसमें शक्ति का व अधिकारों का बड़ा सूक्ष्म संतुलन रहता है। दो व्यक्तियों में भी यदि कोई करार (agreement) हो तो वह भी संदेह रहित और सब तरह से स्पष्ट नहीं रहता, यदि वह लिखा जाय तो भविष्य में उनकी शर्तों के सम्बन्धों में उन दोनों व्यक्तियों को भ्रान्ति हो सकती है व झगड़ा हो सकता है। यही बात अधिक मात्रा में उस पेचीदा करार (agreement) के बारे में सत्य है जो दो राज्यशक्तियों के बीच में हो। संघ शासन संविधान संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार की शक्तियों की मर्यादा स्थिर करता है इसलिये दोनों सरकारों के ऊपर उसका महत्वपूर्ण स्थान है। संघ सरकार का या प्रान्तीय

सरकार का कानून तभी वैध समझा जाता है जब वह विधान के अनुकूल हो। एकिक शासन में सरकार की शक्तियों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता क्योंकि वह स्वयं ही शक्तिमान रहती है। यह डी लोम (De Lolme) के उस कथन से स्पष्ट है जिसमें उसने कुछ भद्दे ढंग से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की शक्ति का संक्षिप्त निरूपण किया है। उसका कहना था कि अंग्रेज वकील इस सिद्धान्त पर चलते हैं कि पार्लियामेण्ट सब कुछ कर सकती है, केवल पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती। संघ शासन में पार्लियामेण्ट को ऐसा अधिकार कभी भी नहीं दिया जा सकता।

संघ-शासन-विधान परिवर्तन करने के लिये विशेषतया क्लिष्ट होता है। जब संघ की स्थापना की जाती है तो विभिन्न सरकारों के प्रतिनिधि अपने अपने राज्य के अधिकारों का दावा करते हैं। इन अभ्यर्थनाओं या दावों पर बड़ी सूक्ष्मता और चतुरता से विचार किया जाता है और समझौते पर पहुँचने से पूर्व अनेकों रुकावटों का सामना करना पड़ता है। सब अभ्यर्थनाओं का ऐसा संतुलन और समिश्रण करना पड़ता है जिससे सब सदस्य राज्य संतुष्ट रहें और संघ में सम्मिलित होने को तैयार हों। जितने संघ शासन, संसार में, स्थापित हुये हैं उनका इतिहास इन सब बातों का साक्षी है। जब कई प्रान्त या उपराज्य मिलकर संघ (Federation) स्थापित करते हैं तो इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि संघ सरकार को केवल वे अधिकार दिये जायें जो सम्मिलित शासन के हित में अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं और वे प्रान्त शेष अधिकार व शासन शक्ति अपने पास सुरक्षित रखने का पूरा-पूरा उपाय कर लेते हैं। प्रान्त स्पष्ट शर्तों पर ही अपनी स्वतन्त्रता का कुछ अंश संघ-शासन को सुपुर्द करते और शेष स्वतन्त्रता को अपने पास रखते हैं, इन शर्तों का लिखित और स्पष्ट होना आवश्यक है जिससे सबको अपने अपने अधिकारों का स्पष्ट ध्यान रहे और समय के बीतने से उनके सम्बन्ध में भ्रान्ति न हो जाये, क्योंकि सदैव के लिये या उस समय तक के लिये जब तक संविधान में संशोधन न हो, इन्हीं शर्तों से ही सब के अधिकारों की रक्षा होती है। विधान बनाने में विरोधी अधिकारों का जब इस प्रकार सन्तुलन हो और बड़े प्रयत्न के पश्चात् समझौते पर पहुँचा जाय तो यह आवश्यक है कि विधान का संशोधन सुलभ न होना चाहिये। यदि यह संशोधन करना साधारण कानून की तरह सुलभ कर दिया जाय तो संविधान निर्माताओं का महत्वपूर्ण कार्य शीघ्र नष्ट हो जाय और संघ अधिक समय तक जीवित न रह सके। इसी कारण इस बात को निश्चित रखने के लिये जिन शर्तों पर प्रान्त-गण संघ में सम्मिलित हुये हैं उनको बहुत काल तक सुरक्षित रखा जाय और

शासन संविधान में परिवर्तन कठिनता से हो सके, उसी विधान में उसके परि-वर्तन के ढंग का निर्देश कर दिया जाता है और वह ढंग क्लिष्ट होता है। इसका आशय यह नहीं है कि संविधान में परिवर्तन अथवा संशोधन (Amendment) हो ही न सके। संविधान के निर्माता कितने ही योग्य और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हों, वे संविधान बनाते समय सब अनागत घटनाओं के लिये उचित आयोजन करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है। कोई विधान ऐसा नहीं बनाया जा सकता जो सब समय के लिये और सब अव-स्थाओं के लिये और समान रूप से उपयुक्त हो। मनुष्य जाति की आवश्यक-ताओं में परिवर्तन होता रहता है। उन्नति के मार्ग में नई कठिनाइयों और नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनसे नया अनुभव प्राप्त होता रहता है। संविधान को क्रियात्मक रूप में लाने से ही उसकी कमियां मालूम होती हैं। वर्त्त-मान युग में तो विज्ञान के नये-नये आविष्कारों से मानव जाति की आर्थिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय व राजनैतिक स्थिति में दिन प्रति दिन परिवर्तन होता रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शासन को स्थिति के अनुकूल बदलने के लिये संघ विधान में परिवर्तन हो सकना सम्भव होना चाहिये। ऐसा भी प्राय: होता है कि संघ विधान के निर्माता कुछ पेचीदार समस्याओं का विधान बनाते समय हल नहीं कर पाते और उन्हें भविष्य में सुलझाने के लिये इसलिये छोड़ देते हैं कि विधान को कार्यान्वित करने में जो अनुभव प्राप्त होगा उसकी सहायता से उनको सुलझाना सुगम होगा। इसलिये संघ शासन संविधान में ही उसके संशोधन की विधि का उल्लेख कर दिया जाता है। संशोधन करने की प्रणाली सब संघ-विधानों में एक सी ही नहीं होती, पर साधारण कानून बनाने की प्रणाली की अपेक्षा असीम विशेषतायें सब जगह रहती हैं। प्राय: इस प्रणाली में ऐसा आयोजन रहता है कि संघ के सब सदस्यों, दलों और हितों का संघ विधान के परिवर्तन में मत प्रकाशन ही न हो वरन् उनका थोड़ा बहुत हाथ इस परि-वर्तन अथवा संशोधन में हो। इसलिये यह प्रणाली अधिक पेचीदा और दुष्कर होती है। एकिक शासन को जब चाहें सुविधा के लिये बदला जा सकता है परन्तु संघात्मक संविधान को ऐसा बनाया जाता है कि उसमें अनिवार्य परिवर्तन तो न कर सकें। सारांश यह है कि संघ-शासन विधान में परिवर्तन तथा संशोधन केवल उसी दशा में किया जा सकता है जबकि संघ के हित के लिये यह संशोधन अत्यन्त आवश्यक हो, और फिर इस संशोधन के करने का ढंग भी मामूली कानूनों के बनाने के ढंग से अधिक क्लिष्ट तथा विशेष प्रकार का होता हो।

(ग) विशेष प्रकार की न्यायपालिका—संघ शासन की तीसरी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत एक ऐसा न्यायालय (Supreme Court) स्थापित किया जाता है जो प्रान्तों तथा केन्द्र दोनों की ही सरकारों के प्रभाव से मुक्त हो। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संघ का शासन संविधान एक प्रकार संविदात्मक करार (Contractual agreement) की शर्तों का लिखित वर्णन है। यह वह लिखा हुआ समझौता है जिसमें प्रान्तीय सरकारों और संघ सरकार के बीच अधिकार और शक्तियों का विभाजन किया हुआ होता है और उनके आपस के सम्बन्धों की व्याख्या भी दी हुई होती है। यदि संघ की रक्षा करनी है और उसे चिरंजीवी बनाना है तो इस करार की शर्तों का उचित पालन होना चाहिये, जैसे मनुष्यों का जनसमूहों के बीच करार की शर्तों को सुरक्षित रखने तथा तोड़ने वाले को दण्ड देने के लिये शासन के न्यायालय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केन्द्र की सरकार और प्रान्तों की सरकार के बीच में हुये करार के अनुसार, अर्थात् शासन विधान की शर्तों के अनुसार बाध्य करने तथा किसी भी सरकार को उसके अधिकारों का अति-क्रमण करने से रोकने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है। परन्तु कौनसा न्यायालय यह निर्णय करे कि संविधान के अनुकूल सब सरकारें व्यवहार कर रही हैं और उनके कानून वैध (Legal) हैं या नहीं ? कौन न्यायालय संविधान की सर्वप्रभुता की रक्षा करेगा, कौन उसकी व्याख्या करेगा और कौनसा न्यायालय इसे इनके मौलिक तत्वों के आधार पर व्यापक रूप देगा ? यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रान्तीय या संघ सरकार के आधीन रहने वाला न्यायालय इस काम को सुचारु रूप से नहीं कर सकता, न उसके निर्णयों का कोई मान होगा। इसलिये संविधान में ही एक स्वतन्त्र न्यायालय के बनने का आयोजन कर दिया जाता है। इसको सर्वोत्तम न्यायालय (Supreme Court) कह कर पुकारा जाता है जो सरकारों के आपस के झगड़े निबटाता है और उपर्युक्त दूसरी बातें भी करता है। इस न्यायालय के अधिकार शासन विधान में ही स्पष्ट तथा वर्णित रहते हैं। उन अधिकारों को विधान का संशोधन करके भले ही बदल दिया जा सकता है परन्तु किसी प्रान्त अथवा केन्द्र की सरकार उन्हें नहीं बदल सकती। जिस विधान से प्रान्तों अथवा केन्द्र की सरकारों को अपने अपने अधिकार और शक्तियां प्राप्त हैं उसी विधान से सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार और शक्ति प्राप्त होती है। किसी भी एकिक शासन में न्यायालय की इस प्रकार की स्वतंत्रता हम नहीं पाते। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ही एक ऐसी संस्था है जिसकी उपस्थिति संघात्मक शासन को सुचारु रूप से चलाने में बहुत

कुछ समर्थ है। सब संघ शासनों में सर्वोच्च न्यायालयों ने बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। उदाहरणार्थ, निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया था।

(घ) **सम्बन्धोच्छेद का सिद्धान्त**—संघ शासन में राज्यों का सम्मिलन होता है। वे राज्य सम्मिलन से पूर्व या तो पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं या अर्धस्वतन्त्र। यह सम्मिलन कई प्रकार का हो सकता है। इस सम्मिलन में मिलने वाली इकाइयां समान पदस्थ रह सकती हैं, बिल्कुल एक दूसरे के आधीन रह सकती हैं या कुछ बातों में आधीन और कुछ में स्वतंत्र या समान पदस्थ हो सकती हैं। यह सम्मिलन चिरकालीन या अल्पकालीन हो सकता है, इस सम्मिलन में से निकलना सुकर या दुष्कर या पृथक् होना सम्भव ही न हो सकता हो। यह सम्मिलन पृथक् इकाइयों ने अपने अपने स्वार्थसाधन के लिये किया हो या यह सम्मिलित आवश्यकताओं के कारण अनिवार्य वा सामूहिक निष्ठा से प्रेरित हुआ हो। राजनैतिक सम्मिलनों या संघों के विविध प्रकारों का वर्णन ऊपर हो हो चुका है। अब हमें इस बात पर विचार करना है कि संघ शासन में संघ कहां तक अभंगनीय है, अर्थात् संघ बनाने वाली इकाइयों को संघ से सम्बन्धोच्छेद कर पृथक् होने का अधिकार कहां तक है।

इस सम्बन्ध में दो विरोधी मत हैं। एक ओर तो उन लोगों का मत है जो कहते हैं कि उपराष्ट्र या प्रान्त संघ की स्थापना के पूर्व पूर्णसत्तात्मक स्वतन्त्र और एक दूसरे से पृथक् इकाई थे। वे अपनी इच्छा से संघ में शामिल हुये और शामिल होने का अभिप्राय यह था कि संघ में रह कर वे कुछ सुविधायें प्राप्त करेंगे। उनका कहना है कि ज्योंही ये उपराष्ट्र यह अनुभव करें कि संघ में रहने से उनको कोई लाभ नहीं है उनको संघ से पृथक् होने का अधिकार है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस मत के प्रतिपादक वे लोग थे जो उपराष्ट्रों के अधिकारों की श्रेष्ठता के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में संघ के अधिकार उपराष्ट्रों के अधिकारों से गौण हैं। इस मत के प्रतिपादकों में प्रमुख काल्हाउन (Calhoun) थे। ये लोग कैन्ट की ओर वर्जीनिया में संघ स्थापित होते समय जो प्रस्ताव पास हुये थे उनकी भाषा का सहारा लेकर यह कहते थे कि उपराष्ट्र संघ स्थापना के पूर्व जिस इकाई अवस्था में थे उसी रूप से वे संघ में आये और इसलिये संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् भी उनकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं हुआ और संघ

में वे ज्यों के त्यों अलग अलग इकाई के रूप में सुरक्षित हैं। अमरीका में जब पहली बार सम्बन्धोच्छेद का यह प्रश्न उठा तो उसको तत्कालीन विदेशियों व राजविद्रोह से सम्बन्धित अधिनियमों को रद्द करके टाल दिया। पर जब सन् १८१२ का युद्ध हुआ और फिर सन् १८२८ में जब कांग्रेस ने विदेशी व्यापार पर कर लगाने का निश्चय किया जिससे दक्षिणी कैरोलिना को हानि होती थी तो यह प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। दोनों बार समझौता हो गया और यह विषय टाल दिया गया किन्तु प्रश्न का कोई समुचित सुनिश्चित हल नहीं निकाला जा सका।

दूसरे मत के प्रतिपादकों में मुख्य स्थान डेनियल वैस्टर (Daniel Webster) का है। इन लोगों का यह कहना था कि सारे देश के निवासियों ने मिलकर संघ की स्थापना की थी न कि पृथक् पृथक् राज्यों ने। इस आधार पर वे कहते थे कि उपराष्ट्रों को संघ शासन के कानूनों को शून्य करने का या संघ से सम्बन्ध तोड़ने का कोई अधिकार नहीं है। ये अपने उस मत के समर्थन में, जिससे वे संघ सरकार के अधिकारों को श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानते थे, १७८७ के संघ विधान की प्रस्तावना को सामने उपस्थित करते थे। इस प्रस्तावना में लिखा था "हम संयुक्त राज्य अमरीका के निवासी एक सुदृढ़ व अधिक पूर्ण संघ की स्थापना के लिये, न्याय प्रतिष्ठा के लिये, घरेलू शान्ति के लिये, सार्व-जनिक सुरक्षा के लिये और अपने आपको व अपनी सन्तान को स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त कराने के लिये इस संघ संविधान को दृढ़ संकल्प होकर संयुक्त राज्य अमरीका के लिये स्वीकार करते हैं।" सन् १८६१ में जो गृह युद्ध (Civil War) हुआ उसमें यही प्रश्न उपस्थित था। दक्षिणी उपराष्ट्र दास प्रथा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के दृष्टिकोण से सहमत न थे। लिंकन दास प्रथा को तोड़ना चाहते थे पर दक्षिणी उपराज्यों को इस दास प्रथा से बड़ा लाभ था। उनकी आर्थिक सम्पन्नता इसी दास प्रथा पर निर्भर थी। उत्तरी उपराष्ट्र इस प्रथा के विरुद्ध थे और राष्ट्रपति से सहमत थे। अन्त में झगड़ा यहां तक बढ़ा कि युद्ध हुआ, दक्षिणी उपराज्यों को हार माननी पड़ी और उनको संघ में उनकी इच्छा के विरुद्ध रहना पड़ा। इस प्रकार इस प्रश्न का निबटारा बल प्रयोग से हो गया पर तर्क से न हो पाया। स्विट्ज़रलैण्ड में भी सन् १८४७ में कैथोलिक धर्मावलम्बी कैन्टनों ने जब संघ शासन की आधीनता को मानने से इन्कार किया और संघ से अलग होना चाहा तो सौन्दरवन्द (Sonderbund) के युद्ध से इस समस्या का समाधान हुआ। पृथक होने वाले प्रान्तों की सेना को

जनरल ड्यूफर ने हरा दिया और उन्हें संघ से अलग होने से रोका। उस समय वहां भी बल प्रयोग से ही समस्या सुलझाई गई। पर उसके पश्चात् सन १८४७ और सन १८७४ में संघ शासन विधान में संशोधन करके इस पृथक् होने की इच्छा करने वाले प्रान्तों की बहुत सी शिकायतें दूर कर दी गई।

सम्बन्धोच्छेद के सिद्धान्त की बड़े बड़े राजनीतिज्ञों ने कड़ी आलोचना की है। अमरीका के न्यायाधीश स्टोरी के अनुसार उपराज्यों या प्रान्तों को संघ से पृथक् होने का अधिकार नहीं है और इस प्रकार वे संघ को समाप्त नहीं कर सकते। इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि संघ शासन के शान्तिपूर्वक स्थापित रहने से सब अधिकारी साझीदारों के प्रमुख हितों की रक्षा व पोषण होता है। उनके मत से संघ के साझीदार राज्य नहीं पर प्रजा है और प्रजा का हित शांति और सुव्यवस्था में ही है। उनका कहना था कि "यदि व्यक्तियों व उपराज्यों के निजी अधिकारों में हस्तक्षेप किया जाता है तो व्यक्तिगत अधिकारों व सम्पत्ति की रक्षा इसी से हो सकती है कि उपयुक्त न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न को ले जाया जाय और न्यायालयों द्वारा उचित व्यवस्था न हो तो जनता के बहुसंख्यकों की नैतिक भावना और सच्चाई का सहारा लिया जाय।" मैक-कलो (McCulloch) और मेरीलैण्ड (Maryland) के बीच मुकदमे में प्रसिद्ध न्यायाधीश मार्शल ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये थे। सरकार जनता से निस्सारित होती है, जनता के नाम से ही उसका निरूपण और स्थापना होती है, जब उपराज्यों ने जनता के प्रतिनिधियों को सम्मेलन में बुलाया और उनके सामने विधान रखा तो उससे ही यह स्पष्ट था कि उपराज्यों ने तो अपने पूर्णसत्ताधारी संगठित रूप से विधान को पहिले ही स्वीकार कर लिया था। सम्मेलन बुलाकर उनके सामने विधान को स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने के कार्य में ही राज्यों की स्वीकृति निहित थी। परन्तु उसके पश्चात् जनता को अधिकार था कि वह विधान को स्वीकार करती या रद्द कर देती। जनता का निर्णय अन्तिम निर्णय होता। इस निर्णय का सरकारों द्वारा अंगीकार करना आवश्यक नहीं था, न प्रान्तीय सरकारें उसे अस्वीकार कर सकती थीं। जब विधान इस प्रकार अभिस्वीकृत हो गया तो वह पूर्ण आबद्धकारी हो गया और उपराज्यों की सत्तायें उससे पूर्णतया बाध्य हो गईं ...इसलिये संघ सरकार निश्चय ही जनता की सरकार है और वह वास्तव में, रूप और तत्व दोनों के देखते हुये जनता से ही निस्सारित हुई है। जनता ने ही इस सरकार को इसके अधिकार

सौपे हैं और यह सरकार बिना किसी की मध्यस्थता के अपनी जनता पर इन अधिकारों का उनके ही कल्याण के लिये उपभोग करेगी।*

स्विट्ज़रलैण्ड में विधान (१८७४) का पहला अनुच्छेद इस प्रकार है "स्विट्ज़रलैण्ड के पूर्ण सत्ताधारी केन्टनों की जनता इस संघ में सम्मिलित होकर स्विस संघ का निर्माण करती है।" इसी प्रकार जर्मनी के सन् १९१९ के विधान में यह कहा गया है कि सारे शासनाधिकार जनता से उद्भूत हैं। संघ की लोकसत्ता के सम्बन्ध में इन स्पष्ट उल्लेखों के अतिरिक्त, हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि किसी भी शासन विधान में स्वसृजित राज्य का विलयन करने वाली धारा नहीं रखी जा सकती न विधान इस विलयन की आज्ञा ही दे सकता है।

"जब कभी कोई एक या एक से अधिक उपराज्यीय सरकारें संघ में अपने आप को अल्पसंख्यक दल में पावे और उनको यह प्रतीत हो कि उनके हितों की किसी केन्द्रीय सरकार के कानून से भारी हानि हो रही है, तो अल्पसंख्यक दल को प्रार्थना करनी चाहिये और बात चीत के द्वारा अपना मत प्रकाशित कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, कि वह कानून उसके अनुकूल बना लिया जावे। पर जब एक बार संघ की सारी जनता ने उस केन्द्रीय संस्था की स्थापना कर दी तब उस सरकार को संघ से पृथक् होने का कोई भी अधिकार नहीं है, क्योंकि यदि दुर्दान्त उपराज्यों को पृथक् होने का अधिकार दे दिया जाय तो सारे राज्य संगठन की स्थिरता ही नष्ट हो जाने का भय है और निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इस विच्छेद का क्या अन्त हो। जिस संघ में सब मेल कराने वाले हितों को व मार्गों को दूर कर व उनके विच्छेद कराने वाले कारणों से अधिक शक्तिशाली और पुष्ट बनाकर संघ शासन की स्थापना की हो वहां प्रायः ऐसे झगड़े नहीं उठ सकते जिनके कारण कोई उपराज्य संघ से अपना सम्बन्ध तोड़ने पर बाध्य हो जावे। वास्तव में यदि कोई संघ किसी उपराज्य के पृथक होने से भंग हो जाय तो यह समझ लेना चाहिये कि संघ वास्तव में संघ न था। केवल एक मित्र संगठन मात्र था।"[१] संघ शासन का भंग न हो सकना अब सभी स्वीकार करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने से भारत में संघ शासन की स्थापना के सम्बन्ध में जब बातचीत चली तो उस समय बर्मा को भारतीय संघ में शामिल करने के प्रश्न पर भी विचार हुआ। उस समय यह स्पष्ट कर दिया गया था कि एक बार

* थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ़ माडर्न गवर्नमेंट, पृष्ट ८२८, फुटनोट १।

१ फेडरल पोलिटी, पृ० २४–२५।

संघ में आने के पश्चात् बर्मा संघ से अलग न हो सकेगा।

संघ शासन के अनुकूल हेतु—जिन परिस्थितियों व इच्छाओं के वश में होकर कई छोटे राज्य संघ में संगठित होने को तैयार होते हैं, या कोई एक बड़ा राज्य अपने को छोटे छोटे भागों में विभाजित कर संघ शासन प्रणाली को अपनाने का निश्चय करता है, उनका अध्ययन बड़ा महत्वपूर्ण है। संघ शासन के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि भिन्न भिन्न कारणों से संघ शासन स्थापित हुये। इन कारणों की विभिन्नतायें विशेष परिस्थितियों और हेतुओं पर निर्भर रहती है। हम यहां कतिपय ऐसे मुख्य साधनों पर विचार करेंगे जिन्होंने संघ शासन की स्थापना में योग दिया है।

(i) **भौगोलिक निकटता**—यदि सम्मिलित उपराज्य एक दूसरे से जुड़े हुये हों तो संघ स्थायी रूप से सुदृढ़ नहीं रह सकता। राज्यों में सहकारिता का भाव तभी पैदा होता है जब वे एक दूसरे के सान्निध्य में रहते हैं क्योंकि तब उन्हें बहुत सी बातों में एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। "पास पास रहने से ऐसा अप्रत्यक्ष पर महत्वशाली सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो साधारणतया उन दो राज्यों में नहीं होता जो एक दूसरे से दूरी पर स्थित हों।'* हैन्सियाटिक लीग (Hanseatic Leaguc) इसीलिये बहुत समय तक जीवित न रह सकी क्योंकि इसमें सम्मिलित नगर इधर उधर एक दूसरे से दूर दूर बिखरे हुये थे। न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया के संघ में इसीलिये शामिल न किया जा सका क्योंकि विधान निर्माताओं की बलवती इच्छा के होते हुये भी एकीकरण की प्रवृत्तियां समुद्र की दूरी से ढीली पड़ गईं और वह टापू संघ में शामिल न हुआ। इन्हीं कारणों से आरंभ में न्यूफाउन्डलैण्ड ने कनाडा के संघ में शामिल होने का निश्चय न किया। हैमिलटन ने प्रसन्न होकर कहा था कि "अमरीका एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न व पृथक् स्थल समूहों से मिलकर नहीं बना है पर स्वतन्त्रता की इस पश्चिमी सन्तान का देश एक विस्तृत, जुड़ा हुआ और उपजाऊ भूमि प्रदेश है।"१ दक्षिणी अफ्रीका के संघ बनने में आर० एच० ब्राण्ड ने भी इन्हीं कारणों को हेतु बतलाया था : "देश यद्यपि विस्तृत है पर प्रकृति से ही इसको इकाई बने रहने का सौभाग्य प्राप्त है। उसकी बनावट एक सी है और इसके एक भाग व दूसरे भाग में कोई प्राकृतिक रुकावटें नहीं हैं। यहां के निवासी एक राजनैतिक संगठन में

---

* फेडरल पौलिटी, पृ० १०२।

१ फेडरलिस्ट नं० २।

रहते हैं और युद्ध से पहले भी रहते थे।" * इसमें संदेह नहीं कि भौगोलिक सार्थकता के सिद्धान्त को हाल ही में पाकिस्तान के निर्माण ने एक चुनौती दी है क्योंकि बंगाल का एक भाग जिसे पूर्वी पाकिस्तान कहते हैं, पाकिस्तान का एक भाग है किन्तु वह एक दूसरे से सैकड़ों मील दूर स्थित है। इतिहास के आधार पर यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि यह परिस्थिति सुव्यवस्थित रूप में अधिक समय तक नहीं चल सकती। पूर्वी पाकिस्तान या तो भारतवर्ष का ही भाग हो जायगा अथवा वह एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में ही परिणत हो जायगा।

(ii) **आर्थिक लाभ**—संघशासन बनाने में आर्थिक लाभ ने बड़ा योग दिया है। बहुत से संघों के निर्माण का आधार ही यही था कि उसकी स्थापना से व्यापार, मुद्रा, कर, आने जाने के मार्ग आदि के सम्बन्ध में कानूनों कि समानता होगी और निरर्थक रुकावटों के हट जाने से इनके द्वारा आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। अमरीकन राज्यों का संघ बनने से जो आर्थिक लाभ होंगे उन पर विचार करते हुये हैमिल्टन ने लिखा था कि "व्यापार की शिरायें प्रत्येक भाग में भरी पूरी रहेंगीं और प्रत्येक भाग की वस्तुओं के विविध बहाव से इनमें शक्ति और पुष्टता आवेगी। विविध राज्यों के उत्पादन की विभिन्नता से व्यापारिक उद्योग के लिये विस्तृत क्षेत्र खुल जायेगा।" कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, हैन्सियाटिक लीग और जर्मन संघ के निर्माता संघ से प्राप्त आर्थिक लाभों से अच्छी प्रकार विज्ञ थे। इन सब संघ शासन विधानों में ऐसी धारायें हैं जो इस बात की पर्याप्त समर्थक हैं। इस बात के समझने में कल्पना शक्ति को अधिक उड़ान नहीं करनी पड़ती कि संघ शासन से एक विस्तृत क्षेत्र खुल जाता है, क्रय विक्रय की सुविधायें बढ़ जाती हैं और सब सदस्य राज्यों को एक दूसरे से व्यापार में अधिक आसानी होती है। इस सुविधा का क्या महत्व है, यह बात उन कठिनाइयों से प्रकट हो जायगी जिसका सामना व्यापारी लोग करते हैं जब उन्हें एक ही देश में स्थित एक राज्य की सीमा में पैर रखते ही भिन्न मुद्रा तौल आदि के माप और भिन्न व्यापार सम्बन्धी नियमों को बरतना पड़ता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि आर्थिक सुविधाओं का लाभ संघ शासन बनने में बहुत कुछ कारणीभूत सिद्ध हुआ है।

(iii) **राजनैतिक हेतु**—संघ शासन स्थापित करने से जो राजनैतिक

---

* यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, पृ० ८९।

लाभ होते हैं उन्हें सभी जानते है। इन राजनैतिक लाभों में विषशेतया बाहरी आक्रमणों से रक्षा, वैदेशिक सम्बन्धों और शासन व्यय में बचत, उल्लेखनीय हैं। इनके कारण बहुत से संघ शासनों की रचना हुई। प्राचीन काल में यूनान के नगर राज्यों ने पहले मैसीडोनिया और उसके पश्चात रोम की बढ़ती हुई शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिये और समय पड़ने पर उसका सामना करने के हेतु अपना एक संगठन बनाया। इटली में लाम्बार्ड लीग और स्विट्जरलैण्ड में संघ की स्थापना आस्ट्रियन सम्राट् का सामना करने के लिये हुई थी। स्पेन के आक्रमण को रोकने के लिये फ्रांस के उत्तर में नैदरलैण्डस संघ (Netherlands Confederacy) बनाया गया था। अमरीका में हैमिल्टन ने ठीक ही कहा था कि "संघ से प्राप्त सुखों की अनुभूति की सुदृढ़ कल्पना ने लोगों को बहुत प्राचीन समय में ही संघ शासन स्थापित करने के लिये और उसकी रक्षा कर उसे चिरस्थायी बनाने के लिये प्रेरित किया था।"* आस्ट्रेलिया में राजनैतिक भावना से प्रेरित होकर स्वतन्त्र उपनिवेशों ने संघ की स्थापना की। "फेडरलिस्ट" में जो (Jay) ने अमरीकन जनता से अपील करते समय उसका ध्यान यूरोपियन राज्यों की साम्राज्य लोलुपता की ओर आकर्षित किया और उससे सामना करने के लिये अपने आपको संघ शासन में संगठित कर शक्तिशाली बनाने पर जोर दिया था। उन्होंने घोषित किया कि "यदि वे (यूरोपियन् राज्य) देखेंगे कि हमारी राष्ट्रीय या संघ सरकार योग्य सामर्थ्यवान् है और उसका शासन सुव्यवस्थित है, हमारे व्यापार का बुद्धिमानी से नियमन होता है, हमारी सेना सुशिक्षित और सुसंगठित है, हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है और हमारे आय के साधनों की भली भांति व्यवस्था होती है, हममें दूसरों का विश्वास जमा हुआ है, हमारी प्रजा स्वतन्त्र, सुखी और एकमत है, तो वे हमें अप्रसन्न करने के बजाय हमसे मित्रता करने के लिये अधिक उत्सुक होंगे। इसके विपरीत यदि वे दूसरी ओर यह देखेंगे कि हमारा शासन ढीला है और हम अयोग्य सरकारों की अनाथ प्रजा हैं (जहाँ प्रत्येक राज्य गलत और ठीक अपनी सुविधा के लिये जो चाहे सो करता हो) या हम तीन या चार स्वतन्त्र और शायद आपस में लड़ने वाले राज्य समूहों में अपने आपको बाँटे हुये है जिसमें कोई ब्रिटेन की ओर झुका हुआ है, दूसरा फ्रांस की ओर और तीसरा स्पेन की ओर, जिससे ये तीनों मिलकर हमको आपस में लड़ाते रहें तो इन लोगों की दृष्टि में अमरीका का दयनीय रूप जंचेगा। कितनी सुगमता से वह उन लोगों की घृणा का ही विषय न बनेगा

* फेडरलिस्ट, नं० २।

परन्तु उनके अपमान का शिकार भी बन जायगा और कितने थोड़े समय के पश्चात् हमारा महंगा अनुभव पुकार पुकार कर कहेगा कि जब कोई कुटुम्ब या जन समूह फूट का शिकार बनते हैं तो वे किस प्रकार अपना नाश अपने ही हाथ कर बैठते हैं।" ※ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़े राज्य की जो सुनवाई होती है वह छोटे राज्य की नहीं होती। इस कारण भी छोटे २ राज्य मिलकर बड़ा राज्य बनाने के लिये तैयार रहा करते हैं। इस के अतिरिक्त संघ शासन में खर्चे की बचत भी रहती है क्योंकि संघ स्थापित होने से उपराज्यों की अलग २ निजी स्थल, जल और वायु सेना रखने की आवश्यकता नहीं रहती और न विदेशीय मामलों में उन्हें अपने निजी दूत व दूतावास रखने पड़ते हैं। यह काम और इसका खर्च सब संघ-सरकार पर छोड़ दिया जाता है जो सब उपराज्यों की रक्षा के लिये केवल एक राष्ट्रीय सेना का संगठन करता है।

जर्मन राजनीतिज्ञ जब विमार (Weimer) में युद्ध के पश्चात् विधान बनाने के लिये एकत्रित हुये तब उन के सम्मुख यही राजनैतिक हेतु थे। उनमें एक ऐसा दल था जो रियासतों के विलगीकरण का समर्थक था जिससे प्रशिया छिन्न हो जाये। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये ही उन्होंने संघ शासन की स्थापना की। भारत वर्ष में जब पहले पहल सन् १९३५ के शासन विधान के लिये बातचीत चल रही थी तभी यह निश्चित हो गया था कि भारतवर्ष में संघ शासन की स्थापना होनी चाहिये जिसमें रियासतें और प्रान्त दोनों शामिल हों। यह विचार किया जाता था कि संयुक्त भारतवर्ष विदेशी आक्रमणों से अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकेगा, एक सुदृढ़ व स्थिर वैदेशिक नीति अपना सकेगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभावशाली बनने में सफल हो सकेगा। यदि ऐसा न होकर उसके कई स्वतन्त्र इकाई राज्य होते तो उपयुक्त सुविधायें न होतीं, न रक्षा हो सकती, न संसार में पृथक् २ छोटे राज्यों का कोई प्रभाव वा मान होता। इन्हीं कारणों से हम आज देखते हैं कि भारत के संविधान निर्माताओं ने इस देश के संविधान को संघात्मक रूप दिया है।

जाति सम्बन्धी और सांस्कृतिक हेतु—जिस देश में एक ही जाति व संस्कृति के लोग रहते हों, एक ही धर्म के मानने वाले हों और एक ही भाषा को बोलने वाले हों वहां एकिक शासन का सफलीभूत होना सम्भव है। पर जहां धर्म, भाषा व जाति की अनेकता है वहां एकिक शासन इस विभन्नता को और भी

※ फेडरेलिस्ट न० ४, नं० ३ भी देखिये।

अधिक महत्व देता है जिससे देश की उन्नती रुक जाती है। देश में स्थित भिन्न भिन्न जाति, धर्म व संस्कृति वाले जन समूहों व प्रान्तों को यदि एक सूत्र में बाँध कर रखना ही श्रेयस्कर समझा जाय तो संघात्मक शासन प्रणाली सबसे उपयुक्त सिद्ध होगी। कनाडा में ऐसी ही स्थिति का सामना करने के लिये १८६७ में संघ शासन स्थापित किया गया था। वहां फ्रैंच और अंग्रेज दो बड़ीं प्रमुख जातियां थीं जिनमें बड़ी पुरानी फूट चली आ रही थी और जिनका रहन-सहन, विचार-शैली, भाषा व धर्म एक दूसरे से भिन्न थे। संघ-शासन में इस विभिन्नता को मान लिया गया और उसको उचित स्थान, देखकर एक संयुक्त राज्य की स्थापना कर दी गई। इससे पूर्व एकिक शासन प्रणाली में उनकी भाषा, संस्कृत और जाति की विभिन्नता पग पग पर शासन के कार्य में रोड़ा अटकाती थी और शासन के शान्ति पूर्वक संचालन करने में बाधिक सिद्ध हो रही थी। सन १८६७ के नार्थ अमेरिका ऐक्ट के पास होने से ऐसे संघ-शासन की स्थापना की गई जिससे इन दोनों जातियों में बहुत कुछ सामञ्जस्य पैदा हो गया। यही बात स्विट्ज़रलैण्ड के बारे में भी सत्य सिद्ध हुई। वहां भिन्न २ केण्टनों में फ्रांसीसी, जर्मन और इटैलियन लोग रहते हैं और अपनी २ भाषायें बोलते हैं। उनका धर्म भी एक दूसरे से भिन्न है। ऐसी अवस्था में इन कैण्टनों को एकिक शासन सूत्र म बांधकर सुव्यवस्थित रखना असम्भव था। उनकी पारस्परिक विभिन्नता की ओर आंख न मूंद कर उसका उचित आदर किया गया और फिर संघात्मक सिद्धन्तों के आधार पर उनमें सामञ्जस्य स्थापित कर १८७४ ई० के स्विस संघ की स्थापना कर दी गई। जर्मन प्रजातन्त्र के संघ शासन संविधान ने जर्मन उपराज्यों की विभिन्न आवश्यकताओं को उचित मान देकर उनको पूरा करने का सफल प्रयत्न किया। भारतवर्ष में संघ शासन स्थापित करने में भाषा, धर्म और संस्कृति की अनेकता भी कारण है।

संघ शासन के गुण व दोष—संघ शासन प्रणाली का मूल्यांकन करने में राजनीतिशास्त्रियों का भिन्न भिन्न मत है। कुछ राजनीतिशास्त्री इसे दोषपूर्ण बताते हैं और कहते हैं कि इस प्रणाली से सरकार निर्बल रहती है क्योंकि प्रजा की राज्यनिष्ठा दो सरकारों के प्रति विभाजित रहती है। यहाँ हम कुछ प्रमुख और परस्पर विरोधी विचारकों के मतों का मूल्यांकन कर एक सुनिश्चित मत पर पहुंचने की चेष्ठा करेंगे।

आचार्य डायसी (Prof. Dicey) की आलोचना—आचार्य डायसी का कहना है कि संघ शासन में या दो उपराज्यों में से एक प्रबल राज्य इतना

प्रमुख सम्पन्न हो जायगा कि उपराज्यीय समानता का उल्लंघन कर दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमा लेगा या बहुत से छोटे उपराज्य मिलकर, अपने में से जो सब से बड़ा और शक्तिशाली सदस्य राज्य होगा, उस पर संघ के करों को बढ़ा कर व दूसरे उपायों से संघ का सारा बोझ उसी पर डाल देंगे और उससे स्वयं बच जायेंगे। परन्तु व्यवहार में यह देखा गया है कि यदि संघ शासन विधान को होशियारी से बनाया जाय तो इन दोनों अनिष्टों की आशंका नहीं रहती। यह सच है कि इस बात का ध्यान युद्ध से पूर्व जर्मन साम्राज्य के शासन विधान बनाने में नहीं रखा गया। प्रशिया जो सबसे प्रभुत्वशाली सदस्य राज्य था दूसरे छः उपराज्यों की सहायता से बचे हुये छोटे उपराज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाये रहता था और ये शक्तिहीन और असहाय बने रहते थे। उस शासन विधान की इस कमी को देखकर लोवेल (Lowell) ने कहा था कि इन राज्यों में जो समझौता था वह वैसा ही था जैसा कि एक सिंह, आधे दर्जन लोमड़ियों और बीस चूहों में हो। आस्ट्रिया-हंगरी के संघ में हंगरी अपनी संगठित मैगायार प्रजा के बल पर तीस प्रति सैकड़ा संघ शासन का खर्चा देने के बदले में संघ की सत्तर पतिशत शक्ति का उपभोग करता था। आस्ट्रिया का क्षेत्रफल हंगरी से अधिक था और उसकी जनसंख्या भी हंगरी की जनसंख्या से अधिक थी, पर भाषा-विभेद और जाति-भेद के कारण आस्ट्रिया की शक्ति छिन्न भिन्न रहती थी।

आचार्य डायसी ने दूसरा दोष यह बतलाया है कि संघ शासन में एक निष्ठा का अभाव रहने से राज्य की इकाइयों में बराबर तनातनी बनी रहती है और प्रायः मुकदमेबाजी तक की नौबत आ जाती है। संघ शासन के विरुद्ध इस अभियोग में ऊपरी दृष्टि से देखने पर बहुत कुछ तथ्य दिखाई देता है, पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह कोई अनिवार्य दोष नहीं है। यदि संघ शासन विधान का चतुराई से निर्माण किया जाय तो यह दोष बहुत कुछ दूर हो सकता है और एक शक्तिशाली संघ की स्थापना हो सकती है। आचार्य डायसी आगे कहते हैं कि यदि कोई संघ सफलीभूत हुआ है तो वही जो एक कदम और बढ़ाने पर एकिक शासन का रूप धारण कर ले। इस कथन का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि संघ शासन के सफल कार्यभूत होने से विभिन्नतायें मिटकर एकता स्थापित हो जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संघ शासन में ऐसी राजनैतिक संस्था की स्थापना नहीं की जाती है जो अपनी विरोधी शक्तियों को उत्पन्न कर अपने ही बल को कम कर दें, पर उसके द्वारा एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की उत्पत्ति होती है जो वास्तव में एकिक शासन न होते हुये ऊपर से ऐसा ही दिखाई दे।

ब्रॉंड की आलोचना—संघ शासन को दोषपूर्ण बतलाने वालों में ब्रांड (Brand) का नाम भी लिया जाता है। उनका कहना है कि मानव-निर्बलता को अपरिहार्य मानकर संघ शासन प्रणाली अपनाई गई है। वे आगे चल कर कहते हैं कि इससे अच्छी दूसरी शासन प्रणाली यदि न मिल सके तो संघ शासन प्रणाली के स्वीकार कर लेने के सिवाय चारा ही क्या है पर इसकी असुविधायें स्पष्ट हैं। इससे सरकार के अंगों के टुकड़े हो जाते हैं और उसके फलस्वरूप उनमें तनातनी और निर्बलता आ जाती हैं। इस प्रणाली में एक नये देश का विकास एक संकुचित मर्यादा के भीतर ही हो सकता है।" * इस कथनसे यह तो मान ही लिया गया है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में संघ शासन की बड़ी उपयोगिता होती है क्योंकि इससे यह अभिप्राय स्पष्ट होता है कि जहां एकिक शासन असम्भव हो वहां संघ शासन दूसरी ही शासन प्रणाली है जो सफल हो सकती है।

आचार्य लास्की (Laski) द्वारा प्रशंसा—संघ शासन की प्रशंसा भी बड़े कुशल राजनीतिशास्त्रियों ने की है। उनमें आचार्य लास्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका तो यहां तक कहना है कि यदि समाजिक संगठन को यथेष्ठ बनाना है तो उसका रूप संघात्मक ही होना चाहिये (अर्थात स्थानीय वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सार्वजनिक मामलों में व्यवस्था की समानता)। इस संघात्मक बनावट में केवल 'मैं और मेरा राज्य' या 'मेरी जाति और मेरा राज्य' ये ही सम्बन्ध नहीं होते पर ये सब और उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी इसी के अन्तर्गत रहता है।" १ इसके पश्चात वे यह कह कर इस कथन को समाप्त करते हैं कि क्योंकि समाज संघात्मक है, राज्यतंत्र भी संघात्मक ही होना चाहिये।"२ उनके कथनानुसार "राष्ट्र ही सामाजिक संगठन की अन्तिम इकाई नहीं है। इसकी प्रभुता (Sovereignty) मानव समाज के ऐतिहासिक अनुभव का केवल एक रूप है और जैसे जैसे यह अनुभव निखरता जाता है और संसार की एकता का दबाव पड़ता जाता है यह निरर्थक व असामयिक सिद्ध होती जाती है। यह ठीक है कि किसी भी राज्य को उन सब विषयों में स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये जिसका प्रभाव उस राज्य के निजी क्षेत्र तक ही सीमित हो परन्तु होता यह है कि ज्यों ही वह अपनी इच्छा को कार्यान्वित करना आरम्भ करता है उसके स्थानीय हितों और उससे बाहर की दुनियां के हितों में टक्कर होने

* दी यूनीन आफ साउथ अफ्रीका, पु० ४६-४७।

१ ग्रामर आफ पौलीटिक्स, पृ० २६२।

२ ,, ,, ,, पृ०१७१।

लगती है।" * इसमें सन्देह नहीं कि अब दुनिया अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक सहयोग के क्षेत्र में पदार्पण कर रही है और अब कोई विरला ही साहसी पुरुष मिलेगा जो वर्तमान युग में किसी राज्य को सम्पूर्ण प्रभु वा सत्ताधिकारी (Sovereign) कहने का दावा करेगा।

संघ शासन का अनुभव क्या बतलाता है—व्यवहार में संघ शासन उतना निर्बल सिद्ध नहीं हुआ है जैसा आचार्य डायसी ने बतलाया है। स्विट्ज़रलैंड के केन्टन यदि संघीभूत न हुये होते तो सर्वदा वे यूरोप की अशांति का कारण बने रहते। इनके सम्बन्ध में ब्रुक्स ने ठीक ही कहा था कि जो लोग इतने भौगोलिक घेरों में विभाजित हों, जिनमें भाषा व धर्म की इतनी भिन्नता हो और जो जाति और रीति-रिवाजों में एक दूसरे से न मिलते हों, उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक था कि राज्य संगठन में स्थानीय स्वायत्त-शासन के लिये पर्याप्त क्षेत्र छोड़ देना चाहिये था। वास्तव में इस आवश्यकता को संघात्मक प्रणाली द्वारा पूरा कर दिया गया है और इसमें शक्ति को बहुत मात्रा में विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है।"१

यही बात अमरीका के संयुक्त राज्य के सम्बन्ध में सत्य है। यदि फिलाडेल्फिया के शासन विधान के निर्माता संघ शासन के सिद्धान्तों को अङ्गीकार न करते तो आरम्भ के तेरह राज्य अमरीका को शक्तिशाली प्रजातन्त्र राज्य बनाने में सफल न होते। फ्रांस में शासन विधान एकिक सरकार की स्थापना करता है। क्या कोई कह सकता है कि संयुक्त राज्य अमरीका की संघ सरकार फ्रांस की एकिक सरकार की अपेक्षा निर्बल सिद्ध हुई है अथवा इंग्लैंड जो एकिक राज्य है, अमरीका के संघात्मक राज्य से अधिक दृढ़ एवं शक्तिशाली है ? फ्रांस में तो बार-बार सरकारों के बदलने से शासन में तरह तरह की अड़चनें और असुविधायें पड़ती रहती हैं। कनाडा में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में ऐसा विरोध और झगड़ा था कि वहां एकिक शासन का चिरस्थायी होना असम्भव था यदि फ्रांसीसी और अंग्रेजी कनाडा का शासन अलग-अलग रहता और ये दोनों संघीभूत न हुये होते तब भी इनमें बराबर युद्ध चलता रहता। पर कनाडा के संघ शासन न यह सब दूर कर दिया और विविधता के बीच एकरूपता की स्थापना कर दी। सन् १९१४-१८ के युद्ध के पश्चात् जर्मनी में वीमार शासन विधान (Weimar Constitution) के निर्माताओं ने संघ शासन-पद्धति की सहायता से

---

* गवर्नमेन्ट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० १८।

१ ,, , ,, पृ० २८५।

ही जर्मनी को टुकड़ों में बंटने से बचाया और जर्मनी यूरोप में एक शक्तिशाली राज्य बना रहा।

"संक्षेप में संघ शासन पद्धति ने झगड़े मिटा दिये हैं, खण्डन रोक दिया है, द्वेष को दबा दिया है, युद्ध को रोक दिया है और संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले अनेक जन समूहों में से शान्तिप्रिय शक्तिशाली व सम्पन्न राज्यों को जन्म दिया है। यह सब एकिक सरकार पद्धति के अन्तर्गत न हो सकता था। यदि हम संघ शासन को, जो राज्यों के बीच समझौता, मेल-जोल और शान्ति स्थापित करता है, निर्बल कहें तो ऐसा कहना उसके नाम का प्रतिवाद करना समझा जायेगा। इस शासन पद्धति ने जहां निर्बलता थी वहां बल दिया है, जहां द्वेष और सन्देह का दौर दौरा था वहां शान्ति और सद्भावना की स्थापना की है और इस प्रकार जहां छोटे छोटे निर्बल राज्य आपस में अपने अस्तित्व के लिये एक दूसरे से लड़ भिड़ रहे थे वहां शक्तिशाली बड़े-बड़े राज्य स्थापित कर दिये।"*
यह ठीक है कि स्वभाव से ही एकिक शासन अधिक चिरञ्जीवी और सुव्यस्थित रहता है पर जहां यह शासन सम्भव न हो क्योंकि परिस्थितियां और आवश्यकतायें विशेष प्रकार की हैं, वहां संघ शासन ही निस्संदेह श्रेणी में दूसरी सबसे अच्छी पद्धति है और कुछ विशेष परिस्थितियों के लिये तो यह वास्तव में सबसे अच्छी पद्धति सिद्ध होगी।

पाठ्य पुस्तकें

Brand, R. H.—The Union of South Africa, PP. 1-50.

Brooks, R. C.—Government and Politics of Switzerland, pp. 1—50

Bryce, Viscount—Constitutions (Oxford University Press)

Dicey, A. V.—Law of the Constitution. PP. LXXX—LXXX111

Finer, Herman—Theory and Practice of Modern Government, Vol. I, chs. VIII—IX

Freeman, E. A.—History of Federal Government, Vol. I

* फेडरल पौलिटी, पृ० १३६।

Hamilton, A.—The Federalist, Nos. II–XI.
Laski, H. J.—Grammar of Politics, ch. VII.
Newton, A. P.—Federal & Unified Constitutions, Introduction.
Sharma, B. M.—Federal Polity, chs. I, III, IV
Sidgwick, H.—The Development of European Polity, Lecture XXIX.

अध्याय ३

सरकार के स्वरूप और कृत्य

"राजाओं का दैवी अधिकार बलहीन पर अत्याचारी राज-पुरुषों के लिये बहाना मात्र हो, पर सरकार का दैवी अधिकार मानवोन्नति की कुंजी है और इसके बिना सरकारें गिरते गिरते केवल पुलिस रह जाती हैं और राष्ट्र का पतन होते होते वह केवल एक असंगत जनसमूह रह जाता है।" (डिजरेली)

सरकार प्रत्येक राज्य का अनिवार्य अंग है—समाज में रहने वाले मनुष्य ने सामाजिक जीवन बिताने के लिये कई संस्थाओं को जन्म दिया है। इन संस्थाओं मे राज्य सर्वग्राही और सबसे महत्वशाली संस्था है, क्योंकि इसका अस्तित्व और रूप मनुष्य के जन्म लेने से पूर्व ही निश्चित रहता है। राज्य का परिचय उसके अन्तर्गत भूमि प्रदेश से, वहाँ के निवासियों से उन लोगों की उस सांस्कृतिक, सामजिक तथा आर्थिक घनिष्टता से जिससे वे एक इकाई प्रतीत होते हैं प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त राज्य का परिचायक वह संगठन होता है जिससे राजकीय जीवन नियंत्रित रहता है। इस संगठन को ही हम सरकार कह कर पुकारते हैं। राजकीय संस्था को परिचालित करना राज्य के लिये आवश्यक है। चाहे कुछ समय के लिये कोई राज्य बिना सरकार के रह भी जाय पर बिना राज्य के कोई सरकार पर्याप्त समय तक नहीं रह सकती। सरकार और राज्य का सम्बन्ध इससे स्पष्टतया प्रकट होता है।

आधुनिक राज्यों में सरकार के विभिन्न रूप हैं—अतः सरकार वह संगठन है जिसके द्वारा किसी समाज का राजकीय जीवन परिचलित होता है। यह संगठन राज्य की नीति की रक्षा करता है और उसे व्यावहारिक रूप देता है। जीवन की समस्यायें प्रत्येक राज्य में एक समान नहीं होतीं। भौगोलिक स्थिति, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, तथा परम्परा आदि की विभिन्नता ही इस असमानता का कारण रहती है आधुनिक राज्यों में जो भिन्न-भिन्न राज्य-तंत्र प्रणाली देखने को मिलती है उसका कारण ये सी विभिन्नतायें हैं। मानव इतिहास के प्रत्येक युग में राजतंत्र की यह विभिन्नता रहती चली आई है और

भविष्य में भी इसके विभिन्न रूप रहेंगे। हर एक राज्य में ऐसी राज्यतंत्र प्रणाली या सरकार का रूप अपनाया जाता हैं जो उस राजकीय समाज की स्थिति में सम्भव है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सबसे उपयुक्त सिद्ध होती है।

प्राचीन काल में सरकारों का वर्गी करण—यद्यपि सरकार के अनेक रूप हैं पर उनके सूक्ष्म अध्यायन की सुविधा के लिये हम उनको कुछ वर्गों में विन्यस्त कर सकते हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेकों राजनीतिज्ञ विशारदों ने वर्गीकरण करने का ऐसा प्रयत्न किया है। इन विचारकों में से हर एक ने अपने निराले ढंग पर यह वर्गीकरण किया है और उसके पश्चात् उन्होंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आदर्श राज्यतन्त्र प्रणाली कौनसी है।

वर्गीकरण के दो मुख्य आधार—सबसे प्रथम इस वर्गीकरण का प्रयत्न अरस्तू ने किया जिसको हम राजनीति विज्ञान को अध्ययन का विषय बनाने का श्रेय देते हैं। उसके वर्गीकरण के दो आधार हैं, एक संख्यात्मक और दूसरा गुणात्मक।

सरकार का संख्यात्मक वर्गीकरण—संख्यात्मक दृष्टि से अरस्तू ने राज्य-प्रशासन को संभालने वालों की संख्या के आधार पर सरकारों का वर्गीकरण किया है। यदि राज्यतंत्र का सारा संगठन एक व्यक्ति द्वारा या एक व्यक्ति की इच्छानुसार परिचालित होता हो तो वह सरकार राजतंत्र है, यदि सरकार का संचालन कुछ व्यक्तियों द्वारा होता है तो उसे कुलीन-तंत्र तथा जब बहुतों द्वारा होता है (बहुतों से अभिप्राय सारी जनता से है) तो उसे जनतंत्र कहते हैं। रोमन युग में बहुत से राजनीति विचारकों ने इसी संख्यात्मक वर्गीकरण को अपनाया था। उनमें से पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) का नाम उल्लेखनीय हैं, मध्य युग में भी यह वर्गीकरण प्रचलित था।

सरकार का गुणात्मक वर्गीकरण—सरकार के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के लिये जब अरस्तू गुणात्मक वर्गीकरण की शरण लेता है तो यह वर्गीकरण इतना प्रभावशाली और अनुपम हो जाता है कि अच्छे-अच्छे विचारक भी उसकी प्रशंसा करते हैं। इस वर्गीकरण की कसौटी वह उद्देश्य है जिसकी पूर्ति के लिये राज्य संगठन का कार्य रूप होता है। इस वर्गीकरण में शासकों का अभिप्राय और इच्छा ये दोनों महत्वपूर्ण वस्तुयें हैं। यदि सरकार शासितों के हित की दृष्टि से ही प्रमुखतः परिचालित होती हो तो वह सरकार साधारण

कही जाती है । ऐसी अवस्था में भी उसके तीन भेद रहते हैं; यदि एक व्यक्ति शासितों को सुख पहुँचाने और कल्याण करने के लिये शासन करता है तो वह राज-पद या राजतन्त्र, यदि कुछ व्यक्ति शासन करते हैं तो कुलीन-तन्त्र और यदि सब जनता शासन करती है तो उसे पोलिटी या बहुतन्त्र कहते हैं। इसके विपरीत यदि शासन शासकों के हितों का ही प्रमुखतः पालन करता हो तो उपर्युक्त साधारण रूपों का भ्रष्टरूप हो जाता है। इन भ्रष्टरूपों में एक व्यक्ति का शासन अत्याचारी तन्त्र (Tyranny), कुछ का शासन अल्प-जनतन्त्र (Oligarchy) और बहुतों का शासन जनतन्त्र या प्रजातन्त्र (Demc-cracy) कहलाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि 'जनतंत्र' या 'प्रजातन्त्र' नाम अरस्तू उस शासन संगठन को देता है जिसे हम आधुनिक समय में अराजकता अथवा असंयतराजतन्त्र (Mobocracy) कहते हैं । इन सब रूपों में कौनसी सरकार सबसे उत्तम है, इस प्रश्न का उत्तर देने में अरस्तू सरकार की दृढ़ता और स्थायित्व की ही कसौटी को अपनाता है । इस कसौटी से परखने पर "जिस राज्य में निधनों की संख्या धनिकों से बहुत अधिक हो वहाँ प्रजातन्त्र सबसे उत्तम है, जहां धनिकों की संख्या की कमी उनकी शक्ति और सम्पत्ति से पूरी हो जाती हो, वहां अल्पजनतन्त्र और जहां मध्यवर्गवालों की अधिकता हो वहां पोलिटी या बहुतन्त्र सबसे उत्तम सरकारें होती है । पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) दोनों ने अरस्तू के वर्गीकरण को अपनाया था पर उनके अनुसार वह राजतन्त्र प्रणाली सबसे उत्तम है जिसमें एकतन्त्र (या राजतन्त्र), कुलीनतन्त्र और जनतन्त्र का मिश्रण हो । उन्होंने इसीलिये रोमन पद्धति की बड़ी प्रशंसा की है जिसमें कोंसुल्स (Consuls) राजतन्त्र के तत्व के परिचायक थे, सीनेट या परिषद् कुलीनतन्त्र के तत्व की परिचायक थी और लोक सभायें जनतन्त्र या प्रजातन्त्र तत्व की परिचायक थीं ।

आधुनिक सरकारों का हम संख्यात्मक या गुणात्मक वर्गीकरण नहीं करते । आधुनिक राज्यों में राज्यतन्त्र प्रणालियां इतनी पेचीदा और अनेक प्रकार की हैं कि उनका वर्गीकरण एक भिन्न आधार पर करना परमावश्यक है ।

सरकारों का आधुनिक वर्गीकरण—वर्तमान सरकारों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है राजन्तत्र या जनतन्त्र । राजतन्त्र के भी दो विभाग होते हैं । जब राजा अपनी प्रजा के अधिकारों और स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुये उनका अधिक से अधिक हित करने के उद्देश्य से शासन करता है तो वह लोक-प्रिय राजतन्त्र कहलाता है और जब वह रूसी ज़ार की तरह अपने ही हित में

अपनी ही इच्छानुसार शासन करता है तब वह स्वेच्छाचारी निरंकुश राजतन्त्र कहलाता है।

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष जनतन्त्र—प्रजातन्त्र के भी दो भेद किये जा सकते हैं, एक प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र और दूसरा अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र। प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में सब वयस्क स्त्री पुरुष राज्य के सब कानूनों के बनाने, अफसरों के नियुक्त करने और न्याय करने का सारा काम स्वयं ही सम्मिलित होकर करते हैं। इस प्रकार का प्रत्यक्ष जनतन्त्र स्विट्ज़रलैण्ड के कुछ कैण्टनों में अब भी प्रचलित है। प्राचीन काल में यूनानी नगर राज्यों में ऐसी ही प्रत्यक्ष जनतन्त्र प्रणाली चालू थी। पर यह प्रणाली एक बहुत छोटे राज्य में ही सम्भव हो सकती है, जहाँ के नागरिक आसानी से एक स्थान पर एकत्रित हो सकें और जहाँ राजकीय जीवन इतना सरल और सीधा सादा हो कि शासन की समस्याओं पर सर्व साधारण विचार कर सकें और अपने लिये उचित प्रबन्ध कर सकें। ऐसी जनतन्त्र प्रणाली के सफल होने के लिये लोगों की आवश्यकतायें बहुत परिमित और पड़ौसी राज्यों से सम्बन्ध बहुत शान्तिपूर्ण होने चाहियें। परन्तु आजकल हम क्या देखते हैं? आजकल वैज्ञानिक, आविष्कारों ने मनुष्य की आवश्यकताओं में अपूर्व वृद्धि और पेचीदगी उत्पन्न कर दी है। दूसरी ओर आने जाने की सुविधा से दूरी कम हो गई है, और हम आजकल यह देखते हैं कि संसार में राज्यों को बड़ा बनाने की ओर ही अधिकाधिक प्रवृत्ति होती जा रही है। इन राज्यों में विस्तृत भूमि प्रदेश, असंख्य जनता रहती है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के तथा पेचीदगी से भरे रहते हैं। ऐसे राज्यों में प्रजातन्त्र का अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि रूप चालू है और वही सम्भव भी है। ऐसे प्रतिनिधि जनतन्त्र में जनता का मत केवल लोकसभाओं के सदस्यों के चुनाव में ही लिया जाता है। ये सदस्य जनता द्वारा चुने जाकर उनके प्रतिनिधि बनकर निश्चित समय तक कार्य में भाग लेते हैं। साधारण जनता दिन प्रति दिन के शासन कार्य से दूर ही रहती है। वह तो केवल प्रतिनिधियों के चुनाव द्वारा ही शासन नीति की रूप रेखा अप्रत्यक्ष रूप से निश्चित कर देती है। प्रतिनिधि जनतन्त्र ने १८ वीं व १९ वीं शताब्दी में जन्म लिया और १८४८ ई० के उदार विचारों के प्रसार से यूरोप में बहुत से राज्यों में जनतन्त्रात्मक सरकारें स्थापित हो गईं। औद्योगिक क्रान्ति, विज्ञान की उन्नति तथा ज्ञानप्राधान्यवाद, तथा अत्याचारी शासकों के विरुद्ध विद्रोह, इन सब ने संसार में प्रतिनिधि जनतन्त्र के विकास में भारी योग दिया। पर अब यह जनतन्त्रात्मक प्रणाली इसीलिये सर्वमान्य हो गई है क्योंकि सब बातों के देखते हुये यह सफल सिद्ध हुई है।

जनतन्त्र अब भी सबसे अधिक लोकप्रिय राजतन्त्र-प्रणाली है। यद्यपि कुछ लोग इसकी आलोचना करने लगे हैं और उसको अपूर्ण बताने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर फिर भी विधान निर्माताओं के लिये यही सबसे वांछनीय सिद्ध होती है। जनतन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त विभिन्न राजनैतिक संस्थायें बनाकर कार्य-रूप किये जाते हैं और साधारणतया एक सभ्य राज्य-संगठन की पहिचान इसी बात से की जाने लगी है कि किस हद तक उस संगठन में प्रजातन्त्र के सिद्धांत अंगीभूत हो पाये हैं। जब १९वीं शताब्दी को उदार सिद्धान्त वाली प्रजातंत्र-प्रणाली का परम्परागत रूप बतलाना होता है तो इंगलैंड, फ्राँस, संयुक्तराज्य अमरीका, स्विट्ज़रलैण्ड, आयरलैण्ड और ब्रिटिश साम्राज्य के स्वायत्त शासन वाले प्रदेशों की ओर इशारा कर दिया जाता है। राजकीय संस्थाओं के विकास में यह प्रणाली अन्तिम सीढ़ी समझी जाती है न कि बीच की सीढ़ी।

प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में कतिपय मत—जनतन्त्रात्मक, राज्यतन्त्र को समझने के हेतु प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा। इन सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करने में प्रमुख प्रमुख राजनीति-शास्त्रियों व विचारकों के विचारों से बहुत सहायता मिलेगी। अब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र को ऊँचा स्थान दे डाला जब उन्होंने यह कहा कि प्रजातन्त्र प्रजा द्वारा प्रजा के हेतु, प्रजा की सरकार है। इस कथन से संक्षेप में प्रजातन्त्र का पूरा बखान कर दिया गया। औस्कर विल्डे (Oscar Wilde) ने अकारण ही इसको तोड़ मरोड़ कर यह कहा कि प्रजातन्त्र का अर्थ यह है कि जनता स्वयं अपने आपको को अपने ही हितसाधन के लिये डण्डे से पीटती है। इस परिभाषा से प्रजातन्त्र का अर्थ ही कुछ का कुछ हो जाता है और प्रजातन्त्र को इस प्रकार कलंकित करना सच्चाई से बहुत दूर है। सच तो यह है कि प्रजातन्त्र में लोगों के अपने जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति करने की वह स्वतन्त्रता मिलती है जो इसके लिये आवश्यक है। इस प्रणाली से राज्य में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें मानव निर्मित निर्धनता आदि की अड़चनें दूर होकर सबको आत्माभिव्यक्ति करने का समान अवसर मिलता है।

प्रजातन्त्र के सिद्धान्त—इस राज्य-प्रणाली में शासन शक्ति वैधानिक रूप में किसी विशेष सम्प्रदाय, जाति या दल को न सौंपी जाकर सारी जनता के सुपुर्द की जाती है। साधारणतया किसी भी समाज में निर्धनों की ही अधिकता होती है। यदि प्रजातन्त्र की शक्ति, सम्पत्ति-स्वामित्व या साम्प्रदायिकता पर आधारित न होकर जनता की संपूर्ण संख्या को सुपुर्द है तो निर्धन-बहुसंख्यक

वर्ग अनायास अपनी बहुलता के बल से ही शासन शक्ति को हस्तगत करने में समर्थ हो जायगा। समानता और स्वतन्त्रता ही प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्त हैं। इस कथन की सचाई का उदाहरण अमेरिका निवासियों की उस घोषणा के शब्दों में मिलता है जो सन् १७७६ ई० में उन्होंने स्वतन्त्रता युद्ध के आरम्भ में की थी :—

"हम इन बातों को स्वतः सिद्ध सत्य मानते हैं कि सब मनुष्यों को ईश्वर ने समान बनाया है, यह कि ईश्वर ने उनको कुछ ऐसे स्वत्वों से विभूषित किया है जो दूसरों को हस्तान्तरित नहीं किये जा सकते, यह कि जीवन, स्वतन्त्रता और सुखोपार्जन ही ये स्वत्व हैं, यह कि इन स्वत्वों की रक्षा के लिये सरकारें बनाई जाती हैं जिनके अधिकार शासितों की सम्मिति से प्राप्त हुये होते हैं।"

"अपने स्वत्वों के सम्बन्ध में सब मनुष्य समान उत्पन्न हुये हैं और वे समान ही बने रहते हैं। राजकीय संगठन का उद्देश्य ही इन नैसर्गिक व अदृष्ट स्वत्वों की रक्षा करना है। स्वतन्त्रता, सम्पत्ति सुरक्षा और अत्याचार का प्रतिरोध, ये ही वे स्वत्व हैं।"

"सब अधिसत्ता की प्रधानता प्रमुखतः जनता में ही रहती है। कोई भी संस्था या व्यक्ति किसी अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता जो स्पष्टतया जनता से प्राप्त न हो।"

जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति अपने हित का सबसे उत्तम निर्णायक समझा जाता है। प्रजातन्त्र में किसी एक व्यक्ति को असीमित अधिकार नहीं दिये जाते क्योंकि ऐसा करने में निश्चय ही यह भय रहता है कि उन अधिकारों का वह दुरुपयोग करेगा। अतः जितने ही अधिक व्यक्ति प्रशासन में सम्मिलित हों उतनी ही इस बात की अधिक सम्भावना रहती है कि बुराइयाँ दूर होंगी और भूलें सुधरती रहेंगी। जनतन्त्र राज संगठन में इस बात की कम सम्भावना रहती है कि कोई व्यक्ति बिना लोक नियन्त्रण के अपना स्वार्थ-साधन करता चला जाय। दूसरी ओर यहां प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त अवसर मिलता है कि वह अपने उत्तमस्व की अभिव्यक्ति करे और सार्वजनिक सुखोपवृद्धि में अपना उचित योग दे।

प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थितियां—कोई भी प्रणाली कितनी ही अच्छी क्यों न हो वह तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक वे परिस्थितियां वर्तमान न हों जो उनको सफल-कार्य बनाने के लिये आव-

के मार्ग में बाधक न हों मत देन का अधिकारी होना चाहिए। मताधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित न रहना चाहिये जो किसी विशेष जाति या वंश में उत्पन्न हुये हों या सम्पत्ति के स्वामी हों। अन्त में यह भी बतलाना आवश्यक है कि जनतन्त्र राजकीय समाज में आर्थिक संगठन ऐसा होना चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति को केवल जीविकोपार्जन का साधन ही न मिले पर उसके साथ साथ यह भी देखभाल रहनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति को इतना पारिश्रमिक या वेतन मिलता है कि वह मनुष्य की तरह अपना जीवन बिताने में समर्थ हो सके। आजकल बहुत से जनतन्त्रात्मक राज्य ऐसी आर्थिक परिस्थिति उत्पन्न करने में असफल रहे हैं, जिससे बेकारी व भुखमरी दूर हो और रहन-सहन सुखी व स्वास्थ्य-वर्द्धक हो। यही कारण है कि प्रजातन्त्र लोगों के हृदयों में अच्छी तरह प्रतिष्ठित नहीं होने पाया है और इसके लिये श्रद्धा और प्रेम का भावोद्गार नहीं उठता। कहीं-कहीं तो उससे इतनी निराशा हुई कि लोग घृणा करने लगे और उसी प्रणाली के प्रति विद्रोह खड़ा कर दिया जिसका उद्देश्य ही उनके हितों का साधन करना है।

निरंकुशता से युद्ध करने से स्वतन्त्रता की प्राप्ति—जनतन्त्र की विजय बड़े संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। इंगलैण्ड का इतिहास इस बात का सबसे उज्ज्वल दृष्टान्त है कि किस प्रकार प्रजा ने निरंकुश शासकों से शक्ति छीनकर अपने आधीन की। वोलटेयर ने अंगरेज़ों की इस लड़ाई का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है: "इंगलैण्ड में स्वतन्त्रता स्थापित करने का भारी मूल्य देना पड़ा है। निरंकुश शक्ति की मूर्ति को डुबाने के लिये खून के सागर की आवश्यकता पड़ी पर फिर भी अंग्रेज़ यह नहीं समझते कि उन्होंने अपने कानूनों के खरीदने में अधिक मूल्य चुकाया है। दूसरी जातियों ने भी इनसे कम विपत्तियों का सामना नहीं किया और कम खून नहीं बहाया पर उनके बलिदान का फल केवल यही हुआ कि उनकी दासता की शृङ्खलायें और मज़बूत हो गई।" स्वतन्त्रता के युद्ध में अधिकारों की एक पद्धति स्वीकार करनी पड़ती है और इसे स्वीकार करने से ही लोग सुखी व सम्पन्न रह सकते हैं। यदि इन अधिकारों को उचित मान न दिया जाय और उनकी रक्षा के लिये लड़ने को सदा तत्पर न रहा जाय तो स्वतन्त्रता चार दिन की चांदनी रहती है। इन अधिकारों के लिये युद्ध करके ही सन् १७८३ ई० में अमरीकन लोगों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। आयरलैण्ड के लोगों को सैकड़ों वर्ष तक स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना पड़ा और तब कहीं जाकर १९३७ ई० में उनको अपनी सरकार बनाने का अवसर मिला।

जनतन्त्र और अधिकारों की घोषणा—आजकल नागरिकों के अधिकारों की शासन संविधान में स्पष्ट घोषणा करने की प्रथा प्रचलित हो गई है। पर संविधान में इनका उल्लेख हो जाना ही कोई बड़ी बात नहीं है और उसी से व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते। अधिकारों का उपभोग बहुत कुछ परम्परा और अभ्यास पर निर्भर है। यदि लोग इन अधिकारों के प्रति उदासीन हैं तो वैधानिक उल्लेख का व्यवहार में कोई महत्व नहीं रहता। यह उल्लेख तभी काम में आता है जब जनता अपने अधिकारों की रक्षा करने में सतर्क रहे क्योंकि ऐसा होने से जब कभी राज्य व्यक्ति के अधिकारों में हस्तक्षेप करेगा व्यक्ति को उस समय यह सुविधा होगी कि वह राज्य के विरुद्ध न्यायालय में पुकार करे। इस उल्लेख से लोगों के सामने एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया जाता है जिसकी प्रप्ति के लिये उन्हें यह याद दिलाता रहता है कि उन्हें लड़ना है। जहां तक इस सिद्धान्त की पवित्रता का सम्बन्ध है वह इस उल्लेख से सुरक्षित रहती है और इसीलिये संविधान एक महत्वपूर्ण वस्तु है। वैयक्तिक अधिकारों के सिद्धान्त के उल्लेख मे सरकार की शक्ति व कार्यों की मर्यादा बंध जाती है। इसके कार्यरूप होने मे ऐसी स्थिति विद्यमान रहती है जिसमें व्यक्ति अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति समुचित रूप से कर सके।

प्रजातन्त्र और प्रथम महायुद्ध—सन् १९१४—१८ के महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि वे प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये संसार को सुरक्षित बना रहे हैं। इसमें संशय भी नहीं कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रजातन्त्र के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ। पहिली जनवरी सन् १९०१ में आस्ट्रेलिया के संघ शासन की स्थापना हुई। १९०९ में दक्षिणी अफ्रीका के जनतन्त्रात्मक संघ शासन की नींव पड़ी। पर सन् १९१४ में जर्मनी ने बेलजियम पर आक्रमण करके उसकी तटस्थता का अतिक्रमण किया और ऐसे महायुद्ध का सूत्रपात हुआ जो चार वर्ष तक चला। पहिले इंगलैण्ड ने युद्ध-भूमि में पदार्पण किया, उसके तीन वर्ष पश्चात् अमरीका भी युद्ध में सम्मिलित हो गया। युद्ध में सम्मिलित होने के साथ ही अमरीका के राष्ट्रपति विलसन ने संसार के राष्ट्रों को विश्वास दिलाया कि युद्ध के समाप्त होने पर आत्म निर्णय ही उनके राजतन्त्र का आधार होगा। अर्थात् उनकी सरकार वैसी ही होगी जैसा कि वे स्वयं निर्णय करेंगे। युद्ध के पश्चात् इस घोषणा के अनुसार ही यूरोप में कई प्रजातन्त्र राज्यों का जन्म हुआ जिससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता और समानता का अधिकाधिक प्रचार हुआ और यह भावना सब जगह मान्य होकर दृढ़ हो गई।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्र संघ (League of Nations) के स्थापित होने से एक नये युग का जन्म हुआ जिसमें प्रत्येक राज्य के अधिकारी को समानता और न्याय के आधार पर उचित महत्व दिया जाने लगा। उस समय जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का ही सब जगह बोलबाला था पर युद्ध के पश्चात् जो सन्धि हुई उसमें राष्ट्रपति विलसन के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को पैरों तले कुचलकर साम्राज्य के नये स्तम्भों की रचना कर दी। पदोक्रान्त जर्मनी ने अपना नया जीवन विमार (Weimar) शासन संविधान के अनुसार आरम्भ किया। यह शासन संविधान जनतन्त्रात्मक व संघात्मक था पर इटली में युद्ध के पश्चात् निराशा की बड़ी लहर फैली। जिस गुप्त संधि के आधार पर इटली युद्ध में सम्मिलित हुआ और उसमें जो आशायें दिलाई गई थीं वे पूर्ण न हो सकीं। फलस्वरूप सन् १८४८ के उदार दल के आन्दोलन के अनुयायी संसद् प्रणाली (Parliamentary System) के समर्थकों को बड़ी निराशा हुई। वे वर्साई की संधि होते समय कूटनीति के युद्ध में अपना सिक्का न जमा सके। इस हार से जनता की निगाहों में वे गिर गये और जनतन्त्र की ओर से जनता उदासीन हो गई। इस उदासीनता की निराशा का मुसोलिनी ने पूरा लाभ उठाया और वह राज्यशक्ति अपने हाथ में कर इटली का अधिनायक बन बैठा रूस में सन् १९१७ की क्रान्ति से जोर की निरंकुशता समाप्त हो गई और एक ऐसी शासन प्रणाली की स्थापना हुई जो उन्नीसवीं शताब्दी की जनतन्त्र-कल्पना से उतनी दूर थी जितनी कि सम्भवतः इटली की अधिनायक शासन प्रणाली, हालांकि इसमें सन्देह नहीं कि इन दोनों के मूलभूत सिद्धान्तों में पर्याप्त अन्तर था। रूस में मार्क्स के दर्शन के आधार पर व्यक्तिवादी (Individualistic) सरकार के भिन्न सामूहिक (Collective) सरकार की उत्पत्ति हुई।

युद्ध की लूट के फलस्वरूप मध्य यूरोप में नये राज्य बन गये। आस्ट्रिया, हंगरी, तुर्की तथा जर्मन साम्राज्य के टुकड़े कर दिये गये और या तो वे छोटे २ राज्य बना दिये गये या संयुक्त राष्ट्र की नाममात्र की अध्यक्षता में विजेताओं को सुपुर्द कर दिये गये। इस लूट से अधिकतर इंगलैण्ड और फ्रांस ने लाभ उठाया और उनके उपनिवेशों की संख्या और बढ़ गई युद्ध के पश्चात् जिस आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर प्रजातन्त्र की स्थापना की जाने वाली थी और जिसके लिये ही युद्ध लड़ने का बहाना किया गया था, वह उठाकर ताक पर रख दिया गया और साम्राज्यवाद का ज्यों का त्यों बोलबाला रहा।

पहले महायुद्ध के पश्चात् संसार जनतंत्र की स्थापना के लिये उतना ही असुरक्षित बना रहा जितना युद्ध के पूर्व था। निःशस्त्रीकरण का स्वप्न सच्चा न हो सका और यूरोप के राष्ट्र परस्पर स्पर्धा के कारण अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाते रहे। युद्ध के फलस्वरूप आर्थिक कठिनाइयां बराबर चल रही थीं और सारा संसार उसमें व्यस्त था। इस आर्थिक विपत्ति ने जर्मनी, आस्ट्रिया, पोलैंड और दूसरे यूरोप के छोटे राज्यों की नव-जात जनतन्त्रात्मक सरकारों को उत्साहहीन कर दिया। जर्मनी में जनतन्त्रात्मक-राज्य अधिक दिन तक अपने आपको न संभाल सका और कुछ दिन लड़खड़ाकर अन्त में अपनी निर्बल नींव के कारण ढह कर गिर पड़ा। उसके खंडहरों पर हिटलर के जर्मनी का जन्म हुआ। यही क्रम आस्ट्रिया में भी हुआ और वहां भी अधिनायकतन्त्र की स्थापना हुई। कुछ पोलैण्ड में भी यही हाल हुआ। इसके फलस्वरूप यूरोप में एक नया भय उत्पन्न हो गया क्योंकि अधिनायक सत्तायें पड़ौसी राष्ट्रों के प्रति अविश्वास घृणा, वैरभाव और युद्धभय के सहारे ही अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती है। इस वैरभाव की अग्नि में विभिन्न राजनैतिक भावनाओं के, विशेषकर समाजवाद और उसके विदेशी अधिनायक वाद के संघर्ष न घी का काम किया। प्रत्येक राष्ट्र में फैसिस्ट सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ने लगा जिससे जनतन्त्र प्रणाली अवांछनीय समझी जाने लगी।

प्रथम महायुद्ध के अग्निकाण्ड की राख के ढेर से दो प्रकार की सरकारों के अंकुर निकले, एक तो समाजवादी सरकार के, जैसी रूस में स्थापित हुई और दूसरी अधिनायक सत्ता के, जैसी जर्मनी और इटली में उत्पन्न हुई। आधुनिक सरकारों के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिये इन दोनों राज्यतन्त्र-प्रणालियों में इनके आधारभूत सिद्धान्तों व इनकी संस्थाओं की बनावट की दृष्टि से पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। इसका विवेचन हम इस पुस्तक में आगे चल कर करेंगे।

स्वतन्त्र तथा परतन्त्र सरकारें—आधुनिक राज्यों में कुछ सरकारें स्वतन्त्र हैं और कुछ की परतन्त्र। इंगलैंड, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, भारतवर्ष आदि ऐसे देश हैं जहां राज्य प्रणाली जनता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकृत है। इन सब राज्यों में सरकार का संचालन एक दल के द्वारा होता है या ऐसे विधान के अनुसार होता है जो प्रजा को मान्य है, चाहे वह संविधान जनतन्त्रात्मक हो या अधिनायक-तन्त्रात्मक (Dictatorial)। दूसरी

और वे राज्य हैं जिनको आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं दिया गया है । या तो इसलिये कि वे अपना शासन अपने-आप करने के योग्य नहीं हैं या उनके सम्बन्ध में विदेशी शासकों के विशेष उत्तरदायित्व है । सन् १९४७ से पहिले भारतवर्ष ऐसे ही राज्यों की गिनती में था, अब भी अफ्रीका के कुछ राज्य जो इटली के साम्राज्य के अंग थे या जो फ्राँस, जर्मनी व बेलजियम आदि के आधिपत्य में थे, और इनके अतिरिक्त भी छोटे-छोटे उपनिवेश ऐसे ही राज्यों की श्रेणी में आते हैं । ये सभ्य संसार के धवल मुख पृष्ठ पर कालिमा के सादृश्य हैं । प्रजातन्त्र प्रेमियों के लिये यह एक समस्या है कि इनको किस प्रकार स्वतन्त्र किया जाय, क्यों कि शासक-राज्यों की सद्भावनापूर्ण घोषणाओं पर विश्वास नहीं किया जाता । स्वयं इंगलैण्ड ही जिसको जनतन्त्रात्मक और संसदात्मक प्रणाली का जन्मदाता कहा जाता है, बहुत से देशों पर आधिपत्य किये हुये था और यही आडम्बरपूर्ण दावा करता था कि वह सदभावना से प्रेरित होकर ही शासित प्रदेश के हित में ही उस पर राज्य कर रहा है । द्वितीय महायुद्ध के पश्चात भारतवर्ष, ब्रह्मा और मिश्र को स्वतन्त्रता मिल गई पर अब भी इंगलैण्ड के आधिपत्य में कई छोटे छोटे राज्य हैं । प्रजातन्त्र के युग म यद्यपि विदेशी सत्ता का शासन नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार भी न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता पर फिर भी साम्राज्यवादी शक्तियां स्वार्थ के वश बहुत से राज्यों को अपने आधीन रखे हुये हैं और अपने स्वार्थ को ऊंचे सिद्धान्तों व आडम्बरपूर्ण शब्दों से ढकने का प्रयत्न करती हैं । ब्रिटेन के साम्राज्य के सम्बन्ध में बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) ने अपने सहज ढंग से अंगरेजों के बारे में कहा था "कोई भी अच्छी या बुरी बात ऐसी नहीं जिसे अंगरेज न करता हो, पर आप उसको गलती करते हुये कभी नहीं पकड़ सकते । वह (अंगरेज) हर एक बात को किसी न किसी सिद्धान्त की आड़ में करता है, वह सिद्धान्त पर लड़ता है, व्यापार-सिद्धान्त के द्वारा तुम पर शासन करता है और साम्राज्य-सिद्धान्त के द्वारा तुम्हें परतन्त्र बनाता है ।" परतन्त्र प्रदेश की राज्यतन्त्र प्रणाली का रूप विदेशी सत्ता द्वारा निर्धारित होता है और यह प्रणाली किसी न किसी सिद्धान्त से उपयुक्त भी ठहराई जाती है । इन विभिन्न प्रदेशों की शासन प्रणालियां भी वहां की सरकार के उद्देश्य और उसके संचालन के ढंग की दृष्टि से निराली हैं और अध्ययन करने योग्य हैं ।

आधीन प्रदेशों के रखने का अभिप्राय—विदेशी सत्ता अपने आधीन राज्यों के ऊपर इसलिये शासन नहीं करती कि उसके द्वारा आधीन देश का हित हो, पर वह अपने ही स्वार्थ साधन के लिये उन पर अपना अधिकार

जमाये रहती है। विदेशी सत्ता को जो कतिपय बड़े बड़े लाभ होते हैं वे ये हैं:— (१) शान्ति के समय में कर, और युद्ध के समय में धन और आदमी मिलते हैं; (२) कच्चा माल कारखानों के लिये, और कारखानों के पक्के माल की खपत के लिये बाजार मिल जाता है; (३) समुद्री और हवाई अड्डे मिलते है जहां से विदेशी सत्ता की जल सेना और वायु सेना विदेशी सत्ता के जलमार्गों और वायुमार्गों व साम्राज्य की रक्षा करती है; (४) इन आधीन राज्यों में शासक राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के बसाने का क्षेत्र खुला रहता है और कभी-कभी शासक-प्रदेश के अपराधियों को भी आधीन देश में रहने के लिये स्थान दिया जाता है जैसे पहले अमरीका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों में, आस्ट्रेलिया में और कुछ दिन तक आण्डमान टापू में किया जाता था; (५) शासक-प्रदेश का यश भी इन आधीन राज्यों से बढ़ता है जिसका उदाहरण अंगरेजों को अपने साम्राज्य पर अभिमान प्रदर्शन में मिलता है, यह बड़े अभिमान से कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य इतना विस्तृत है, कि उसमें सूर्य कभी छिपता नहीं। अपने अन्यायपूर्ण स्वामित्व को आकर्षक आवरण पहनाने के लिये ही ये शासक-प्रदेश यह कहा करते हैं कि वे आधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा को स्वायत्त शासन की शिक्षा देने और स्वतन्त्र होने के योग्य बनाने के लिये ही उन पर राज्य करते हैं। सर जार्ज कार्नवाल लेविस ने भारतवर्ष का उदाहरण देकर यह बताने का जो प्रयत्न किया कि आधीन प्रदेश को क्या-क्या हानि उठानी पड़ती है वह इस कथन से स्पष्ट हो जायगा।

"यद्यपि ब्रिटिश इण्डिया ने अंगरेज पदाधिकारियों की चतुरता और ईमानदारी से बहुत लाभ उठाया हो तब भी केवल अंगरेजों को ही सबसे ऊंचे पदों पर नियुक्त करने से उनके ऊंचे वेतन और राज्य की आय कम होने के कारण, एक ही ऐसे अंगरेज व्यक्ति के सिर पर इतने कामों का बोझ लाद दिया गया है कि बहुत से हिस्सों में अन्याय का बोलबाला है और वहां कोई सरकारी लाभदायक काम नहीं होता। यदि जनता के स्थायी व महत्वपूर्ण हितों की रक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता तो अंगरेज अफसरों का वह अभिमानपूर्ण व्यवहार जिससे प्रायः भारतीय जनता के हृदयों पर चोट पहुँचाई जाती थी अधिक महत्व रखता। परन्तु खेद का विषय यह है कि देश के अधिक भागों में जान और माल मुश्किल से उनसे अधिक सुरक्षित कहे जा सकते हैं जैसे वे देशी सरकारों के समय में थे और लोगों को ब्रिटिश शासन से जो मुख्य लाभ हुआ है वह यही है कि बाहरी आक्रमणों से उनका बचाव हो गया है।"*

* एन ऐस ऑन दी गवर्नमेन्ट आफ डिपेन्डेन्सीज पृष्ठ २६३।

ऐसे ही जोरदार शब्दों में सर जार्ज ने यह विश्वास करने से अस्वीकार किया कि कोई भी शासक प्रदेश कभी भी ऐसा कर सके कि अधीन देश की प्रजा को स्वायत्त शासन की धीरे-धीरे शिक्षा देकर उनको पूर्ण स्वतन्त्र बना दे कहते हैं कि "यदि कोई शासक-प्रदेश किसी अधीन देश की प्रतिनिधि संस्थायें तो बनाने देता है और यह कहता है कि वह उसे स्वायत्त-शासन करने देगा तो वास्तव में उसके साथ स्वतन्त्र देश जैसा व्यवहार नहीं करता, ऐसी दशा में उसका व्यवहार अपने अधीन देश को ऐसी राजकीय संस्थायें देकर जिनका बाहरी रूप तो हो पर वास्तविकता कुछ न हो, केवल चिढ़ाने का काम करता है। आधीन देश के साथ यह प्रवञ्चनामात्र है कि उसे लोक संस्था प्रणाली का नाम-रूप तो दे दिया जाय पर वास्तव में एक स्वतन्त्र देश जैसा उसको कार्यरूप न करने दिया जाय। न ऐसी रियायतें आधीन देश को कोई लाभ पहुँचाती हैं बल्कि इसके विपरीत वे राजनीतिक फूट के बीज बो देती हैं और कदाचित् विद्रोह और युद्ध के भी, जो ऐसी रियायतें न देने से न होता।"[१]

इसीलिये स्वामी दयानन्द ने, जो भारतवर्ष के बहुत बड़े सामाजिक व धार्मिक सुधारकों और राजनीतिज्ञों में गिने जाते हैं, यह कहा था कि स्वराज्य सबसे उत्तम है। विदेशी सत्ता चाहे कितनी भी पक्षपात व धार्मिक द्वेष से रहित और आधीन देशवासियों के प्रति माता पिता के समान दयापूर्ण न्यायपूर्ण और दानशील क्यों न हो, उनको पूर्णरूप से सुखी नहीं बना सकती। यह कथन वैसा ही है जैसे यह कि अच्छी सरकार स्वराज्य का स्थान नहीं ले सकती।

उत्तरदायी व अनुत्तरदायी सरकारें—सरकारों का, चाहे वे स्वतन्त्र राज्यों की हों या परतन्त्र राज्यों की, एक दूसरी दृष्टि से भी वर्गीकरण किया जाता है। वह यह है कि कोई सरकार अपनी प्रजा की उत्तरदायी है या नहीं। जब किसी सरकार का शासन प्रबन्ध जनता या उसके प्रतिनिधियों की इच्छानुसार संचालित होता है तो हम कहते हैं कि सरकार उत्तरदायी है। ऐसी सरकार में कार्य-पालिका इस प्रकार से प्रशासन करती है कि जनता या उसके प्रतिनिधि उससे प्रसन्न रहें। जहां प्रत्यक्ष जनतन्त्र आज भी प्रचलित हैं जैसे स्विट्जरलैण्ड के केण्टनों में, वहां कार्यपालिका जनता को प्रसन्न रखने का सतत प्रयत्न करती है और जहां प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र प्रणाली से प्रशासन होता है वहां प्रतिनिधियों की प्रसन्नता पर दृष्टि रख कर कार्यपालिका अपना कार्य करती है। जहां जनता की इच्छा या अनिच्छा की परवाह न कर कार्यपालिका उन पर स्वेच्छा से शासन

१. पूर्व स्रोत, पृ० २६३।

करती है उसको अनुत्तरदायी सरकार कहते हैं ।

सरकार एक पेचीदा संगठन है—आधुनिक राज्यों में जीवन इतना जटिल हो गया है और उसकी रूप रेखा निश्चित करने वाले कारणों में ऐसी अनेकता है कि आधुनिक संगठन को पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में शासन कार्य करना पड़ता है । इस शासन कार्य के अन्तर्गत कानूनों का बनाना, उनका पालन करवाना और न पालन करने वाले को दण्ड देने की व्यवस्था करना, यह सब आते हैं। राजनीतिज्ञ शासन करने की कई पद्धतियाँ बनाई हैं जिनसे प्रजा को अधिक से अधिक स्वतन्त्र और सुखी बनाया जा सके और साथ ही शासन-प्रबन्ध के गुणों में कमी न हो और न शासन परिवर्तन का डर रहे । अरस्तू ने सरकार के तीन अंग वाला सिद्धान्त अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी पोलिटिक्स" में प्रतिपादित किया था । उसने इन तीनों अंगों के अलग अलग नाम दिये हैं, पहला मनन करने वाला, दूसरा राज्यपदों से सम्बन्ध रखने वाला और तीसरा न्याय करने वाला।

सरकार के तीन अंग—अरस्तू के पश्चात् कई राजनीति-विचारकों ने इस तीन अंग वाले सिद्धान्त की विवेचना की । अब यह सिद्धान्त इतना सर्व-मान्य हो गया कि प्रत्येक आधुनिक राज्य में इन्हीं तीनों अंगों के सामूहिक प्रयत्न से शासन कार्य सम्पादित होता है । इन तीनों अंगों को, विधिनिर्बन्ध-कारी (Legislative), कार्यकारी (Executive) और न्यायकारी (Judicial) सत्ता कहते हैं ।

मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) और अधिकार विभाग का सिद्धान्त—यद्यपि अब सभी प्रगतिशील राज्यों ने राज्यसत्ता व अधिकारों को तीन विभागों निर्बन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी में बाँटने की पद्धति को मान लिया है । और उसको व्यावहारिक रूप भी दे दिया है पर पहले पहल इस विभाजन के मूल-स्थित सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध राजशास्त्री मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) ने अपनी 'दी स्प्रिट आफ लाज़' नामक पुस्तक में किया था । उदार दल के राजनीतिज्ञों ने इस सिद्धान्त को लोकसत्ता की रक्षा करने वाला गढ़ कह कर स्वागत किया ।

मौन्टेस्क्यू लिखते हैं "जब निर्बन्धकारी और कार्यकारी सत्ता एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समूह के सुपुर्द कर दी जाती है तो कोई भी नागरिक स्वतन्त्र नहीं रह सकता क्योंकि उसे यह भय बना रहेगा कि वह राजा या परिषद् उत्पी-ड़क कानून बनावेगा और उनको निर्दयतापूर्वक प्रयोग करेगा । उस दशा में भी

स्वतन्त्रता न रहेगी जब तक कि न्यायकारी सत्ता (Judiciary) निर्बन्धकारी (Legislative) और कार्यकारी (Executive) सत्ता से पृथक् न कर दी जाय। जहाँ उसका निर्बन्धकारी सत्ता से मेल कर दिया जाता है वहाँ स्वेच्छाचारी शासन से प्रजा की स्वतन्त्रता और जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि न्यायाधीश ही व्यवस्थापक बन जायगा। जहां इस न्यायकारी सत्ता का मेल कार्यकारी सत्ता से कर दिया जायगा वहां न्यायाधीशों द्वारा अत्याचार व हिंसा की सम्भावना सदा बन रहेगी। यदि एक ही व्यक्ति या संस्था, चाहे वह विशिष्ट व्यक्तियों की हो या साधारण लोगों की, कानून बनाने, उन कानूनों को कार्यरूप देने और अपराधियों को दण्ड देने के तीनों अधिकारों का उपभोग करेगी तो हर वस्तु समाप्त हो जायगी।"

विधान मण्डल—राज्य में विधान मण्डल कानूनों के बनाने और उनका संशोधन करने का कार्य करता है। अनियन्त्रित राजसत्ता (Monarchy) में राजा की आज्ञा ही राज्य का कानून समझा जाता है, पर किसी भी लोकसत्तात्मक प्रजातन्त्र में शासन कार्य नहीं चल सकता। यदि वहां ऐसा विधान मण्डल स्थापित न किया जाये जिसका एकमात्र कर्तव्य यह हो कि वह सारे राज्य या उसके किसी भाग के निवासियों को सुखी बनाने वाले क्षेम कारक विषयों का मनन करे और उसके अनुकूल विधियों की रचना करे। छोटे राज्यों में सारी प्रजा इस काम को कर सकती है। यूनानी नगर राज्यों में व अब भी स्विट्ज़रलैण्ड के कुछ छोटे कैण्टनों (प्रान्तों) में प्रजा के सब व्यक्ति सम्मिलित होकर कानूनों की व्यवस्था करते हैं पर अब प्रायः राज्यों का ऐसा छोटा रूप नहीं होता और प्रजा की संख्या करोड़ों और अरबों में होती है। इसलिये ऐसे राज्यों में यह सम्भव नहीं हो सकता कि सारी प्रजा एकचित्त होकर कानूनों की व्यवस्था करे। उनमें तो यही सम्भव है कि प्रजा द्वारा चुने हुये कुछ प्रतिनिधि ही विधान मण्डल बनाकर राज्य के लिये कानून बनावें। कुछ समय के पश्चात् यह प्रतिनिधि मण्डल इतना अनुभवी हो जाता है कि कानून-निर्माण कला में यह विशेषता की पदवी प्राप्त कर लेता है। यह प्रतिनिधि प्रणाली सबसे प्रथम् इंगलैण्ड में आरम्भ हुई और उसके पश्चात् लगभग सभ्य राज्यों ने इसे अपना लिया है।

विधान मण्डल के भिन्न-भिन्न रूप—द्विगृही व एकगृही (Bicameral or Unicameral)—प्राचीन काल में धर्म, नैतिक नियम और राजाज्ञा में तीन कानून के उद्गम थे। रीति-रिवाज को भी बड़ा महत्व दिया जाता था। पर आधुनिक राज्यों में विचार-विमर्श के पश्चात् वैज्ञानिक रीति

से ही कानूनों की व्यवस्था की जाती है, यद्यपि इस कार्य में रीति-रिवाजों, न्याय-तत्वों और न्यायालयों के निर्णयों का भी प्रभाव पड़ता रहता है। इसलिये आज-कल राज्य में विधान मण्डल की बनावट और उसके कर्तव्यों व अधिकारों का बड़ा महत्व समझा जाता है। इंगलैण्ड के इतिहास के अध्ययन करने से यह मालूम हो जायगा कि अकस्मात् ही पार्लियामेण्ट के दो भाग हो गये थे, एक हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords), और दूसरा हाउस आफ कामन्स (House of Commons), ऐसा विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टि या विशेष उद्देश्य से प्रेरित न हुआ था। पर दूसरे राज्यों ने जब इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट-प्रणाली का अनुकरण किया तो उन्होंने भी द्विगृही व्यवस्थापक मण्डल की पद्धति को अपनाया और दो गृहों की स्थापना की। कुछ राज्य अब भी एक ही गृह (House) से काम चलाते हैं। अतः विधान मण्डल दो प्रकार का होता है एक द्विगृही जिसमें दो सभायें कानून बनाने के कार्य में भाग लेती हैं, और एकगृही जिसमें एक ही सभा कानून बनाती है।

द्विगृही पद्धति के गुण—राजशास्त्रियों में बहुत से इस मत के समर्थक हैं कि द्विगृही पद्धति एकगृही पद्धति से अधिक लाभदायक है। दो गृहों के होने पर एक गृह में जब कोई विधेयक (Bill) पास हो जाता है तो वह दूसरे गृह में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है और वहां एक बार पुनः उसकी आलोचनात्मक परीक्षा हो जाती है जिससे उसके बचे हुये दोष भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार दूसरा गृह कानूनों को दोहरा कर संशोधन करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। दूसरे आधुनिक राज्य में शासन का कार्य इतना अधिक हो गया है कि एक ही गृह के लिये यह कठिन हो गया है कि वह प्रत्येक योजना पर सूक्ष्म निरीक्षण कर सके। यदि दूसरे गृह में भी कुछ विधेयक प्रारम्भ कर दिये जायें तो दोनों गृहों में साथ-साथ बहुत-सा विधान-कार्य सम्पादित किया जा सकता है। इस प्रकार दो गृहों के होने से काम की मात्रा बढ़ जाती है। यह ठीक है कि प्रत्येक विधेयक एक धारा सभा में स्वीकृति के लिये भेजना पड़ता है और उससे काम में कमी होने की सम्भावना नहीं, पर बहुत से विधेयक आरम्भ में ही रद्द हो जाते हैं और दूसरे गृहों में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती। अतः दो गृहों के होने से यह आसानी रहती है कि जिस गृह में कम काम हो वहां ऐसे बिल प्रारम्भ हों जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से पहले यह नहीं कहा जा सकता है कि वे वांछनीय हैं या नहीं। वहां यदि अनावश्यक सिद्ध हो गये तो उन्हें आगे बढ़ने और दूसरे गृहों के समय नष्ट करने का अवसर ही नहीं मिलता। ऐसी बचत तब न हो सकती थी जब एक ही विधान मण्डल को सब काम करना पड़ता। तीसरी बात यह है

कि जहां दो गृहों का विधान-मण्डल होता है वहां उनमें से एक साधारण लोक-सभा होती है जिसे प्रथम सदन (Lower House) कहते हैं। इसमें प्रजा से प्रत्यक्ष निर्वाचित कम आयु वाले प्रतिनिधि बैठते हैं। उनमें दलबन्दी का पुट प्रचुर मात्रा में रहता है। प्रायः ऐसा होता है कि किसी विषय में वादविवाद इतना बढ़ जाता है कि उनमें आपस में अनावश्यक गर्मागर्मी हो जाती है और उस समय वे प्रस्तुत विषय के गुण दोषों पर विवेकशील होकर ठण्डे दिमाग से मनन नहीं कर पाते। फलतः कभी कभी इस तनातनी से लोकहित के विरुद्ध भी निर्णय हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में दूसरा सदन (Lower House) जिसमें अनुभवी स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति होते हैं जो सहज ही भावावेश में नहीं आ जाते व जल्दी ही लोभवश होकर अनौचित्य की ओर नहीं झुकते, वह शान्तिपूर्वक सूक्ष्म विचार के द्वारा प्रथम सदन के निर्णयों के गुण दोषों पर पुनः विचार करते हैं। दूसरे शब्दों में, दूसरा सदन प्रथम सदन को जल्दी में, बिना ठीक ठीक विचारे हुये, बनाये हुये विधेयकों पर रोक लगाने का काम करती है। चौथी बात यह है कि प्रथम सदन प्रादेशिक आधार पर साधारण जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें उन हितों व वर्गों के प्रतिनिधि नहीं होते जो राज्य में स्थिरता लाते हैं, जैसे अल्प जन संख्यक धन सम्पत्ति के स्वामी, ज़मींदार, उद्योगपति आदि जिनका हित इसमें है कि राज्य में सुरक्षा व शांति रहे। इस दोष को दूसरे सदन की स्थापना करके दूर किया जा सकता है जिसमें ऐसे लोगों के प्रतिनिधि रहें जिनकी प्रधानता संख्या-बाहुल्य पर निर्भर न हो वरन् जो या तो अपने अनुभव, वैयक्तिक योग्यता व सदाचरण के कारण राज्य के योगक्षेम में सहायक और शुभचिन्तक हैं या जिनका हित राज्य के हित से सम्बद्ध हुआ है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इनके प्रतिनिधियों का निर्वाचन या नियुक्ति प्रथम सदन के सदस्यों के निर्वाचन से भिन्न रीति पर होनी चाहिये। इस ढंग से राज्य के विधान मंडल में सब वर्गों व सब हितों का उचित प्रतिनिधित्व होना सम्भव हो जाता है। पांचवीं बात यह है कि दूसरे सदन में सदस्यों की संख्या कम होने से व उनमें प्रथम सदन सदस्यों की अपेक्षा योग्य व्यक्ति के रहने से, वहां कानून बनाने में अधिक समय तक सूक्ष्म मनन हो सकता है। प्रथम सदन में वाक्पटुता दिखाने में ही बहुत-सा समय निकल जाता है। दूसरे सदन में ज्ञानवान् व परिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों के रहने से विधि-निर्माण कार्य में दक्षता और दूरदर्शिता का पुट रहता है।

द्विगृही पद्धति के दोष--द्विगृही पद्धति के समर्थकों के विरुद्ध वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि दूसरे सदन (Upper House) जिस उद्देश्य से

बनाए गए थे उसे पूरा करने में असफल रहे हैं। उनका यह भी कहना है कि प्रजातन्त्र राज्य में यदि दूसरे सदन के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा होता है और यदि उसके वही अधिकार हों जो प्रथम सदन (Lower House) के हैं तो दूसरे सदन से केवल प्रथम सदन का द्विगुणी करण हो जाता है। फलतः विधान संगठन केवल अधिक खर्चीला और अनावश्यक पेचीदा बन जाता है। दूसरे यदि फ्रांस और इंगलैंड की तरह दूसरे सदन के अधिकार प्रथम सदन से कम हों तो उसका होना न होना कोई महत्व नहीं रखता। तीसरे, यदि दूसरा सदन अधिक अनुदार हो और उसके सदस्यों का निर्वाचन प्रथम सदन के सदस्यों की अपेक्षा अधिक संकुचित क्षेत्र से हुआ हो, तो वह गाड़ी के पांचवें पहिये के समान शासन की प्रगति में रोक लगाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता। इससे वह प्रजातन्त्र की विरोधी ही सिद्ध होगी। चौथी बात यह है कि यदि कनाडा की तरह दूसरे सदन के सदस्यों का नामनिर्देशन किया जाये तो उससे नामनिर्देशन करने वाले अधिकारी (Authority) को ही विधायिनी-शक्ति (Legislative power) सुपुर्द हो जाती है। यदि इंगलैण्ड की तरह इस सभा की सदस्यता पैतृक अधिकार पर निर्भर हो और उसकी स्थिति परम्परागत हो गई हो तो यह मान लिया जाता है कि विधायिनी बुद्धि माता-पिता से प्राप्त होती है या सन्तान को दी जा सकती है, जो सत्य प्रतीत नहीं होता। यदि इस सभा में व्यवसायों व विहित वर्गों के प्रतिनिधि रखे जायें तो यह निश्चय करना असम्भव हो जाता है कि उन सब व्यवसायों और वर्गों में प्रत्येक को कितना प्रतिनिधित्व दिया जाय। यह भी कहा जाता है कि दूसरे सदन को न रख कर दूसरी युक्तियों से वही काम निकाला जा सकता है जो यह सभा करती है। उदाहरणार्थ एक गृह स्थापित करने के साथ साथ कमेटी पद्धति अपनाई जाय। प्रत्येक शासन विभाग के लिये एक स्थाई कमेटी बना दी जाय जो विधेयकों पर पहले विचार करे और फिर उन्हें धारासभा में अन्तिम स्वीकृति के लिये भेजे, या किसी भी विधेयक के पास होने से पूर्व उस पर जनता की राय ली जाय अथवा विशेषज्ञों का परामर्श प्राप्त किया जाय कि क्या वास्तव में अमुक विधेयक वांछनीय और पर्याप्त है या नहीं। ऐसा करने से विधेयकों के पास होने में आवश्यक देरी और छिद्रान्वेषण की वही सुविधा हो जायगी जिसके कारण ही दूसरे सदन का अस्तित्व आवश्यक समझा जाता है।

संघ-शासन और दूसरा सदन—द्विगृही पद्धति के समर्थकों का कहना है कि संघ-शासन में दूसरा सदन का होना नितान्त आवश्यक है। उसके द्वारा उपराज्यों की समता अक्षुण्ण रखी जा सकती है क्योंकि उसमें छोटे बड़े

सब उपराज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। संघ-शासन में यह सभा उपराज्यों के विशेष अधिकारों की रक्षक समझी जाती है। यदि वह उपराज्यों की परिषद् न हो तो बड़े उपराज्य प्रथम सदन में अपने प्रतिनिधियों की संख्या बाहुल्य के बल पर छोटे राज्यों से बाज़ी मार ले जाया करेंगे क्योंकि प्रथमसदन में जन संख्या के अनुपात से ही उपराज्यों को प्रतिनिधित्व मिलता है। ऐसा होने से संघ-शासन में उपराज्यों की समानता का जो महत्वपूर्ण सिद्धांत है वह समाप्त हो जायगा। इस सम्बन्ध में यह निस्सन्देह ठीक है कि सब संघ-शासनों में संघ शासन स्थापित होते समय इस बात पर ज़ोर दिया गया कि दूसरा सदन बनना चाहिये जिसमें सब संघीभूत इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व मिल जाय। यही नहीं बल्कि इन इकाइयों ने संघ में सम्मिलित होने के लिये यह शर्त लगा दी कि ऐसी परिषद् बनना चाहिये। पर संघ-शासन-विधान मंडलों के व्यावहारिक रूप को देखकर हम कह सकते हैं कि जिस भय के कारण दूसरे सदनों का बनना आवश्यक समझा गया वह निर्मूल था। जैसी आशा की जाती थी वैसे ये दूसरे सदन उपयोगी सिद्ध नहीं हुये।

दोनों गृहों की रचना और उनके अधिकार—आधुनिक राज्यों में यह एक बड़ी भारी समस्या है कि विधानमंण्डल के दोनों गृहों की रचना किस प्रकार की जाय और उनमें किसको अधिक व किसकोकम अधिकार दिये जायें। साधारणतः जो स्थिति पाई जाती है वह यह है कि दूसरे सदन प्रायः प्रथम सदन से अल्पसंख्यक होते हैं। केवल ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस ही उस नियम में एक अपवाद है। इनके अधिकार या तो प्रथम सदन से कम होते हैं या बराबर। पर अमरीका में दूसरा सदन जिसे सीनेट (Senate) कहते हैं प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) से अधिक शक्तिशाली हैं और वह संसार के अन्य दूसरे सदनों में सबसे अधिक अधिकारों का उपभोग करती है। ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस के अधिकार सब से कम हैं। दूसरे सदन की अवधि प्रथम सदन से लम्बी होती है, ब्रिटिश हाउस आफ़ लार्डस तो कभी समाप्त होता ही नहीं। कनाडा में सदस्य आजीवन दूसरे सदनों में बैठ सकते हैं। आय-व्यय सम्बन्धी विषयों में प्रथम सदन को अन्तिम अधिकार होता है यद्यपि अमरीका में दोनों सदनों को समान अधिकार हैं, केवल यही प्रतिबन्ध है कि धन विधेयक (Money bills) प्रथम सदन में प्रारम्भ होते हैं। बहुत से देशों में दूसरे

सदन को उच्च राजकर्मचारियों और राजपदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को सुनने और निर्णय करने का भी अधिकार प्राप्त है। जहाँ ऊपरली सभाएँ निर्वाचित होती हैं वहां प्रायः इनके निर्वाचन के लिये मताधिकार संकुचित होता है अर्थात् कुछ थोड़े-से व्यक्ति इनके सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। कहीं-कहीं अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से सदस्यों का चुनाव किया जाता है। पर अमरीका में सन् १९१३ के पश्चात् सीनेट के सदस्यों को प्रत्येक उपराज्य की मतधारक जनता ही चुनने लगी है। ऐसी ही प्रथा आस्ट्रेलिया में भी प्रचलित है। पास में जुड़ी हुई सारिणी (Table) में द्विगृही विधानों वाले राज्यों के विधान मण्डलों के दोनों की तुलनात्मक रचना और अधिकार दिये हुये हैं।

विधान मण्डलों की विभिन्न निर्वाचन प्रणालियां—प्रत्येक राज्य में विभिन्न निर्वाचन प्रणालियों के द्वारा विधान मण्डलों में प्रतिनिधि चुन कर भेजे जाते हैं। इंगलैण्ड में एक प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्रों (Single member constituencies) से पार्लियामेण्ट के सदस्य चुने जाते हैं। केवल विश्वविद्यालय वाले क्षेत्र से एक से अधिक सदस्य चुने जा सकते हैं। जो उम्मीदवार अपेक्षाकृत सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वह निर्वाचित समझा जाता है। चाहे इन मतों की संख्या उस निर्वाचन-क्षेत्र के मतधारकों की संख्या या मतदाताओं की संख्या के आधे से अधिक हो अथवा न हो। इस पद्धति को निर्वाचन की अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धति (Relative majority system of election) कह कर पुकारते हैं। यह पद्धति तब तक बड़ी सफल सिद्ध हुई जब तक इंगलैण्ड में उदार (Liberal) और अनुदार (Conservative) दो दल थे और केवल दो दलों के उम्मीदवारों में ही प्रतिद्विन्द्वता चलती थी और दोनों में से मतधारक एक को चुनते थे जिससे बहुमत की ही जीत होती थी। लेबर पार्टी के आने के बाद यह पार्टी बहुमत का प्रतिनिधित्व कराने में स्पष्टतया सफल न हो सकी। ऐसा क्यों होता है, यह हम आगे बतायेंगे। जहां अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली प्रचलित है वहां प्रत्येक दल को अपनी संख्यानुसार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं मिल पाता चाहे वहां निर्वाचन क्षेत्र में केवल दो ही राजनैनिक दल हों। निम्न-

लिखित आंकड़े इसको स्पष्ट कर देंगे। कनाडा के प्रथम सदन के लिये सदस्यों के निर्वाचन में जो मत (Vote) पड़े उनसे यह आँकड़े सम्बन्धित हैं :--

निर्वाचन का वर्ष	प्रान्त	दल	मत जो दल को प्राप्त हुये	स्थान जो दलकोमिले
१९०४	नोवा स्कोटिया	लिबरल	५६,५२६	१८
	,,	कन्जरवेटिव	४६,१३१	शून्य
१९११	ब्रिटिश कोलम्बिया	लिबरल	२५,६२२	७
		कन्जरवेटिव	१६,३५०	शून्य
१९२६	एलवर्टा	फार्मर्स पार्टी	६०,०००	११
१९२६	मैनीटोवा	कजन्रवेटिव	४९,०००	१
		लिबरल	८३,०००	शून्य
		प्रोग्रेसिव	३८,०००	७

अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति—(System of proportional representation)—यह सभी मानने लगे हैं कि अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली (Relative majority system) में बड़ा दोष है। इसलिये उसे सुधारने के लिये कई नई योजनायें तैयार हुई हैं, उनमें से सब से महत्व-पूर्ण अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली है। इस प्रणाली के प्रत्येक राजनीतिक दल को लोकसभा में उसी अनुपात से स्थान मिलते हैं जो अनुपात उस दल के लिये पड़े हुये मतों में और कुल डाले हुये मतों में होता है। इस प्रणाली में बहु-प्रतिनिधि निर्वाचन-क्षेत्र होते हैं और मतदाताओं को या तो निर्वाचित होने वाले उम्मे-दवारों की संख्या से कम मत देने का अधिकार होता है या उनको यह सुविधा दे दी जाती है कि वे सारे वोट एक ही उम्मीदवार को दे दे अथवा उन्हें एक से अधिक उम्मेदवारों में बांट दें। एक दूसरी निर्वाचन प्रणाली में एक मतदाता को एक मत देनें का अधिकार होता है पर वह उम्मेदवारों के लिये अपनी क्रमा-नुसार रुचि बैलट पेपर (मत-पत्र) पर उम्मेदवारों के नाम के सामने १, २, ३, ४ संख्या लिखकर प्रकट करता है। इस प्रणाली में बड़ी पेचीदगी रहती है जिसका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों का सम्बन्ध—यह प्रश्न उठा करता है कि मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों में कैसा सम्बन्ध रहना चाहिये। क्या प्रतिनिधि अपनी इच्छानुसार विधान मण्डल में किसी योजना को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिये स्वतन्त्र हैं ? यदि नहीं तो क्या उसे अपने मत-दाताओं की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना चाहिये ? उसे अपने मतदाताओं से किस प्रकार सम्पर्क रखना चाहिये ? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है और प्रत्येक राज्य में इसको पृथक्-पृथक् ढंग से सुलझाया जाता है। इस सम्बन्ध में बहुत सी युक्तियां काम में लाई जाती है। कतिपय ये हैं, जैसे प्रथम सदन के लिये निश्चित समय के बीतने पर नया निर्वाचन करना, दूसरे सदन के कुछ भाग को निश्चित समय के पश्चात् नये सदस्यों से भरना, मन्त्रि परिषद् और लोकसभा में विरोध होने पर लोकसभा का विघटन कर देना, लोक निर्णय (Referendum) प्रत्याहरण (Recall), व निबन्ध उपक्रम (Initiative) आदि को अपनाना, इन सब का वर्णन हम आगे चलकर उपयुक्त स्थानों पर करेंगे।

कार्यपालिका (Executive)—सरकार का दूसरा अंग कार्यपालिका है। इसकी बनावट, शक्ति और विधान मण्डल से इसका सम्बन्ध, ये तीनों बातें सब राज्यों में एक समान नहीं होतीं। पर किसी राज्य के शासन की आत्मा उसकी कार्यपालिका की बनावट पर ही निर्भर है। हमें यहां कुछ प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है। कार्यपालिका सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में हो या कई व्यक्तियों के हाथ में ? इस कार्यपालिका के पद की क्या अवधि होगी ? निश्चित अवधि होनी चाहिये या परिवर्तनशील ? कार्यपालिका उत्तदायी हो या अनुत्तर-दायी ? यदि उत्तरदायी हो तो किसको ? विधान मण्डल को या जनता को ? यदि कार्यपालिका उत्तरदायी हो और कई व्यक्तियों से बनी हो, तो क्या प्रत्येक व्यक्ति पृथक्-पृथक उत्तरदायी हो या सामूहिक रूप से सब उत्तरदायी हों ? इन प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक राज्य ने अपने-अपने ढंग से दिया है।

सरकारों का उनकी कार्यपालिका की बनावट के आधार पर वर्गीकरण, स्वेच्छाचारी अध्यक्षात्मक, संसदात्मक (Parliamentary)—सरकारों का वर्गीकरण उनकी कार्यपालिका की बनावट के अनुसार भी किया जाता है। जब कार्यकारी सत्ता पूर्णरूप से एक व्यक्ति को सौंप दी जाती है जो किसी को उत्तरदायी नहीं होता तो वह स्वेच्छाचारी सरकार कहलाती है। इस श्रेणी में अफगानिस्तान का अनियन्त्रित राजतन्त्र गिना जा सकता है। जहां

कार्यकारी सत्ता जनता से निर्वाचित एक व्यक्ति को सुपुर्द रहती है और वह व्यक्ति निश्चित समय के लिये उस सत्ता का अधिकारी रहता है वहां अध्यक्षात्मक (Presidential) प्रजातन्त्र सरकार कहलाती है। ऐसी सरकार संयुक्त राज्य अमरीका की है। अमरीका का राष्ट्रपति अकेला कार्यकारी सत्ताधिपति है, पर वह संविधान द्वारा नियन्त्रित है। वह अपनी शक्ति का उपयोग विधान का उल्लंघन करके नहीं कर सकता। इंगलैण्ड, फ्रांस आदि में कार्यपालिका मन्त्रि-परिषद् कहलाती है। इसमें कई व्यक्ति रहते हैं जो सामूहिक रूप से प्रायः प्रथम सदन को उत्तरदायी रहते हैं। प्रथम सदन उनको जब चाहे उनके पद से हटा सकती है। ऐसी कार्यपालिका वाली सरकार को संसदात्मक या पार्लियामेण्टरी प्रणाली वाली या मन्त्रिपरिषद् वाली सरकार कहते हैं। जब तक कार्यपालिका प्रथम सदन की विश्वासपात्र बनी रहती है तभी तक वह पदासीन रहती है।

मन्त्रिपरिषद् प्रणाली के सिद्धान्त—प्रजातन्त्र को प्रचलित करने में जो ग्रेट ब्रिटैन ने सबसे महत्वपूर्ण योग दिया है वह मन्त्रिपरिषद् प्रणाली का विकास है। मन्त्रिपरिषद् या पार्लियामेण्टरी प्रणाली का कैसे आरम्भ हुआ और किस प्रकार उसका धीरे-धीरे विकास हुआ इसका विवेचन इस पुस्तक में आगे किया गया है। इस प्रणाली के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार इसका कार्य होता है। नाम के लिये कार्यपालिका सत्ता का स्वामी इंगलैण्ड में अब भी राजा ही है पर वास्तव में सारी शक्ति मन्त्रिपरिषद् के ही हाथ में रहती है और वही उसको काम में लाती है। इस प्रणाली के कतिपय सिद्धान्त ये हैं—पहिला, विधान मण्डल में निश्चित राजनैतिक दल होने चाहियें और मन्त्रिपरिषद् बनाने का अधिकार उस दल को होना चाहिये जिसका विधान मण्डल में अपना बहुमत हो या बहुमत पर प्रभाव हो। दूसरे कार्यपालिका शक्ति एक छोटे से मन्त्रिमण्डल में निहित होनी चाहिये जो प्रथम सदन को उत्तरदायी हो, चाहे उनमें से कुछ दूसरे सदन के सदस्य ही क्यों न हों।

मन्त्रिपरिषद् शासन नीति को निर्धारित करती और विधान मण्डल के सम्मुख उस नीति को कार्यान्वित करने के लिये कार्यक्रम उपस्थित करती है। मन्त्रिपरिषद् विधान मण्डल को बतलाने का काम करती है कि मंण्डल सुशासन के लिये कौन से और किस तरह के निर्बन्ध बनावे। विधि-विधान बनाने के सम्बन्ध में वह मण्डल की निर्देशक रहती है और उसी दिशा में उसे परिचालित करती रहती है, पर उसे आय-व्यय आदि के सम्बन्ध में मण्डल की स्वीकृति लेनी पड़ती है। मन्त्रिमण्डल एक बड़ा संगठन होता है जिसमें मन्त्रिपरिषद् एक छोटी

सी समिति के समान है। मन्त्रिमण्डल में वे सब मन्त्री, पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी, व दूसरे पदाधिकारी होते हैं जो मन्त्रिपरिषद् के त्यागपत्र देने पर अपने सब पदों का त्याग कर देते हैं। परिषद् में प्रधानमन्त्री ही प्रमुख व्यक्ति होता है, परिषद् उसी की बनाई हुई होती है और वही उसी परिषद् की शासन नीति की रूप रेखा निश्चित करता है। कौन-कौन से शासन विभाग किस-किस मन्त्री को मिलेंगे, यह वही निर्णय करता है। यदि कोई मन्त्री पदत्याग करता है तो वह अपना त्याग-पत्र प्रधानमन्त्री को देता है, पर उसके ऐसा पदत्याग करने पर सारे मन्त्रिमण्डल को पदत्याग किये हुये समझा जाता है। प्रधानमन्त्री ही प्रथम सदन का नेतृत्व करता है और अपनी मन्त्रिपरिषद् पर लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उसकी नीति का समर्थन करता है।

इस प्रणाली का तीसरा सिद्धान्त यह है कि मन्त्रिपरिषद् अपने पद पर उस समय तक आसीन रहती है जब तक वह प्रथम सदन की विश्वासपात्र बनी रहती है। जैसे ही प्रथम सदन का इस पर से विश्वास उठ जाता है, वह पदत्याग कर देती है। यह अविश्वास या तो अविश्वास के प्रस्ताव के पास होने से प्रकट हो सकता है या तब जब कि प्रथम सदन मन्त्रिपरिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी महत्वपूर्ण योजना को अस्वीकृत कर दे अथवा मन्त्रिपरिषद् द्वारा किये हुये किसी कार्य की निन्दा करे और उससे अपनी असहमति प्रकट करे। यदि ऐसा किये जाने पर मन्त्रिपरिषद् यह निर्णय करती है कि उसकी नीति ठीक है और प्रथम सदन का मत गलत है और जनता उसकी नीति का ही समर्थन करेगी न कि प्रथम सदन के मत का, तो उसे यह स्वतन्त्रता रहती है कि वह प्रथम सदन के विघटन कराने का प्रयत्न करे और विघटन हो जाने के पश्चात् जनता से अपनी नीति के समर्थन की प्रार्थना करते हुये नये निर्वाचन में भाग ले। यदि इस मन्त्रिपरिषद् के दल के लोग ही अधिकांश प्रथम सदन के सदस्य चुन लिये जायें तब तो वह परिषद् पदासीन बनी रहती है वरना पदत्याग कर देती है विरोधी पक्ष नई परिषद् बना कर सरकार की बागडोर अपने हाथ में लेता है। पार्लियामेण्टरी प्रणाली की यह पद्धति इसकी आत्मा है।

चौथा सिद्धान्त यह है कि मन्त्रिमण्डल के सब सदस्य उस पक्ष के होने चाहियें जिसका प्रथम सदन में बहुमत है और जिस पक्ष को राज्यतन्त्र का भार सौंपा गया हो। ऐसा करने से शासन नीति में एकरूपता रहती है, भिन्न-भिन्न बह पक्षों की नीति में खिचड़ी नहीं बनाती और न शासन कार्यों में खींचातानी का अवसर रहता है। परन्तु यदि प्रथम सदन में दो से अधिक राजनीतिक पक्ष

है और उनमें किसी का भी बहुमत न हो तो सबसे प्रभावशाली पक्ष के नेता से मन्त्रिमण्डल बनाने को कहा जाता है। वह मन्त्रिमण्डल में या तो अपने ही पक्ष के लोगों को रखे और इस आशा में शासन-भार अपने ऊपर ले ले कि दूसरे पक्ष उससे सहयोग करेंगे या वह दूसरे पक्षों में से भी कुछ व्यक्तियों को अपने मन्त्रिमण्डल में रख ले जिससे वे पक्ष उसका समर्थन करते रहें। ऐसी मन्त्रि-परिषद् मिली जुली परिषद् (Coalition cabinet) कहलाती है। मिली जुली परिषद् की शासन नीति उन कई राजनीतिक पक्षों के सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से निर्धारित होती हैं जिनके सहयोग से मंत्रिपरिषद् बनती है। इसलिये परिषद् के सदस्यों में वह घनिष्ठता और एकाग्रता नहीं रहती जो समान सिद्धांतों पर चलने वाले एक आदर्श की प्राप्ति का यत्न करने वाले संगठन में हुआ करती है। फलतः ऐसी परिषद् बहुत दिनों तक नहीं टिकती और जब तक यह रहती है उसकी नीति में दृढ़ता नहीं आने पाती।

संसदात्मक या पार्लियामेण्टरी राजतन्त्र प्रणाली के गुण—जिस राजतन्त्र की प्रणाली का हमने ऊपर वर्णन किया है उसमें कई अच्छाइयां हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रणाली में विभिन्न पृथक् पृथक् राजनैतिक पक्षों का होना आवश्यक है। इन पक्षों का अपना अपना कार्यक्रम होता है जिसे वे राज्यशक्ति को अपने अधिकार में कर पूरा करने की घोषणा किया करते हैं। इस कार्यक्रम को वे जनता के सामने रखते हैं और यह आशा करते हैं कि जनता उनके कार्यक्रम से सहमत होगी तो उन्हें प्रथम सदन के लिये चुनेगी। यदि वे बहुमत प्राप्त करने में सफल होते हैं तो शासन सत्ता संभालने और अपने कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देते हैं। राजनीतिक पक्षों के आधार पर निर्वाचन होने से साधारण जनता को बहुत सी राजनीति सम्बन्धी बातों की जानकारी हो जाती है। इससे राजकीय जीवन में उनकी रुचि बढ़ती है। वे अपने अधिकारों व कर्तव्यों को अच्छी तरह समझने लगते हैं और उन्हीं के अनुसार अपने जीवन व्यापार की रूप-रेखा बना लेने में प्रयत्नशील होते हैं। दूसरे इस प्रकार निर्वाचन होने से अपनाई जाने वाली शासन नीति का रूप अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाता है और सब को उसके विषय में जानकारी हो जाती है। जो समाज के योग क्षेम के लिये बड़ी महत्वपूर्ण बात है। शासन-सत्ता को भी नीति व आदर्श के लिये इधर उधर भटकना नहीं पड़ता। उसके सामने निश्चित ध्येय व आदर्श रहता है जिस पर पहुँचने के लिये जनता ने उसे उदासीन किया है। तीसरे इस प्रणाली में शासन नीति के गुण-दोष की चर्चा भली भाँति होती है। विरोधी पक्ष हमेशा सरकार के

कामों में दोष निकालने को प्रयत्नशील रहता है और उसकी दृष्टि से कोई भी ऐसी बात नहीं छिप सकती जो जनता के हित के विरुद्ध हो। सरकार, छिद्रान्वेषी विरोधी पक्ष की आलोचना और दोष-प्रकाशन से भयभीत बनी रहती है जिससे वह स्वेच्छाचारी नहीं हो पाती। यह विरोधी पक्ष पदासीन व्यक्तियों को सदा उन प्रतिज्ञाओं की याद दिलाता रहता है जिनके आधार पर उनको बहुमत मिला है और सरकार की शक्ति उनके हाथ सौंपी गई है। चौथे, विरोधी पक्ष ऐसे कानून बनाने से रोकता है जिन पर अच्छी तरह विचार नहीं हुआ है व जिनमें दूसरे शीघ्रता-दोष रहते हैं। वह केवल धारा सभा में ही विधेयक (Bill) की आलोचना नहीं करता किन्तु बाहर भी व्याख्यानों द्वारा व समाचार पत्रों द्वारा उसके गुण दोषों पर विचार करने के लिये जनता के सामने बहुत सी सामग्री उपस्थित करता रहता है।

राजनीतिक पक्ष प्रणाली और प्रजातन्त्र राज्य—संसदात्मक प्रजातन्त्र को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजनीतिक पक्ष-प्रणाली एक महत्वपूर्ण काम करती है। जहां अध्यक्षात्मक कार्यपालिका बनाने की प्रथा है या ऐसी दूसरी प्रकार की कोई और कार्यपालिका बनाने की रीति है जो अपने पद से अवधि से पूर्व नहीं हटाई जा सकती, पर जहां यदि प्रजातन्त्रात्मक राज-संस्थायें हैं तो वहां भी यह पक्ष प्रणाली कम लाभदायक नहीं है। ब्राइस के कथनानुसार राज-नीतिक पक्ष के अस्तित्व का प्रकट कारण तो यही है कि वह किन्हीं सिद्धान्तों व किसी विचारशैली का प्रसार करे पर इन सूक्ष्म सिद्धान्तों के साथ ही साथ व्यवहार में वह व्यक्तियों को भी उचित महत्व देता है। इसका संचालन सहानु-भूति, अनुकरण, स्पर्द्धा और कलहप्रियता आदि मानव गुण दोषों के सहारे चलता है, यह नहीं कि सर्वदा उच्चादर्शों से ही उसकी प्रत्येक क्रिया प्रेरित होती हो, पक्ष के सदस्य आपस के प्रेम और ध्येय की समानता के बन्धन से बंधे रहते हैं। यह बन्धन पक्ष के अनुशासन-सम्बन्धी नियमों से दृढ़ बना रहता है। इनको अपने विरोधियों को सार्वजनिक जीवन में नीचा दिखाने के हेतु विभिन्न उपाय ढूंढ़ने में एक निराली प्रसन्नता का सुख मिलता है।

पक्ष प्रणाली में राजनैतिक सिद्धान्तों और मतों का प्रकटीकरण होकर उनका निश्चित रूप व आकार स्थिर हो जाता है जिससे जनता को तत्कालीन राजकीय जीवन की आवश्यकताओं की जानकारी हो जाती है। प्रायः साधारण जनता सार्वजनिक विषयों के प्रति उदासीन रहती है और लोग अपने स्वार्थ की परिधि के बाहर विषयों पर बहुत कम ध्यान देते या उन पर मनन करते हैं।

इसलिए यदि राजनैतिक पक्ष उन विषयों पर सतत प्रकाश न डालते रहें तो लोकमत बड़ा अस्पष्ट और बेकार सिद्ध हो। अनेकों मतदाताओं के मस्तिष्क के भीतर जो अव्यवस्थित व अस्पष्ट विचार घूमते रहते हैं पक्ष-प्रणाली उनको ठीक ढंग से एकत्रित कर उन्हें स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप देनें में सहायता करती है, अद्यपि प्रत्येक पक्ष अपने अनुकूल दृष्टिकोण को ही उपस्थित करता है और विरोधी पक्ष की अच्छाइयों को छिपाने का प्रयत्न करता है, तब भी सब पक्षों की बातें सुनने से जनता को वास्तविकता का ज्ञान हो ही जाता है।

किसी राज्य में राजनैतिक पक्षों का बनना-बिगड़ना उस देश की परम्परा, विवेचन रीतिरिवाजों व राजनैतिक समस्याओं के ऊपर निर्भर रहता है। इनका वर्णन उपर्युक्त स्थान पर इस पुस्तक में आगे चल कर किया जायेगा।

राज्य में सिविल सर्विस—यदि राजनैतिक पक्ष कार्यपालिका की गलतियों को सुधारने का प्रयत्न करते हैं और सरकार को अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रखते हैं तो सिविल सर्विस पदासीन पक्ष के सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणित कर शासन करती है। सिवल सर्विस (Civil Service) में भिन्न भिन्न श्रेणियों के अनेक शासनाधिकारी होते हैं। वे स्थायीरूप से अपने पदों पर आरूढ़ रहते हैं। इन पदाधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पद के लिए योग्य हों और सरकार की आज्ञानुसार व पदासीन पक्ष के सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर शासन चलायेंगे। ये अधिकारी भी कार्यपालिका के अंग ही होते हैं। मन्त्रिपरिषद् और इनमें केवल यही अन्तर रहता है कि ये मन्त्रिपरिषद् के पदत्याग करने पर अपने पद का त्याग नहीं करते। कोई भी पक्ष पदासीन हो या पदच्युत हो ये अपने स्थानों पर बने रहते हैं। इनका काम यही है कि पदासीन पक्ष की शासन-नीति की आलोचना न कर उसको क्रियात्मक रूप दें इसके लिये उन्हें प्रशासन में कुशल होने की आवश्यकता रहती है, शासन-नीति या राजनीति निर्धारित करने का भार उनके ऊपर नहीं रहता। ये शासनाधिकारी सरकार की भुजायें हैं, वे स्थायी राजकर्मचारी हैं, और प्रकट रूप से वे ही शासन करते हैं। इसलिये शासन की अच्छाई या बुराई उनके आचार व योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। चाहे सरकार की नीति ऐसी हो कि उसको जनता के हितों की रक्षा और वृद्धि ही दृष्ट हो पर यदि शासन-अधिकारी उस नीति में अनुराग रखते हुये उसका भलीं भांति संचालन न करें तो अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती।

राज्य का तीसरा अंग न्यायपालिका—जैसे ही मनुष्य समाज में संगठित हुये होंगे, आपस के झगड़े व राज्य और व्यक्तियों के झगड़ों को निबटाने की

आवश्यकता पड़ी होगी। राज्य के लिये भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ होगा कि झगड़ों के निबटाने के लिये क्या व्यवस्था की जाय। राज्य नियन्त्रण केवल इसी बात से पूरा नहीं हो सकता कि कानून बना दिये जायं और शासनाधिकारी शासन करने के लिये नियुक्त कर दिये जायें। इसकी भी आवश्यकता पड़ती है कि यह देख भाल रखी जाय कि कानून लागू किये जायें, कानूनों के तोड़ने वालों को उचित दण्ड दिया जाय और अधिकारों के प्राप्त करने व कर्तव्यों के पालन करने में नागरिकों के साथ न्याय बरता जाय। इस देख भाल के लिये ही सरकार के न्यायपालिका अंग की स्थापना की जाती है।

न्यायपालिका सत्ता के कार्य-सिद्धान्त—न्यायपालिका के अंगों की बानवट, कर्तव्य और उसके सिद्धान्त या तो विधानमण्डल और कार्यपालिका मिल कर निश्चित कर देते हैं या इन सब का संविधान में ही उल्लेख कर दिया जाता है। पर कुछ ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में विधानमण्डल के क्रिया रूप होने में लागू किये जाते हैं। विधानमण्डल सत्ता का प्रमुख कर्तव्य न्याय करना है, इसलिये निरपेक्षित रहना इसका सर्वप्रथम सिद्धान्त है। पक्षपात शून्य तभी रहना सम्भव है जब न्यायाधिश को किसी प्रकार का न भय हो न प्रलोभन। पक्षपात-शून्यता स्थापित करने के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है। पहली आवश्यकता यह है कि न्यायाधीश अपने पदों पर पूर्णरूप से सुरक्षित हों। यदि अपने पद पर आसीन रहने के लिये उन्हें दूसरों का मुंह देखना पड़े और उनसे भयभीत रहना पड़े तो वे पक्षपात रहित होकर न्याय नहीं कर सकते। वे तभी न्याय के पलड़ों को बराबर रख सकते हैं जब उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो कि उनका निर्णय चाहे किसी भी ऊंचे से ऊंचे पदाधिकारी सत्ता को क्यों न बुरा लगे वह उनको उनके पद से हटा नहीं सकते। इसलिये पद का स्थायित्व और कार्यकारी सत्ता के तन्त्र से उसका परे होना आवश्यक है। जब तक न्यायाधीश के काम में हस्तक्षेप करने से कार्यपालिका को बिल्कुल रोक न दिया जाय तब तक न्यायाधीशों के मन से यह भय पूर्णतया नहीं निकल सकता कि वे अपना काम यदि पक्षपातरहित हो कर करेंगे तो उनकी हानि हो सकती है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये जिससे वे प्रलोभन में फंसने से बचे रह सकें। जहां न्यायाधीश वर्ग रिश्वतखोर व भ्रष्टाचारी होता है वहां निश्चय ही न्याय की आशा करना व्यर्थ है। रुपया मन को मोह लेता है और न्यायाधीश मानव होने के नाते इस दुर्बलता से बचे नहीं रह सकते। फिर भी भ्रष्टाचार की सम्भावना कम कर दी जा सकती है यदि उनको समुचित पारिश्रमिक दिया जाय जिससे वे जल्दी ही प्रलोभन के वश में न आ जायें। दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि न्यायाधीश कानून के ज्ञाता हों। इसके लिये यह आयोजन कर दिया

जाता है कि विशेष कानूनी योग्यता वाले शिक्षित व्यक्ति ही न्यायाधीश बनाये जाते हैं। तीसरी बात यह है कि न्यायालय हर एक व्यक्ति के लिये समान रूप से खुले रहें। वहां हर एक को अपनी पुकार करने का अधिकार होना चाहिये। कोई भी व्यक्ति, चाहे उसकी कोई भी जाति, वर्ण, संप्रदाय या धर्म हो, न्यायाधीश के सम्मुख अपना मुकदमा पेश करने के लिये स्वतन्त्र होना चाहिये। धनी और निर्धन सब ही को न्यायालय में न्याय के लिये प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि छोटे बड़े न्यायालय स्थापित किये जायें, न्यायशुल्क की मात्रा थोड़ी हो और निर्धन व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता देने का राज्य द्वारा प्रवंध रखा जाय। यदि न्यायशुल्क की मात्रा बहुत अधिक रखी जाती है तो गरीब आदमी न्यायालयों का उपभोग करने से वंचित रह जाता है और उसकी व्यथा के दूर होने का रास्ता ही बन्द हो जाता है। फलस्वरूप धनी आदमियों से गरीबों के मन में डर बैठ जाता है, क्योंकि वे अपने धन के बल पर दुर्बल निर्धनी व्यक्तियों पर अत्याचार करेंगे और न्याय को अपने रुपयों की थैली से अपनी ओर झुका लिया करेंगे। न्यायालयों की कई छोटी-बड़ी श्रेणी होना आवश्यक हैं। सब के ऊपर एक उच्चतम न्यायालय हो जिसमें मुकदमे की अन्तिम सुनवाई हो। यदि कोई व्यक्ति छोटी अदालत के निर्णय से असन्तुष्ट रहे तो उसे उस निर्णय के विरुद्ध उस पर पुनर्विचार करने के लिये ऊपर वाले न्यायालय से प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये क्योंकि न्यायाधीश कितने ही योग्य व्यक्ति क्यों न हों, उनका निर्णय निर्दोष नहीं होता।

नागरिकों के स्वत्वों की रक्षा भी न्यायकारी सत्ता के हाथ में रहती है। न्यायाधीश निषेधाज्ञा द्वारा राज्य को किसी काम के करने से रोक सकता है या कोई काम करा सकता है, जिसके करने या न करने से नागरिकों के अधिकारों पर राज्य का आक्रमण होता हो या उन अधिकारों की प्राप्ति न होती हो। कानून तो केवल विधान कर देता है कि क्या अधिकार नागरिकों को मिलना चाहिये। इनको उपलब्ध करा देना न्यायाधीशों का काम है। शासन विधान में नागरिक के अधिकारों का कितना ही विस्तृत और स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय, वहां वाक्स्वातन्त्र्य, धर्म स्वातन्त्र्य आदि पर कितना ही जोर दिया गया हो, पर जब तक न्यायकारी सत्ता नागरिकों को उनका भोग करने में सहायता न दे तब तक वे केवल कोरी कल्पना ही रह जाते हैं। सुसंगठित न्यायपालिका द्वारा ही शरीर और धन की रक्षा का अधिकार, मतदान का अधिकार व दूसरे ऐसे ही अधिकारों की रक्षा होती है। जो राज्य अपने नागरिकों के उन स्वत्वों की रक्षा नहीं करता वह सभ्य कहलाने योग्य नहीं है। प्लूटार्क ने कहा था कि "राजा को

और कोई गुण उतना शोभित नहीं करता जितना उसकी न्यायप्रियता...न्याय ही संसार का सच्चा सम्राट है।"

इसलिये जिस न्यायपालिका में सदाचारी न्यायाधीश हों, जो न भय से, न लोभ से विचलित होते हों, व जिन पर शासनाधिकारियों की अप्रसन्नता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो, वे अपने निर्णयों से स्वतन्त्रता का ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें नागरिक प्रसन्नतापूर्वक निर्भीक होकर अपना काम कर सकते हैं। आधुनिक संविधानों में ऐसी न्यायपालिका की स्थापना के लिये आयोजन रहता है जिससे अतिव्यय न कराकर शीघ्रतापूर्वक न्याय निर्णय की सुविधा प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हो। इसमें संदेह नहीं कि विभिन्न देशों की न्याय पद्धति एक दूसरे से भिन्न है पर यह भिन्नता केवल छोटी-छोटी बातों में ही है। उनके अतिरिक्त वे सब समान सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, संघ शासन में न्यायपालिका को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

राज्य के कर्तव्य—राज्य पहले-पहल यदि संरक्षण के लिये उदय हुआ तो पोषण के लिये वह जीवित रहता है। इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिये उसके सामने कुछ ध्येय होते हैं जिन पर पहुंचने के लिये उसे कितने ही कामों को करना पड़ता है। राज्य के क्या उद्देश्य होने चाहियें और किन कर्तव्यों को इसे पूरा करना चाहिये, ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर युग-युग में राजशास्त्रियों ने देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, परम्परा आवश्यकता और राज्य से भविष्य में किस आदर्श की आशा करते थे, इन सब बातों को ध्यान में रख कर इन प्रश्नों का उत्तर दिया। इन उत्तरों के ही द्वारा राजनीति-विचारकों ने राज्य के घटना चक्र में बड़ी हेर फेर कर दी और उसके द्वारा राज्यनीति और शासन-नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिये रास्ता साफ कर दिया। इसी से यह समझ में आता है कि भिन्न-भिन्न देशों में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना भिन्न क्यों है। कारण यह है कि राज्यों की उत्पत्ति व परम्परा एक दूसरे से भिन्न और निराली रही है। परिस्थितियों ने उनको विशेष ढांचे में ढाला, आवश्यकता व स्वार्थ के वश में होकर और कहीं कहीं व्यक्ति विशेषों की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने पृथक्-पृथक् मार्गों का अनुसरण किया है। राज्य के आदर्श और कर्तव्यों से हमें व्यवहृत सिद्धान्तों और भविष्य की आकांक्षाओं का परिचय मिल जाता है। सरकार के कर्तव्यों की रूप-रेखा जानने के लिये हमें यह मालूम करना चाहिये कि सरकार का रूप क्या है, और सरकार का रूप इस बात से निर्णीत होता है कि हम आदर्श सरकार का कैसा चित्र अपने सामने खींचे हुये हैं।

राज्य के कर्तव्यों का वर्गीकरण—सरकार के अनेक कर्तव्य हैं और

उनकी अनेकता बढ़ती जाती है। उनका अध्ययन करने के लिये उनका वर्गीकरण आवश्यक है। यह वर्गीकरण उनके रूप व विस्तार के अनुसार किया जाता है। कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जिनका करना प्रत्येक राज्य के लिए अपरिहार्य है। उनके किये बिना कोई भी राज्य राज्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता। आचार्य विल्सन ने सरकार के कर्तव्यों को दो विभागों में बांटा था, अनिवार्य और वैकल्पिक (Optional), व्यवधानिक (Constituent) या सामाजिक (Ministrant)। अनिवार्य कर्तव्यों में जीवन रक्षा, स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रक्षा व दूसरे वे सब कर्तव्य गिने जाते हैं जो सामाजिक संगठन के लिये आवश्यक हैं। ये कर्तव्य इतने अपरिहार्य हैं कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य का कट्टरसे कट्टर सिद्धान्ती भी राज्य को इन्हें करने से मना नहीं कर सकता। राजा का सब से प्रथम धर्म तो संरक्षण है और उसके लिये शान्ति और सुव्यवस्था रखने का काम सर्वप्रथम है, इस कर्तव्य के अन्तर्गत आनुषङ्गिक दूसरे कर्तव्य हैं जैसे पिता-पुत्र व पति-पत्नी के कानूनी सम्बन्ध स्थिर करना, धन सम्पत्ति के स्वामित्व उसके क्रय-विक्रय, वसीयत करने आदि के नियम बनाना, ऋण व अपराध का स्वरूप निश्चय करना अर्थात् उनके लिये उचित दण्ड का विधान करना, नागरिकों के आपस के ठेकों को कार्यान्वित कराना व उनके पारस्परिक झगड़ों को निबटाना, राजनीतिक अधिकारों व कर्तव्यों को निश्चित रूप देना और विदेशी राज्यों से आदान-प्रदान की व्यवस्था करना, आदि।

वैकल्पिक या सामाजिक कर्तव्यों में निम्नलिखित कर्तव्यों की गिनती की जाती है; व्यापार व उद्योग का नियमन, जिससे नाप तोल व मुद्रा आदि की देखभाल की जाती है, श्रमजीवियों के पारिश्रमिक, काम करने के घण्टे व काम करने की सुविधाओं के सम्बन्ध में नियमन करना, यातायात के मार्ग जैसे रेल, सड़कें, हवाई अड्डे, तार डाकघर, टेलीफोन आदि का प्रबन्ध करना, शिक्षा, अनाथों व निर्धनों की देखभाल, कृषि, उद्योग आदि की उन्नति, इत्यादि।

राज्य के कर्तव्यों की प्राचीन कल्पना—पुराने समय में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना इतनी संकुचित थी कि राज्य का रूप एक बड़ी पुलिस संस्था से उच्चतर न था। उस समय संरक्षण ही राजा का कर्तव्य समझा जाता था। उसके कर्तव्य निषेधात्मक होते थे जैसे अत्याचार, चोरी, दंगा फिसाद आदि को रोकना। उस कल्पना में समय के प्रवाह से अनेक परिवर्तन हुये हैं और आज कल इसका बिलकुल नया रूप ही हो गया है।

सरकार के कर्तव्यों की आधुनिक कल्पना—निषेधात्मक कर्तव्यों के अतिरिक्त आधुनिक सरकार समाज के पोषक काम भी करने लगी है। अब

राज्य में व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अधिकार भी मान्य होने लगे हैं जिनकी प्राप्ति व रक्षा का उचित प्रबन्ध करना सरकार का कर्तव्य समझा जाता है। औद्योगिक क्रान्ति ने राज्य के कर्तव्यों में बहुत हेर-फेर कर दी है। मशीन-युग में ऐसा होना अवश्यम्भावी था। भौतिक विज्ञान की उन्नति से राष्ट्रों में निकट सम्बन्ध स्थापित होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कल्पना बराबर व्यापक होती जा रही है। अब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अधिकाधिक अन्योन्याश्रयी होता जा रहा है। इसलिये सरकार के कर्तव्यों की अनेकता व व्याप्ति भी बढ़ती जा रही है। व्यक्तिवादियों के इस कथन का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है कि सरकार वही उत्तम है जो कम से कम शासन करती है। इस के विपरीत अब यह भावना दृढ़ होती जा रही है कि सरकार को अधिक से अधिक नियंत्रण करना चाहिये। अब सरकारें नागरिक जीवन की छोटी-छोटी बातों में भी हस्तक्षेप करने लगी हैं, यहां तक कि वे यह भी निश्चित करती हैं कि नागरिक क्या पढ़े, क्या लिखे, क्या खायें, किस वृत्ति को अपनाये, किस प्रकार विवाह करे और किस प्रकार इस सम्बन्ध को तोड़े। सबसे अधिक हस्तक्षेप सरकार आर्थिक क्षेत्र में करने लगी है। एक ओर पूंजीवादी राष्ट्रों में सरकार अनेकों प्रकार से व्यक्तियों को बहुत उद्योगों को स्थापित करने में प्रोत्साहन देती है दूसरी ओर समाजवादी राष्ट्रों में इस बात का खुला प्रयत्न किया जा रहा है कि सब उत्पादक उद्योग सरकार के स्वामित्व में आ जावें अर्थात् सब उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे जिससे व्यक्तियों को आर्थिक संगठन को स्वार्थ-वश बिगाड़ने की कम से कम स्वतन्त्रता रह जाये। अमरीका जैसे व्यक्तिवादी राष्ट्र में उहां संघ सरकार की शक्ति विधान से मर्यादित है रूज़वैल्ट के समय में नेशनल रिकवरी ऐक्ट (National Recovery Act) आदि जो तत्कालीन आर्थिक संकट को मिटाने के लिये पास किये गये उनका उद्देश्य राष्ट्र द्वारा छोटे आदमी को सहायता देना ही था। इससे स्पष्ट है कि संसार की स्थिति ही ऐसी होती जा रही है कि समाजवाद के सिद्धान्तों के अपनाये बिना कुशल दिखाई नहीं देती।

आधुनिक सरकारें प्रतिदिन ऐसे नियम बनाती जा रही हैं जिनसे कर्तव्यों की परिधि बराबर विस्तृत होती जा रही है और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का दायरा कम होता जा रहा है। ऐसा करना मनुष्य को सुखी बनाने के लिये आवश्यक होता जा रहा है। सरकार की बढ़ती हुई शक्ति आर्थिक क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है, क्योंकि उसका हर समय व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जर्मनी, इटली व रूस में सरकारें व्यक्ति के जीवन पर सब से अधिक नियन्त्रण करती थीं। पर अब इंगलैण्ड जैसे जनतंत्रात्मक देश में भी

समाजवादी सरकार की स्थापना हो गई है जो व्यक्ति के आर्थिक जीवन को सामूहिक रूप देती जा रही है। इससे प्रकट है कि सरकार के कर्तव्यों का प्रवाह निश्चय ही प्राचीन समय से चले आने वाले सिद्धान्तों के विरुद्ध, समाजवादी दिशा की ओर होने लगा है। अब जीवन यात्रा का कोई ऐसा मार्ग नहीं जो राष्ट्र के नियंत्रण से परे समझा जाता हो। संसार की जैसी वर्तमान स्थिति है, जहाँ भावनाओं व विचारों का संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है वहां बरबस सब राष्ट्रों में एक ही दिशा की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती जा रही है। जन-तन्त्रात्मक राष्ट्रों में राज्य नागरिकों के जीवन पर अधिकाधिक नियंत्रण करता जा रहा है। राज्य के कर्तव्यों की सीमा बांधना असम्भव है।

पाठ्य पुस्तकें

इस अध्याय में जिन विषयों पर विचार किया गया है उसके अध्ययन के लिये वृहत् साहित्य उपलब्ध है। प्रत्येक राजशास्त्री और लेखक ने कुछ न कुछ इन विषयों पर अवश्य लिखा है। हाल ही में इस प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में तैयार हुआ है। यद्यपि पाठकों को किसी भी राजनीति की पुस्तक से पर्याप्त पठन सामग्री मिल सकती है पर फिर भी निम्नलिखित पुस्तकें इस अध्ययन के लिये विशेष उपयुक्त होंगी।

Bryce, Viscount:—Modern Democracies, Vol. I.
Burns, C. D.—Political Ideals.
Coker, F. W.—Recent Political Thought.
Cole, G. D. H., and M. I.—Modern Politics, Books V & VI.
Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government, Vol. I, Chs. I, III, VII, XI, XII, XVI and XVI.
Laski, H. J.—A Grammar of Politics.
Laski, H. J.—Liberty in the Modern State.
Laski, H. J.—Introduction to Politics.
Michels, R.—Political Parties.
Seelcy, J. R.—Introduction to Political Science.
Wilson, W.—The State.

अध्याय ४

इंगलैंड की सरकार

अंगरेज़ी शासन-विधान का विकास

"ब्रिटिश साम्राज्य एक नियंत्रित राजसत्ता द्वारा एक बन्धन में बंधा हुआ है। यह राजसत्ता वही प्राचीन नियन्त्रित राजसत्ता है जिसका गठवन्धन पहिले स्काटलैण्ड की राजसत्ता से होकर संवर्द्धन हुआ जिसमें समुद्र पार दूसरे राष्ट्र भी आकर सम्मिलित होगये। इसका वर्तमान वैधानिक स्वरूप किसी एक घटना या आन्दोलन से उत्पन्न न होकर एक ऐसे क्रमिक विकास से हुआ है जो उतना ही प्राचीन है जितनी कि प्राचीन नोर्मन (Norman) जाति की विजय। स्यात् हमें अपनी दृष्टि हटा कर भी पहले उन सैक्सन राजाओं पर लगानी पड़ेगी जिनके आधिपत्य में इंगलैंड के राजा और उसके प्रदेशों का जन्म हुआ। विशेषतया हमारी दृष्टि एलफ्रेड पर जाकर जमती है जो हमारे राजाओं में सब से महान् था, जिसका जीवन व चरित्र अंगरेज़ी संविधान का जीता जागता रूप था।"

(जी एम. ट्रेविल्यान)

इंगलैंड में एंग्लो-सेक्सन जाति—लगभग पांचवीं शताब्दी में पिक्ट् और स्कौट लोगों से ब्रिटेन के लोगों की रक्षा करने के हेतु जो एंग्ल, सेक्सन और जूट लोग आये वे ब्रिटेन में बस गये थे। इन नवागन्तुकों ने ब्रिटेन की संस्थाओं का आकार व व्यवहार में बड़ा परिवर्तन किया। ये संस्थायें कैल्ट और रोमन संस्कृतियों के एक निराले संम्मिश्रण से बनी थीं। इन नयी जातियों के आने के बाद कई छोटे-छोटे राज्य बस गये जिनमें पारस्परिक संगठन सुदृढ़ था। कोई राज्य कभी एक राज्य से मिल जाता था कभी दूसरे से। इसके पश्चात् तुरंत ही एक ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसमें थैग्नस् (Thegns) नामक एक शूर जाति का उत्थान हुआ। इस जाति के लोगों में जागीरें बंटी हुई थीं और वे लोग इस शर्त पर इन जागीरों का उपभोग करते थे कि युद्ध के समय वे राजा को सेना व धन से सहायता करेंगे।

ब्रिटेन में ईसाई धर्म—छठी शताब्दी में जब ब्रिटेन के रहने वालों ने ईसाई धर्म अपना लिया तो वहां एक नई सभ्यता का आरम्भ हुआ जिससे वहाँ

की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म जो विश्वैकता के आधार पर प्रचलित था, इन लोगों को यूरोपियन राजकीय समाज के निकट ले आया और वे अपनी राजकीय सभाओं का धार्मिक संघों के अनुरूप संगठन व संचालन करने लगे। "आरम्भ से ही राज्य व धर्म का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और यद्यपि वहां का धर्मसंघ रोम के पादरी का प्रभुत्व मानता था पर उसका निजी राष्ट्रीय ढंग पर विकास हुआ।"* [illegible] जब ब्रिटेन में सात आंग्ल व सैक्सन राज्य साथ साथ स्थित थे [illegible] छोटे-छोटे राजा राज्य करते थे। इन सातों राजाओं में, वैसेक्स, मर्शियो और नॉर्थम्ब्रिया के राजा सबसे अधिक प्रबल थे। वैसेक्स के राजा ऐग्बर्ट (Egbert) ने दूसरे राज्यों को अपने आधीन कर उन पर अपना आधिपत्य जमा लिया और अपने को "पश्चिमी सेक्सनों का राजा" कहने लगा। जिस ईसाई धर्म की प्रेरणा से अलग अलग राज्यों में लोग संगठित थे और एक केन्द्रीय शक्ति अर्थात राजा को माने हुये थे, उसने राष्ट्रीय भावना के उगने में योग नहीं दिया। यह राष्ट्रीय एकता की भावना तभी जाग्रत हुई जब कि विधर्मियों के आक्रमण के भय से उन्हें एक साथ मिलकर रहने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अंगरेज जाति की एकता का श्रेय उत्तर से होने वाले डेन लोगों के आक्रमण को है। वह आक्रमण लगभग ७९३ ई० से प्रारम्भ हुआ और पचास वर्ष के भीतर ही यह एक भारी समस्या हो गयी। पर अंगरेजों के लिये यह एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इसके कारण तत्कालीन राज्य मिलकर एक राज्य बन गया।

एल्फ्रैड और इंगलैण्ड का एकरूप होना—सन् ८७१ ई० में जक एग्बर्ट (Egebrt) का चौथा पोता एल्फ्रैड, वैसेक्स (Wessex) का राजा हुआ उस समय डेनों के आक्रमण ने विकट रूप धारण किया। सन् ८७८ ई० में एल्फ्रैड ने एथेण्डन की लड़ाई में डेनों के सरदार गूथ्रुम (Guthrum) को करारी हार दी और उसे वैडमोर (Wedmore) के संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश किया। इस संधि से उत्तरी ब्रिटेन पर डेनों का राज्य ज्यों का त्यों मान लिया गया पर वैसेक्स की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई। इसके पश्चात एल्फ्रैड ने वैसेक्स की शक्ति को सुदृढ़ करने की ओर ध्यान दिया। उसने स्थल सेना की शक्ति बढ़ाई, जल सेना तैयार की, कानूनों का सुधार किया और विद्या व देश भक्ति को प्रोत्साहन दिया।

उसके समय में सारी जमीन राजा की सम्पत्ति समझी जाती थी और वही समाज का केन्द्र समझा जाता था। राजा ने यह ज़मीन अर्लों (Earls)

* टैसवेल-लैंगमीड—इंगलिश कन्स्टीट्यूशनल हिस्टरी पृ० ८।

और थैनों (Theigns) में इस शर्त पर बांट रक्खी थी कि वे राजा की युद्ध में सहायता करेंगे। इस प्रकार के वितरण को फ्यूडल प्रणाली कहते हैं। राज्याधिकार पिता से पुत्र को मिला करत था पर राजा की मृत्यु होने पर राजा के पुत्रों में से सबसे योग्य राजकुमार या राजघराने का और कोई व्यक्ति उसका उत्तराधिकारी चुन लिया जाता था। यह कोई नियम न था कि ज्येष्ठ राजकुमार ही राज्यसिंहासन पर बैठे। राजा की आय उसकी निजी सम्पत्ति या न्यायालयों द्वारा लगाये हुये आर्थिक दण्डों से होती थी। राजा अभी न्यायकर्ता न समझा जाता था क्योंकि जागीरदारों की अपनी अपनी जागीरों में न्याय संस्थायें थीं जो न्याय करने का काम करती थीं। पर धीरे धीरे राजा की न्यायकारी सत्ता जागीरदारों की सत्ता को हटाकर उसका स्थान स्वयं ले रही थी।

विटैनगैमोट (Witenagemot), इसकी बनावट और इसके कर्तव्य—उस समय राजा निरंकुश न था। उसकी शक्ति अमर्यादित न थी। उस समय भी एक राज्य परिषद थी जिसका नाम विटैनगैमोट (Witenagemot) था। इस परिषद को बड़े अधिकार थे और यह राजा की शक्ति पर अंकुश रखती थी। इस परिषद में प्रत्येक स्वाधीन नागरिक बैठ सकता था। पर यह कुलीन- संस्था ही थी जिसके राजा, जागीरदार, मठधारी पादरी या बुद्धिमान कहलाने वाले व्यक्ति ही सदस्य होते थे। जो लोग इस परिषद में उपस्थित होते थे उनको विटन या बुद्धिमान व्यक्ति कहते थे और बुद्धिमानों की परिषद होने के कारण इनका नाम विटैनगैमोट पड़ गया। इसके बड़े विस्तृत अधिकार थे। यह राजा को चुन सकती थी, गद्दी से उतार सकती थी और शासन-प्रबन्ध में स्वयं भाग लेती थी। राजा के साथ बैठकर यह परीषद् कानून बनाती थी और राजकीय सेवाओं के बदले में कर लगाती थी। संधि करना, स्थल व जल सेना एकत्रित करना, राजा की जागीर में से भेंट देना, पादरियों को पदासीन व पदच्युत करना, दूसरे राज्याधिकारियों व जागीरदारों को अपने पद पर नियुक्त करना या हटाना अपराधियों की व निःसन्तान व्यक्तियों की ज़ायदाद का फैसला कर जब्त करना और धार्मिक आज्ञाओं का अनुकरण कराना, ये सब काम यह परिषद किया करती थी। इन सब कामों के अतिरिक्त जब तब परिषद सम्पत्ति सम्बन्धी व झगड़े सम्बन्धी मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय का काम भी किया करती थी। संक्षेप में भ्रूणावस्था में यह आधुनिक पार्लियामेण्ट थी। यद्यपि इसके अधिकार बड़े विस्तृत थे पर उनका प्राय उपयोग न किया जाता था और राजा का व्यक्तित्व ही इन मामलों में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता था।

सारा देश गांवों में विभक्त था। जिस कुल ने जिस गांव को बसाया उसी के नाम पर गांव का नाम पड़ गया। सौ गांव के समूह का नाम "दी हन्ड्रेड" होता था और प्रशासन की वह दूसरी बड़ी इकाई होती थी, पहिली इकाई गांव थी। तीसरी इकाई "शायर" कहलाती थी जिसमें सौ "दी हन्ड्रेड" होते थे अर्थात् शायर एक हजार गाँव का प्रदेश कहलाता था। राज्य का सबसे बड़ा स्थलात्मक विभाग शायर (Shire) ही था।

इन प्रशासन विभागों की संस्थाओं और अधिकारियों के संगठन और सम्बन्ध में इतिहासकारों के भिन्न भिन्न मत हैं। पर साधारणतया यह माना जाता है कि शायर (Shire) में राजा का सबसे बड़ा अफसर एल्डरमैन (Elderman) होता था जिसको राजा नियुक्त करता था। यह अफसर प्रायः राजघराने का ही व्यक्ति होता था और सैनिक तथा शासक सम्बन्धी अधिकारों का उपभोग करता था। शायर-मूट (Shire-moot) जो शायर की पुनर्विचार करने वाली अदालत (Appellate court) थी उसका एल्डर मैन सभापति होता था। इस अदालत को एकत्रित करने का काम शैरिफ करता था। शैरिफ (Sheriff) शायर (Shire) का निर्वाचित कर्मचारी होता था। इस अदालत के दूसरे सदस्य पादरी, ज़मींदार, सब राज कर्मचारी, धर्म-पुजारी और कुछ चुने हुये व्यक्ति होते थे।

दी हण्ड्रेड (The Hundred) शायर (Shire) का एक उप-विभाग था और उसमें एक स्थानीय अदालत होती थी जिसका नाम "हण्ड्रेड मूट" (Hundred-moot) था। इस अदालत में बारह वा बारह के अपवर्त्य (Multiple) संख्या में जज होते थे। इस अदालत में शेरिफ (Sheriff) या उप-शेरिफ (Deputy Sheriff) प्रधान का काम करता था। दीवानी और फौजदारी के मुकदमे इसी अदालत में प्रारम्भ होते थे।

नौर्मन (Norman) **काल**—सन् १०६६ में जो हेस्टिंग्ज का युद्ध हुआ उससे इंगलैंड के शासन-विधान के इतिहास का प्रवाह ही बदलगया। नार्मण्डी (फ्रांस) के राजा विलियम प्रथम् ने इंगलैण्ड के राजा हैरोल्ड को हरा कर इंगलैण्ड का राजसिंहासन अपने अधिकार में कर लिया और वह इंगलैंड का प्रथम् नार्मन राजा बन बैठा। राज्याभिषेक होते समय उसने इंगलैण्ड के प्राचीन काल से प्रचलित राजशपथ ली। उसने इंगलैण्ड के प्राचीन नियमों का ही पालन किया और वैधानिक राजा की तरह राज्य किया। उसने उन जागीर-दारों की जागीर छीन लीं जो उसके विरुद्ध युद्ध में लड़े और उन जागीरों को

अपने उन नौर्मन सामन्तों में बांट दिया जिन्होंने उसे सहायता दी जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देने का वचन दिया। पुराने जागीरदारों को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ी और वे अपनी शिकायत की पुकार न्यायालयों में करने पर विवश किये गये। धर्म न्यावालय (Spiritual Courts) राजकीय न्यायालयों (Civil Courts) से पृथक् कर दिये गये परन्तु धर्ममठों पर राज्य का प्रभुत्व सुरक्षित रखा गया। यह नियम बना दिया गया कि राजा की आज्ञा बिना कोई पादरी मान्य न समझा जाय न उसके आदेशों का पालन किया जाय, राष्ट्रीय याजक-परिषदों (Ecclesiastical assemblies) के निर्णय और आज्ञायें तब तक मान्य न हों जब तक राजा उसका समर्थन न कर दे और कोई जागीरदार या कर्मचारी बिना राजा की आज्ञा के पदच्युत या समाजच्युत न किया जाय।

इस प्रथम् नौर्मन विजय के फलस्वरूप जो नये जागीरदार (Barons) बने उन्होंने कुछ समय के पश्चात् विलियम द्वितीय के लिये बड़ी कठिनाई उत्पन्न करदी और उसे इंगलैण्ड के निवासियों से मिलकर इनके विद्रोह को दबाना पड़ा। हैनरी प्रथम् के समय में ही राजा को अंग्रेजी जनता की स्वतन्त्रता के कुछ अधिकार मानने पड़े। जिस अंगीकारपत्र द्वारा इनकी घोषणा हुई उसको दूसरे नौर्मन राजाओं ने भी आगे चलकर मानने का वचन दिया। एन्जीविन (Angevin) राजवंश की नींव डालने वाले हैनरी द्वितीय ने भी ऐसा ही किया। इस राजवंश में जोन नामक राजा का राज्यकाल इंगलैण्ड के जनतन्त्र के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है।

इंगलैण्ड की जनता के अधिकारों का मैग्ना कार्टा (Magna Carta) सन् १२१५ ई०—जोन नामक राजा के समय में जागीरदारों और पादरियों ने, जो उस समय देश के नेता थे, राजा के विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने मिल कर एक षड्यन्त्र रचा और राजा को "ग्रेट चार्टर" (Great Charter) अर्थात् अंगीकार-पत्र स्वीकार करने पर विवश किया। इस चार्टर (Charter) में ऐसे उपबन्ध (Provisions) थे जिनसे यह स्पष्ट होता था कि राजा पर जनता के किसी भी वर्ग का विश्वास नहीं है। राजा ने सामन्तों व पादरियों से झगड़ा कर लिया था। मैग्ना कार्टा (Magna Carta) उन तीन चार्टरों में से एक है जो चैथम (Chatham) के कथनानुसार इंगलैण्ड के शासन विधान की बाईबल है। दूसरे दो चार्टर पेटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights) और बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) के नाम से प्रसिद्ध हैं। यदि मैग्ना कार्टा की सूक्ष्म विवेचना की जावे तो उससे पता चलेगा

कि यह केवल सन् १२१५ ई० के पूर्व जो जनस्वातन्त्र्य के अधिकार मान्य थे उनको लेखन-क्रिया द्वारा पुनः प्रतिष्ठित ही करता है। प्रस्तावना(Preamble) के अतिरिक्त इसमें ६३ खण्ड (Clauses) हैं जो किसी क्रम से लिखे हुये नहीं हैं। प्रथम, इसमें सामन्तशाही (Feudalism) के कर्तव्यों को फिर से दुहराया गया है और सामन्तों के प्रति राजा की मांगों को मर्यादित कर दिया गया है दूसरे, यह न्याय-प्रणाली को सरल बनाने का प्रयास करता है। इसमें कहा गया है कि (१) साधारण जनता के मुकदमों की सुनवाई निश्चित स्थानों पर होगी, (२) अर्लों (Earls) और बैरनों (Barons) को उनके ही कुलीन न्यायाधीश अपराध के अनुसार दण्ड दे सकेंगे, (३) राजा के मुकदमे, शैरिफ, पुलिस अफसर अमीन आदि सुनकर निवटारा न करेंगे, (४) कोई स्वाधीन नागरिक न्यायालय में जाने से न रोका जा सकेगा, (५) कोई भी अमीन विश्वसनीय गवाहों के सुने बिना अपना निर्णय नहीं देगा, (६) न्याय के ज्ञाता ही न्यायाधीश, अमीन और शैरिफ नियुक्त किये जायेंगे, आदि आदि। तीसरे, इसमें शासन-विधान के मौलिक सिद्धान्तों की परिभाषा कर दी गयी है; इसमें लिखा है कि विटन (बुद्धिमानों की सभा न्यायालय) को बुलाने के लिये पादरियों, महन्तों, मठधारियों, अर्लों, व बड़े बैरनों के पास अलग अलग व्यक्तिगत रूप से निमंत्रण भेजा जाना चाहिये, प्रमुख आसामियों (tenants) को प्रत्येक शायर में शैरिफ की लिखित आज्ञा द्वारा बुलाया जायगा; न्याय किसी को बेचा न जायगा, न कोई इससे वंचित रखा जायगा। चौथे, इस मैग्ना कार्टा में नगरों व कस्बों के अधिकारों को फिर से दुहराया गया है और कुछ व्यापारिक अधिकारों की परिभाषा की गई है और पांचवें, राजा द्वारा लगाये जाने वाले करों की निश्चित मर्यादा बांध दी गई है।

इस चार्टर में उच्च वर्गों के व्यक्तियों के अधिकारों का वर्णन था पर इसका हैनरी तृतीय ने छः बार, एडवर्ड ने तीन बार, एडवर्ड तृतीय ने चौदह बार, रिचार्ड द्वितीय ने छः बार, हैनरी चतुर्थ ने छः बार और हैनरी पांचवें और छटे ने एक एक बार समर्थन करने की घोषणा की। जनता विशेषकर बैरन और पादरी, अपनी स्वतन्त्रता व अधिकारों की रक्षा करने का जो महत्व इस चार्टर को देते थे वह इससे बिल्कुल स्पष्ट है ही।

एन्जीविन वंश के राज्यकाल में इंगलैण्ड का शासन विधान—मैग्ना कार्टा (Magna Carta) ने प्रजा के लिये राजा से अपने अधिकार मांगने का मार्ग खोल दिया। इसके पश्चात् हैनरी तृतीय के समय में राजा की वैधानिक स्थिति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। हैनरी तृतीय छोटी अवस्था में ही राजा हो चुका था, उसकी ओर से राज्य प्रबन्ध करने के लिये जो परिषद् बनाई गई

उसने अपनी शक्ति बढ़ा ली। जब हैनरी पूर्ण वयस्क होकर राजसिंहासन पर बैठा तो उसे इस परिषद् से परामर्श करना पड़ता था। उस समय तक उस कौंसिल का प्रीवी कौंसिल नाम पड़ चुका था। इसके पश्चात् हैनरी के विदेशी मित्रों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली जिससे देश में असन्तोष फैलने लगा और गड़बड़ मचना आरम्भ हो गई। सन् १२५८ में इस अनुशासन हीनता की हद हो गई। उस समय बैरनों (Barons) ने एक ग्रेट कौंसिल (Great Council) बुलाई। यह कौंसिल "मैड पार्लियामेण्ट" (उन्मादिनी संसद्) के नाम से प्रसिद्ध है। यह आक्सफोर्ड नगर में अपनी मांगों को लेख बद्ध करने के लिये बुलाई गई। ये लेख अन्त में औक्सफोर्ड के उपबन्ध (Provisions of Oxford) के नाम से प्रसिद्ध हुये।

औक्सफोर्ड के उपबन्ध—विद्रोह पर तुले हुये बैरनों को देखकर राजा को इन उपबन्धों (Provisions) को मानने पर विवश होना पड़ा और यह स्वीकार करना पड़ा कि इनके आधार पर ही शासन प्रबन्ध होगा। इनके अनुसार पन्द्रह बैरनों और पादरियों की कौंसिल नियुक्त की गई जो राजा को शासन कार्य में परामर्श देने की अधिकारिणी थी। हर तीसरे वर्ष पार्लियामेण्ट बुलाना आवश्यक था। इस पार्लियामेण्ट में कौंसिल के १५ सदस्यों के अतिरिक्त बैरनों के १५ प्रतिनिधि और राजा के १५ मनोनीत व्यक्ति बुलाने पड़ते थे। इस प्रकार सामन्तों को तो शासन प्रबन्ध में हाथ बटाने का अवसर मिल गया पर साधारण जनता को कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

साइमन डि मान्टफोर्ड द्वारा बरनों का नेतृत्व—उपरोक्त कौंसिल से परामर्श लेने को पहले तो हैनरी सहमत हो गया पर सन् १२६१ ई० में उसने खुले तौर से आक्सफोर्ड के उपबन्धों का अनुकरण करने से इनकार कर दिया। बैरनों ने इस ललकार का सामना करने की ठान ली। गृहयुद्ध आरम्भ हुआ और सन् १२६४ ई० में १४ मई को लिविस के युद्ध में हार खाकर राजा और राजकुमार दोनों ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस संघर्ष में साइमन डि मान्टफोर्ड (Simon de Montford) ने बैरनों का नेतृत्व किया था। प्रायः उसको साधारण जनता का नेता कह कर भी पुकारा जाता है। फ्रांस के इतिहासकार गुइज़ट (Guizot) ने उसे "प्रतिनिधिक सरकार का जन्मदाता" कह कर पुकारा है। गुइज़ट का जीवनी लेखक पाउली (Pauli) साइमन को "हाउस आफ कामन्स का जन्मदाता" कहता है, सच तो यह है कि वह दोनों में से एक भी नहीं है, यह ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। मोन्टफोर्ड एक दुःसाहसी नौर्मन था जिसका चरित्र कई आकर्षक गुणों व दोषों का अद्भुत मिश्रण था। वह अपने बहनोई

हैनरी तृतीय के प्रोत्साहन के कारण आरम्भ में उन्नति कर गया और उस समय तक प्रतिनिधि राज्य-शासन प्रणाली की ओर उसका बिल्कुल झुकाव न था। जब उसने देखा कि उसके स्वार्थ की सिद्धि इस ढंग से होगी तभी इस प्रणाली का समर्थक होने का उसने दावा किया। इंगलैण्ड के शासन विधान की प्रगति तो जारी थी ही और उसमें तो परिवर्तन होने जा ही रहा था पर मौन्टफोर्ड के स्वार्थ का इससे अनायास ही मेल हो गया। उस समय नगरों और कस्बों की आबादी बढ़ रही थी और उनकी समृद्धि हो रही थी। ऐसी स्थिति में इन नगरों की अधिक समय तक पार्लियामेण्ट द्वारा उपेक्षा न की जा सकती थी। प्रतिनिधित्व तो अनिवार्य था ही। साइमन ने इस सम्बन्ध में असामयिक प्रयास किया।

साइमन की १२६४ और १२६५ की पार्लियामेण्ट—राजा से राजनैतिक लड़ाई लड़ने के लिये साइमन ने सन् १२६४ ई० में एक पार्लियामेण्ट बुलाई। इस पार्लियामेण्ट में उन बैरनों और पादरियों के अतिरिक्त जो पहले से ही अधिकारी थे, प्रत्येक प्रान्त (County) के चार प्रतिनिधियों को भी बुलाया। इस पार्लियामेण्ट ने यह निश्चय किया कि शासन प्रवन्ध साइमन की अध्यक्षता में एक नौ सदस्यों की कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाय। सन् १२६५ ई० में साइमन ने फिर पार्लियामेण्ट बुलाई जिसमें उसने "नाइट्स आफ दी शायर्स (Knights of the Shires) को नहीं बुलाया पर सब बड़े नगरों और कस्बों से प्रतिनिधि बुलाये। इसमें सन्देह नहीं कि प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना करने के लिये यह पहला कदम था और इसका श्रेय साइमन को ही दिया जा सकता है।

एडवर्ड प्रथम के शासन-सुधार—सन् १२७४ ई० में हैनरी तृतीय के मरने के पश्चात् एडवर्ड प्रथम राजसिंहासन पर बैठा। उसकी पार्लियामेण्ट ने कई शासन सुधार किये। सन् १२७५ ई० में ही वैस्टमिस्टर का प्रथम विधान (First Statute of Westminster) पास हुआ था। इसमें भूमि-कर (Land Tax) निश्चय कर दिया गया और निर्वाचन होने का आयोजन कर दिया गया। सन् १२७८ ई० में ग्लौसेस्टर का विधान (Statute of Gloucester) पास हुआ जिससे यह जानने का प्रयत्न किया गया कि बैरन लोग किस अधिकार से जागीरों पर अपना स्वामित्व किये हुए थे। इस विधान के पास होने से बैरनों के ऊपर राजा का नियंत्रण और अधिक दृढ़ हो गया। सन् १२७९ के मोर्टमेन के विधान (Statute of Mortmain) से पादरियों के उस अधिकार की काट छांट कर दी गई जिससे वे मरणासन्न व्यक्तियों को

अपनी जायदाद गिराजाघरों या मठों के नाम कर देने के लिये विवश किया करते थे। सन् १२८५ ई० में वैस्टमिंस्टर का दूसरा विधान (Second Statute of Westminster) पास किया गया। उसमे मरने के बाद स्वाधीन नागरिकों की भूमि उनके ज्येष्ठ पुत्रों को दिये जाने का विधान कर दिया गया। सन् १२८५ ई० मे विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) पास हुआ जिससे देश की रक्षा व नगरों तथा गांवों की पुलिस का प्रबन्ध होने का आयोजन हुआ। इनके अतिरिक्त दूसरे और सुधार भी हुये।

सन् १२९५ ई० की ग्रेट पार्लियामेन्ट (Great Parliament)—एडवर्ड का सबसे महत्वपूर्ण शासन सुधार यह था कि उसने सन् १२९५ ई० में ग्रेट पार्लियामेण्ट को बुलाया। इस पार्लिमामेण्ट में इंगलैण्ड के राजनैतिक जीवन में भाग लेने वाले तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों को बुलाया गया। पादरी, लार्डस और कामन्स (Commons) ये ही तीन वर्ग थे। ऐसा एक भी नगर न बचा था जिसका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेण्ट में न हो। इसलिये इस पार्लियामेण्ट का "प्रथम पूर्ण और आदर्श पार्लियामेण्ट" (First Complete and Model Parliament") नाम पड़ा।

शतवर्षीय युद्ध और पार्लियामेन्ट—सन् १३३८ ई० में शतवर्षीय युद्ध के आरम्भ होने से कई महत्वपूर्ण शासन सुधार हुये। उस समय तक पार्लियामेण्ट के उपर्युक्त तीनों वर्ग एक ही सदन में बैठकर वाद विवाद करते और वोट दिया करते थे हालांकि बैरन मनचाही कर लेने में सफल हो जाया करते थे। इसके अनन्तर पादरियों व बैरनों ने मिलकर एक अलग सदन में बैठना आरम्भ कर दिया जहां वे विचार करते थे और इस तरह हाऊस आफ लार्डस (House of Lords) की नींव पड़ी। नगरों और कस्बों के प्रतिनिधि अपने अलग सदन में बैठकर राजकाज करने लगे यह सदन हाऊस आफ कामन्स (House of Commons) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते होते पार्लियामेण्ट का इन दो शाखाओं में विभाजन पक्का हो गया, दूसरे गृह में सामन्त शाही का प्रतिनिधित्व था और प्रथम गृह में साधारण जनता का। पहले पार्लियामेण्ट की बैठकें किसी नियम से न होती थीं परन्तु सन् १३३० ई० में यह कानून बना दिया गया कि "प्रति वर्ष एक बार पार्लियामेण्ट की बैठक होगी और यदि आवश्यक हो तो एक से अधिक बार भी हो सकती है"। सन् १३६२ ई० में इसको फिर दुहराया गया और इस बैठक के उद्देश्यों की निश्चित रूप से घोषणा इस प्रकार कर दी गई : "भिन्न-भिन्न प्रकार

के झगड़ों और शिकायतों को दूर करने के लिये जो प्रतिदिन होते रहते हैं प्रति-वर्ष पार्लियामेण्ट की एक बैठक बुलाई जायगी। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते-होते प्रथम सदन (Lower House) ने अपने तीन महत्वपूर्ण अधिकार अपने हाथ में कर लिये। यह तीन अधिकार ये थे :—(१) बिना इस गृह की सम्मति के कर अवैध (Illegal) हैं, (२) निर्बन्धों अर्थात् कानूनों के बनने के लिये दोनों गृहों की सहमति आवश्यक है, और (३) प्रथम गृह यानी हाउस आफ कामन्स को शासन प्रबन्ध के दोषों में छानबीन करने और सुधारने का अधिकार है। प्रश्न यह उठता है कि राजा ने यह सब प्रतिबन्ध क्यों मान लिया? बात यह थी कि राजा को युद्ध के व्यय के लिये धन की आवश्यकता थी और विवश होकर उसे आय-व्यय व कानून व्यवस्था पर पार्लियामेण्ट का नियन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। उस समय से ही पार्लियामेण्ट में हाउस ऑफ लार्डस का महत्व कम होने लगा और कामन्स की शक्ति व महत्ता बढ़ने लगी।

नौर्मन और एञ्जीविन राजवंशों के समय में न्याय-पालिका का विकास—नौर्मन और एंजीविन राजवंशों के समय में न्याय प्रणाली में जो विकास हुआ वह अध्ययन करने योग्य है। उस समय राजा ही सारे शासन का स्वामी होता था और इसलिये न्यायपालिका का भी वही प्रमुख व्यक्ति था। प्रारम्भ में राजा स्वयं न्यायालय में बैठता था और न्याय करता था परन्तु उसके फ्रांस स्थित प्रदेशों के शासन का उत्तरदायित्व इतना भारी था कि वह उसे पूरा करने के लिये फ़्रांस में ही अधिक समय तक रहने लगा। इसलिये अपनी अनुपस्थिति में काम-काज करने के लिये राजा ने अपना एक प्रधान मन्त्री नियुक्त कर दिया जो न्याय और आय-व्यय के प्रबन्ध की देखभाल करने लगा, इस प्रधान-मन्त्री को जस्टिसिअर (Justiciar) भी पुकारा जाता था। एडवर्ड प्रथम ने जस्टिसिअर (Justiciar) के पद को तोड़ दिया और उसके काम को चांसलर (Chancellor) को सौंप दिया। एडवर्ड दी कनफैसर (Edward the Confessor) ने इस चांसलर के पद को सबसे प्रथम जन्म दिया था। इस प्रकार चांसलर के ऊपर न्याय कार्य करने का भार पड़ा और उसी समय से वह न्यायकर्ता बन गया।

जस्टिसिअर (Justiciar) और चांसलर (Chancellor) के अतिरिक्त एक और संस्था थी जिसका बड़ा मान था। इस संस्था का नाम क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) था और यह न्यायपालिका के कर्तव्यों को पूरा किया करती थी। पहिले यह ग्रेट काउंसिल आफ दी रैल्म (Great

Council of the Realm) अर्थात् राष्ट्र की महान् परिषद् कहलाती थी। उस समय इसमें कुछ राज्य-कर्मचारियों की एक छोटी सी समिति थी जिसका नाम क्यूरिया (Curia) था। यही समिति न्याय-सम्बन्धी सब काम करती थी। कुछ समय पश्चात् इस समिति को काम, किंग्स बैंच (King's Bench) दी कोर्ट आफ कामन प्लीज़ (The Court of Common Pleas) और कोर्ट आफ एक्सचैकर (Court of Exchequer), इन तीन न्याय संस्थाओं में बांट दिया गया। कोर्ट आफ एक्सचैकर कर-सम्बन्धी और आय-व्यय सम्बन्धी मुकदमे सुनती थी। दीवानी के मुकदमे कोर्ट आफ कामन प्लीज में सुने जाते थे। इनको छोड़ कर और बचा हुआ न्याय सम्बन्धी काम सब किंग्स बैंच में हुआ करता था। हैनरी तृतीय के राज के अन्त में यह कार्य-विभाजन हो चुका था।

हैनरी प्रथम के समय में क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के कुछ न्यायाधीशों को घूम-घूम कर एक ज़िले से दूसरे ज़िले में जाकर मुकदमे करने पड़ते थे। ये लोग साथ-साथ मालगुज़ारी (आगम) वसूल करने और अपराधियों को दण्ड भी देते थे। इनको आइटीनरेण्ट (Itinerant) अर्थात् भ्रमणशील न्यायाधीश कहते थे। इन न्यायाधीशों के लिये हैनरी द्वितीय ने सारे राज्य को ६ भागों में बांट दिया। प्रत्येक भाग में दौरा करने के लिये तीन न्यायाधीश नियुक्त कर दिये। ये सरकिट कोर्ट (Circuit court), शायरमूट (Shire moot) जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) अर्थात् लोक न्यायालय और राज न्यायालय में सम्बन्ध स्थापित करते थे। इनके द्वारा पुरानी प्रणाली और नई न्याय प्रणाली में सामंजस्य स्थापित हो गया। हैनरी द्वितीय ने फौजदारी (Criminal) मामलों में पंचों (Jury) की सहायता से न्याय करने की प्रथा पहले-पहल आरम्भ की। कुछ समय पश्चात् यह प्रथा दीवानी मुकदमों के लिये भी लागू कर दी। पहले-पहल यह पंच केवल वे ही लोग होते थे जो शपथ लेते हुये सच बातें बतला कर गवाही देते थे।

जब न्यायपालिका का यह विकास हो रहा था राजा की ग्रेट कौंसिल (King's Great Council) जिसका पीछे से कंटीन्यूअल कौंसिल (Continual Council) नाम पड़ गया, अपने विशेष न्याय-अधिकार क्षेत्र में काम करती रही। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से इस न्यायालय में कौंसिल (भूतपूर्व पार्लियामेण्ट) के तीनों भागों अर्थात् बैरनों, पादरियों और कामन्स के लोग होते थे, पर साधारणतया कामन्स कौंसिल के न्याय सम्बन्धी काम में योग न देते थे। इसलिये यह न्याय-सम्बन्धी काम पीयर्स (Peers) ही करने

लगे। ये लोग जब एक पृथक् गृह में बैठ कर काम करने लगे और हाउस आँफ लार्ड्स का जन्म हुआ तो ये दोनों काम करने लगे। उनका एक काम तो विचारक मण्डली जैसा था और दूसरा न्यायालय का। बाद में धीरे धीरे यह न्याय-सम्बन्धी काम इस हाउस आँफ लार्ड्स की एक छोटी समिति द्वारा होने लगा। इस समिति का ही नाम प्रीवी कौंसिल पड़ा।

गुलाब-युद्ध (Wars of Roses) और शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन—उपर्युक्त शासन प्रणाली लंकास्टर (Lancaster) और यार्क (York) के राजवंशों में होने वाले गुलाब-युद्ध के छिड़ने के समय तक चलती रही। यह युद्ध सन् १४५५ से १४८५ ई० तक चलता रहा और जब यह समाप्त हुआ तो उस समय कई महत्वपूर्ण शासन विधान सम्बन्धी परिवर्तन हुये। बैरनों की शक्ति दोनों युद्ध-वर्गों में बट जाने से छिन्न भिन्न हो गई और राजा पर जो अब तक उनका प्रभाव चला आ रहा था, सब समाप्त हो गया। युद्ध से लोग बड़ी आपत्ति में पड़ गये और उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। इससे हैनरी सप्तम ने पूरा लाभ उठाया और प्रजा की सम्मति से ही उसने शान्ति और सुरक्षा के हित में अपनी शक्ति खूब बढ़ा ली। हेनरी सप्तम के राज्याभिषेक को पालियामेण्ट ने स्वीकार कर लिया तब से राजा को चुनने का पार्लियामेण्ट को अधिकार मिल गया। पहले दो ट्यूडर वंशी राजाओं ने (हेनरी सप्तम और अष्टम) गिरी हुई आर्थिक दशा का अपनी शक्ति बढ़ाने में खूब लाभ उठाया और वे निरंकुश शासन स्थापित करने में बहुत कुछ सफल हुये। यद्यपि पार्लियामेण्ट की अब भी बैठकें होती थीं पर इन ट्यूडर वंशी राजाओं ने उनको अपनी निरंकुश शक्ति बढ़ाने का साधन बना रखा था।

ट्यूडर वंशीय-निरंकुशता की स्थापना—ट्यूडर वंश के राजा पार्लियामेण्ट में ऐसे व्यक्तियों को चालाकी से निर्वाचित करा लेते थे जो उनकी हां में हां मिलाने वाले होते थे और फिर करों को बढ़वा कर अपने राजकोष को भरा पूरा रखते थे। बैरनों की शक्ति को कुचलने के लिये उन्होंने स्टार चैम्बर (Star Chamber) का न्यायालय और हाई कमीशन (High Commission) का न्यायालय ये दो संस्थायें स्थापित कीं।

इधर जागीरदारों पर हैनरी सप्तम ने अपना प्रभुत्व जमा लिया था और दूसरी ओर पोप से झगड़ा कर उसने अंग्रेजी नये ईसाई संघ की स्थापना की, जिस पर रोम के पोप का प्रभुत्व न रहा। यह झगड़ा रानी को तलाक देने के प्रश्न पर उठा था। नये ईसाई-संघ (Church) पर राजा का बड़ा प्रभाव

रहने लगा। एडवर्ड षष्ठ व मेरी (Mary) के समय में प्रोटेस्टेण्ट जो रोमी धर्म-सम्प्रदाय के विरोधी थे और कैथोलिक जो रोम के पोप और उसके सम्प्रदाय के समर्थक थे, इन दोनों में प्रायः झगड़ा होता रहता था। रानी एलिज़बेथ ने जनता की इस निजी धार्मिक फूट का लाभ उठाने में कोई कसर न रखी। वह चालाकी से कभी एक दल को अर्थात् प्रोटेस्टेण्ट और कभी कैथोलिक को उकसाती रहती थी जिससे इन सम्प्रदायों के मानने वाले दो दल हमेशा रानी के मुँह की ओर देखते रहते थे। राजसत्ता की शक्ति इस प्रकार बढ़ती चली गई। इसके अतिरिक्त १५वीं शताब्दी का जो कला व साहित्य के पुनरुद्धार (Renaissance) का आन्दोलन चला उसका भी देश पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इङ्गलैण्ड एक शक्तिशाली जल-सेना का स्वामी हो गया, उसका व्यापार बढ़ने लगा। व्यापार करने के लिये जो कम्पनियाँ खुलीं उससे साधारण जनता फलने फूलने लगी और देश समृद्धिशाली हुआ। अब इस प्रकार जनता समृद्ध हुई तो स्वभावतः अपनी आर्थिक स्थिति की ओर से निश्चिन्त होने के कारण उसे राजा और अपने पारस्परिक सम्बन्धों व अधिकारों पर विचार करने का अवसर मिला और वह अधिक जागरूक रहने लगी। पर इस जागरूकता को व सार्वजनिक अधिकारों की मांग को जो निरंकुश ट्यूडर राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन से बल पाती रही थी एलिज़बेथ ने सफलतापूर्वक अपनी कूटनीति की सहायता से रोके रखा।

स्टुअर्ट-काल में शासन-परिवर्तन—स्टुअर्ट राजवंश का राज उस समय से प्रारम्भ हुआ जब से जेम्स प्रथम इङ्गलैण्ड के राजसिंहासन पर बैठा। स्टुअर्ट राजाओं के राज-सिद्धान्त और शासन नीति ने दो बार ऐसी आपत्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी जिसके फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण शासन-सम्बन्धी परिवर्तन हुये। जेम्स प्रथम् ने राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के मुख्य सिद्धान्त चार थेः—(१) यह कि राजा सीधे ईश्वर से अपना राज्याधिकार प्राप्त करता है, (२) यह कि राजा का यह अधिकार अनियंत्रित और असमर्यादित है, (३) यह कि राजा की आज्ञा का विरोध करना प्रत्येक दशा में अवैध ही नहीं पाप भी है, (४) यह कि राजपद पैत्रक है और राजा के लड़कों में सब से बड़ा उसका उत्तराधिकारी होना चाहिये। इन सिद्धान्तों के मानने में जेम्स प्रथम और पार्लियामेंट में मुठभेड़ हो गई। राजा की धार्मिक नीति ने, जिसके द्वारा उसने रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लोगों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता देने से इनकार कर दिया और इसने राजा-प्रजा के वैमनस्य की आग में घी का काम किया। रोमन कैथोलिक पोप की प्रभुता के

समर्थक थे न कि राजा की प्रभुता के। प्युरिटन सम्प्रदाय (उत्कट पवित्रावादी) जो प्रोटेस्टेण्ट धार्मिक मत का ही एक भाग था, वह भी राजा की नीती से अप्रसन्न था। इसलिये जेम्स प्रथम की जब पहली पार्लियामेण्ट बैठी तो इन सब असन्तुष्ट दलों ने मिल कर राजा से यह मांग की कि राजा जनता के सार्वजनिक अधिकारों को स्वीकार करे और यह भी माने कि कामन्स (House of Commons) को ही कर लगाने की अनुमति देने का अधिकार है। जेम्स प्रथम् ऊपर से कामन्स के अधिकारों का आदर करने का बहाना करता रहा पर भीतर ही भीतर वह उनसे स्वतन्त्र होने की चाल चलने लगा। सन् १६११ से १६१४ तक उसने पार्लियामेण्ट को बुलाया ही नहीं और विना पार्लियामेण्ट के ही उसने राज्य किया। जब १६१४ ई० में उसने पार्लियामेण्ट को बुलाया तो "अनुदान स्वीकार करने के पूर्व शिकायतें दूर हों" इस बात पर आपस में झगड़ा हो गया और पार्लियामेण्ट भंग कर दी गई। उसके पश्चात् फिर छः वर्ष तक विना पार्लियामेण्ट के उसने राज्य किया। सन् १६२१ में उसने तीसरी बार पार्लियामेण्ट बुलाई। इस बार भी पार्लियामेण्ट अपनी पुरानी हठ पर जमी रही। उसने फिर यह मांग की कि उन को बोलने की स्वतन्त्रता दी जाय, उनको पकड़ा न जाय और राजा के परामर्श-दाताओं की निन्दा करने का उन्हें अधिकार दिया जाय। इस पर राजा ने पार्लिया-मेण्ट भंग कर दी और सन् १६२४ ई० में राजा ने चौथी पार्लियामेण्ट बुलाई। इस पार्लियामेंट ने जो मांगें उपस्थित कीं वे अधिकतर मान ली गईं, इससे पार्लियामेण्ट का आदर और ख्याति बढ़ गई।

चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेण्ट— जेम्स प्रथम् के बाद उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम् राजसिंहासन पर बैठा। चार्ल्स भी अपने पिता के समान राजाओं के दैवी अधिकारों में विश्वास करता था, राजा के अनियंत्रित अधिकार वाले सिद्धान्त की व्यवहार में उसने अति कर दी। उसने पार्लियामेण्ट की स्थिती और उसके परामर्श से शासन करने की आवश्यकता, दोनों को ठुकरा दिया। परन्तु धनाभाव के कारण विवश होकर उसे पार्लियामेण्ट बुलानी पड़ी। सन् १६२६ ई० में जो पार्लिटेण्ट बुलाई गई उसने चार्ल्स के मन्त्री बकिंघम (Buckin-gham) पर अभियोग लगाया। इससे राजा और पार्लियामेण्ट में अनबन हो गई और राजा ने पार्लियामेंट को भंग कर दिया, पर फिर कर उगाहने की आवश्यकता के कारण उसे सन् १६२८ में पार्लियामेण्ट बुलानी पड़ी परन्तु इस बार कामन्स ने अनुदानों को स्वीकार करने से पहले यह प्रस्ताव पास किया कि विना उनकी स्वीकृति के कोई भी कर वैध न समझा जायगा। और उन्होंने राजा के स्वेच्छाचारी-शासन की कड़ी निन्दा की। उन्होंने मेग्नाकार्टा, पिटीशन

आफ राईट्स १६२८ई० और उसके बाद के अधिकार पत्रों में स्वीकृत अपने प्राचीन अधिकारों के आधार पर एक पिटीशन आफ राइट्स(Petition of Rights) अर्थात् अधिकारों का प्रर्थना पत्र, तैयार किया जिसमें उनकी मांगों का उल्लेख था। उन मांगों में से कुछ ये थीं; (१) कोई अवैध कर-वसूली न की जाय जैसा कि एडवर्ड प्रथम् के समय में घोषित हो चुका था कि राजा या उसके उत्तराधिकारी पादरियों, अर्लों (Earls), बैरनों (Barons) नाइटों (Knights), आत्म शासित नगरों के नागरिकों (Burgesses) और दूसरे स्वाधीन देशवासियों की स्वीकृति के बिना कोई भी कर राज्य में न लगाया जायगा और जिसका एडवर्ड तृतीय की पार्लियामेन्ट ने इस प्रकार स्पष्टीकरण कर दिया था "कि आज यह घोषित किया जाता है कि अब से आगे किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध राजा के लिये ऋण देने पर विवश न किया जायगा क्योंकि ऐसे ऋण नागरिकता और औचित्य के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। (२)दूसरी मांग यह थी कि राजा व्यक्तियों को कारावास देने में स्वेच्छाचार न करे जिसके सम्बन्ध में मैग्नाकार्टा में घोषणा हो चुकी थी और जिसको एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में पार्लियामेण्ट ने फिर दुहरा दिया था। (३) जैसा मैग्नाकार्टा ने और एडवर्ड तृतीय ने घोषित किया था राज्य में मार्शल ला (Martial Law) अर्थात सामारिक कानून न लगाया जाय। (४) चौथी मांग यह थी संविधान व कानून के अनुसार प्रजा की स्वतन्त्रता और उसमें स्वत्वों की रक्षा की जाय। पिटीशन आफ राइट्स अंग्रेज़ी स्वतन्त्रता रूपी भवन का दूसरा स्तम्भ है। पर उसमें कोई नई बात न थी। इससे पूर्व जो अधिकार राजाओं द्वारा मान्य हो चुके थे उनको ही संक्षिप्त रूप से एक स्थान पर इस पत्र में एकत्रित कर दिया गया था। राजा को विवश होकर यह प्रार्थना-पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसके पश्चात् पार्लियामेण्ट ने राजा को शराब व दूसरी वस्तुओं के आयात-निर्यात् पर कर लगा कर धन इकट्ठा करने का अधिकार दे दिया। पर साथ ही साथ नौसेना रखने के लिये लगाये हुये कर को तोड़ दिया और स्टार चैम्बर व हाई कमीशन कोर्ट को भी भंग कर दिया। यह सब राजा ने स्वीकार कर लिया परन्तु भीतर ही भीतर चार्ल्स सेना को पार्लियामेण्ट के विरुद्ध भड़काने लगा और इस प्रकार बलप्रयोग से पार्लियामेण्ट पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करने लगा। जब पार्लियामेण्ट को इसका पता लगा तो उसने ग्रेंड रिमोंस्ट्रेन्स (Grand Remonstrance) नामक एक प्रलेख तैयार किया जिसमें अपने स्वत्वों व अधिकारों का गौरवपूर्ण दृढ़ समर्थन किया और राजा से प्रार्थना की कि वह उनको स्वीकार करे। राजा और पार्लियामेण्ट की अनबन ने गृहयुद्ध का रूप धारण किया जिसमें चार्ल्स को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा और उसके पश्चात् प्रजातन्त्र

शासन की स्थापना हुई जिसका सगठन एक शासन विलेख (Instrument of Government) के अनुसार हुआ। इस विलेख से हाउस आफ लार्ड्स तोड दिया गया और राजसत्ता भी समाप्त कर दी गई। हाउस आफ कामन्स मे से वे सब पक्ष निकाल दिये गये जो राजसत्ता के समर्थक थे और इगलैण्ड का शासन एक नये राज्य प्रमुख की अध्यक्षता मे होने लगा जिसका नाम प्रोटेक्टर (Protector) रखा गया।

राजसत्ता की पुनर्स्थापना (१६६० ई०)—इगलैण्ड मे यह प्रजातन्त्र शासन केवल ग्यारह वर्ष ही रहा। इस काल मे शासन की कमिया स्पष्ट होने लगी और पार्लियामेण्ट ने राजसत्ता को पुन स्थापित करने का निश्चय किया। चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को राजसिहासन पर बैठाया। इस नये राजा ने प्रजा के स्वत्वो व अधिकारो की रक्षा करने का वचन दिया। उसके राज्य मे जो सब से महत्वपूर्ण शासन-विधान सम्बन्धी लाभ हुआ वह यह था कि सन् १६७९ ई० मे हेबियस कारपस (Habeas Corpus) ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट से प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई क्योकि इस ऐक्ट में यह आयोजन कर दिया गया था कि यदि किसी व्यक्ति पर अपराध करने का अभियोग लगाया जाय व बन्दी बना लिया जाय और वह व्यक्ति स्वय या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा किसी न्यायालय मे इसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करावे तो वह न्यायालय शासन और उस बन्दी को न्यायालय के सामने अभियोग की सुनवाई करने के लिये उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता है। चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने पिता के समान स्वेच्छाचारी शासन करने का प्रयत्न किया पर पार्लियामेण्ट ने इस बार कोई कडी कार्यवाही नही की क्योकि उसे प्रजातन्त्र काल के कटु अनुभव ने सतर्क बना दिया था।

सन् १६८८ ई० की क्रांति और प्रतिफलित शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन—चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका भाई जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसके मन मे आरम्भ से ही यह कुचक्र रचा हुआ था कि वह किस प्रकार निरकुश शासक बनने का प्रयत्न करेगा और राज्यरक्षित ईसाई धर्म सघ को नष्ट करेगा। उसने प्रारम्भ से ही अवैध कर उगाहना आरम्भ किया, एक नई हाई कमीशन अर्थात् महान् अपराध की अदालत स्थापित की जिससे न्याय निर्णय उसके पक्ष मे ही हो और सन् १६८८ ई० मे दो डिसीजन्स आफ इण्डलजैन्स (Decisions of Indulgence) अर्थात् अनुग्रह-निर्णय जारी किये। इन निर्णयो से राजा राज्य-रक्षित धर्म सघ मे हस्तक्षेप कर सकता था। इन सब बातों से पार्लियामेण्ट चिढ़ गई और उसने विलियम आफ औरेञ्ज (William

of Orange) को इंगलैण्ड के राजसिंहासन पर अधिकार करने का निमंत्रण भेजा। इसको सुन कर जेम्स २३ दिसम्बर सन् १६८८ को इंगलैण्ड छोड़ कर भाग निकला। बाईस जनवरी सन् १६८९ को पार्लियामेण्ट स्वयं एकत्रित हुई और दो प्रस्ताव पास किये जो इस प्रकार थे; (१) क्योंकि राजा ने प्रजा-राजा के प्रारम्भिक ठेके को तोड़ कर राजा के शासन विधान को विध्वंस करने का प्रयत्न किया और जेसुइट (Jesuist) और दूसरे दुष्ट व्यक्तियों की सलाह से देश के मौलिक निर्बन्धों का उल्लंघन किया और क्योंकि उसने देश से भाग कर राजपद त्याग कर दिया है जिससे राजसिंहासन रिक्त पड़ा है; (२) क्योंकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि इस प्रोटेस्टेण्ट राज्य की सुरक्षा और श्रेय तब तक नहीं हो सकता जब तक कि इस देश का राजा पोप का समर्थक हो...।"

२६ बिल आफ राइट्स (Bill of Rights)—पार्लियामेण्ट ने उसी समय अधिकारों का घोषणा पत्र (Declaration of Rights) तैयार किया जिसमें जेम्स द्वितीय के द्वारा जो जो अवैध और स्वच्छाचारी काम हुये थे उनको दुहराया और इंगलैंड का राजमुकुट विलियम व उसकी रानी मेरी को सुपुर्द किया। विलियम ने अपनी ओर से तथा अपनी स्त्री की ओर से इसे धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार किया। इन युगल राजा-रानी ने पार्लियामेण्ट द्वारा २५ अक्टूबर सन् १६८९ को पास किये हुये बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) को स्वीकार किया। अंगरेज़ों की स्वतन्त्रता का यह तीसरा चार्टर था और इसने मैग्नाकार्टा की नींव पर खड़े हुये शासन विधान के भवन को पूरा कर दिया। इस बिल में जेम्स द्वितीय के अवैध कामों का वर्णन था, उदाहरणार्थ—कानून अवहेलना करना व उनका उल्लंघन करना, हाई कमीशन अदालत की स्थापना, अनाधिकारी करों का लगाना, स्थायी सेना एकत्रित करना और उसे शान्ति के समय में भी बिना पार्लियामेण्ट की अनुमति बनाये रखना, निर्वाचन-स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करना, अपराधी सिद्ध होने से पूर्व जुर्माने वसूल करना व सम्पत्ति जब्त करना, आदि २। इसके पश्चात् इस बिल से विलियम को राज्याधिकारी घोषित किया गया और ऐसे राजवंश के व्यक्तियों को राज्य का उत्तराधिकारी होने से वंचित कर दिया जो पोप के समर्थक हों, या जो पोप के समर्थकों से विवाहसम्बन्ध स्थापित कर ले। इस बिल में यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रत्येक राजा रानी को इस सम्बन्ध में घोषणा करनी होगी।

सन् १७०१ ई० में पार्लियामेण्ट ने ऐक्ट आफ सेटिलमेण्ट (Act of Settlement) पास करके यह निश्चित कर दिया कि रानी अने (Anne) की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई उत्तराधिकारी न हो तो इंगलैण्ड का राज-

मुकुट हैनोवर की राजकुमारी सोफिया और उसके उत्तराधिकारियों को प्रदान किया जाय। इस ऐक्ट में और भी कई महत्वपूर्ण वैधानिक व्यवस्थायें थीं जिनसे अंग्रेज़ी जनता के धर्म, न्याय और स्वतन्त्रता की रक्षा का आयोजन होता था। इस ऐक्ट की निम्नलिखित तीन धारायें इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

(१) जो कोई भी इंगलैण्ड के राजमुकुट को धारण करेगा वह कानून से स्थापित हुये इंगलैण्ड के ईसाई धर्म संघ (Church of England) में मिल कर रहेगा।

(२) यदि इस राज्य का राजमुकुट और राज्यश्री किसी ऐसे व्यक्ति को सुशोभित करती हो जो इस देश का निवासी न हो तो यह राष्ट्र किसी ऐसे देश की रक्षा के लिये, जो इंगलैण्ड की राजसत्ता के आधीन न हो, युद्ध में भाग लेने पर बिना पार्लियामेण्ट की सहमति से बाध्य न किया जायगा।

(३) कोई भी व्यक्ति जो भविष्य में राजमुकुट धारण करेगा वह पार्लियामेण्ट की सहमति के बिना इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड की राज्य सीमा से बाहर न जा सकेगा।

इस ऐक्ट में यह आदेश था कि भविष्य में प्रत्येक राजा या रानी देश के निर्बन्धों और विधानों का आदर करेगा और जनता के स्वत्वों और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखेगा।

दो राजनीतिक दलों का प्रारम्भ—इंगलैण्ड के राज्य-शासन में यह महान् क्रान्ति बड़ी महत्वपूर्ण थी और वह इतनी शान्तिपूर्वक हुई कि उसका नाम ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) पड़ा। इस क्रान्ति का प्रत्यक्ष फल तो यह था कि बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और ऐक्ट आफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) पास हुये पर इस क्रान्ति के दूरवर्ती और अप्रत्यक्ष परिणाम अधिक महत्व रखने वाले थे। गृह युद्ध (Civil War) ने पार्लियामेण्ट व देशवासियों को दो पृथक दलों में बांट दिया था। एक दल तो चार्ल्स प्रथम का सहायक था और दूसरा पार्लियामेण्ट का समर्थक होने से स्टूअर्ट निरंकुशता का विरोधी था। क्रौमवैल के पश्चात् जब राजा को फिर पदासीन किया गया तो कुछ समय के लिये इन दलों का विरोध कुछ ठण्डा पड़ गया था लेकिन ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) से फिर पुरानी आग भभक उठी। वे लोग जो जेम्स द्वितीय और उसके पुत्र के अनुयायी थे वे रूढ़िवादी (Tories)

कहलाते थे । जो लोग ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) के पक्ष मे थे और हैनोवर के राजघराने के अनुयायी थे वे उदार (Whigs) नाम से प्रसिद्ध थे । रूढिवादी दल ने विलियम तृतीय को मारने और उसके स्थान पर जेम्स द्वितीय को सिहासनासीन करने का असफल प्रयत्न किया । विलियम तृतीय की पार्लियामेण्ट मे आरम्भ मे उदार दल का मताधिक्य था पर उसने मिली जुली मन्त्रिपरिषद् बनाने का ही निश्चय किया । सन् १६९५--९८ मे उसकी तीसरी पार्लियामेण्ट मे भी उदार पक्ष वालो (Whigs) का मताधिक्य था और उसने केवल उदार पक्ष ही का मन्त्रिमण्डल बनाया । इस प्रकार इगलेण्ड मे इस प्रथा का श्रीगणेश हुआ कि ऐसे मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो जिसके समर्थक पार्लियामेण्ट मे बहुमत रखते हो ।

रूढ़िवादी एवं उदार पक्ष की नीति—उदार दल वालो का कहना था कि राजा प्रजा का सेवक है और उसे इसलिये पार्लियामेण्ट की इच्छा के अनुसार शासन करना चाहिये । इसके विपरीत रूढिवादी दल वाले राजा के दैवी अधिकार मे विश्वास रखते थे । ये लोग अधिकतर लार्ड्स, बडे जमीदार या ईसाई सघ के पादरी होते थे । राजनीतिक प्रश्नो के अतिरिक्त इन दोनो पक्षो मे दूसरे विषयों मे भी विचार विभिन्नता थी । वे धर्म सम्बन्धी व सामाजिक प्रश्नो पर भी एक विचार न रखते थे । उदार पक्ष वाले पूजा-पाठ की स्वतन्त्रता के समर्थक थे, वे कहते थे कि तत्कालीन भूमि मे सम्बन्ध श्रम-जीवियो (Serfs) को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये । और जमीदारो के आसामियो को भी जमीदारो के आधिपत्य से अलग करना चाहिये । इसके विपरीत रूढिवादी लोग अंग्रेजी ईसाई धर्म सगठन के समर्थक थे और जमीदारो व पादरियो के अधिकारो को सुरक्षित रखना चाहते थे ।

राज्यनीति विचारक अगरेजो का इन दो पक्षो मे विभाजन इतना पूर्ण व व्यापक हुआ और उनमे इतना गहरा विरोध उत्पन्न हो गया कि वोलटेयर (Voltaire) को ये शब्द लिखने पडे.--"उदार और रूढिवादियो की पुस्तके पढने मे बडा आनन्द मिलता है, यदि उदार पक्ष वालो की बात सुने तो वे कहते है कि रूढिवादियो ने इगलैण्ड के साथ विश्वासघात किया है, यदि रूढिवादियो को सुने तो उनका कहना है कि प्रत्येक उदार ने स्वार्थ के लिये राज्य का बलिदान कर दिया है । यदि इन दोनो की बात पर विश्वास किया जाय तो सारे देश मे आगे चलकर अपने सिद्धान्तो के अनुसार शासन के ढाचे को ढालने के लिये सघर्ष हुआ उसी से इगलैण्ड के शासन विधान का इतिहास रंगा पडा है ।

रानी अने (Queen Anne) के शासन-काल में पार्लियामेण्ट में कभी उदार पक्ष वालों की व कभी रूढ़िवादियों की संख्या अधिक होती रही। रानी ने कभी मिली जुली मन्त्रिपरिषद् नियुक्त की, कभी केवल एक ही पक्ष के लोगों की, पर सन् १७०८ ई० के बाद सब मन्त्रिमण्डल में एक ही पक्ष के मन्त्री होने लगे।

हैनोवर राज्य परिवार के शासनकाल में राजनीतिक पक्षों की सरकारें— जब सन् १७१४ ई० में ऐक्ट आफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) के अनुसार जार्ज प्रथम, जो हैनोवर राज्य परिवार का पहला इंगलैण्ड का राजा था, राजसिंहासन पर बैठा तो उस समय से मंत्रिमण्डल की शक्ति बढ़ने लगी। जार्ज प्रथम अंग्रेजी भाषा न जानता था इसलिए उसे सारा राज-कार्य प्रधान-मन्त्री पर छोड़ने को विवश होना पड़ा। प्रधान मन्त्री ही मन्त्रिमण्डल की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था, क्योंकि राजा भाषा की जानकारी न होने से ऐसा करने में असमर्थ था। प्रधान मन्त्री ही इसलिए शासन-नीति की रूप रेखा निश्चित करने लगा। इस प्रकार अनायास ही शासन-सत्ता राजा के हाथ से निकल कर मन्त्रियों के हाथ में आ गई। जार्ज प्रथम के प्रथम मन्त्रिमण्डल में टाउन्सेण्ड (Townsend) के नेतृत्व में उदार मन्त्री थे। उस समय तक सन् १६९४ ई० के ट्रेनियल ऐक्ट (Triennial Act) के अन्तर्गत पार्लिया-मेण्ट के सदस्यों का निर्वाचन हर तीसरे वर्ष होता था। पर सन् १७१७ ई० में सेप्टीनियल ऐक्ट (Septennial Act) पास हुआ जिसने हैनोवर परि-वार को प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों का राज्याधिकार पक्का करने के साथ साथ पार्लियामेण्ट की अवधि सात वर्ष तक बढ़ा दी। इस अवधि के बढ़ जाने से पार्लि-यामेण्ट राजा के नियन्त्रण से बाहर हो गई। सन् १७२१ ई० में लार्ड वालपोल (Walpole) ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया और स्वयं प्रधान मन्त्री बन कर अर्थ विभाग का काम अपने हाथ में लिया। वही इंगलैण्ड का प्रथम प्रधान मन्त्री था जिसने शासन नीति का सूत्र अपने हाथ से संभाला, मन्त्रि परिषद् की शासन नीति का निरीक्षण करने का काम करना आरम्भ किया, हाउस आफ कामन्स का नेतृत्व किया और आवश्यकता पड़ने पर उसके असम्मतिसूचक आदेश के सामने सिर झुकाया। जब सन् १७४२ ई० में हाउस आफ कामन्स में उसकी हार हुई तो उसने पद त्याग कर दिया और पार्लियामेण्ट के प्रति मन्त्रि-परिषद् के उत्तरदायित्व का पहला उदाहरण उपस्थित किया। वालपोल प्रधान मन्त्री

(Prime Minister) की शक्ति बढ़ाने में बहुत सफल सिद्ध हुआ क्योंकि जार्ज प्रथम और द्वितीय दोनों अंग्रेजी भाषा और रीति-रिवाजों से परिचित न थे।

मन्त्रिमण्डल प्रणाली (Cabinet System) का जन्म—वालपोल मन्त्रिमण्डल के प्रमुख सदस्यों ने एक छोटी परिषद् बनाई जिसका नाम कैबिनेट (Cabinet) पड़ा। यह परिषद् प्रिवी कौंसिल से छोटी थी। इस कैबिनेट प्रणाली के जन्म का श्रेय पार्लियामेण्ट और राजा के बीच होने वाले उस संघर्ष को है जो चार्ल्स प्रथम के समय से भिन्न-भिन्न रूपों में बराबर होता आ रहा था। पर केवल हैनोवर के दो राजाओं, जार्ज प्रथम और द्वितीय के समय में ही कैबिनेट को शासन प्रबन्ध में अपना सिक्का जमाने का अवसर मिला और तभी से राजा इसकी कार्यवाही के संचालन के भार से मुक्त कर दिया गया। जब जार्ज तृतीय राजसिंहासन पर बैठा तो वह कैबिनेट के कार्य में हस्तक्षेप करने लगा क्योंकि उसका पालन पोषण इंगलैंड में हुआ था और वह वहाँ के रीति-रिवाजों व राजनीतिक दलों की नीति से अच्छी तरह परिचित था। तीस वर्ष के समय बीतने के बाद यह हस्तक्षेप मन्त्रिमण्डल को बुरा लगने लगा। राजा और उदार पक्ष वालों (Whigs) में तनातनी बढ़ने लगी। कुछ समय के लिये इस तनातनी में राजा की जीत हुई और उसने सन् १७७० ई० में रूढ़िवादी पक्ष के नेता लार्ड नार्थ को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। परन्तु इसी काल में अमरीकन स्वतन्त्रता का युद्ध हुआ और अमरीका-स्थित तेरह उपनिवेश इंगलैण्ड के आधिपत्य से बाहर निकल गये और स्वतन्त्र हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि रूढ़िवादियों की लोकप्रियता समाप्त हो गई और उदार पक्ष फिर शक्तिशाली होने लगा। जार्ज तृतीय ने पुन: शासन शक्ति को हथियाने का प्रयत्न किया पर वह सफल न हुआ क्योंकि पिट (Pitt) ने हाउस आफ कामन्स के बहुमत की सहायता से एक मिला जुला मन्त्रिमण्डल बना डाला जिसने जार्ज तृतीय के हाथ में शासन शक्ति न जाने दी। पिट के पौरुष और दूरदर्शिता ने कैबिनेट की शक्ति को नष्ट होने से बचा लिया। जब राजा और कैबिनेट के बीच यह संघर्ष चल रहा था उस बीच के समय में हाउस आफ कामन्स ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और निर्वाचनों पर तथा अपनी कार्यपद्धति के निश्चय करने पर निजी स्वत्व प्राप्त कर लिया।

जार्ज तृतीय के शासन काल में ही, सन् १७६० ई० में एक ऐक्ट पास हुआ जिससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पूर्णतया स्थापित हो गई। इस ऐक्ट में यह आयोजन कर दिया गया कि सम्राट् की व उसके उत्तराधिकारियों की

मृत्यु हो जाने पर भी न्यायाधीश अपने पदों पर पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे यदि उनका व्यवहार दोषरहित रहता है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के वैधानिक सुधार—उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे बहुत से वैधानिक परिवर्तन हुये जिनसे एक वास्तविक प्रजातन्त्र राज्य के स्थापित होने में बड़ी सहायता मिली । इन परिवर्तनों ने केन्द्रीय और स्थानीय शासन व विधान कार्य में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों को प्रचलित किया । इन परिवर्तनों के मूल में कई कारण थे । पहला तो यह था कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने साधारण यूरोपीय जनता के मस्तिष्कों में बड़ी उथल-पुथल कर दी । वे अब राजा और कुलीनों को बिलकुल दूसरी दृष्टि से देखने लगे और देश की सरकार व साधारण जनता के अधिकारों से सम्बन्धित एक नई विचार धारा में बहने लगे थे । स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्तों का प्रचार सारे यूरोप में फैल चुका था, और यद्यपि सन् १८१५ ई० की वियना की कांग्रेस ने राजाओं को फिर पदासीन कर व नैपोलियन की बनाई हुई व्यवस्था को तोड़ फोड़ कर फ्रांस की क्रान्ति के किये हुये पर पानी फेरने का प्रयत्न किया परन्तु सन् १८४८ई० का उदार आन्दोलन (Liberal Movement) इन्हीं सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष परिणाम था । इंगलैण्ड में यद्यपि राजनीतिज्ञों ने इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया पर वे भी समझ गये कि क्रान्ति की लहर दब जाने के बाद शासनपद्धति में सुधार करना ही होगा । दूसरे अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के औद्योगिक विकास ने समाज का रूप ही बदल दिया था । इस समय भी पार्लियामेण्ट में कुलीन व्यक्ति या उनके प्रतिनिधि ही सदस्य होते थे । मत दान का अधिकार बहुत थोड़े लोगों को प्राप्त था और पुराने नगरों के निवासी ही मत देने के अधिकारी होते थे । औद्योगिक उन्नति के परिणामस्वरूप नये बड़े बड़े औद्योगिक नगर बस गये थे जिनमें पुराने शहरों से या गाँवों से लोग आकर रहने लग गये थे इन नये नगरों के प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में न होते थे, दूसरी ओर उन स्वशासित नगरों (Boroughs) को बहुत से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था जिनकी जनसंख्या नये नगरों में लोगों के चले जाने से बहुत घट गई थी कहीं कहीं तो बैरनों (Barons) के मनोनित व्यक्ति ही प्रतिनिधि नियुक्त हो जाते थे । किन्हीं नगरों में कोई मतधारक (Voter) न होता था पर फिर भी उसके प्रतिनिधि पुराने कानून के आधार पर पार्लियामेण्ट में बैठते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि ये पौकिट (Pocket) और रोटेन (Rotten) नगर बड़े प्रभावशाली बने हुये थे पर बड़े-बड़े नगर जैसे बकिन्घम आदि बिना प्रतिनिधित्व के ही रह जाते थे । यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकती थी

क्योकि इससे नये समृद्धिशाली नगरो मे असन्तोष बढ रहा था। तीसरे, उन्नीसवी शताब्दी के दार्शनिकों व राजनीतिज्ञों ने जनता के सामने नये विचार प्रस्तुत कर दिये थे, जिससे ये लोग अपने सामाजिक अधिकारो के प्रति जागरूक हो गये थे।

सन् १८३२ के सुधार—अठारवी शताब्दी के अन्त मे भी कुछ राजनीतिज्ञों ने शासन पद्धति मे सुधार करने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हुये। परन्तु उन्नीसवी शताब्दी मे पुरानी पद्धति काम न दे सकती थी। इसलिये १२ दिसम्बर सन् १८३१ को लार्ड जोन रसैल (Lord John Russell) ने तीसरा सुधार विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया, (सन् १८३१ ई० में दो विधेयक पास न हो पाये थे) यह विधेयक हाउस आफ कामन्स में तीसरी बार २१ सितम्बर सन् १८३२ को पढा गया। लार्ड्स ने भी इसका विरोध करना उचित न समझा और जब राजा ने यह धमकी दी कि हाउस आफ लार्ड्स मे नये व्हिग पीयरो (Whig Peers) को बना कर विधेयक के समर्थको की संख्या बढा देगा तो इन लोगो ने उस विधेयक को पास कर दिया। इस अधिनियम (Act) से तीन प्रमुख परिवर्तन हुये। पहला यह कि ५६ पोकेट और रोटेन बरो जिनमे अलग-अलग २००० से कम व्यक्ति निवास करते थे उनके प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया। इन के १११ प्रतिनिधि हुआ करते थे। ये सब इस अधिनियम के द्वारा तोड दिये गये। दूसरे ३० बरो का एक-एक प्रतिनिधि तोड दिया गया। एक के दो प्रतिनिधि तोड दिये गये। इस प्रकार जो १४३ स्थान रिक्त हुये उनको उन काउन्टियों और बरो मे बाट दिया गया जिनका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेण्ट मे न होता था या जिनका प्रतिनिधित्व जनसख्या के आधार पर अपर्याप्त था। दूसरा यह है कि मताधिकार विस्तृत कर दिया गया। वे सब लोग जो १० पौण्ड प्रतिवर्ष किराया देते थे या जो ५० पौंड प्रति वर्ष के देने वाले पट्टेदार या आसामी थे उन सबको मताधिकार दे दिया-गया। तीसरा यह कि भ्रष्टाचार और बेईमानी को रोकने के लिये निर्वाचन के नियम बना दिये गये। इस प्रकार सन् १८३२ ई० के पश्चात् हाउस आफ कामन्स मे पहले से अधिक जनता का प्रतिनिधित्व होने लगा।

सामाजिक सुधारों की मांग—परन्तु १८३२ के सुधारो से उन लोगो को सन्तोष न हुआ जो श्रमजीविया और साधारण जनता के अधिकारो की रक्षा करना चाहते थे। सर रोबर्ट ओवेन (Sir Robert Owen) का चलाया हुआ एक आन्दोलन पहले से ही हो रहा था जिसमे कारखाने मे काम करने वाले व दूसरे श्रमजीवियों की दशा सुधारने की माग हो रही थी। यह एक अनाखीबात थी कि यह आन्दोलन एक ऐसे व्यक्ति ने आरम्भ किया जो स्वय स्कोटलैण्ड

मे एक कपडे के कारखाने का स्वामी था। सर रोबर्ट ओवन ने इस पर जोर दिया कि राज्य श्रमजीवियो के प्रति अपना कर्तव्य पालन करे। उसने स्वय ही इस ओर कदम उठाया और अपने कारखाने मे से १० साल से नीची उम्र वाले काम करते हुये बच्चो को हटा दिया, वयस्को के लिये काम करने का समय कम करके निश्चित् कर दिया, मजदूरो के लिये स्वास्थ्यवर्द्धक घर और प्रमोदोद्यान बनवाये और उनकी प्रतिदिन की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये सहकारी समितियाँ बनवाई। उसने दो पुस्तके लिखी और प्रकाशित की, एक "न्यू व्यू आफ सोसायटी" (A New View of Society) सन् १८१३ ई० मे और दूसरी "एक बुक आफ दी न्यू मोरल वर्ल्ड" (A Book of the New Moral World) सन् १८३६–४४ ई० मे, इन पुस्तको मे सामाजिक सुधार के सिद्धान्तो का विवेचन किया। सन् १८३६ ई० मे "लन्दन वर्कमेन्स एसोसियेशन" (London Workmen's Association) की स्थापना हुई जिसका कार्यक्रम उसके द्वारा निकाले हुये "पीपल्स चार्टर" (People's Charter) में दिया हुआ था।

चार्टिस्ट आन्दोलन (The Chartist Movement)–उपर्युक्त चार्टर का उद्देश्य साधारण जनता के हितो का साधन करना था, इसीलिये उसका नाम पीपिल्स चार्टर अर्थात् जनसाधारण का अधिकार-पत्र पडा। इस अधिकार-पत्र को प्रकाशन करने वाली सभा ने सारे देश के श्रमिको से इन शब्दो मे अपने उद्देश्यो का स्पष्टीकरण किया—"यदि हम राजनीतिक अधिकारो की समानता के लिये लड रहे है तो इसका यह तात्पर्य नही है कि हम किसी अन्याय-पूर्ण कर को हटाना चाहते है या सम्पत्ति, शक्ति व प्रभाव को किसी दल के हाथ मे दूसरो से छीन कर रखना चाहते है। हम यह सब इसलिये करते है जिससे हम अपने सामाजिक कष्टो के स्रोत को सुखाने मे सफल हो और धीरे धीरे निवारण करते हुये हम अन्यायपूर्ण कानूनो के दण्ड से बच जाय।" इस अधिकार-पत्र के अनुगामी अपने को "चार्टिस्ट" कह कर पुकारते थे और उनका आन्दोलन "चार्टिस्ट आन्दोलन" के नाम से प्रसिद्ध है। इस चार्टर की मुख्य मागें ये थी.—सब वयस्को को मताधिकार मिलना चाहिये, पार्लियामेण्ट के सदस्यो का निर्वाचन प्रति वर्ष हो, निर्वाचन क्षेत्र समान माप के हो, गुप्त रीति से मतदान हो (जिससे मत देते समय धनी लोग छोटे लोगो पर अनुचित दवाव न डाल सके), पार्लियामेट की सदस्यता के लिये कोई सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता न हो और पार्लियामेण्ट के सदस्यो को वेतन मिले, जिससे निर्धन लोग भी निर्वाचन के लिये खडे हो सके और देश के शासन प्रबन्ध मे

अच्छी तरह हाथ बटा सकें। लिबरल (उदार पक्ष) और कन्जरवेटिव (रूढ़ि-वादी पक्ष) दोनों पक्षों ने मिल कर इस आन्दोलन का विरोध किया और फलतः वह कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ गया।

सन् १८६७ ई० का द्वितीय सुधार ऐक्ट—यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन का तुरन्त ही कोई प्रभाव न दिखाई पड़ा पर इसमें जिन सुधारों की मांग की गई वे बहुत समय तक रोके न जा सके। सन् १८३२ के अधिनियम (ऐक्ट) से तत्कालीन समस्याओं का समाधान न हो सका। परिस्थिति उस समय बहुत बदल चुकी थी, उद्योग की बराबर उन्नति हो रही थी और उपयोगितावाद (Utilitarianism) की धूम थी जिसका सिद्धान्त यह था कि अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख ही समाज का उद्देश्य है। इन सब के परिणामस्वरूप सन् १८६७ में द्वितीय सुधार-ऐक्ट पास हुआ। इससे पार्लियामेंट ने मताधिकार को और विस्तृत कर दिया। नगर में मताधिकार (Borough franchise) उन सब लोगों को दे दिया गया जो मकान बना कर एक वर्ष तक नगर में रहे हों और दरिद्र पोषणार्थ जो कर लगाया जाता था उसे चुकाया हो। वे लोग जो किरायेदार की तरह रहते थे उनको भी मताधिकार दिया गया यदि वे १० पौंड मकान का किराया देते थे। ग्यारह नगरों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया और ३५ नगरों में प्रत्येक का प्रतिनिधित्व दो से घटा कर एक कर दिया गया। इस प्रकार जो स्थान खाली हुये वे बड़े नगरों को दे दिये गये। इस ऐक्ट से अल्पसंख्यकों को भी कुछ प्रतिनिधित्व मिल गया।

सन् १८८४ का सुधार-ऐक्ट—दूसरे सुधार ऐक्ट के चार वर्ष बाद सन् १८७२ ई० में फिर और सुधारों के लिये आन्दोलन उठा। उदार पक्ष के लोग जो अब लिबरल कहलाने लगे थे मताधिकार को और बढ़ाने की मांग करने लगे। वे कहते थे कि निर्वाचन क्षेत्र बराबर माप के हों और पार्लियामेण्ट के सदस्यों को वेतन दिया जाय। ग्लैडस्टोन (Gladstone) उस समय प्रधान मन्त्री था। उसने सुधार करने की मांग स्वीकार करली और ६ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को तृतीय सुधार ऐक्ट पास हो गया। इस ऐक्ट का सरकारी नाम "रिप्रजेन्टेशन आफ पीपल्स ऐक्ट, १८८४" था। इस ऐक्ट से काउण्टी (जिला) में भी वही मताधिकार दे दिया गया जो सन् १८६७ ई० के ऐक्ट से नगरों के लिये दिया गया था। इस ऐक्ट से गांव के श्रमजीवियों को भी मताधिकार मिल गया। इस ऐक्ट के पास होने से बीस लाख व्यक्तियों को मताधिकार मिला।

रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स ऐक्ट १८८५ (Redistribution of Seats Act 1885)—जब मतधारकों की संख्या बढ़ गई तो यह आवश्यक समझा गया कि निर्वाचन-क्षेत्रों को फिर से बनाया जाय। इसके लिये सन् १८८५ का रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स एक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट से पहले जो एक निर्वाचन क्षेत्र से दो प्रतिनिधि निर्वाचित होने की प्रथा थी वह तोड़ दी गयी और नये एक-प्रतिनिधि-निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये। परन्तु २२ नगर और आक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय प्रत्येक दो प्रतिनिधि चुन सकते थे। इनको छोड़कर दूसरे जो बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्र थे उनको काट छांट कर एक-प्रतिनिधि-निर्वाचन क्षेत्रों में बदल दिया गया। यद्यपि सन् १८३९ का चार्टिस्ट आन्दोलन दबा दिया गया था पर उसकी बहुत सी मांगें सन् १८८५ ई० तक पूरी कर दी गईं।

स्थानीय-शासन में सुधार—स्थानीय शासन में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कई सुधार हुये। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक स्थानीय शासन कुलीनों के हाथ में था। लार्ड लैफ्टिनैण्ट (Lord Lieutenant) की सलाह से राजा कुलीन घराने के व्यक्तियों को जिलों में शान्ति और न्याय स्थापित करने के लिये नियुक्त करता था। सन् १८३५ ई० में एक म्यूनिसिपल कौरपोरेशन ऐक्ट (Municipal Corporation Act) पास हुआ जिससे इन कुलीन सत्ताओं को हटा कर उनके स्थान पर मेयर (Mayor), एल्डरमैन (Aldermen) और कौंसिलर्स (Councillors) को सारे अधिकार सौंप दिये। सन् १८८८ में लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट (Local Government Act) पास हुआ। इस ऐक्ट से जिलों में पुरानी स्थानीय शासन-पद्धति तोड़ दी गई और उसके स्थान पर लोक निर्वाचित ज़िला संस्थायें बना दी गईं। इस ऐक्ट का प्रमुख उद्देश्य यही था कि जो नगर-शासन-पद्धति आत्म-शासित नगरों (Boroughs) में ही पहले प्रचलित थी वही पद्धति ज़िलों में भी प्रचलित कर दी जाय। प्रत्येक ज़िले की संस्था एक कौरपोरेशन बना दी गई। सन् १८९४ ई० के लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट (Local Government Act) ने प्रत्येक एडमिनिस्ट्रेटिव काउण्टी (Administrative County) को नागरिक और ग्राम्य छोटे जिलों में बांट दिया। इन ऐक्टों से जो स्थानीय शासन का रूप निश्चित हुआ वह बिना अधिक हेर फेर के अभी तक चला आ रहा है।

बीसवीं शताब्दी के सुधार—सन् १९११ ई० मे हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स मे जो मतभेद हुआ उससे व प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के फलस्वरूप प्रजातन्त्र की बढती हुई लहर मे जो वैधानिक सुधार हुये उनका विस्तृत विवरण आगे जहा व्यवस्थापिका सभाओ और स्थानीय शासन के सम्बन्ध मे लिखा गया है, किया जायगा।

न्याय-पद्धति का सुधार—पूर्व अध्याय मे यह बतलाया जा चुका है कि हेनरी प्रथम के समय मे इगलेण्ड मे न्याय पद्धति का किस प्रकार विकास हुआ। पर यह स्पष्ट है कि इन विकास मे कोई क्रम न था। फलत विभिन्न प्रकार के मुकदमो के लिये पृथक् पृथक न्यायालय स्थापित कर दिये गये थ। सन् १८७३ ई० मे पार्लियामेण्ट ने सुप्रीम कार्ट आफ ज्यूडीकेचर (Supreme Court of Judicature) ऐक्ट पास किया जिसमे न्यायपालिका का पुनर्संगठन हुआ। सबसे ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय बनाया गया। क्वीन्स बच (Queen's Bench) का न्यायालय, कोमन प्लीज (Common Pleas), एक्सचकर (Exchequer), चासरी (Chancerry), एड-मिरल्टी (Admiralty) और प्रोबेट व डाइवोर्स (Probate and Divorce) के न्यायालय जो अब तक स्वतन्त्र थे अब सर्वोच्च न्यायालय के अग बना दिये गये और एक नया पुनर्विचार करने वाला न्यायालय भी बना दिया गया। कानून सम्बन्धी व साधारण न्याय (Equity) वाले दोनो तरह के मुकदमे एक ही न्यायालय मे सुने जाने लगे।

पाठ्य पुस्तकें

लगभग इंगलैण्ड के इतिहास की प्रत्येक पुस्तक अंगरेजी शासन विधान के विकास का वर्णन करती है और उसमे सम्राट्, मन्त्रिमण्डल, विधान मडल स्थानीय शासन और न्यायपालिका आदि का उल्लेख रहता ही है। फिर भी निम्नलिखित पुस्तको का अध्ययन लाभदायक सिद्ध होगा।

Adams, G. B.—Constitutional History of England (1934 Edition).
Bagehot, W—Evolution of Parliament
Cross, A. L.—Short History of England and Greater Britain.

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1939 Edition).

Maitland, F. W.—Constitutional History of England.

Montague, F. C.—Elements of English Constitutional History.

Pollard, A. F.—The Evolution of Parliament.

Puntambekar, S. V.—English Constitutional History (2 vols., 1935).

Smith G. B.—History of Engligh Parliament (2 vols., 1892).

Taswell-Langmead, T. P.—English Constitutional History (9th ed).

Taylor, H.—Origin and Growth of English Constitution (2 vols., 1898).

Usher, R. G.—Institutional History of the House of Commons, 1547-1641 (1924).

White A. B.—The Making of the English Constitution (1925).

अध्याय ५

अङ्गरेज़ी शासन-विधान के विशेष लक्षण

'वैधानिक सिद्धान्त और उसके भिन्न भिन्न आकार केवल अव्यक्त बुद्धि की क्रीड़ा भूमि नहीं है। वे एक ऐसे साधन हैं जो किन्हीं निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये काम में लाये जाते हैं और उस अभिप्राय की सिद्धि के अनुकूल ही उनका रूप निर्धारित किया जाता है। जिस उदार भावना की अभिव्यक्ति सब से प्रथम लॉक ने की, उसकी ही संस्थात्मक अभिव्यंजना इंगलैण्ड के ढाई सौ वर्ष पुराने राज्य के रूप हुई।' (एच० जे० लास्की)

'हमारे शासन विधान का सार विधि (Law) है जिसका आदर किया जाता है और जो लागू किया जाता है। हमारे देश के विधि-निर्बन्ध और न्यायालय व पार्लियामेण्ट का सर्वोच्च न्यायालय इन सब के विकास का श्रेय मध्ययुगीन अंगरेज़ी राजाओं और उनके भृत्यों को है।' (जी० एम० ट्रैविलियन)

पिछले अध्याय में जो अंगरेज़ी शासन विधान का संक्षिप्त इतिहास वर्णन किया गया है उससे यह भली भांति प्रकट है कि अंगरेज़ी शासन विधान की प्रमुख विशेषता यह है कि उसका क्रमिक विकास हुआ है। इंगलैण्ड के इतिहास में किसी समय भी यह दिखाई नहीं पड़ता कि वहां के निवासियों ने कोई बड़ा परिवर्तन सहसा ही कर डाला हो और राजनैतिक पद्धति और संस्थाओं को बिलकुल नये सिरे से प्रारम्भ किया या संगठित किया हो। क्रौमवैल के समय में जो थोड़े समय के लिये गृहयुद्ध के फलस्वरूप कौमनवैल्थ की नवीनता रही वह उपर्युक्त नियम का केवल अपवाद ही कहा जा सकता है। कई शताब्दियों के इस लम्बे क्रमिक विकास में प्रत्येक परिस्थिति अपना निजी प्रभाव राजकीय संस्थाओं पर छोड़ गई। इसलिये अंगरेज़ी शासन-विधान का चित्र उस भवन के चित्र से भिन्न दिखाई पड़ेगा जिसको पूर्व कल्पित अभिप्राय से विचारपूर्वक किसी एक शिल्पी ढंग पर बनाया गया हो। यह तो उस पुरानी गढ़ी के समान है जिसमें प्रत्येक आने वाली पीढ़ी ने अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार कोई भीत या बुर्ज जोड़ दिया हो और इस बात का ध्यान न रक्खा हो कि ऐसा करने से भवन

की सुडौलता बनती या बिगड़ती है। इसलिये राजनीति-विज्ञान के विद्यार्थी की अंगरेज़ी विधान को एक स्थान पर पाने की अभिलाषा पूरी न हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

अंगरेजी शासन-विधान एक लेख्य नहीं—आजकल प्राय: सभी राष्ट्रों में कोई एक लेख्य होता है जिसमें उस राष्ट्र के शासन-सम्बन्धी मुख्य मुख्य सिद्धांत लिखे रहते हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र का शासन-विधान उस एक लेख्य में पाया जाता है जो फिलाडेलफिया के अभिसमय (Convention) में तैयार हुआ और जिसको उपराज्यों ने स्वीकार कर लिया था। इस लेख्य में थोड़े से संशोधन जो बाद में हुये, जोड़ने से शासन-विधान का पूरा चित्र हमारे सामने आ जाता है। सन् १८७५ ई० के तीन आर्गेनिक विधियों (Organic Laws) में फ्रान्स के शासन-विधान की रूपरेखा देखने को मिल सकती है, पर अंगरेज़ी शासन-विधान किसी एक लेख्य या पार्लियामेण्ट से बनाये हुये कानून से नहीं जाना जा सकता, इसका परिचय पाने के लिये हमको उन सब सिद्धान्तों की जानकारी करनी पड़ेगी जो सन् १२१५ ई० के मैग्ना कार्टा (Magna Carta) से लेकर सन् १९३६ ई० के राज्य त्याग ऐक्ट तक पार्लियामेण्ट ने बनाये हैं। परन्तु यदि विधान के बड़े बड़े सिद्धान्तों वाले प्रमुख कानूनों की ही गिनती की जाय तो वे ये हैं :—

मैग्ना कार्टा (Magna Carta 1215)—इससे राजा के अधिकार कम कर दिये गये क्योंकि इसके द्वारा बैरनों और पादरियों के कुछ अधिकार सुरक्षित हो गये, कर लगाने पर सम्मति प्रकट करने के लिये एक राष्ट्रीय परिषद् (National Council) का बुलाया जाना आवश्यक कर दिया और इससे २५ बैरनों की एक परिषद् बना दी गई जिसका काम यह था कि वह यह देखभाल करे कि इस चार्टर (Magna Carta) की शर्तों को क्रियात्मक रूप दिया जाय।

पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights, 1628)—इसके द्वारा मैग्ना कार्टा से प्रदत्त अधिकारों की पुन: घोषणा की गई। पार्लियामेण्ट की सम्मति के बिना स्वेच्छा से राजा जो कर लेता था, उस अधिकार को समाप्त कर दिया और बिना परीक्षा व विचार किये और कारण समझाये किसी व्यक्ति को बन्दी बनाने के राजा के अधिकार को अस्वीकृत कर दिया।

हैबियस कोर्पस ऐक्ट (Habeas Corpus Act, 1679)—इसमे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा हुई। यद्यपि वयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत प्राचीन समय से मान्य था पर उसकी प्राप्ति के उपाय दोषपूर्ण व अपर्याप्त थे। इस ऐक्ट ने उन सब असुविधाओ व दोषो को दूर कर दिया और लोगो को एक ऐसे महत्त्वपूर्ण अधिकार का लाभ कराया जो दूसरे देशो मे स्वयं शासन-विधान मे उल्लिखित रहता है।

बिल आफ राइट्स (Bill of Rights, 1689)—यह ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) का परिणाम था। मेकाले के कथनानुसार इस क्रान्ति ने अन्तिम बार इस प्रश्न का निबटारा कर दिया कि लोकतत्व जो अंगरेजी राजकीय जीवन मे फिट्जवाल्टर और डि मौन्टफोर्ड के समय मे उत्पन्न हुआ, राजतत्व से दब जायगा या उसको धीरे धीरे बढने की स्वतन्त्रता मिलेगी जिसमे वह प्रबल हो कर सब पर अपना प्रभुत्व करने के योग्य हो जाय। मेकाले ने आगे चल कर कहा कि यद्यपि बिल आफ राइट्स ने कोई ऐसा कानून नही बनाया जो पहले न था पर उसमे उन सब अच्छे कानूनो का अकुर था जो पिछली डेढ शताब्दी मे पास हो चुके थे, या जो अच्छे कानून भविष्य मे समाज की उन्नति व कल्याण के लिये आवश्यक समझे जायें और जिनसे जन-मत सन्तुष्ट होता हो।

दी ऐक्ट आफ सैटिलमेंट (The Act of Settlement, 1701)—यह वास्तव मे राजा और प्रजा के बीच एक प्रकार का प्रारम्भिक ठेका था क्योकि इसने राजा के दैवी अधिकार को अमान्य ठहरा दिया और पार्लियामेण्ट के इस अधिकार को मान्य कर दिया कि वह राज्यसिंहासन पर बैठाने के लिये उत्तराधिकारी का निर्णय करे।

दी ऐक्ट आफ यूनियन (The Act of Union 1707)—इस ऐक्ट से इगलैण्ड और स्कौटलैण्ड को मिला कर यूनाइटेड किंगडम आफ ग्रेट ब्रिटेन (United Kingdom of Great Britain) की स्थापना की गई।

दी ऐक्ट आफ यूनियन विद् आयर्लैंड (The Act of Union with Ireland, 1800)—इस ऐक्ट से आयरलैण्ड को इगलैण्ड से नियमित रूप से सयुक्त कर दिया गया जिसमे पार्लियामेण्ट के संगठन मे कुछ परिवर्तन हुआ।

दी रिफार्म्स ऐक्टस (The Reforms Acts of 1832, 1867, 1884 and 1885)—इनसे मताधिकार विस्तृत हुआ जिससे हाउस आफ कामन्स वास्तव में लोक प्रतिनिधि सभा बनी।

रिप्रेज़ैन्टेशन आफ दी पीपल ऐक्टस (Representation of the People Acts of 1918 and 1928)—इनसे हाउस आफ कामन्स के लिये वयस्क मताधिकार दे दिया गया।

लोकल गवर्नमेंट ऐक्टस (Local Government Acts of 1888, 1894 and 1929)—इनसे स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना व उन्नति हुई क्योंकि इनसे उन प्राचीन शासन संस्थाओं का पुन-संगठन हुआ जो प्रायः आकस्मिक ढंग से स्थापित हो गई थीं। इनके द्वारा देश में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक निश्चित पद्धति का प्रचार हुआ।

दी जुडीकेचर ऐक्टस (The Judicature Acts of 1873, 1875, 1876 and 1894)—इनसे न्यायपालिका का पुनर्संगठन हुआ व न्यायक्षेत्र में जो अन्धाधुन्धी चलती आ रही थी उसके स्थान पर एक अच्छी व्यवस्था स्थापित हो गई।

पार्लियामेंट ऐक्ट (The Parliament Act of 1911)—इस ऐक्ट से हाउस आफ लार्ड्स के अधिकार कम कर दिये गये जिससे हाउस आफ कामन्स ही सर्वप्रमुख सदन बन गया।

अंगरेज़ी शासन-विधान के सिद्धान्तों के परिचायक अधिनियमों (Acts) में से प्रमुख अधिनियमों का ही वर्णन ऊपर किया गया है। इस वर्णन से विधान का मोटा स्वरूप समझ में आ जाता है। परन्तु शासन विधान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी का इनसे ही काम नहीं चल सकता। इसे पूरी तरह हृदयंगम करने के लिये उसे पार्लियामेंट के अभिलेखों (Records) और अनेक छोटे अधिनियमों की छानबीन करनी पड़ेगी। जैसा मैरियट (Marriot) ने कहा है "शासन विधान की निर्वाक्ता और अस्पष्टता को देख-कर विदेशी लोग हैरान भी रहते हैं और प्रशंसा भी करते हैं। स्थान स्थान पर उनको प्रमाणिक लेखों की अनुपस्थिति खटकती है पर फिर भी वे अपने सरल स्वभाव के कारण अंगरेज़ी पद्धति की उपयोगिता को देखते और उसका समर्थन करने से नहीं चूकते।" शासन-विधान के बनाने में अंगरेज़ों ने अपने परम्परागत स्व-भाव का परित्याग नहीं किया है और कभी भी ऐसा परिवर्तन करने का साहस

नहीं किया जिससे उनका अपनी पुरानी संस्था और परिपाटी से सम्बन्ध टूट जाता हो। प्रत्येक आगे आने वाली परिस्थिति में उन्होंने केवल उतना ही परिवर्तन करना ठीक समझा जितने से नई परिस्थिति का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके। इस लक्षण को बौटमी (Boutmy) ने इन शब्दों में बड़ी भली प्रकार समझाया है :—

"अंगरेज़ों ने अपने शासन-विधान के भिन्न भिन्न भागों को वहीं छोड़ दिया जहाँ इतिहास की लहर ने उन्हें लाकर डाल दिया। उन्होंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थानपर इकट्ठा कर लिया जाय या उनका वर्गीकरण किया जाय और यदि कभी कभी दिखाई पड़े तो उसे पूरा कर लिया जाय। मूल लेखों के अन्वेषकों व परीक्षकों को इस बिखरे हुए संविधान में कोई सहारा नहीं मिलता। जो आलोचक भूलों की ओर उंगली उठाने के लिये व्यग्र हों उन्हें पर्याप्त सामग्री मिल सकती है, व जो सिद्धान्त विरोधी नियमों को धिक्कारने के लिये उत्सुक हों उन्हें भी कोई भय नहीं, उन्हें भी अपनी उत्सुकता, पूरी करने का इस विधान में पूरा अवसर प्राप्त हो सकता है। इन्हीं भूलों व विरोधों से सुखमयी असम्बद्धता, उपयोगी असंगतियाँ रक्षा करने वाले विरोध सुरक्षित रखे जा सकते हैं। उनका मानव संस्थाओं में सुरक्षित रहना भी अहैतुक नहीं है क्योंकि प्रथम तो वे प्रकृति में ही वर्तमान हैं, इसके अतिरिक्त इनके होने से सामाजिक शक्तियों को क्रियात्मक होने का पूरा अवसर प्राप्त होने के साथ ही साथ अपनी मर्यादा को उल्लंघन करने का साहस नहीं होता, न उन्हें यह अवसर मिलता है कि सारे सामाजिक मन्दिर की नींव हिला दें। अंगरेज़ों ने अपने संवैधानिक लेखों को बखेर कर जो यह लाभ प्राप्त किया है उस पर उन्हें अभिमान है और वे सतर्क रहे हैं कि संविधान को एक स्थान पर एकत्रित व सुसम्बद्ध कर इस लाभ को खो न दिया जाय।"

अलिखित संविधान—यही निर्बाधता और अस्पष्टता व संविधान के दूर दूर बिखरे हुये टुकड़ों का होना, अंगरेज़ी शासन विधान को अलिखित संविधान का लक्षण प्रदान करता है। अंगरेज़ी शासन-विधान के अलिखित कहे जाने का अभिप्राय यह है कि संविधान किसी एक अधिनियम या लेख्य में नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त सब अधिनियमों को जोड़ कर रखने से भी इस संविधान का पूर्ण रूप नहीं जाना जा सकता क्योंकि बहुत सी वैधानिक बातें अंगरेज़ी राजकीय समाज की परिपाटी, रीति-रिवाजों आदि में निहित हैं।

यह प्रश्न उठता है कि इन अंगरेज़ी समाज की रीति-रिवाजों का क्या महत्व है? इस प्रश्न का उत्तर यों दिया जा सकत है। इंगलैण्ड में नियमबद्ध

कानून और वैधानिक-व्यवहार में बहुत अन्तर है, जिन विधि निर्बन्धों में दिये हुये सिद्धान्तों के अनुसार शासन विधान का ऊंचा भवन बन कर तैयार हुआ है, उनमें बहुत कुछ हट कर शासन पद्धति कार्यरूप होती है। पार्लियामेण्ट के विधि-निर्बन्धों से बहकने का उत्तरदायित्व इन्हीं रीति-रिवाजों को है। इन संवैधानिक रीति-रिवाजों या प्रथाओं का अर्थ क्या है? प्रथायें नियम तो हैं पर वे कानून का निर्बन्ध नहीं हैं जो किसी देश के शासन-विधान के अंग हुआ करते हैं। आचार्य डायसी ने इन प्रथाओं की इस प्रकार परिभाषा की है—"ये वे सिद्धान्त या व्यावहारिक नियम हैं जो यद्यपि राजा, मन्त्रियों और दूसरे शासन पदाधिकारियों के कार्यों का नियंत्रण करते हैं पर वास्तव में वे कानून नहीं हैं।" इस परिभाषा को स्पष्ट करने के लिये वह इन प्रथाओं के उदाहरण भी उपस्थित करता है। पहला यह कि राजा पार्लियामेंण्ट के दोनों भवनों से पास किये हुये कानून को स्वीकार करने पर बाध्य है, उसे वह अस्वीकृत नहीं कर सकता।" दूसरा "हाउस आफ कामन्स के विश्वासपात्र न रहने पर मन्त्रियों को पदत्याग कर देना चाहिये।" पहले उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार कानून से मान्य राजा की विधायिनी शक्ति (Legislative Power) व्यवहार में उससे छीन ली गई है। दूसरे उदाहरण से यह प्रकट है कि यद्यपि संवैधानिक नियम के अनुसार राजा ही मन्त्रियों की स्वेच्छा से नियुक्ति करता है पर वे वास्तव में हाउस आफ कामन्स को उत्तरदायी हैं, जिसका व्यवहार में मतलब यह हुआ कि राजा उन्हीं व्यक्तियों को मन्त्री चुन सकता है जो कामन्स के विश्वासपात्र हैं।

इस प्रकार संवैधानिक प्रथायें इंगलैण्ड में बड़ा महत्व रखती हैं। इन प्रथाओं व कानूनों में केवल अन्तर यही है कि कानून लिखित हैं और प्रथायें अलिखित। इंगलैण्ड में संवैधानिक सम्बन्धों में प्रमुख सम्बन्ध प्रथाओं से ही मर्यादित हैं और इनके कारण कानून का रूप ही बदल जाता है।

संविधान का लचीलापन—अलिखित होने से और इसके व्यवहाररूप होने में प्रथाओं का बड़ा महत्व रहने के कारण, अंगरेज़ी शासन-विधान बड़ा लचीला है। वैसे तो सभी एकात्मक (Unitary) शासन-विधान लचीले होते हैं अर्थात् साधारण कानून की तरह से उनमें परिवर्तन व संशोधन हो जाता है परन्तु इंगलैण्ड का शासन-विधान जो मूलतः एकात्मक है, संसार के वर्तमान शासन संविधानों में सबसे अधिक लचीला है, यह लचीलापन इस बात में नहीं है कि वह साधारण प्रणाली के द्वारा बदला जा सकता है वरन् यह लचीलापन

इस बात में भी है कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल झट उसका उपयोग हो सकता है। पार्लियामेण्ट की विधायिनी प्रभुता इतनी अधिक ऊंची है कि वह किसी भी विधि-निर्बन्ध को बना सकती है चाहे उसका सम्बन्ध सड़क के कूर की चौकी से, हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के परिवर्तन से या किसी अंग्रेज़ी उपनिवेश को स्वतन्त्रता देने से हो। इन सब के लिये एक ही प्रणाली अपनाई जाती है, किसी विशेष पद्धति का अनुकरण नहीं करना पड़ता। संविधान में परिवर्तन करने के लिये किसी विशेष पद्धति को अपनाने की आवश्यकता न होने के कारण संविधान प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल सहज ही बनाया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सन् १९३६ ई० का राजत्याग ऐक्ट (Abdication Act) था। उपस्थापित होने के आधे घण्टे के भीतर ही यह ऐक्ट पास हो गया और पार्लियामेण्ट ने एक राजा के राजत्याग को वैध बना दूसरे को राजमुकुट पहना दिया। किसी देश में ऐसा परिवर्तन करने के लिये एक बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता हो जाती पर इंगलैण्ड में अष्टम एडवर्ड के राजसिंहासन छोड़ने से राजकीय क्षेत्र में ज़रा सी भी उथल पुथल नहीं हुई। यह सब इंगलैण्ड के शासन विधान के लचीलेपन के कारण ही सम्भव हो सका था।

शासन विधान से स्थापित पार्लियामेंटरी प्रजातंत्र—शासन संगठन की चोटी पर राजा के आसीन होने से और जैसी उसकी ख्याति व कीर्ति है उससे साधारण दृष्टा को यह धारणा होती कि इंगलैण्ड का शासन-विधान राजसत्तात्मक (Monarchic) ढंग का है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है और संसदात्मक (Parliamentary) प्रजातन्त्र सरकार की ही स्थापना की गई है। कुछ लोग इसे नियंत्रित राजसत्ता कहते हैं, दूसरे इसे राजसत्तात्मक-प्रजातन्त्र (Monarchic Democracy) कह कर वर्णन करते हैं। यह ठीक है कि सिद्धान्ततः राजा ही विधायिनी, कार्यपालिका व न्यायपालिका शक्ति का स्वामी है, पर संवैधानिक प्रथाओं व कुछ कानूनों ने केवल उसे राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष भर ही रहने दिया है। पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च प्रभुता से संसदात्मक कार्य-पालिका (Parliamentary Executive) का जन्म हुआ मन्त्रिपरिषद् यद्यपि राजा द्वारा नियुक्त होती है पर वास्तव में वह कामन्स को उत्तरदायी है। यह सब उस संवैधानिक संघर्ष का फल है जो अप्रत्यक्ष रूप से कई शताब्दियों तक चलता रहा था।

राजनीतिक पक्ष प्रणाली—यदि संसदात्मक सरकार को सर्व प्रथम जन्म देने का श्रेय इंगलैण्ड को दिया जाता है तो उसकी अनुगामिनी पक्ष-प्रणाली (Party System) के विकास का भी श्रेय उसी को है। पक्ष-

प्रणाली वास्तव में संसदात्मक कार्यपालिका या सरकार की सफलता के लिये नितान्त अवश्यक है। पिछले अध्याय में यह वर्णन हो चुका है कि इंगलैण्ड में विभिन्न राजनीतिक दलों का आविर्भाव किस प्रकार हुआ। किसी भी सूक्ष्मदर्शी अंगरेज़ी शासन विधान के विद्यार्थी को यह स्पष्ट हो जायगा कि विधानमण्डल में बिना राजनैतिक पक्षों के बने संसदात्मक सरकार का बनना असम्भव है।

अंगरेज़ी शासन विधान इस प्रकार एक विकसित पक्ष प्रणाली पर आधारित है। इंगलैण्ड में साधारण निर्वाचन के समय प्रारम्भ होने वाला राजनैतिक संघर्ष अमरीका के समान निर्वाचन के बाद समाप्त नहीं हो जाता। यह लड़ाई पार्लियामेण्ट के भीतर जारी रहती है जहां लगभग प्रत्येक प्रश्न पर सम्राट की सरकार व सम्राट का विरोधी दल बुद्धिरूपी तलवारों से लड़ते हैं और अपनी अपनी बात पक्की करने का प्रयत्न करते हैं। कार्यपालिका के ऊपर संसद् के नियन्त्रण का मूलमन्त्र ही यही है कि संसद् में सुसंगठित व अनुशासित राजनीतिक पक्ष हों।

संसदात्मक कार्यकारिणी के सफल-कार्य होने के लिये दो और, केवल दो ही पक्ष आवश्यक हैं। इंगलैण्ड में बहुत समय तक उदार और अनुदार अथवा रूढ़िवादी दो ही पक्ष थे। पर बाद में सामाजिक और राजनीतिक छोटे छोटे भेदों के कारण ही दूसरे दल बन गये। ये नये दल रैडिकल (Radicals), होम रूलर्स (Home Rulers), यूनियनिस्ट (Unionists), लेबराइट्स (Labourites) और कम्यूनिस्ट (Communists) नामों से प्रसिद्ध हुये। पर इस समय तीन राजनीतिक दल हैं जो अच्छी तरह संगठित हैं, जिनके प्रतिनिधियों की पार्लियामेण्ट में अच्छी संख्या है और जिनका निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम है। ये तीन राजनीतिक दल, अनुदार अथवा रूढ़िवादी (Conservative), उदार (Liberal) और श्रम (Labour) हैं। हम यहाँ उन सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे जिन पर इन तीनों पक्षों का संगठन हुआ है और जिनके कारण यह एक दूसरे से भिन्न हैं।

अनुदार पक्ष (Conservative Party)—कुछ समय पहले इंगलैण्ड में अनुदार दल की संख्या सब से अधिक थी। "कन्ज़रवेटिज़्म के सारभूत तत्व उन संस्थाओं में मिलेंगे जिनका यह समर्थन करती है या इसके प्रगति-सम्बन्धी दृष्टिकोण से। सामाजिक संस्थाओं में कन्जरवेटिव पक्ष वाले लोग राजा, राष्ट्रीय एकता, ईसाई-धर्म-संघ (Church), एक शक्तिशाली शासक-वर्ग और वैयक्तिक सम्पत्ति की राज्य के हस्तक्षेप से स्वतन्त्रता इन सब बातों के

समर्थक हैं।"× अनुदार पक्ष के लोग यदि पार्लियामेण्ट से अधिक नहीं तो कम से कम उसके समान ही राजा को राष्ट्र व साम्राज्य की एकता का प्रतीक समझते हैं। राजा के प्रति उनकी भक्ति और उनका प्रेम ईश्वर-भक्ति से कुछ ही कम होगा। वे राष्ट्र भावना से पूरी तरह अभिप्रेत रहते हैं और दूसरे राष्ट्र या वर्ग को बिलकुल अविश्वास भरी दृष्टि से देखते हैं। इस पक्ष के लोगों का विश्वास है कि उनकी जाति सब जातियों में श्रेष्ठ है। यहां तक कि युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की जातियों को भी वह अपने बराबर स्थान नहीं देते। उन्हें अपनी राजकीय संस्थाओं व परम्पराओं की विशिष्टता पर भी बड़ा विश्वास और गर्व है। उनकी धारणा है कि उनकी जाति को ईश्वर ने दूसरे लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी सभ्य बनने के लिये भेजा है। वे अपने इस कार्य को सम्पादित करने में हिंसा व राक्षसी क्रूरता का भी उपयोग करने से नहीं हिचकते। देश की रक्षा और उसको महान् बनाने वाली बातों को प्रशंसा द्वारा ऊंचा उठाने में उनकी यह राष्ट्रीयभावना व्यक्त हुआ करती है। महान् बनाने से उनका अभिप्राय राष्ट्र समृद्धि और सामरिक शक्ति को बढ़ाने से ही होता है न कि आत्मोन्नति से······। साम्राज्य तो उनका जीवन है क्योंकि साम्राज्य से जाति की उस सामर्थ्य का निर्देश होता है जिससे वह दूसरों पर अपनी प्रभुता बढ़ाने में सफल होती है और उस सफलता को वे सारी आध्यात्मिक उन्नति का पर्यायवाची समझते हैं।*

इन सब बातों से स्पष्ट है कि कन्जरवेटिव दल के लोग वैदेशिक नीति में एक दृढ़ और सतत् बढ़ने वाले सम्राज्य के समर्थक हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं।

अनुदार पक्ष और ईसाई धर्म-संघ—ये लोग हमेशा से इंगलैण्ड के राष्ट्रीय ईसाई धर्म-संघ के भक्त रहे हैं, क्योंकि यह संघ प्रारम्भ से ही एक रूढ़िवादी संस्था रही है। टोरियों (जो कन्जरवेटिव लोगों के पूर्वगामी थे) की तो आवाज़ ही यह थी—"यदि विशप नहीं तो राजा नहीं।" ये संघ के आसन को ऊंचा रखने के लिये सत्रहवीं शताब्दी में राजनैतिक लड़ाइयां भी लड़ चुके थे।

अनुदार पक्ष और समाज—सामाजिक क्षेत्र में इस पक्ष के लोग सदा से एक शासक-वर्ग के होने के समर्थक रहे हैं। उनकी धारणा यह है कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जो इतने कुशल हैं कि उन्हें बिना लोकेच्छा का सहारा लिये शासन

× फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेण्ट, पृ० ५१६।

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेण्ट, पृ० ५१७।

करने का अधिकार है। इसीलिये उन्होंने बराबर मताधिकार के विस्तृत करने और हाउस आफ कामन्स के अधिकार बढ़ाने का विरोध किया है। हाउस आफ कामन्स में साधारण जनता के प्रतिनिधि बैठ कर उच्च वर्गों पर शासन करते हैं। यह बात अनुदार पक्ष के लोगों को कैसे अच्छी लग सकती है। हाउस आफ लार्ड्स में अनुदार पक्ष के लोगों का ही प्रभुत्व रहा है क्योंकि इंगलैण्ड की सम्पत्ति और भूमि के अधिक भाग पर इन्हीं का स्वामित्व है। वे इसी कारण से वैयक्तिक सम्पत्ति में राज्य के हस्तक्षेप के विरोधी हैं। सम्पत्ति और भूमि के स्वामित्व के ही कारण इस पक्ष के लोग राजघराने से सान्निध्य प्राप्त किये हुये हैं और उसके द्वारा ये राज्य की शासन-नीति पर अपना प्रभाव डालने में सफल हो सके हैं।

पूँजीपतियों और उद्योगपतियों की मध्यस्थता के द्वारा अनुदार लोग इंगलैण्ड के समाचार पत्रों पर अपना नियंत्रण रखते हैं। बड़े बड़े सभी समाचार पत्रों का वे ही संचालन करते हैं जिससे लोकमत पर अपना प्रभाव डालने में उन्हें बड़ी सुविधा रहती है। यह प्रभाव विशेषतया वैदेशिक नीति सम्बन्धी मामलों और साम्राज्य सम्बन्धी विषयों में अधिक रहता है।

उदार पक्ष (Libe·al Party)—दूसरा राजनैतिक दल उदार लोगों का है यद्यपि अब इसके अनुयायियों की संख्या अधिक नहीं है पर फिर भी यह पक्ष अनुदार पक्ष के समान ही प्राचीन है। उदार पक्ष का मूलमन्त्र "नये अनुभव के प्रति उदारता और मुक्त-विकास का समर्थन" है। इंगलैण्ड में उदार दल के सिद्धान्तों का उदय (Refcrmation Movement) सुधार अन्दोलन के फलस्वरूप हुआ। उस समय वैयक्तिक विचार-स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत मान्य हो चुका था। इसीलिये ये सिद्धान्त राष्ट्रीय धर्म-संघ और अनियंत्रित शासन-सत्ता के कट्टर विरोधी थे, यही कारण था कि व्हिग (लिबलों के पूर्व-गामी) लोग स्टूअर्ट राजाओं की निरंकुशता से लड़ने के लिये खड़े हुये, ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) के जन्मदाता बने और उन्होंने राजा की शक्ति को कम कर पार्लियामेण्ट की शक्ति को बढ़ाया। उन्नीसवीं शताब्दी के जितने भी वैधानिक सुधार हुये उनको उदार पक्ष की सरकार ने ही इंगलैण्ड में प्रचलित किया था क्योंकि उदार पक्ष की सदा से ही यह भावना रही है कि शासन-पद्धति में ही स्वतन्त्रता व अत्याचारी शासन के अंकुर निहित हैं और उसी ओर अपना ध्यान रखना आवश्यक है। उदार-सिद्धान्ती के लिए "राज्य से पूर्व व्यक्ति अधिक महत्व रखता है। व्यक्ति में ही सृजन शक्ति एवं ेरणा

का आविर्भाव होता है और व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर ही दूसरों के अनुभव को सत्य मानता है। इस सब सृष्टि का अन्तिम उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या में पूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करना है। व्यक्ति अपना जीवन कैसा बनाये, इसका निर्णय वे नहीं कर सकते जिनके हाथ में शासन शक्ति है, पर व्यक्ति स्वयं ही अपने विवेक से इसका निश्चय कर उसे स्वीकार करेगा क्योंकि कोई भी निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकता कि अमुक ज्ञान या अनुभव अधिक सत्य, अधिक सुन्दर और अधिक कल्याणकारी है। जब ऐसा है तो सत्य की खोज की आशा इसी में है कि सब को समान अवसर दिया जाये जिससे सभी अपने विचार प्रकट कर सकें और अपनी निहित शक्तियों का विकास कर सकें। इस स्वतन्त्रता पर केवल उतना ही नियंत्रण हो जितना इस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये नितान्त आवश्यक हो।"* यद्यपि उदार लोग राष्ट्र व जाति की भावना को स्वीकार करते हैं परन्तु वे साम्राज्य की विभिन्न जातियों को धीरे धीरे स्वतन्त्र करने के पक्ष में हैं। उन्होंने इस नीति को कार्यरूपा करते हुये कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका को स्वतन्त्र सरकार बनाने दिया। घरेलू मामलों में उनका यह कहना है कि व्यापार और उद्योग की उन्नति कर साधारण जनता को अधिक सुविधायें दी जायें, नगर-पालक संस्थाओं को अधिक अधिकार दिये जायें और बेकारी समाप्त की जायें।

लिबरल दल की विशेषता ही यह है कि वह मध्य व निम्न वर्ग से सहानुभूति रखता है। यदि अनुदार पक्ष सम्पत्ति-वर्ग है तो उदार पक्ष बुद्धि-वर्ग है। ये अधिकतर मध्यवर्ग के लोग होते हैं। हाउस आफ लार्ड्स में इनकी संख्या बहुत है पर कामन्स में श्रम पक्ष (Labour Party) के प्रभाव के बढ़ने से इनकी गिनती कम होती जा रही है। उदार पक्ष का मार्ग अनुदार पक्ष और साम्राज्यवाद के बीच से होकर जाता है।

श्रम पक्ष (Labour Party)—पहले महायुद्ध के पश्चात् इंगलैण्ड में अनुदार पक्ष का सामना करने के लिये एक तीसरा राजनीतिक पक्ष शक्तिपूर्ण हुआ। यह दल श्रम पक्ष (Labour Party) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें उदार पक्ष के बहुत से लोग आकर मिल गये। इस पक्ष का बनना पुराने दोनों राजनीतिक पक्षों को चुनौती देना था। इस पक्ष का आधार-सिद्धान्त समाजवाद है इसलिये इस पक्ष का संगठन राजनीति में तब तक विशेषाधिकारों,

*फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५२३।

पूंजीवाद और सम्पत्ति का जो प्रभुत्व चला आ रहा था उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप हैं । इस पक्ष के लोग अधिकतर श्रमिक व निर्धन वर्ग के हैं । यह ठीक है कि इंगलैण्ड के प्रत्येक ऐतिहासिक काल में, विशेषकर उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब कि चार्टिस्ट आन्दोलन आरम्भ हुआ, बहुसंख्यक निर्धन वर्ग की दशा सुधारने के लिये बराबर आन्दोलन चलता रहा । पर इस आन्दोलन को प्रथम महायुद्ध के पश्चात् बड़ा प्रोत्साहन मिला । लेबर पार्टी के उद्देश्य ये हैं—बड़ी बड़ी आर्थिक योजनाओं का राष्ट्रीयकरण, श्रमिकों के रहन सहन का स्तर ऊँचा करना, धनिक वर्ग पर अधिक कर लगाना, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और साम्राज्य के आधीन देशों को स्वतन्त्रता देना । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि घरेलू तथा वैदेशिक दोनों मामलों में श्रम पक्ष की नीति अनुदार पक्ष की नीति से प्रतिकूल है । हाउस आफ लार्डस् में उनकी संख्या बहुत कम है, पर हाउस आफ कामन्स में उनकी संख्या द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भी बहुत थी । द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जो नया निर्वाचन हुआ उसमें श्रम पक्ष को आशातीत सफलता हुई और इसके सदस्यों की संख्या दूसरे दोनों पक्षों की संयुक्त संख्या से भी अधिक है । हाल ही में श्रम पक्ष की ही मंत्रिपरिषद् थी जो अपने सिद्धान्तों को व उद्देश्यों को कार्यरूप दे रही थी । भारतवर्ष की स्वतन्त्रता व ब्रह्मा की स्वतन्त्रता इसका ज्वलंत उदाहरण है ।

इंगलैंड में राजनीतिक पक्ष प्रणाली—इंगलैण्ड की राजनीतिक पक्ष प्रणाली पर ही प्रतिनिधिक सरकार का भव्य भवन खड़ा हुआ है । प्रत्येक पक्ष अपने नेताओं को मन्त्रिमण्डल में पदासीन करने का प्रयत्न करता है । इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये वह लोकमत को नाना प्रकार से अपनी ओर झुकाने में प्रयत्नशील होता है । "यह भोज देता है, नृत्य, सत्कार आदि का आयोजन करता है । सभायें, उपदेश शिक्षण सम्मेलन आदि भी बराबर होते रहते हैं, पक्ष के अपने अपने वक्ता, मत एकत्र करने वाले, व कार्यकर्ता होते हैं, यह अपने लिये धन इकट्ठा करता और यह स्थानीय व राष्ट्रीय समाचार पत्रों में अपना प्रचार करने का प्रयत्न कराता है" ※ प्रत्येक पक्ष का अपना राष्ट्रीय संगठन होता है जिसकी अनेक शाखायें होती हैं और जो इन शाखाओं की कार्यवाही पर नियंत्रण रखता है । इस संगठन का काम बराबर चलता रहता है । राजनीतिक पक्ष प्रणाली इस प्रकार सब समय शासन-पद्धति पर अपना काबू

※ लास्की—पार्लियामेण्टरी गवर्नमेण्ट इन इंगलैण्ड, पृ० ७१ ।

रखती है। इसीलिये यह शासन विधान का एक आवश्यक अग वन गई है।

अगरेजी शासन विधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता निर्बन्ध शासन (Rule of Law) है। यह साधारण सार्वजनिक नीति-नियमो पर आधारित है और शताब्दियो से चले आने वाले राजा-प्रजा के सघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इगलैण्ड मे नागरिको के अधिकार किसी एक अधिनियम या कानून मे अन्तर्भूत नही है। कुछ अधिकार का तो किसी भी अधिनियम मे समावेश नही किया गया है फिर भी यहा के नागरिक उन्ही वैयक्तिक, धार्मिक और सामाजिक स्वतन्त्रताओ का उपभोग करते है जो अमरीकन या फ्रेंच नागरिको को अपने राष्ट्र मे उपलब्ध है। यह स्वतन्त्रता निर्बन्ध शासन से सुरक्षित रहती है। यह निर्बन्ध शासन इगलैण्ड मे सब से प्रथम उत्पन्न हुआ और इसके कारण अगरेजी शासन-प्रणाली और यूरोपियन शासन-प्रणाली मे भेद है।

आचार्य डायसी के अनुसार मोटे तोर पर निर्बन्ध शासन (Rule of Law) के तीन मूल सिद्धान्त है —

पहला, "यह कि किसी व्यक्ति को दण्ड नही दिया जा सकता या उसको शारीरिक कष्ट व साम्पत्तिक हानि नही पहुचाई जा सकती जब तक उसने किसी निर्बन्ध को न तोडा हो और उसका यह अपराध राज्य की साधारण अदालतो के सामने विधिपूर्वक निर्णीत न हुआ हो।"*

इसका यह मतलब निकला कि निर्बन्ध-शासन के होने से राजतन्त्र सत्ताधिकारियो की स्वेच्छाचारिता से वचा रहेगा क्योकि वे लोग जनता की स्वतन्त्रता को मन चाहा कुचल नही सकेंगे।

दूसरा, निर्बन्ध शासन यह निश्चित कर देता है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो या कैसा भी उसका प्रभुत्व हो, कानून से परे नही है और प्रत्येक नागरिक "राज्य के सार्वजनिक विधि-निर्बन्धो के आधीन है व सार्वजनिक न्यायालयो के अधिकार-क्षेत्र के वशवर्ती है।"१ अगरेजी शासन-प्रणाली की यह अनुपम विशेषता है और इसके जोड की कोई वस्तु यूरोपियन शासन-प्रणाली मे नही मिलती। वहा सरकारी कर्मचारियों के अपराधों पर विशेष प्रशासन-न्यायालयो (Administrative Courts) मे

---

* ला आफ दी कन्स्टीट्यूशन, पृ० १८३-८४।

१ पूर्व स्रोत।

विचार किया जाता है। इन प्रशासन-न्यायालयों की नियुक्ति प्रशासन-निर्बन्ध (Administrative Law) के अन्तर्गत की जाती है। आचार्य डायसी ने सार्वजनिक विधि-निर्बन्धों की सर्वोच्चता का इस प्रकार वर्णन किया है—"हमारे यहाँ प्रत्येक कर्मचारी, प्रधान मन्त्री से लेकर कान्स्टेबिल और कर-संग्रहकर्ता तक, अपने अवैध कार्यों के लिये उतना ही उत्तरदायी है जितना और कोई नागरिक।"*

निर्बन्ध, विधि या कानून की दृष्टि में यह समानता इतनी पूर्ण है कि केवल राजा ही इसकी परिधि से बाहर समझा जाता है और उसका कोई कार्य अवैध नही समझा जाता। पर राजा के विषय में भी एक बंधन है, वह यह है कि उसका कोई भी आदेश प्रजा पर तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि उस आदेश पत्र पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर न हो। मन्त्री के हस्ताक्षर होने पर राजा के कृत्य का उत्तरदायित्व मन्त्री पर आ पडता है और मन्त्री देश के सार्वजनिक कानून की परिधि के भीतर है उससे परे नही है। ऐसे उदाहरण देखने को मिल सकते हे जहाँ शासनाधिकारियो को अपनी राजकीय अवस्था मे किये हुये अवैध कृत्यों के लिये सार्वजनिक न्यायालयो में साधारण ढग पर ही विचार कर के दण्ड दिया गया है।

तीसरा—निर्बन्ध-शासन यह निर्देश करता रहता है कि "अंग्रेजो के शासन-विधान सम्बन्धी सिद्धान्त न्यायालयों द्वारा समय समय पर स्थिर किये गये है, जब जब विशिष्ट अभियोग उनके सम्मुख उपस्थित किये गये और उन्होने साधारण व्यक्तियो के अधिकारो को निश्चित किया है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट हे कि निर्बन्ध-प्रशासन किसी भी शासन कर्मचारी या साधारण नागरिक को विशिष्ट स्थान या अधिकार प्रदान नही करता। "जो व्यक्ति सरकार के अग है वे मनचाहा नहीं कर सकते, उन्हे पार्लियामेण्ट के बनाये हुये नीति-निर्बन्धो के अनुसार ही अपनी शक्ति को उपयोग करने की स्वतन्त्रता है।" १ यदि कोई राजकर्मचारी अपने अधिकारो की सीमा का उल्लघन करता है तो उस पर साधारण न्यायालय मे अभियोग लगाया जा सकता है जहाँ सार्वजनिक कानून के अन्तर्गत उस पर लगाये हुये अभियोग पर विचार

---

* पूर्व स्रोत, पृ० १८३–८४।

१ हीगन और पौवेल गवर्नमेट आफ ग्रेट ब्रिटेन, पृ० ६।

किया जायेगा और यदि वह अपराधी सिद्ध हुआ, उसी न्याय-पद्धति से जिससे साधारण नागरिक दण्डित होते हैं तो वह दण्डनीय होगा। यूरोप में ऐसा नहीं होता। वहां राजकर्मचारी यदि कोई अपराध करते हैं तो उन पर लगाये गये अभियोग की सुनावाई विशेष शासन न्यायालयों में होती है, साधारण सार्वजनिक न्यायालयों में नहीं होती।

इंगलैण्ड में इस प्रकार कार्यकारिणी सत्ता पर निर्बन्ध-शासन (Rule of Law) का नियंत्रण रहता है और उससे उनके अधिकार-उपयोग की मर्यादा बंधी रहती है, परन्तु हाल ही में इस निर्बन्ध शासन के प्रति आदर की कमी होने लगी है। आचार्य डायसी ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि अब "राजनैतिक व सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अवैध साधनों का उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।" प्रथम तो हमें यह न भूलना चाहिये कि जब किसी राजकर्मचारी पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता है और अपराधी सिद्ध होने पर यदि उसे किसी गैर-सरकारी नागरिक को दण्ड-स्वरूप क्षतिपूरक धन देना पड़ जाता है तो वह धन राजकोष से दे दिया जाता है, राजकर्मचारी स्वयं अपने कोष से नहीं देता क्योंकि यह समझा जाता है कि वह राज्य का कार्य वाहक है और उसके कृत्यों के लिये राज्य को ही उत्तरदायी होना चाहिये। इससे राजकर्मचारी सतर्क नहीं रहता और अपने अधिकार का उपयोग कानून के अनुसार करने पर कड़ी दृष्टि नहीं रखता, क्योंकि अपराधी ठहराये जाने पर उसको कोई हानि होने का भय नहीं रहता। द्वितीय, हाल ही में पार्लियमेण्ट ने राजकर्मचारियों को बहुत से न्यायकारी अधिकार भी सौंप दिये हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९०२ ई० का एज्यूकेशन एक्ट ऐसे अधिकार एज्यूकेशनल कमिश्नर्स को व फाइनेन्स एक्ट (१९१०) और नेशनल इन्शोरेन्स एक्ट (१९११ व १९१२) दूसरे अफसरों को सौंपते हैं। १९११ के पार्लियामेण्ट के एक्ट से स्पीकर (Speaker) को बड़े विस्तृत अधिकार सौंप दिये गये हैं। इस एक्ट के अन्तर्गत स्पीकर का प्रमाण-पत्र (Certificate) अन्तिम निर्णयकारी समझ लिया जाता है और उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इसके साथ-साथ यह यदि स्मरण रखा जाय कि न्याय करते समय न्यायाधीश बराबर यह ध्यान रखता है कि चाहे दस अपराधी छूट जायें पर एक निरपराधी दोषी ठहर कर दण्डित न हो जाय, तो हमें यह ज्ञात हो जायगा कि राजकर्मचारियों को इतने विस्तृत स्वविवेकी (Discretionary) अधिकार

सुपुर्द करने से न्यायाधीश की शक्ति कितनी कम हो जाती है और इस प्रकार निर्बन्ध शासन का महत्व बहुत कुछ घट जाता है। इसके अतिरिक्त राजकर्मचारी कानून के अन्तर्गत नियम या उपनियम बनाने का अधिकार भी अधिकाधिक लेते जा रहे हैं। इस प्रकार इंगलैण्ड में ऐसी प्रणाली का आविर्भाव हो रहा है जो किसी क्षण भी व्यक्ति के लिये, जनता के व राजकर्मचारियों के लिये अन्यायकारी सिद्ध हो सकती है। सिद्धान्तों में एकरूपता नहीं रह गयी है क्योंकि निर्बन्ध शासन का स्थान इधर उधर के अनियमित सिद्धान्तों ने ले लिया है"।*

ऊपर हमने अंगरेजी शासन-विधान के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कर दिया। यह शासन-विधान प्रतिक्षण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार नया रूप धारण करता रहता है। ऐसे सविधान के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को एक विशाल साहित्य की छान बीन करने के पश्चात् इसका ठीक ठीक परिचय मिल सकता है।

पाठ्य पुस्तकें

Anson W. R.—Law and Custom of the Constitution.

Begehot, W.—English Constitution.

Boutmy—English Constitution.

Boutmy—Studies in Constitutional Law.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution, 1939 Edition.

Finer, H.—Thory & Practice of Modern Government, chs. XII—XV.

Greaves, H.R.G.—The British Constitution, pp. 11-24.

Jennings, W.I.—The Law and the Constituion (1933).

Keith, A.B.—An Introduction to the British Constitutional Law, 1913.

---

* फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेण्ट, पृ० १४४७।

Keith, A.B.—Constitution, Administration and Laws of the Empire (1924).

Laski, H.J.—Parliamentary Government in England (1938) chs. I & II.

Ogg, F.A.—English Government and Politics (1936) pp 57-81.

Taswell and Langmead—English Constitutional History.

अध्याय ६

पार्लियामेंट और विधान निर्माण

"इंगलैण्ड में संविधान को बदलने का सर्वमान्य अधिकार पार्लियामेण्ट को है इसलिये सतत: परिवर्तित होते रहने से वास्तव में उसका अस्तित्व ही नहीं है। पार्लियामेण्ट धारा सभा भी है और विधान सभा भी।" (डि. टोकविली)

"धार्मिक, सामाजिक, सामुद्रिक, सेना-सम्बन्धी, अपराध-सम्बन्धी जितने प्रकार के निर्बन्ध (कानून) हो सकते हैं, इनके बनाने, उनमें वृद्धि करने, कम करने, संशोधन करने, रद्द करने, पुनर्जीवित करने व व्याख्या करने को पार्लियामेण्ट को सर्वोच्च अनियन्त्रित अधिकार है। यहीं उस निरंकुश अनियन्त्रित शक्ति को, जो प्रत्येक राज्य में किसी न किसी को सुपुर्द करनी पड़ती है, इस देश के शासन-विधान द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है।"

(ब्लैकस्टोन की टीका से)

इंगलैण्ड में विधि-निर्माण करने वाली संस्था पार्लियामेण्ट ही है। सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये और सिद्धान्ततः स्वशासित राष्ट्रों (Dominions) के लिये भी, यह सर्वोच्च विधि-निर्माण अधिकार की स्वामिनी है। वास्तव में पार्लियामेण्ट के अन्तर्गत राजा, हाउस आफ कामन्स व हाउस आफ लार्ड्स तीनों आते हैं और "पार्लियामेण्ट" शब्द से इन तीनों का बोध होना चाहिये। यह पार्लियामेण्ट के किसी अधिनियम (Statute) के शब्दों से स्पष्ट हो जायगा जहां विधि-निर्माण करने वाली शक्ति का निर्देश किया जाता है। प्रत्येक अधिनियम (Act or Statute) में यह शब्द पाये जाते हैं—"Be it therefore enacted by the King's Most Excellent Majesty, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons, in this present Parliament assembled; and by the authority of the same................" अर्थात् सम्राट याजकीय

व अयाजकीय लार्डों, और कामन्स के लोगों की सम्मति से जो इस पार्लियामेण्ट में एकत्रित हुये हैं और उनके साक्ष्य में यह अधिनियम बनाते हैं कि..." इत्यादि इत्यादि।

यद्यपि राजा के विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्तत ज्यों के त्यों बने हुये हैं पर व्यवहार में वास्तविक निर्बन्धकारी सत्ता का उपभोग हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स ही करते हैं। सन् १९११ के पार्लियामेण्ट के ऐक्ट में तो हाउस आफ लार्ड्स का भी प्रभाव इस विषय में बहुत कम हो गया है। इस अध्याय में हम पार्लियामेण्ट के दोनों गृहों की बनावट और उनके अधिकारों का अध्ययन करेंगे और साथ साथ यह भी दिखलायेंगे कि उनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है और निर्बन्धों के बनने की पद्धति क्या है।

हाउस आफ कामन्स

गृह की सदस्य-संख्या—हाउस आफ कामन्स प्रथम गृह है हालांकि निर्माण होने में इसका दूसरा नम्बर है क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स के स्थापित होने से बहुत समय पश्चात् इसका जन्म हुआ था। हाउस आफ कामन्स के संक्षिप्त इतिहास का हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। सन् १२९५ ई० की मोडल पार्लियामेण्ट (Model Parliament) में जब नगरों व जिलों का प्रतिनिधित्व प्रारम्भ हुआ तभी से समय समय पर विधान-मण्डल की बनावट बदलती रही है। एडवर्ड राज्यकाल में प्रत्येक शायर (Shire) से दो नाइट (Knights) अर्थात् कुल ७४ नाइट और २०० नागरिक पार्लियामेण्ट के सदस्य होते थे। इसके बाद इस संख्या में घटती बढ़ती होती रही। सन् १३७८ ई० के लगभग हाउस आफ कामन्स एक पृथक् संस्था के रूप में एकत्रित होकर बैठने लगी। जब इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड का संयोजन हुआ तो हाउस आफ कामन्स के तत्कालीन ५१३ सदस्यों में स्काटलैण्ड के ४५ प्रतिनिधि-सदस्य और जुड़ गये। सन् १८०० ई० में आयरलैण्ड भी मिला लिया गया और उसके भी १०० प्रतिनिधि जुड़ गये। सन् १९२८ ई० तक कामन्स के सदस्यों की संख्या ६७० थी पर उस वर्ष जो रिप्रेजेण्टेशन आफ पीपल ऐक्ट (Representation of People Act) अर्थात् लोक प्रतिनिधित्व सम्बन्धी अधिनियम पास हुआ उससे यह संख्या ६४० स्थिर कर दी गयी जो अब यह संख्या ६२५ है।

कामन्स में प्रतिनिधित्व—यह पहले ही से कहा जा चुका है * कि

---

* अध्याय ४ देखिये।

सन् १८३२ से पहिले हाउस आफ कामन्स साधारण जनता का प्रतिनिधित्व न करती थी। इसमें केवल कुलीन वर्ग के लोग या उनके मनोनीत किये हुये व्यक्ति ही भरे हुये थे। सन् १८३२, १८६७ और १८८४ के सुधारों ने मताधिकार को विस्तृत किया और सन् १९१८ के ऐक्ट ने लगभग वयस्क-मताधिकार ही दे डाला था। सब पुरुष जो छः महीने निवास कर चुके हों या व्यापार-भवनों में रहते हों या विश्वविद्यालय की उपाधि पाये हुये हों, वे मत दे सकते थे। स्त्रियों को भी, यदि वे ३० वर्ष की आयु वाली हों, इस ऐक्ट से मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बरों और काउण्टी अर्थात् नगर व ग्राम निर्वाचन क्षेत्रों में एक समान मताधिकार कर दिया गया। निर्वाचन-सम्बन्धी दूसरी कुछ महत्वपूर्ण बातें भी इस ऐक्ट द्वारा हुईं। उदाहरण के लिये यह स्थिर कर दिया कि यदि कोई उम्मीदवार डाले हुये मतों की कुल संख्या के आठवें भाग से भी कम मत प्राप्त करेगा तो उसकी १५० पौण्ड की ज़मानत ज़ब्त करली जायगी। इंगलैंड में प्रत्येक ७०००० मतधारकों के लिये और आयरलैंड में ४३००० मतदाताओं के लिये एक प्रतिनिधि चुना जा सकता था। इसके १० वर्ष बाद दूसरा सन् १९२८ का लोक प्रतिनिधित्व ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट के अनुसार सर्ववयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) दे डाला गया और साम्पत्तिक योग्यता की शर्त हटा दी गई। अब प्रत्येक वयस्क स्त्री पुरुष को जो पहली जून को निर्वाचन-क्षेत्र में रहता हो, जो अपना नाम मतदाताओं की सूची में लिख जाने से पहले कम से कम ३० दिन तक वहां निवास करता रहा हो और निर्वाचन क्षेत्र में ही या उससे सम्बन्धित पार्लियामेंटरी काउन्टी या बरों में तीन मास का समय व्यतीत कर चुका हो, वह मतदान का अधिकारी है। व्यापार-भवनों में रहने वालों के लिये भवन की किराये से वार्षिक आय कम से कम १० पौण्ड होनी चाहिये। विश्वविद्यालय के निर्वाचन-क्षेत्र में सब उपाधि-प्राप्त स्नातक मत दे सकते हैं। एक ही व्यक्ति एक सामान्य निर्वाचन में दो क्षेत्रों से मत नहीं दे सकता अर्थात् वह एक निर्वाचन-क्षेत्र में निवासाधिकार के बल पर और उसी समय दूसरे क्षेत्र में व्यापार या विश्वविद्यालय की मत योग्यता के आधार पर मत देने का अधिकारी नहीं हो सकता।

निर्वाचन क्षेत्र व निर्वाचक दल—सन् १९४४ के कानून के अनुसार कामन्स के ६४० सदस्य इस प्रकार बंटे हुये थे : इंगलैण्ड ४९२, वेल्स ३६, स्काटलैण्ड ७४, उत्तरी आयरलैंण्ड १३। निर्वाचन-क्षेत्रों की कुल संख्या ६२० थी जिनमें से ६०१ एक प्रतिनिधि वाले क्षेत्र थे, १८ दो प्रतिनिधि चुनते थे और

स्काटलैण्ड के विश्वविद्यालय मिल कर तीन प्रतिनिधि चुनते थे। साधारण निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बनाये गये हैं कि उनकी जनसंख्या लगभग बराबर होती है। प्रत्येक में लगभग ५०००० मताधारक होते हैं। सन् १९४४ में मत-धारकों की कुल संख्या इस प्रकार बटी हुई थी: इंगलैण्ड और वेल्स ३२,८२७,६२४, स्काटलैण्ड, ३,४५१,९३५। इन संख्याओं में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कहीं अधिक है। इसका सन् १९२८ के बाद होने वाले निर्वाचनों के परिणाम पर बड़ा प्रभाव पड़ा क्योंकि स्त्रियों की प्रवृत्ति राजनीति को संयत बनाने की होती है। सन् १९४९ में कामन्स की संख्या ६२५ कर दी गई है।

पार्लियामेंट की अवधि—सन् १६८८ की क्रान्ति के पूर्व सम्राट पर पार्लियामेंट के नियम पूर्वक बुलाने का मुश्किल से कोई बन्धन कहा जा सकता था, पर १६८९ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) ने यह निश्चित कर दिया कि पार्लियामेण्ट प्रति वर्ष बुलाई जाय। स्टूअर्ट राजा पार्लियामेण्ट के बुलाने में बिल्कुल नियम परायण न थे और कभी कभी उन्होंने बिना किसी पार्लियामेण्ट के ही राज्य किया। पर सन् १६९४ के ऐक्ट ने प्रत्येक पार्लियामेंट की अवधि तीन वर्ष निश्चित कर दी। सन् १७१५ में जैकोबाइटों (Jacobites) की धूर्तता के डर से और इस भय से कि निर्वाचन से हैनोवर राजवंश की स्थिति डावाँडोल न हो जाय, उदार (Whig) मन्त्रिमण्डल ने हाउस आफ लार्ड्स में एक विधेयक रखा जिसके दोनों गृहों द्वारा स्वीकृत हो जाने से पार्लियामेण्ट की अवधि बढ़ कर सात वर्ष हो गई। यह वृद्धि इसलिये भी आवश्यक समझी गई क्योंकि सर जार्ज स्टलि ने १७१५ की सप्तवर्षीय योजना का समर्थन करते हुये कहा था, "त्रिवार्षिक विधेयक के स्वीकृत होने के पश्चात् देश में बराबर झगड़ा व मतभेद चलता चला आ रहा है। त्रिवार्षिक पार्लियामेण्ट का सत्र (Session) पिछले निर्वाचनों से उत्पन्न वैमनस्य का प्रतिशोध करने के लिये अनुचित निर्णय करने में लग जाता है। दूसरा सत्र (Session) कुछ काम करता है, तीसरे सत्र में जो कुछ थोड़ा बहुत दूसरे सत्र में काम किया जाता है, उसको पूरा करने में भी ढीलढाल पड़ जाती है और होने वाले निर्वाचन के डर से सदस्य आंख बन्द करके अपने अपने सिद्धान्तों के दास बन जाते हैं और उन्हीं की कसौटी पर प्रत्येक प्रश्न की अच्छाई बुराई की परख प्रारम्भ कर देते हैं" इसके बाद एक बार फिर त्रिवार्षिक निर्वाचन की पुनःस्थापना का प्रयत्न किया गया पर १९११ के पार्लियामेण्ट ऐक्ट (Parliament Act) ने पार्लियामेंट की अवधि को सात वर्ष से घटा कर पांच वर्ष कर दिया। उसी पार्लियामेण्ट ने सन् १९१६ में एक प्रस्ताव पास कर लिया जिससे इसने प्रथम महायुद्ध के

संकट के कारण पाँच साल से आगे अपनी अवधि बढ़ा ली। यह इसलिये उचित समझा गया क्योंकि उस समय युद्ध जीतने के उपायों पर एकचित्त होकर ध्यान देने की आवश्यकता थी और उस एकचित्तता में निर्वाचन करके गड़बड़ हो सकती थी। इस प्रकार इस समय पार्लियामेण्ट (अर्थात् हाउस आफ कामन्स) की अवधि पांच वर्ष है। पर इससे पहले ही कभी कभी इसका विघटन हो जाता है यदि राजा किसी प्रधान मन्त्री का मतदाताओं के सम्मुख अपनी योजनाओं को रखने का प्रयास स्वीकृत कर ले। नीचे लिखी सारणी से यह प्रकट हो जायगा कि किस प्रकार एक के बाद दूसरी पार्लियामेण्ट निश्चित समय से पूर्व ही समाप्त हो गई :—

पहली बैठक का दिनांक	विलयन का दिनांक	अवधि		
		वर्ष	माह	दिन
१३ फरवरी, १९०६	१० जनवरी, १९१०	३	११	२४
१५ फरवरी, १९१०	२८ नवम्बर, १९१०	०	९	१३
३१ जनवरी, १९११	२५ नवम्बर, १९१८	७	९	२५
४ फरवरी, १९१९	२६ अक्टूबर, १९२२	३	८	२२
२० नवम्बर, १९२२	१६ नवम्बर, १९२३	०	११	२७
८ जनवरी, १९२४	९ अक्टूबर, १९२४	०	९	१
२५ दिसम्बर, १९२४	१० मई, १९२९	४	५	७
२५ जून, १९२९	२४ अगस्त, १९३१	२	१	२९
३ नवम्बर, १९३१	२५ अक्टूबर, १९३५	३	१	२२
२६ नवम्बर, १९३५	१५ जून, १९४५	९	६	२०
२१ जुलाई, १९४५	२ फरवरी, १९५०	४	६	१२

इससे यह मालूम होगा कि नौ पार्लियामेण्टें ३८ वर्ष २ मास और १० दिन चलीं जिसका औसत प्रत्येक पार्लियामेण्ट के लिये ३ वर्ष १० मास और २१ दिन आता है। प्रथम युद्धोत्तर काल में यह औसत तीन वर्ष से भी कम आता है। पर सर रिचार्ड ने १६९४ में त्रिवार्षिक पार्लियामेण्ट की जो आलोचना की थी वह अब लागू नहीं होती क्योंकि अब परिस्थिति बदल गई है और निर्वाचन ऐसी निश्चित पक्ष-प्रणाली पर होते हैं कि पार्लियामेण्ट के बहुमत वाले पक्ष को अपना कार्य-क्रम नये सिरे से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है। उसका

कार्य-क्रम पूर्व निश्चित रखता है और सभी उससे परिचित रहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् का पार्लियामेण्ट पर इतना प्रभुत्व रहता है कि पार्लियामेण्ट, परिषद् के विचारों का केवल समर्थन भर कर देती है। अब विधिनिर्माण पदासीन नीति के अनुसार निर्धारित हुआ करता है।

हाउस आफ कामन्स के सदस्यों का मनोनयन (Nomination)—आजकल की निर्वाचन पद्धति को हम इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं—(१) एक अभ्यर्थी का मनोनयन होना, (२) निर्वाचन-प्रचार और (३) मतदान व उसके परिणाम की घोषणा। जैसे ही पार्लियामेण्ट का विघटन होता है—चाहे उसकी अवधि पूरी होने के कारण या प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव की राजा द्वारा स्वीकृति के फलस्वरूप, प्रत्येक राजनैतिक पक्ष निर्वाचन लड़ने की तैयारी आरम्भ करता है। यहां यह बतलाना ठीक होगा कि प्रत्येक पक्ष का एक राष्ट्रीय संगठन होता है जिसकी शाखायें प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में होती हैं। प्रत्येक पक्ष की सर्वोच्च राष्ट्रीय संस्था पक्ष का कार्यक्रम और शासन नीति की रूप-रेखा स्थिर करती है और उसे अपनी शाखाओं को समझा देती है। उसके पश्चात् अभ्यर्थियों के चुनने का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ होता है। प्रत्येक राजनैतिक पक्ष की स्थानीय शाखा अपने क्षेत्र में सफलता की सबसे अधिक सम्भावना वाले व्यक्ति का नाम प्रस्ताव करके भेजती है। ऐसे अभ्यर्थी के नाम का प्रस्ताव करने में स्थानीय संस्था उस व्यक्ति की लोकप्रियता, निर्वाचन-व्यय को सहने की शक्ति, पक्ष के प्रति उसकी सेवायें और उसके व्यवस्थापक होने की योग्यता, इन पर प्रमुखतः विचार करती है। इन सब स्थानीय संस्थाओं द्वारा भेजे हुये नामों को राष्ट्रीय संस्था विधिपूर्वक स्वीकार करती है। यह आवश्यक नहीं है कि उम्मेदवार जिस निर्वाचन क्षेत्र में खड़ा हो वहां का निवासी भी हो पर उसे किसी न किसी क्षेत्र में मतदाता होने का अधिकार मिला हुआ होना चाहिये। क्षेत्र के मतदाताओं को निर्वाचन-सम्बन्धी राजकर्मचारी से प्राप्त मनोनयन करने वाले पत्र पर उम्मीदवार (अभ्यर्थी) का नाम लिख कर हस्ताक्षर करना पड़ता है। एक ही निर्वाचन क्षेत्र से कितने ही उम्मेदवार खड़े हो सकते हैं पर प्रत्येक उम्मेदवार को १५० पौंड प्रतिभूति (Security) के रूप में देने पड़ते हैं। जो उस निर्वाचन क्षेत्र में पड़े हुये मतों के आठवें भाग प्राप्त न होने पर जब्त कर लिये जाते हैं। पक्ष के बड़े बड़े नेता ऐसे क्षेत्रों में खड़े किये जाते हैं जहां उस पक्ष का प्रभाव सबसे अधिक होता है और उसके उम्मीदवारों की जीत निश्चित कही जा सकती है, क्योंकि इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि पक्ष के उन नेताओं की हार न हो जिनका पार्लियामेण्ट में होना आवश्यक है। इन क्षेत्रों को उस पक्ष के सुरक्षित स्थान (Safe seat) कह कर पुकारा जाता

है। अधिकतर क्षेत्रों में तीनों बड़े बड़े पक्ष अपना एक एक उम्मीदवार खड़ा करते हैं, इनके अतिरिक्त छोटे छोटे पक्ष कुछ क्षेत्रों में अपने उम्मीदवार खड़े करते हैं। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र उम्मीदवार भी जो किसी पक्ष के सदस्य नहीं होते उन निर्वाचन क्षेत्रों में खड़े होते हैं जिनके निवासियों पर उनका अपनी पहली सेवाओं के कारण इतना प्रभाव है कि उन्हें उनका बहुमत पाने की आशा रहती है।

निर्वाचन—उम्मीदवारों के मनोनयन होने से पूर्व ही राजनैतिक पक्ष अपने अपने प्रचार में लग जाते हैं। जब उम्मीदवार का मनोनयन हो चुकता है तब राजनैतिक पक्ष अपने प्रचार में तीव्रता लाते हैं। यह प्रचार अनेकों तरह से किया जाता है और जनता पर अपना प्रभाव डालने व उनकी रुचि अपनी ओर करने के लिये जितने भी साधन हो सकते हैं वे अपनाये जाते हैं। सभायें की जाती हैं, पर्चे बांटे जाते हैं, समाचार पत्रों में, रेडियो पर, यहाँ तक कि थियेटर और सिनेमा में भी यह प्रचार किया जाता है। इस प्रचार में जनता के सामने प्रत्येक पक्ष अपना कार्यक्रम रखता है और यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि विपक्षी पक्षों के कार्यक्रम व नीति से उसका कार्यक्रम व नीति क्यों उत्तम है और किस प्रकार राज्यशक्ति उसके हाथ में आने से वह अपने कार्यक्रम के द्वारा जनता को सुखी और देश को समृद्धिशाली बना सकता है। सारे देश में निर्वाचन के कारण एक हलचल उत्पन्न हो जाती है। इसी समय विचारों के संघर्ष द्वारा भविष्य में अपनाई जाने वाली शासन नीति को जनता परख कर नया रूप देती है। जिस दिन निर्वाचन होता है उस दिन तो चारों ओर कोलाहल व उत्तेजना रहती है। प्रत्येक पक्ष अन्तिम क्षणों में अपनी सारी शक्ति व चतुरता विजय की आशा में लगा देता है और जितने उपाय मतदाताओं को अपनी ओर खींचने में सफल हो सकते हैं उनका सहारा लिया जाता है, पर मतदाता निश्चित स्थान पर जाकर अपना मत गूढ़ शलाका (Secret ballot) पर देते हैं।

निर्वाचन के फल की घोषणा—जब मतदान कार्य समाप्त हो जाता है तब मतों की गिनती करने का काम आरम्भ होता है, जो उम्मीदवार सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। ऐसा निश्चय करने में इस बात को कोई महत्व नहीं दिया जाता कि इन मतों की कुल संख्या का कौन सा भाग है। इस प्रणाली को अपेक्षाकृत माताधिक्य (Relative majority system) कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस प्रणाली में केवल यही बात देखी जाती है कि जिस उम्मीद-वार को सब की अपेक्षा अधिक मत मिले वही निर्वाचित हो। इस प्रणाली में यह

दोष है कि इसके आधार पर संगठित किया हुआ विधान-मण्डल (Legislature) लोकमत को ठीक प्रकार से प्रदर्शित नहीं करता। कारण यह है कि जिस निर्वाचन क्षेत्र में दो से अधिक उम्मीदवार एक ही स्थान के लिये खड़े हुये हों वहाँ यह सम्भव है कि विजयी उम्मीदवार के पक्ष में कुल मतों का आधिक्य न हो अर्थात् जितने मत पड़े उनके आधे से अधिक मत उसे न मिलें और फिर भी वह निर्वाचित हो जाय क्योंकि अपेक्षाकृत उसके पक्ष में पड़े हुये, मतों की संख्या दूसरों के पक्ष में पड़े हुये मतों की संख्या से अधिक है। उदाहरण के लिये हम यह मान लेते हैं कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में एक स्थान के लिये चार उम्मीदवार खड़े होते हैं क, ख, ग और घ। क को १५०००, ख को १४९००, ग को १४५०० और घ को ५१००, मत मिलते हैं। सौ मतों के अपेक्षाकृत आधिक्य के कारण क निर्वाचित हो जायगा और वह सब मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करेगा। यहां तक कि उन ३४५०० मतदाताओं का भी प्रतिनिधि समझा जायगा जिन्होंने उसके विरुद्ध मत दिया। इससे स्पष्ट हो जायगा कि ऐसे निर्वाचित सदस्य जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

यह बात सन् १९२२ के नवम्बर में हुये सामान्य निर्वाचन से स्पष्ट हो जायगी। यहाँ केवल चार निर्वाचन क्षेत्रों के मतों के आंकड़े दिये जायेंगे :—

ड्यूजबैरी

उम्मीदवार का नाम	दल का नाम	मतों की संख्या
रील्ले, बी	लेबर	८,८२१ निर्वाचित
हारवे, टी० ई०	लिबरल	८,०६५
पीक, ओ०	यूनियनिस्ट	६,७४४

हडर्सफील्ड

मार्शल	लिबरल	१५,८७९ निर्वाचित
हडसन	लेबर	१५,६५३
साइक्स	नेशनल लिबरल	१५,२१२

कैन्ट मेडस्टोन

बैलेयर्स	यूनियनिस्ट	८,९२८ निर्वाचित
ब्लैक	लिबरल	८,८९५
डाल्टन	लेबर	८,००४

पोर्ट्समाउथ सेंट्रल

प्रीवेट	यूनियनिस्ट	७,६६६ निर्वाचित
फिशर	नेशनल लिबरल	७ ३५६
ब्रैम्सडन	लिबरल	७,१२६
गौर्ड	लेबर	६,१२६

व्यक्ति को कुल मतो का बहुत थोडा अश

र भी वह जनता का प्रतिनिधि घोपित कर दिया गया ।

यह देखा गया है कि अधिकतर क्षेत्रो मे दो या तीन उम्मीदवार खड़े होते है । जब तीन उम्मीदवार खड़े होते है तो इस बात की सम्भावना बहुत रहती है कि जनता को अपनी पसन्द का उम्मोदवार चुनने के लिये मिल जाय हालाकि तब भी यह हो सकता है कि जो उम्मीदवार निर्वाचकों के समान ही विचार रखता हो वह दूसरी बातो मे वाछनीय न हो और पार्लियामेण्ट का सदस्य बना कर भेजे जाने के लिये अयोग्य हो या किसी एक विषय मे उसका दृष्टिकोण, निर्वाचक के दृष्टिकोण से प्रतिकूल हो । पर जहा दो ही व्यक्तियो मे से एक को चुनना है वहा ऐसे बहुत से मतदाता होगे जो उन दोनो मे किसी को पसद नही करते । उदाहरण के लिये उनमे से एक समाजवादी और दूसरा सरक्षण-वादी (Protectionist) हो, और यह सम्भव है कि निर्वाचक यह समझता हो कि समाजवाद और सरक्षणवाद दोनो ही देश का अहित करेगे । ऐसी दशा मे यदि वह इनमे से एक को अपना मत दे तो वह ठीक सिद्ध न होगा, क्योकि वह उस बात का समर्थन करेगा जिसमे अविश्वास ही नही, वरन् जिसका वह विरोधी भी है । यह प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति मे वह क्या करे । उसके सम्मुख दो उपाय हैं, या तो वह किसी को मत न दे और अपने मताधिकार को व्यर्थ होने दे या उन दोनो मे से अपेक्षाकृत अधिक वाछनीय को अपना मत दे । प्राय दूसरा उपाय ही काम मे लाया जाता है । पर उसका परिणाम यही होता है कि किसी भी निर्वाचित व्यक्ति के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता कि उसने जो बहुमत प्राप्त किया है वह वास्तव मे बहुसख्यक निर्वाचको की वास्तविक इच्छा का प्रतीक है । यह बात सामूहिक रूप से सारे राष्ट्र के लिये लागू हो सकती है और यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि लोक-सभा जनता की वास्तविक इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है ।

अंगरेज़ी निर्वाचन-प्रणाली में एक दूसरी तरह से भी लोकमत की विकृति हो जाती है। जब तीन राजनैतिक पक्ष निर्वाचन में खड़े हों तो यह सम्भव हो सकता है कि कोई पक्ष गिनती में सबसे अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करे पर फिर भी हाउस आफ कामन्स में एक भी स्थान उसको न मिल पावे। यह उस अवस्था में सम्भव है जब कि उस पक्ष के उम्मीदवार अधिकतर क्षेत्रों में मतों की थोड़ी थोड़ी कमी के कारण हार जायं और विपक्षी पक्ष किन्हीं क्षेत्रों में बहुत कमी के कारण हार जाय और दूसरों में थोड़ी अधिकता के कारण जीत जाय। ऐसा होने पर यह हो सकता है कि जो राजनैतिक पक्ष सारे देश को दृष्टि में रखते हुये तो अल्पसंख्यक हो फिर भी हाउस आफ कामन्स में उसका बहुमत हो जाय। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ऐसा दो बार हो चुका है। इसलिये निर्वाचन एक जुआ है जिसमें बहुत कुछ भविष्य पर छोड़ना पड़ता है। इस अनिश्चितता से राष्ट्रीय-जीवन व शासन-नीति पर बड़ा अहितकर प्रभाव पड़ता है। इस विकृति को हम उदाहरण के द्वारा यों समझा सकते हैं:—सन् १९१८ का निर्वाचन लीजिये। उस समय मिली-जुली सरकार ने युद्ध-विजय के भारी प्रयास के पश्चात् जनता के समर्थन की प्रार्थना की। इस निर्वाचन में अपने विपक्षी पक्ष को करारी हार दी क्योंकि हाउस आफ कामन्स में विपक्षी दल के १३० स्थानों के मुकाबले में इसको ४७२ स्थान मिले, फिर भी हिसाब लगाने से यह पता लगा कि विजयी पक्ष को डाले हुये मतों के केवल ५२ प्रतिशत मत प्राप्त हुये और विपक्षी दल को ४८ प्रतिशत। यदि प्राप्त हुये मतों के अनुपात से इन दोनों पक्षों को हाउस आफ कामन्स में स्थान दिये जाते तो सरकार का बहुमत ३४२ स्थानों से न होकर केवल ३० मतों से होता।

सन् १९२२ में मिली जुली सरकार के भंग होने पर एक के बाद एक इस प्रकार तीन निर्वाचन थोड़े थोड़े समय के पश्चात् हुये, पहला १९२२ में, दूसरा १९२३ में और तीसरा १९२३ में। सन् १९२२ के निर्वाचन में अनुदार पक्ष को ३४७ स्थान मिले जो विपक्षी पक्षों के कुल प्राप्त स्थानों से संख्या में ७९ अधिक थे। फिर भी उन्हें कुल डाले हुये मतों के ३७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये, उदार पक्ष को २८·५ प्रतिशत और श्रम पक्ष को २९·५ प्रतिशत मिले। सबसे बहु-संख्यक पक्ष होते हुये भी बचे हुये दोनों पक्षों के संयुक्त स्थानों से अधिक संख्या में स्थान अनुदार पक्ष को न मिलने चाहिये थे। इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ आंकड़े नीचे दिये जाते हैं:—

विश्वविद्यालयों को छोड़कर क्षेत्रों में जहां निर्वाचन लड़ा गया

दल	मतों की संख्या	जीते हुये स्थान	मतों के अनुपात से स्थान	प्रति-स्थान मतों की संख्या
कन्ज़रवेटिव	५,३८१,४३३	२९६	२०८	१८,१८०
लेबर व कौपरेटिव	४,२३७,४९०	१३८	१६४	३०,७०६
लिबरल	२,६२१,१६८	५४	१०१	४८,५४०
नेशनल लिबरल	१,५८५,३३७	५१	६१	३१,०८५
स्वतन्त्र व दूसरे	३३७,४४३	८	१३	४२,१८०
कुल	१४,१६२,८७१	५४७	५४७	

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि उदार पक्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी, उनके बाद स्वतन्त्र व दूसरों को और श्रमपक्ष को। अनुदार पक्ष को इन सबकी हानि से बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार जो हाउस आफ कामन्स बना उससे यह ठीक ठीक पता न लग सकता था कि भिन्न भिन्न पक्षों को जनता का विश्वास किस मात्रा में प्राप्त है।

सन् १९२३ का निर्वाचन संरक्षण (Protection) के प्रश्न पर लड़ा गया। इसमें भी अनुदार पक्ष को पहले के समान ही ३८ प्रतिशत मत प्राप्त हुये पर निर्वाचन प्रणाली की कुछ ऐसी अनिश्चितता है कि अबकी बार उन्हें ९० स्थान कम मिल पाये जिससे सब विपक्षी पक्षों के स्थानों के मुकाबिले में उनके १०० स्थान कम रहे। फिर भी उन्होंने जितने स्थान मतों की संख्या के अनुपात से उन्हें मिलने चाहिये थे उनसे २४ स्थान अधिक पाये और उदार पक्ष को २४ स्थान कम मिले। जिस प्रश्न पर यह निर्वाचन लड़ा गया, उसके होते हुये अनुदार पक्ष को मन्त्रिमण्डल से निकलना ही पड़ता इसलिए श्रम-पक्ष ने मन्त्रिमण्डल बनाया। इंगलैण्ड में पार्लियामेन्ट के आधुनिक इतिहास में वह पहला उदाहरण था जब अल्पमत वाले पक्ष ने शासन-सत्ता को अपने हाथ में संभाला हो।

सन् १९२४ के निर्वाचन में उदार पक्ष की हार आश्चर्यजनक थी, उनको केवल ४२ स्थान ही मिल सके जहां पहले उनको १०८ स्थान प्राप्त थे। यदि मतों के अनुपात से स्थान मिलते तो अब भी उनको ये १०८ स्थान मिल सकते थे क्योंकि उन्हें कुल मतों के १७ प्रतिशत मत प्राप्त हुये थे। इसके विपरीत अनुदार पक्ष को ४१५ स्थान मिले जबकि उन्हें कुल के ४७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये थे और मतों के अनुपात से केवल २८९ स्थान ही मिल सकते थे। सन् १९२९ में श्रम पक्ष को २८८ स्थान मिले जबकि मतों के अनुपात से उन्हें २२४ स्थान ही मिल सकते थे क्योंकि उनके मतों की संख्या केवल ३६ प्रतिशत ही थी। इन दोनों निर्वाचनों के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

१९२४

दल	मतों की संख्या	प्राप्त स्थानों की संख्या
कन्जरवेटिव	७,४५१,१३२	४१२
लिबरल	३,००८,४७४	४६
लेबर	५,४८४,७६०	१५१

१९२९

दल	मतों की संख्या	प्राप्त स्थानों की संख्या
कन्जरवेटिव	८,६५९,६३९	२५६
लिबरल	५,३०९,४२६	५९
लेबर	८,३८५,३०१	२८८

सन् १९३५ में १५ नवम्बर को जो हाउस आफ कामन्स चुन कर तैयार हुआ उसमें भी इसी प्रकार की निर्वाचन अद्भुतता थी जो नीचे दिये आंकड़ों से स्पष्ट है :—

दल का नाम	मतों की संख्या	स्थानों की संख्या
कन्जरवेटिव	१०,४९६,०००	३७५
नेशनल लिबरल	८६६,०००	३३
नेशनल लेबर	३४०,०००	७
नेशनल (सरकार)	९७,०००	५
लेबर	८,४३३,०००	१६८
लिबरल	१,४३३,०००	१९
दूसरे	३०२,०००	८

यद्यपि १९३५ में जो सरकार बनी वह अपने आपको राष्ट्रीय सरकार कहती थी, अर्थात् ऐसी सरकार जो राष्ट्र के सब पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हो, पर उसमें अनुदार पक्ष के इतने मन्त्री थे कि वह अनुदार सरकार ही कही जा सकती थी। इस सब विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि दो पक्ष-प्रणाली के समाप्त होने पर जब बहुपक्ष प्रणाली (Multiparty system) का जन्म हुआ तो एक प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धति से चुना हुआ हाउस आफ कामन्स सच्चे रूप से जनता का प्रतिनिधित्व न करने लगा।

बहुसंख्यक मतदाताओं का मताधिकार से वंचित होना—युद्धोत्तर निर्वाचन के विश्लेषण से यह भी प्रकट हो जायगा कि ब्रिटिश निर्वाचन प्रणाली में बहुसंख्यक व्यक्ति अपने मताधिकार के लाभ से वंचित रह जाते हैं। यदि हम उन व्यक्तियों की संख्या गिनें जो अपने क्षेत्र में केवल एक ही उम्मीदवार के खड़े होने के कारण अपने मताधिकार का उपयोग ही न कर सके, व उनकी जिनका प्रतिनिधि निर्वाचन में हार गया और उसके लिये दिया हुआ मत व्यर्थ हो गया, व उनकी संख्या जिन्होंने अपने मत का उपयोग ही नहीं किया क्योंकि उनको कोई ऐसा उम्मीदवार न मिला जिसकी नीति का वे समर्थन करते और उनकी संख्या गिने जिन्होंने बेमन से अपना मत ऐसे उम्मीदवार को दिया जो उनके विचारों का प्रतिनिधित्व तो न करता था पर दूसरों से अधिक अनुकूल था, तो यह पता लग जायगा कि लगभग ७० प्रतिशत मतदाता ऐसे होंगे जो अपने मत का प्रभाव शासन संगठन पर न डाल सके होंगे या जिन्होंने ऐसी नीति का समर्थन कर दिया होगा जिसके वे विरोधी हैं।

निर्वाचन की इन्हीं न्याय प्रतिकूलता और असंगतता को दूर करने के लिये इंगलैण्ड में कई सुधार के सुझाव उपस्थित किये गये। दूसरे देशों में तो इन सुधारों को कार्यान्वित भी किया गया पर इंगलैण्ड में अनुदार और श्रम दो बड़े पक्षों ने इन सुधारों पर अधिक ध्यान नहीं दिया है क्योंकि इनमें से प्रत्येक यह सोचता है कि यदि पुरानी पद्धति ही चलती रहे तो स्यात् उसको लाभ हो। दोनों ही यह आशा लगाये बैठे हैं कि उदार पक्ष कुछ दिनों में लोप हो जायगा और उसका स्थान मुझको ही मिलेगा।

निर्वाचन-प्रणाली के दोष-निवारक सुझाव

निर्वाचन-प्रणाली के जिन दोषों की ओर ऊपर ध्यान आकृष्ट किया है उनको कई उपायों से दूर किया जा सकता है। इन उपायों में से एक उपाय तो

यह है कि प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional representation) या द्वितीय-शलाका (Second ballot) प्रणाली का उपयोग किया जाय। द्वितीय-शलाका प्रणाली में यदि किसी क्षेत्र से किसी भी उम्मेदवार को सब विपक्षी पक्षों के कुल मतों से अधिक मत न मिलें, तो दूसरी बार निर्वाचन हो जिसमें वे ही दो अभ्यर्थी (उम्मीदवार) खड़े हों जिनको पहले निर्वाचन में अपेक्षाकृत अधिक मत मिले हों। इस दूसरे निर्वाचन में इन दोनों में से जिसको अधिक मत प्राप्त हों वही प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाय। अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं और इनका उपयोग प्रजातन्त्री जर्मनी, बेलजियम, हालैण्ड, डेनमार्क, स्वीडन, नौर्वे, स्विटज़रलैण्ड व स्वतन्त्र आइरे में हुआ जहां इनसे कहीं पर कम व कहीं अधिक सफलता मिली। इस प्रणाली का उपयोग इंगलैण्ड में पार्लियामेंट के सदस्यों के निर्वाचन में नहीं किया गया है। क्योंकि इस प्रणाली की अच्छाई स्वीकार करते हुये भी उनकी यह धारणा है कि मानव क्षेत्र में तर्क या विज्ञान सच्चा पथप्रदर्शक नहीं सिद्ध होता।। उनका कहना है कि यदि यह प्रणाली दूसरे देशों में सफल सिद्ध हुई है तो यह आवश्यक नहीं कि इंगलैंड में भी वह लाभदायक सिद्ध होगी।

एकल संक्रमणीय मत-प्रणाली (Single transferable vote system)—इंगलैंड की अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली का समर्थन करने वाली संस्था आजकल एकल-संक्राम्य-मत-प्रणाली को अधिक महत्व देती है। यह प्रणाली अनुपाती प्रणाली की ही एक पद्धति है। इस पद्धति में वर्तमान दो या अधिक एक-प्रतिनिधिक क्षेत्रों को आपस में मिला कर कुछ बड़े बड़े निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बना दिये जायंगे कि प्रत्येक बड़े निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात अभ्यर्थी (उम्मेदवार) चुने जा सकें। एक निर्वाचन क्षेत्र से कितने ही प्रतिनिधि चुने जा सकें पर प्रत्येक मत-दाता को एक ही मत देने का अधिकार होगा। साथ ही साथ उसको मतदान पत्र पर इस एक मत को देते समय यह स्पष्ट करने की भी स्वतन्त्रता होगी कि वह सर्वप्रथम किस उम्मीदवार को चाहता है, दूसरे नम्बर पर किसको। इसी प्रकार वह सब उम्मीदवारों के नाम के सामने अपनी रुचिसूचक १,२,३,४ आदि संख्या लिख देगा। यदि पहली पसन्द के उम्मीदवार को उस मतदाता के मत की आवश्यकता न हुई और वह उसके मत पाने से पहले ही निश्चित मतों की संख्या पा चुकने से निर्वाचित हो गया या उसके निर्वाचित होने की आशा ही नहीं है तो वह मत दूसरी पसन्द वाले उम्मीदवार को दे *दिया जायगा।*

इसी प्रकार वह मत यदि आवश्यक हो तो तीसरी, चौथी आदि पसन्द वाले उम्मीदवारों को दे दिया जायगा। मतदाता का मत किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं जायगा, वह किसी न किसी उम्मीदवार को निर्वाचित करने में उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रणाली की विशेषता यही है कि कोई भी मत व्यर्थ नहीं जाता यदि कोई कठिनाई है तो वह गिनने की, पर उससे मतदाता को कोई कष्ट नहीं होता। गणना से पहले तो यह स्थिर करना पड़ता है कि निर्वाचित होने के लिये प्रत्येक उम्मीदवार को कम से कम कितने मत मिलनें चाहियें। इसका निकालना बहुत सरल है जबकि हमें कुछ प्रतिनिधियों की संख्या व कुल मत-दाताओं की संख्या मालूम हो। इस प्रणाली से लोकमत का अधिक सच्चा परिचय मिलता है जो वर्तमान प्रणाली से नहीं मिल सकता। इसे प्रत्येक मतदाता को वास्तव में पसन्द करने का अवसर मिल सकता है।

निर्बन्धनीय और एकत्रीभूत मत (Restrictive and cumulative vote) अनुपाती प्रणाली की दूसरी दो पद्धतियां निर्बन्धनीय मत-पद्धति और एकत्रीभूत-मत-पद्धति हैं। इन दोनों के लिये भी बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन-क्षेत्र होने चाहियें पर पहली पद्धति में निर्वाचित होने वाले प्रति-निधियों की संख्या से कम संख्या में. मतधारक को मत देने का अधिकार होता है। दूसरी में उसको जितने प्रतिनिधि चुने जाने वाले हैं उतने ही मत देने का अधिकार होता है पर उसे इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपने सब मत केवल एक ही उम्मीवार को दे दे या उनको सब में बांट दे।

अनुपाती प्रतिनिधिक-प्रणाली है तो अच्छी पर इससे अनेकों पक्ष बन जायेंगे और दो पक्ष वाली सरकार-प्रणाली समाप्त हो जायगी। इस प्रतिनि-धिक-प्रणाली से बहुत से पक्षों को बनने का बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि सभी को अपने समर्थकों की संख्या के अनुपात से पार्लियामेंट में स्थान मिलने की आशा रहेगी। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या प्रतिनिधिक-शासन प्रणाली को सफल-कार्य बनाने के लिये केवल दो पक्ष ही होने चाहियें। यह कहा जाता है कि अब भी तो इंगलैंड में तीन राजनैतिक पक्ष हैं, अनुपाती प्रणाली के अपनाने से इन तीनों पक्षों में स्थिरता आ जायेगी और वे लोकमत के सब अंगों का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे। इस स्थिरता और सुरक्षा के होने पर ही शासन-नीति व शासन कार्य के गुण-दोषों की उचित आलोचना हो सकती है।

क्या हाउस आफ कामन्स वास्तव में सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है?—सिद्धान्तरूप से लोकसभा को बिना किसी एक पक्ष को प्रधानता दिये समस्त जनता की इच्छा का प्रदर्शन करना चाहिये। इस सिद्धान्त पर यदि हाउस आफ कामन्स की रचना की परीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो सकता है

कि यह सदन किन किन वर्गो का प्रतिनिधित्व करता है। यदि इसकी सदस्यता का विश्लेषण किया जाय तो हमे कुछ रोचक बाते मालूम होगी। ग्रीव्ज ने अपनी "दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन" नामक पुस्तक मे लिखा है, "हाउस ऐसे दो विभागो मे बटा हुआ है जो उसके बाहर सामाजिक वर्ग-विभाग से मिलते जुलते है। दोनो प्रमुख पक्षो के सदस्य एक ही सामाजिक वर्ग से नही आते। उनमे वश की, शिक्षा की, आर्थिक व्यवसाय की, सम्पत्ति की व अवकाश-उपयोग की विभिन्नता रहती है। और यदि ऐसा है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है कि राजनीति के विषय मे उन दोनो मे मौलिक मतभेद हो और उनके राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी हो"* सन् १९३१ मे हाउस के १८८ सदस्य कम्पनियो के सचालक-मण्डलो मे ६९१ स्थानो पर आसीन थे जिनमे से १५२ उन मण्डलो के सभापति के स्थान पर थे। इन १८८ सदस्यो मे १६५ अनुदार पक्ष के लोग थे। बाकी ५३ श्रमिक पक्ष के सदस्य थे जिनमे ३२ श्रमिक सघो के पदाधिकारी थे। अधिकतर उपाधि-प्राप्त पार्लिया-मेट के सदस्य अनुदार पक्ष के सदस्य थे। अनुदार पक्ष साधारणतया उच्च श्रेणी के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है श्रमिक (लेबर) पक्ष साधारण मनुष्य का "यह स्मरण रखना चाहिये कि उच्च श्रेणी के व्यक्तियो की सामाजिक श्रेष्ठता और भूमि के स्वामित्व से मेल खाने वाली साधारण श्रेणी वालो की ओद्योगिक या व्यापारिक प्रभुता पहले की तरह अब देखने को नही मिलती।" पहले जहाँ एक के हाथ मे सामाजिक श्रेष्ठता और जागीर होती थी वहा दूसरे पक्ष के हाथ मे उद्योग और व्यापार से कमाई हुई सम्पत्ति थी। "इस बात के न रहने से दोनो प्रभुताओ को एक ही हाथ मे कर लेने की इच्छा बलवती होने के कारण शासक पक्ष और विरोधी पक्ष के हितो का पहले जैसा अब ताना बाना नही बनता।"

सदन का संगठन—जब सामान्य निर्वाचन हो चुकता है तब नया सदन अपना सगठन करने के लिये एकत्रित होता है। सबसे पहला काम स्पीकर (अध्यक्ष) का निर्वाचन करना होता है। किसी भी विधानमडल के अध्यक्ष का आसन ग्रहण करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति मे दो गुणो की विशेष आव-श्यकता है, निरपेक्षता और निर्णय करने की योग्यता। अध्यक्ष को कार्यप्रणाली के सब नियमो की जानकारी होनी चाहिये। यदि ये बातें न हो तो विधानमडल केवल एक भीड़ रह जाती है जहा समय बर्बाद होता है बिना समुचित विचार हुये कानून बनते है और विधान मण्डल की उपयोगिता मे विश्वास नही रहता।

---

* ग्रीव्ज . दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ३।

भाग्यवश इंगलैंड की पार्लियामेंट का यह दावा सत्यसिद्ध हो चुका है कि उसका स्पीकर (अध्यक्ष) पक्षपात शून्य है। अध्यक्ष सदन की पूरी अवधि के लिये चुना जाता है। पर एक बार चुने जाने के बाद वह जितनी बार चुना जाना चाहे चुना जा सकता है। उसके चुनाव के लिये विभिन्न पक्षों के नियामक (Whips) पहले ही मिलकर समझौता कर लेते हैं और एक उम्मीदवार को चुन लेते हैं जिससे सदन में चुनाव होते समय एकमत होकर अध्यक्ष का चुनाव हो। जिस क्षण अध्यक्ष चुन लिया जाता है तब से वह किसी पक्ष का सदस्य नहीं रहता और विधान-मंडल के संघर्ष में बिल्कुल तटस्थ रहकर दोनों पक्षों के मध्य में बराबर जाता रहता है। वह अनुशासन रखता है और वाद-विवाद को नियम पूर्वक चलाने का काम करता है। इसीलिये इस पद की निरपेक्षता सर्वमान्य हो गई है और हर सामान्य निर्वाचन में अध्यक्ष का निर्वाचन क्षेत्र उसे बिना विरोध के चुन लेता है। केवल एक बार ही ऐसा हुआ कि श्रमिक दल (Labour Party) ने स्पीकर के विरुद्ध अपना उम्मीदवार खड़ा किया और उसमें वह हार भी गया। तब से स्पीकर की महत्ता और भी बढ़ गई है।

अध्यक्ष (Speaker) के कर्तव्य—इंगलैंड में स्पीकर का पद बहुत प्राचीन है और १४ वीं शताब्दी से बिना कभी भंग हुये चलता चला आ रहा है। स्पीकर के मुख्य कर्तव्य सदन की बैठकों में अध्यक्ष का काम करना है। इस काम में उसे सदन के काम को नियमानुकूल रखना पड़ता है और जब विधेयक (Bills) पास हो जाते हैं। तब उन्हें प्रमाणित करना पड़ता है। स्पीकर को अच्छा वेतन दिया जाता है; और अवकाश प्राप्त करने में पेंशन भी दी जाती है, साथ साथ लार्ड की उपाधि भी दी जाती है पर उसे पाने का कोई अधिकार नहीं होता, वह तो राजा की भेंट स्वरूप ही मिलती है।

सदन के दूसरे कर्मचारी भी होते हैं। उनमें से क्लर्क (clerk) सारे अभिलेखों (Records) की देखभाल करता है और उसी को विधेयक प्रश्न सम्बन्धी नोटिस पहुँचने चाहियें। वही स्पीकर के आदेश से प्रतिदिन का कार्य-क्रम तैयार करता है। सारजेंट-एट-आर्म्स (Sergeant-at-Arms) सदन में स्पीकर के प्रवेश की घोषणा करता है और अनुशासन रखने में स्पीकर के आदेशों का पालन करता है।

सदन की समितियाँ—प्रत्येक नये सदन के संगठित हो चुकने पर कुछ समितियों का संगठन किया जाता है और त्येक समिति को निश्चित कार्य

भार सौंप दिया जाता है। मुख्य समितियां वे छः स्थायी समितियां हैं जो प्रत्येक सत्र के आरम्भ में चुनी जाती हैं। जितने विधेयक सदन के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं वे सब पहले परीक्षा और सुझाव के लिये इन समितियों में से एक को भेज दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो विधेयक किसी भी समिति के अधिकार क्षेत्र में नहीं पड़ते उनके लिये दूसरी समितियाँ बनाई जाती हैं। विशेषकर वे विधेयक जिनमें कोई नये सिद्धान्त अन्तर्भूत होते हैं उनके लिये पृथक् समितियां बनाईजाती हैं। इन समितियों को "सैलक्ट" (Select) समितियाँ कहते हैं। जो स्थायी छः समितियाँ हैं वे क्रमानुसार लोक-लेखा (Public Accounts) स्थायी आदेशों (Standing Orders) जनता के प्रार्थना-पत्रों (Select Public Petitions) स्थानीय विधान-निर्माण (Local Legislation) और विशेषाधिकारों (Privileges) से सम्बन्ध रखती हैं। छठी समिति सारे सदन की होती है। जब सदन समिति के रूप में अपनी कार्यवाही करता है उस समय स्पीकर अपने आसन से उठ जाता है, और दण्ड (Mace) आसन के नीचे रख दिया जाता है जो इस बात की सूचना देता है कि सदन का स्थगन (Adjournment) हो गया, और सभापति का आसन वह पुरुष लेता है जो इसके लिये विशेषतया चुना हुआ होता है। यह सभापति (Chairman) स्पीकर की भांति पक्षपात शून्य नहीं होता वरन् वह अपने पक्ष का सदस्य बना रहता है। जब सदन समिति के रूप में बैठकर काम करता है तब कार्य-क्रम के नियमों का कड़ाई के साथ पालन नहीं किया जाता। कोई सदस्य एक ही प्रश्न पर जितनी बार चाहे उतनी बार बोल सकता है, प्रस्तावों के समर्थन की आवश्यकता नहीं होती, जिस विषय पर निर्णय हो चुका हो इस पर पुनः विचार हो सकता है। जब सदन समिति के रूप में अपना कार्य समाप्त कर चुकता है तो वह अपनी रिपोर्ट देने के लिये फिर से सदन के रूप में आ जाता है, स्पीकर अपना आसन ग्रहण कर लेता है, दण्ड फिर आसन पर रख दिया जाता है और पूर्ववत सदन का काम आरम्भ हो जाता है

समितियाँ कैसे नियुक्त की जाती हैं—यद्यपि सिद्धान्त रूप से समितियों की नियुक्ति सदन में चुनाव के द्वारा हुई समझी जाती है पर व्यवहार में यह काम निर्वाचन समिति (Committee of selection) छोड़ दिया जाता है जिसमें ११ सदस्य होते हैं जो प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में दोनों सदनों द्वारा छांट लिये जाते हैं। वास्तव में प्रधानमन्त्री और विरोधी पक्ष का नेता दोनों मिलकर इनके छांटने में सहमत हो लेते हैं, उसके पश्चात् ये नाम सदन में स्वीकृत हो जाते हैं। उसके बाद निर्वाचन समिति प्रत्येक स्थायी

और 'सैलेक्ट' समिति के सदस्यों को चुनौती है। चुनते समय बहुमत पक्ष के ही सब व्यक्ति नहीं चुन लिये जाते वरन् यह ध्यान रखा जाता है कि सदन में प्रत्येक पक्षों के सदस्य की गिनती के अनुपात से ही इन समितियों में उन पक्ष के व्यक्ति रहें।

सदन की गणपूरक संख्या (Quorum) अर्थात् सदस्यों की जिस संख्या में उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नहीं हो सकता, वह ४० है। जब तक ४० सदस्य सदन में उपस्थित न हों तो सदन वैधरूप से कार्यवाही नहीं कर सकता। जब गणपूरक संख्या नहीं होती तो एक घण्टी बजाई जाती है और इस घण्टी के बजने के दो मिनट के समय के भीतर सदस्य आकर यदि इस संख्या को पूरा नहीं करते तो स्पीकर सदन को स्थगित कर देता है।

सदन में कार्यक्रम के नियम—अपने कार्यक्रम के सम्बन्ध में सदन स्वयं ही नियम बनाता है। इनमें से कुछ ये हैं:—वाद-विवाद में दूसरे सदन में होने वाले वाद-विवाद का कोई परिचय न दिया जाय; या न्यायालय द्वारा विचाराधीन विषय पर कोई आलोचना न की जाय; राजा का नाम अनादरपूर्वक या सदन में प्रभाव जमाने के हेतु न लिया जाय; देश-द्रोही या विद्रोहात्मक वचन न बोले जायँ; न बाधा डालने वाली या विलम्बकारी चालें चली जायं; कोई सदस्य चाहे तो अपनी टिप्पणियां देख सकता है पर अपने व्याख्यान को पढ़ कर सुना नहीं सकता; दूसरे सदस्यों का नाम लेकर व्याख्यान में निर्देश नहीं किया जा सकता, और स्पीकर के आदेश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सदन के वाद-विवाद को कम करने और कार्यवाही में शीघ्रता लाने के लिये बहुत से उपाय निश्चित कर रखे हैं। उनमें से पहला यह है कि यदि कोई सदस्य अनावश्यक विलम्ब करने का प्रयत्न करे और कार्यवाही में रुकावट डाले तो स्पीकर अपराधी का नाम बता देता है। यदि इस सदस्य के विरुद्ध विलम्बन का प्रस्ताव रखा जाय और वह स्वीकृत हो जाय तो उस सदस्य को सदन से निश्चित समय के लिये बाहर निकाला जा सकता है। यह समय उस सत्र के बचे हुये समय से अधिक नहीं हो सकता। दूसरा, वाद-विवाद या व्याख्यान को समाप्त करने के लिये क्लोज़र (Closure) अर्थात् समाप्ति का प्रस्ताव काम में लाया जाता है। इस प्रस्ताव के लिये कोई सदस्य यह कह दे "कि अब प्रश्न पर मत निर्णय किया जाय" और यदि इस कथन को सभापति स्वीकार कर ले तो वह वाद-विवाद को वहीं समाप्त कर देता है और इस प्रस्ताव को सदन के सामने रखता है। यदि समाप्ति के प्रस्ताव के समर्थन के लिये १०० सदस्य

खडे हो जाय तो वह स्वीकृत समझा जाता है । गिलोटीन (Guillotine) कहलाने वाला उपाय भी वाद-विवाद को अन्त करने के लिये काम मे लाया जाता है । इसके द्वारा व्याख्यानो पर समय-सम्बन्धी सीमा बाध दी जाती है । जब समिति रूप मे सदन कार्य करता है तो उपस्थित सशोधनो मे से अध्यक्ष कुछ सशोधनो को ही विचार करने के लिये छाट लेता है जिससे बचे हुये सशोधनो पर विचार करने का समय बच जाता है, क्योकि उन पर विचार नही किया जाता इस युक्ति को कगारू (Kangaroo) कहते है ।

सदस्यों के कर्तव्य (Obligations) और विशेषाधिकार (Privileges)—सदस्यो के कुछ कर्तव्य और कुछ विशेषाधिकार होते है । कर्तव्यो मे पहला तो यह है कि प्रत्येक सदस्य को सदन के कार्य में भाग लेने से पहले पार्लियामेण्ट की सामान्य शपथ लेनी पडती है जो इस प्रकार है "मै .....शपथ लेता हू कि मै सम्राट्.........व उसके उत्तराधिकारियो के प्रति विधान के अनुसार सच्ची भक्ति रखूगा, इसलिये ईश्वर मुझे शक्ति दे ।" दूसरे, प्रत्येक सदस्य को सदन के नियमो का पालन करना पडता है और स्पीकर की आज्ञा शिरोधार्य करनी पडती है। अधिकारियो मे, सदस्यो को १००० पौड वार्षिक वेतन मिलता है, उन्हे बोलने की स्वतन्त्रता रहती है, पार्लियामेण्ट की जब बैठक हो रही हो उस समय वे उससे ४० दिन पूर्व व पश्चात् तक उनको बन्दी नही बनाया जा सकता, उन्हे विधेयक और प्रस्तावो को रखने की स्वतन्त्रता रहती है और वे प्रश्न भी पूछ सकते है जिनका उत्तर मन्त्रिपरिषद् देती है ।

सदन के सस्था रूपी अधिकार—सदन के जा सस्था-रूपी कुछ अधिकार होते है वे ये है । स्पीकर की मध्यस्थता से यह सामूहिक रूप से सम्राट् तक पहुच सकता है । इसका यह अधिकार है कि इसकी कार्यवाही का अधिक से अधिक अनुकूल अर्थ लगाया जाय । स्पीकर चाहे तो दर्शको को बाहर हटाने की आज्ञा दे सकता है, वह चाहे तो सदन की कार्यवाही के आलेख के जनता द्वारा प्रकाशन पर रोक लगा सकता है । सदन स्वय ही अपनी रचना पर नियन्त्रण रखता है, यह अपने सदस्यों को या बाहर वालो को सदन के अनादर करने के अपराध का दण्ड दे सकता है ।

हाउस आफ लार्ड्स

"हाउस आफ लार्ड्स का जन्म राजनैतिक विकास की प्रथम प्रफुल अचेतनावस्था में हुआ। बड़े बड़े जागीरदारों व विजयी सामन्तों के लिये यह स्वाभाविक था कि वे राजा को परामर्श देने का कार्यभार अपने ऊपर लेते और स्वाभाविक था उन विद्वान् सम्पत्तिवान् धर्मपुजारियों के लिये कि वे ग्रेट कौंसिल के शक्तिशाली वृत्त के भाग बनते"।* वर्तमान हाउस आफ लार्ड्स उस एंग्लो-सेक्सन विटैनगैमोट (Witenagemot) का ऐतिहासिक प्रतिनिधि है जो नौर्मन काल में अपने पूर्व नाम को छोड़ कर मैग्नम कांसीलियस (Magnum Concilium) के नाम से प्रकट हुआ। बहुत प्राचीन समय से अब तक पीयरों (Pears) के बनाने का विशेषाधिकार राजा का ही रहा है। ये पीयर अपने आप ही, बिना किसी दूसरी आवश्यकता को पूरी किये हाउस आफ लार्ड्स में बैठने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

हाउस आफ लार्ड्स नाम क्यों?—यद्यपि ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स ऐतिहासिक दृष्टि से इंगलैण्ड में ही नहीं वरन् सारे विश्व में प्रथम विधान मंडल है परन्तु अपने अधिकारों और कर्तव्यों के कारण यह दूसरा सदन कहलाता है। कभी कभी इसे 'हाउस आफ पीयर्स' कह कर भी पुकारा जाता है परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है क्योंकि सब पीयरों को हाउस में स्थान नहीं मिलता और न सब सदस्य पीयर ही होते हैं। पीयरेज (Peerage) और हाउस आफ लार्ड्स से एक ही वस्तु का भान नहीं होता। स्काटलैंड और आयरलैंड के सब पीयर हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य नहीं होते, उनके अतिरिक्त विशप (पादरी) और पुनर्विचार करने वाले न्यायाधीश लार्ड्स पीयर नहीं होते पर वे हाउस के सदस्य होते हैं। पीयर की उपाधि पैतृक होती है और पिता से पुत्र को यह उपाधि व इससे संलग्न विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और हाउस आफ लार्ड्स के सब लार्ड्स को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता।

पीयर बनाने का राजकीय विशेषाधिकार—जैसा पहले कहा जा चुका है केवल राजा को ही यह विशेषाधिकार है कि वह पीयर बनावे, यही नहीं वह जितने पीयर बनाना चाहे बना सकता है। हां, पीयर बनाने की इस स्वतन्त्रता

---

*फाइनर : थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० ६७८

पर कुछ नियन्त्रण अवश्य हैं। वे ये हैं—पहला, स्काटलैंड से सम्मिलित कराने वाले विधान के अनुसार स्काटलैंड का कोई नया पीयर नहीं बनाया जा सकता। दूसरे, आयरलैंड को मिलाने वाले विधान के अनुसार प्रत्येक तीन विलीन हुये पुराने पीयरों के स्थान पर एक नया पीयर बनाया जायगा उस समय तक जब तक कि वहां के पीयरों की संख्या घटते घटते १०० न रह जाय। तीसरे, राजा उस व्यक्ति को फिर से पीयर नहीं बना सकता जिसने पहले कभी अपनी पीयर की उपाधि वापिस कर दी हो। पर वास्तव में कोई व्यक्ति अपनी उपाधि वापिस नहीं कर सकता क्योंकि हाउस ने सन् १६६४ में यह प्रस्ताव पास कर दिया था कि कोई पीयर अपनी उपाधि को समाप्त नहीं कर सकता। चौथे, जागीर भेंट करने पर राजा पीयर की उपाधि को ऐसे नियमों से मर्यादित नहीं कर सकता जो अवैध हों अर्थात् जो विधान में मान्य न हों।

हाउस आफ लार्ड्स में कौन कौन लोग होते हैं—हाउस आफ लार्ड्स में तीन श्रेणियों के सदस्य होते हैं (क) पार्लियामेंट के पैतृक अधिकार वाले लार्ड्स जिनमें राजघराने के राजकुमारों के अतिरिक्त पांच प्रकार के इंगलैंड के पीयर होते हैं—ड्यूक, मार्क्वेस, अर्ल वाईकाउन्ट और बैरन। ये उपाधियां ज्येष्ठ पुत्र को पिता के पश्चात् प्राप्त होती हैं। (ख) बिना पैतृक अधिकार वाले लार्ड्स जिनमें स्काटलैंड के पीयरों से चुने हुये १६ पीयर होते हैं और आयरलैंड के पीयरों द्वारा चुने हुये २८ आजीवन पीयर होते हैं, स्काटलैंड के बचे हुये पीयर हाउस आफ कामन्स की सदस्यता के लिये खड़े नहीं हो सकते पर आयरलैंड के पीयर हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होकर जाने के लिये खड़े हो सकते हैं। (ग) आजीवन लार्ड, जिनमें २६ धर्माधिकारी लार्ड और छः लार्ड्स आफ अपील इन-ऑर्डिनरी (Lords of Appeal-in-ordinary) जो १५ वर्ष तक बैरिस्टर रह चुके हों या जो किसी बड़े न्यायधीश के पद पर आसीन रह चुके हों, होते हैं। धर्माधिकारी लार्ड्स में कैन्टरबरी और यार्क के दो बड़े पादरी और २४ छोटे पादरी होते हैं। लार्ड्स आफ अपील (Lords of Appeal) की नियुक्ति राजा ही करता है और उनको ६००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। इन छः लार्डों को तभी अपने पद से हटाया जा सकता है जब पार्लियामेंट के दोनों सदन मिलकर ऐसा करने के लिये राजा से प्रार्थना करें। ये आजीवन लार्ड जब तक जीवित रहते हैं हाउस के सदस्य बने रहते हैं। पहले, पीयर लोग प्रावसी (Proxy) अर्थात् दूसरे पुरुष के द्वारा अपना वोट हाउस में दे सकते थे पर सन् १८६८ के पश्चात् से यह प्रथा बन्द कर दी गई, अब अपना वोट (मत)

देने के लिये प्रत्येक पीयर को हाउस में उपस्थित होना चाहिये ।

लार्डों के कर्तव्य और विशेषाधिकार—पार्लियामेंट के लार्डों के कुछ कर्तव्य और कुछ विशेषाधिकार भी होते हैं । प्रत्येक पीयर की, चाहे वह पार्लियामेंट का सदस्य हो या न हो, राजा के पास सीधी पहुँच होती है । जो लार्ड २१ वर्ष की आयु वाला न हो या जिसने सन् १८६६ के शपथ विधान के अनुसार राजभक्ति की शपथ न ली हो वह हाउस में न बैठ सकता है न वोट (मत) दे सकता है । यदि किसी लार्ड को देशद्रोह या किसी दूसरे महापराध का दण्ड मिल चुका है तब वह उस समय तक हाउस में बैठकर वोट नहीं दे सकता जब तक कि वह दण्ड भुगत न चुका हो । जो व्यक्ति ब्रिटेन का नागरिक नहीं वह हाउस आफ लार्ड्स में बैठने के लिए नहीं बुलाया जा सकता न किसी दिवालिया पीयर को बुलाया जाता है । एक बार जब पैतृकाधिकार वाले पीयर को बुलावा मिल जाता है तो वह बुलावे का अधिकार उसके उत्तराधिकारी को भी उसके बाद अपने आप मिल जाता हैं । रायपुर (बिहार) के प्रथम लार्ड सिनहा की जब मृत्यु होगई (प्रथम लार्ड सिनहा हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य थे) तो उनके पुत्र और उत्तराधिकारी लार्ड सिनहा को जो अभी जीवित हैं, हाउस में आने का बुलावा न मिला क्योंकि उनसे यह सिद्ध करने को पूछा गया कि वे बहु-विवाह की अयोग्यता के अपराधी तो नहीं हैं । इस पर यह प्रश्न हाउस की विशेषाधिकार सम्बन्धी समिति (Committee of Privileges of the House of Lords) के सम्मुख रखा गया जिसका निर्णय लार्ड सिनहा के अनुकूल रहा और अब लार्ड सिनहा को बराबर हाउस के लिये बुलावा आता है और वे हाउस में बैठने के लिये जाते हैं । पार्लियामेंट की जब बैठक हो रही हो, उस समय या किसी सत्र के चालीस दिन पूर्व और पश्चात् तक हाउस आफ लार्ड्स के किसी सदस्य को किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता । यह सुविधा लार्डों के नौकरों को भी मिलती है और उनको भी सत्र के २० दिन पूर्व व २० दिन पश्चात् व जब बैठक हो रही हो पकड़ा नहीं जा सकता । प्रत्येक लार्ड को बोलने की स्वतन्त्रता होती है और उसे यह भी अधिकार होता है कि वह चाहे तो किसी प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति को हाउस के आलेखों में लिखवा दे । उसे जूरी (Jury) में काम करने के भार से मुक्त कर दिया जाता है, पर किसी पीयर की स्त्री हाउस में न बैठ सकती है और न वोट दे सकती है । हाउस की पूर्ण सदस्य-संख्या लगभग ८४० है किन्तु वास्तव में मताधिकारियों की संख्या लगभग १२० है ।

हाउस आफ लार्ड्स के विशेषाधिकार—संस्था रूप में हाउस आफ लार्ड्स को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। हाउस का अनादर करने वाले व्यक्ति को हाउस अनिश्चित काल तक के लिए भी कारागृह भेज सकता है। अपने संगठन के विषय में यह स्वयं ही देखभाल करता है और इस अधिकार का उपभोग करने में यह नये पीयरों के नियमानुकूल बनने या न बनने पर विचार करके निर्णय दे सकता है। यहां तक कि हाउस यदि निर्णय करे तो किसी नये पीयर को, जो अयोग्य ठहरा दिया गया हो, हाउस में बैठने और कार्यवाही में भाग लेने से रोक सकता है और उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। सन् १९३६ से पूर्व यदि कोई लार्ड देशद्रोह या महापराध का दोषी कहा जाता और यदि वह यह कहता कि उसका मुकदमा लार्डों द्वारा ही सुना जाय तो हाउस ऐसे मुकदमे को सुनता था और निर्णय देता था। पर सन् १९३७ में एक ऐसा कानून लार्ड सांके ने विधान मंडल में रक्खा जिसके पास हो जाने पर यह विशेषाधिकार समाप्त कर दिया गया। लार्ड सांके (Lord Sankey) ने यह प्रस्ताव क्यों रक्खा, उसके पीछे एक छोटा सा इतिहास है। जब लार्ड डिक्लिफोर्ड पर मोटर दुर्घटना के फलस्वरूप मनुष्य-हत्या का आरोप लगाया गया तो उन्होंने अपने विशेषाधिकार की मांग की। दिसम्बर १२, १९३५ को हाउस में मुकदमे की सुनवाई हुई और सुनवाई के अन्त में जब यह प्रश्न रक्खा गया कि बन्दी अपराधी है या नहीं तो ८४ पीयरों में से प्रत्येक ने खड़े होकर कहा "अपराधी नहीं", इससे सबकी यह भावना होगई कि यह विशेषाधिकार "कानून के सम्मुख समता" के नियम का उल्लंघन करना है और फलस्वरूप लार्ड सांके ने इसको तोड़ने का प्रस्ताव विधान मंडल में रख दिया।

लार्ड्स किसका प्रतिनिधित्व करते हैं—हाउस आफ लार्ड्स दूसरे सदन के रूप में बड़ी ही अप्रगतिशील संस्था है क्योंकि वह सम्पन्निवर्ग का गढ़ है जहां से वे अपनी रक्षा करते रहे हैं। इसलिये यह सदन लोकमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता। लार्ड्स अपने आप का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी लिये वे उन योजनाओं का विरोध करते रहे हैं जिनसे उनके या दूसरे धनिकों के अधिकारों पर आक्रमण होता हो। लार्ड्स में बहुत से बड़े धनी हैं, यह इससे प्रकट हो जायगा कि "सन् १९३१ में हाउस में २८६ जमींदार थे, बैंकों के डाइरेक्टर ६७, रेलों के ६८, कल के कार-खानों के ४९ और बीमा कम्पनियों के ११२। सन् १९२७ में प्रत्येक पीयर के पास औसतन् ३२,४००

एकड़ भूमि थी और २२७ पीयर कुल ७,३६२,००० एकड़ भूमि के स्वामी थे। ७६१ कम्पनियों में ४२५ डाइरेक्टरों के पद पर ७७२ लार्ड्स आसीन थे।" * इसलिये यह आश्चर्य की बात नहीं कि कई अवसरों पर इस हाउस ने रुकावट डालने वाली चालें चलीं, विशेषकर सन् १८३२ और १९१० में। जौन स्टूअर्ट मिल (John Stuart Mill) ने इसका वर्णन "एक बड़ी क्रोध दिलाने वाली छोटी सी असुविधा" कह कर किया था। ऐसा होते हुये भी अन्त में प्रगतिशील पीयरदल की जीत ही हुई है और रुकावटें हटा ली गई। पार्लियामेंट के लार्डों की संख्या ७८० है पर उनमें ७२० ही हाउस आफ लार्ड्स में बैठ सकते हैं और वोट दे सकते हैं, बचे हुये नाबालिग (अप्राप्त वयस्क) या स्त्री होने के कारण अयोग्य हैं। इस पार्लियामेंट के लार्डों की अधिकतर संख्या उन पांच श्रेणियों में विभक्त है जिनको पैतृक अधिकार है। उदाहरण के लिये सन् १९४२ में २९ ड्यूक, ४० मार्क्वेस, १६६ अर्ल, ६७ वाइकाउन्ट और ३४४ बैरन थे। अधिकतर लार्ड हाउस में उपस्थित होने को उत्सुक नहीं रहते इसलिये सदन की औसतन उपस्थिति केवल ८० है। यह पता लगा है कि सन् १९३२ और १९३३ में २८७ पीयर कभी भी उपस्थित नहीं हुये और सन् १९१९ से १९३१ तक १११ पीयरों ने कभी अपना वोट देने की परवाह न की। जितने उपस्थित भी होते हैं उनमें से आधे कभी बोलने का प्रयत्न नहीं करते। इससे यह स्पष्ट है कि हाउस की कार्यवाही की ऐसी उपेक्षा ये लार्ड करते हैं कि कभी कभी इस सदन की उपयोगिता पर सन्देह होने लगता है, इसके वर्तमान स्वरूप को बदलने व इसमें सुधार करने के लिये कई प्रयत्न भी किये जा चुके हैं।

हाउस आफ लार्ड्स के सुधार—ब्रिटिश राजनीति का एक महत्वपूर्ण प्रश्न हाउस आफ लार्ड्स के सुधार का प्रश्न रहा है। सन् १८३२ तक तो हाउस आफ कामन्स भी साधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। पर पहले दो सुधार-विधानों (Acts) के पास हो जाने के पश्चात् हाउस आफ कामन्स तो वास्तविक प्रजातन्त्रात्मक सदन में परिवर्तित हो गया और हाउस आफ लार्ड्स की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा क्योंकि यह भय था कि हाउस आफ लार्ड्स प्रजातन्त्र की उन्नति में बाधक सिद्ध होगा। सन् १८६९ और १८८८ के बीच में अधिकारों की दृष्टि से या संगठन के सम्बन्ध में या दोनों बातों में हाउस आफ

* ग्रीव्ज : ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ५४।

लार्ड्स के सुधार करने के लिये कई प्रयत्न किये गये। एक बार तो यह सुझाव रखा गया कि धर्माधिकारी पीयरों को समाप्त कर दिया जावे। पर इनमें से कोई भी प्रयत्न सफल न हुआ। सन् १९०६ में जब उदार पक्ष का मन्त्रिमण्डल बना तो अनुदार पक्ष के लोग हाउस आफ लार्ड्स में अपने बहुमत के आधार पर महत्वपूर्ण उदार योजनाओं के पास होने में रोड़ा अटकाने लगे। इसके फलस्वरूप दोनों सदनों में विरोध उत्पन्न हो गया। कामन्स ने यह प्रस्ताव पास किया कि लार्ड्स का विरोध होते हुये भी जनता के प्रतिनिधियों की इच्छा सर्व-मान्य होनी चाहिये और उसी के अनुसार कार्य होना चाहिये। इस-लिये सन् १९०८ में लार्ड्स ने अपनी एक समिति नियुक्त की जिसके सभापति लार्ड रोज़बरी हुये। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह सुधार के लिये सुझाव उपस्थित करे। समिति ने यह सिफारिश की कि द्वितीय गृह (Upper House) की रचना निर्वाचन के द्वारा हो, पर इस सुझाव को कामन्स में उदार दल के बहुमत ने स्वीकार नहीं किया।

ब्राइस समिति—सन् १९११ में पार्लियामेण्ट एक्ट (Parliament Act) पास हुआ जिसमें तुरन्त ही कुछ महत्वपूर्ण सुधार हुये और उसकी प्रस्तावना में यह वचन दिया गया कि भविष्य में हाउस आफ लार्ड्स के सुधार के लिये कोई वैधानिक कार्यवाही की जायगी, यह प्रस्तावना इन शब्दों में थी "और क्योंकि यह इच्छा है कि हाउस आफ लार्ड्स के स्थान पर एक द्वितीय गृह (Second chamber) पैतृक अधिकार के आधार पर न बना कर लोक सत्ता के आधार पर बनाया जाय, परन्तु ऐसा परिवर्तन तुरन्त क्रार्यान्वित नहीं किया जा सकता......।" सन् १९१७ में एक समिति नियुक्त हुई जिसके सभापति लार्ड ब्राइस थे। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह हाउस आफ लार्ड्स के सुधार के सुझाव उपस्थित करे। इस ब्राइस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव रखे :—(१) द्वितीय गृह के अधिकार हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के समान न हों जिससे वह हाउस आफ कामन्स का प्रतिद्वन्द्वी न बन सके (२) इस द्वितीय गृह को मन्त्रिमण्डल बनाने या बिगाड़ने की शक्ति न होनी चाहिये और (३) अर्थ-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के लिये इसे हाउस आफ कामन्स के बराबर अधिकार न मिलने चाहियें। भविष्य में द्वितीय गृह के संगठन के लिये समिति ने ये सिफारिशें कीं : (क) किसी राजनैतिक मत को स्थायी प्रभुत्व न मिलना चाहिये (ख) इसका संगठन ऐसा हो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के विचार और दृष्टिकोण का इसमें प्रदर्शन हो सके, और (ग) इसमें ऐसे व्यक्ति रखे जायें जो शारीरिक शक्ति न होने या प्रबल दलबन्दी के

अनुकूल स्वभाव न होने के कारण हाउस आफ कामन्स में जाना नहीं चाहते। समिति के विचार से इस द्वितीय गृह के निम्नलिखित कर्तव्य होने चाहियें :—

(१) हाउस आफ कामन्स से आये हुये विधेयकों (Bills) की परीक्षा करना और दुहराना। यह काम बड़ा आवश्यक हो गया है क्योंकि हाउस आफ कामन्स में काम इतना बढ़ गया है कि पिछले तीन वर्ष में कई अवसरों पर हाउस आफ कामन्स में वाद-विवाद को कम करने के लिये विशेष नियम बनाने पड़े और उनके अनुसार कार्यवाही करनी पड़ी।

(२) उन अविरोधी विधेयकों को प्रारम्भ करना जो यदि विचार करने के पश्चात् सुव्यवस्थित रूप में रख दिये जायं तो हाउस आफ कामन्स में सहज ही स्वीकृत हो जायं।

(३) किसी विधेयक के निर्बन्ध (Law) बनने में इतना ही और केवल इतना ही विलम्ब करना जिससे लोकमत को प्रकट होने का पर्याप्त समय मिल सके। उन विधेयकों के सम्बन्ध में इसकी विशेष आवश्यकता है जो विधान के आधारभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन करना चाहते हों या जो निर्बन्ध-सम्बन्धी नये सिद्धान्त प्रचलित करते हों या जो ऐसे प्रश्न उठाते हों जिनके अनुकूल व विरोध लोकमत समान रूप से विभक्त हो।

(४) जिस समय हाउस आफ कामन्स में इतना काम हो कि वह महत्व पूर्ण और बड़े प्रश्नों, उदाहरणार्थ जैसे वैदेशिक नीति के लिये समय न निकाल सके, तब उन प्रश्नों पर खुले ढंग पर पूरी तरह वाद-विवाद करना। ऐसा वाद-विवाद यदि उस सभा में हो जिसे कार्यकारिणी के भाग्य-निर्णय करने का अधिकार न हो तो और भी लाभदायक होगा।

हाउस आफ लार्ड्स के इस सुधार को कार्यान्वित करने के लिये ब्राइस समिति ने यह सिफारिश की कि नये द्वितीय गृह के सदस्यों की कुल संख्या ३२७ हो। इनमें से २४६ को कामन्स के सदस्य चुनें। इस चुनाव के लिये कामन्स के सदस्यों को १२ प्रादेशिक भागों (Regional Divisions) में बांट कर प्रत्येक भाग से अपनी निश्चित संख्या को चुनने का काम दे दिया जाय। बचे हुये ८१ सदस्यों को दोनों आगारों की एक सम्मिलित समिति सब पीयरों (Peers) में से छांटे। इस द्वितीय आगार की अवधि १२ वर्ष रखी गई और प्रत्येक चार वर्ष पश्चात् एक तिहाई सदस्य हट जायं। कोई एक हाउस आफ कामन्स २४६ सदस्यों के एक तिहाई सदस्य निर्वाचित न करे, इसका अभिप्राय

यह था कि यह योजना क्रमानुसार धीरे-धीरे कार्यान्वित हो न कि तुरन्त किसी एक निश्चित समय पर। यह योजना भी केवल लिखी ही रह गई, उस पर कोई कार्यवाही न की गई।

सन् १९२६ की योजनायें—सन् १९२६ में लार्ड केव (Cave) ने एक दूसरी योजना उपस्थित की। इस योजना का उद्देश्य हाउस आफ कामन्स के विरुद्ध हाउस आफ लार्ड्स को अधिक शक्तिशाली बनाना था। पर इसका बड़ा विरोध हुआ, सब ही ने इसको धिक्कारा। उसी वर्ष दिसम्बर में लार्ड क्लैरेण्डन (Lord Clarendon) ने फिर एक दूसरी योजना हाउस आफ लार्ड्स के सम्मुख रखी जिसका उद्देश्य यह था कि दक्षता पूर्वक शीघ्रता से कार्य-सम्पादन के हित में दोनों गृह में अधिक मेल रहे और एक दूसरे के साहयक रहें। इस योजना के अनुसार सब पीयर (Peers) मिल कर अपने में से १५० पीयर चुनते, दूसरे १५० पीयरों को राजा प्रत्येक पार्लियामेण्ट की अवधि तक के लिये मनोनीत करता। मनोनीत करने में राजा यह ध्यान रखता कि पीयर हाउस आफ कामन्स में विभिन्न पक्षों की संख्या के अनुपात से ही नियुक्त किये जायें। इसके अतिरिक्त राजा को कुछ आजीवन पीयर बनाने का अधिकार भी दिया गया था। पर यह योजना भी स्वीकृति की अन्तिम सीढ़ी तक न पहुँच सकी।

सैलिज़बरी की सुधार योजनायें—सन् १९३३ में कतिपय वैधानिक सिद्धान्तों का सहारा लेकर लार्ड सैलिज़बरी ने हाउस आफ लार्ड्स के सुधार का एक विधेयक पुनःस्थापित किया। इस विधेयक के सिद्धान्त ये थे कि अर्थ-सम्बन्धी विषयों में जनता के प्रतिनिधियों की राय सर्वोच्च समझी जाय और उनको अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार हो, दूसरे विषयों में निर्बन्ध तभी अन्तिम रूप से पार (पास) हों, जब जनता विचारपूर्वक निर्णय करे। पैतृक अधि-कार के सिद्धान्त में कमी लाने के लिये द्वितीय गृह (Second Chamber) के सदस्यों की संख्या कम कर के ३२० रखी गई। इन ३२० सदस्यों में १५० पैतृक अधिकार वाले पीयर, १५० दूसरे पार्लियामेण्ट के लार्ड जो पीयरों के बाहर से चुने जायं, और बाकी रौयल पीयर (Royal Peers) न्याय लार्ड (Law Lorn) और कुछ धर्माधिकारी रखे गये थे। इसके अतिरिक्त मुद्रा-विधेयकों को प्रमाणित करने के हेतु सन् १९११ के ऐक्ट में निर्धारित स्पीकर के अधिकार के स्थान पर इस योजना में प्रमाणित करने का अधिकार दोनों सदनों की एक सम्मिलित समिति को दिया गया। यह भी प्रस्ताव किया गया कि यदि किसी योजना को हाउस आफ लार्ड्स तीन बार पूर्ण बहुमत (absolute majority) से रद्द कर दे तो उसके सम्बन्ध में निर्णय दूसरे

होने वाले हाउस आफ कामन्स पर छोड़ दिया जाय। यह योजना भी निबंध का रूप न पा सकी।

सुधार की आवश्यकता इतनी योजनाओं के सफल रहने के पश्चात् भी ज्यों की त्यों बनी हुई है क्योंकि हाउस आफ लार्ड्स द्वितीय गृह का कर्तव्य भली भांति पूरा नहीं करता। ऐसे आगार के दो मुख्य कार्य होते हैं, पहला, प्रथम गृह से आई हुई योजनाओं को दुहराना और उन पर पुनर्विचार का अवसर प्रदान करना। दूसरा, उन लोगों को राज्यकार्य में साझी होने की सुविधा देना जो हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होने के लिये निर्वाचन लड़ना नहीं चाहते। श्री ग्रीव्ज़ (Greeves) ने यह सुझाव रखा कि दोनों कार्य सिद्धान्तों को व्यवहार रूप दिया जा सकता है यदि (१) हाउस आफ कामन्स द्वारा पार्लियामेण्ट के लार्डों का चुनाव हो। यह चुनाव प्रत्येक पार्लियामेण्ट के पहले सत्र के प्रथम मास में हो और लार्ड पार्लिमेण्ट के विघटन होने तक अपने पदों पर स्थित रहें, (२) कामन्स में जिस पक्ष के जितने सदस्य हों वे अपनी संख्या के आधे के बराबर लार्डों को चुनें और (३) हाउस आफ कामन्स का स्पीकर निर्वाचन-पद्धति निश्चित करे। सुधार की कोई योजना भी स्वीकार की जाये पर यह निर्विवाद है कि हाउस आफ लार्ड्स का सुधार होना आवश्यक है जिससे यह व्यवस्थापक मण्डल का उपयोगी अंग सिद्ध हो सके।

हाउस आफ लार्ड्स का संगठन—हाउस आफ कामन्स की तरह हाउस-आफ लार्ड्स का भी एक संगठन है। इसका सभापति लार्ड चान्सलर (Lord Chancellor) कहलाता है जो मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है। लार्ड चान्सलर को पीयर होना आवश्यक नहीं है इसलिये उसका आसन हाउस की परिधि मे बाहर रहता है। उसका आसन वूलसैक (Woolsack) कहलाता है जिसका अर्थ है कि वह लार्ड्स के समान कीमती आसन पर न बैठने योग्य होने के कारण साधारण ऊनी बोरे के आसन पर बैठता है। पर साधारणतया जब कोई ऐसा व्यक्ति लार्ड चान्सलर बनाया जाता है तो पीयर न हो तो वह चान्सलर बनने के पश्चात् पीयर बना दिया जाता है। हाउस अपनी कार्य-पद्धति को स्वयं ही निश्चित करता है। लार्ड चान्सलर को कार्य-पद्धति सम्बन्धी प्रश्न पर आदेश देने का अधिकार नहीं है, कम से कम तीन पीयरों की (quorum) अर्थात् गणपूरक-संख्या होती है, पर साधारणतया किसी बैठक में ५० पीयरों के उपस्थित होने की आशा की जाती है। पीयर जब व्याख्यान देते हैं तो अध्यक्ष को अपना भाषण नहीं सुनाते वरन् सदन को। यदि लार्ड चान्सलर पीयर नहीं

होता तो उसे मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि वह पीयर होता है तो मत देने का अधिकार और पीयरों के समान उसे भी प्राप्त रहता है, पर उसे निर्णायक द्वितीय मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष व विरोध में मत बराबर हों तो वह प्रस्ताव गिर जाता है। लार्ड चान्सलर के अतिरिक्त एक व्यक्ति समितियों का अध्यक्ष भी होता है जो उस समय सभापति का स्थान ग्रहण करता है जब सदन समिति के रूप में कार्य करता है। वही व्यक्तिगत विधेयकों से सम्बन्धित सब कामों की देखभाल करता है। ग्रेट सील्स (Great Seals) अर्थात् राजमुहरों से प्रमाणित अधिकार-पत्रों द्वारा एक जेंटिलमैन अशर आफ दी ब्लेक रोड (Gentleman Usher of the Black Road) नियुक्त किया जाता है हाउस आफ लार्ड्स में जो अधिकार सूचक दण्ड (Mace) के रूप में काले रंग का एक डण्डा रखा जाता है उसी से इस पदाधिकारियों का नाम पड़ा है। उसका मुख्य काम बन्दी बनाने की आज्ञाओं को कार्यान्वित करना, कामन्स के सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर हाउस के सामने उपस्थित करना और जिन व्यक्तियों को हाउस आफ लार्ड्स ने किसी अभियोग के सम्बन्ध में रोक रखा हो उनको सुरक्षित स्थान में बन्द रखना है। जब लार्ड चान्सलर हाउस में प्रवेश करता है या हाउस छोड़ कर जाता है तो सार्जेण्ट-एट-आर्म्स, अधिकार-दण्ड (Mece) लेकर चलता है। हाउस का क्लर्क कार्यक्रम की रिपोर्ट और न्याय-सम्बन्धी निर्णय के आलेखों को सुरक्षित रखना है।

हाउस आफ लार्ड्स के कर्त्तव्य—हाउस आफ लार्ड्स के दो प्रकार के कर्त्तव्य है, एक निर्बन्धकारी (Legislative) और दूसरे न्यायकारी (Judicial) निर्बन्धकारी सदन के रूप में हाउस आफ लार्ड्स को ही आरंभ में राजा को निर्बन्धों के बनाने में परामर्श देने का अधिकार था। केवल सन् १३२२ में ही कामन्स की समाप्ति की इस काम में आवश्यकता समझी गई। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक सिद्धान्ततः व व्यवहार में दोनों सदनों को निर्बन्धकारी सत्ता की दृष्टि से समानाधिकारी समझा जाता था। परन्तु सन् १८६१ से अधिकतर निर्बन्धों के बनाने में, विशेष कर अर्थ-सम्बन्धी निर्बन्धों में हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार होने लगी। जब सन १९०९ में लार्ड्स ने आर्थिक-विधेयक (Finance bill) के पास होने में रुकावट डाली तो प्रधान मन्त्री एस्क्विथ (Asquith) के हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति को काम करने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया। यह विधेयक सन् १९१२ के पार्लियामेण्ट एक्ट के स्वरूप में पास हो गया। इससे हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति बहुत कम हो गई। यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स अब भी निर्बन्ध-

निर्माण कार्य में भाग लेता है पर अब यह केवल एक द्वितीय आगार के समान है जो किसी योजना के बनने में देरी कर सकता है पर रुकावट नहीं डाल सकता ।

न्यायकारी कर्तव्य—न्यायकारी संस्था के रूप में हाउस आफ लार्ड्स का अधिकार-क्षेत्र दो प्रकार का है, प्रारम्भिक और पुनर्विचारक । सन् १९३६ तक उन पीयरों के मुकदमे, जो अपनी श्रेणी के ही न्यायाधीशों से सुने जाने की सुविधा की मांग करते थे, हाउस आफ लार्ड्स में ही आरम्भ होते थे, पर अब यह अधिकार समाप्त कर दिया गया है । प्रारम्भिक न्यायालय के रूप में हाउस इन मुकदमों के सुनने का काम करता था :—(१) हाउस आफ कामन्स से लगाये हुये अभियोग (अब ऐसे अभियोग लगाने की प्रथा नहीं रही है) (२) उन लोगों के विवाहोच्छेद के मुकदमे जो आयरलैण्ड के निवासी हों (३) पीयर बनने के अधिकार सम्बन्धी मुकदमे (४) विशेषाधिकारों के विरुद्ध किये गये अपराधों के अभियोग (५) स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के पीयरों के निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़े पुनर्विचारक (Court of appeal) न्यायलय के रूप में हाउस आफ लार्ड्स सारे देश की अदालतों के निर्णयों पर पुनर्विचार कर सकता है परन्तु न्याय सम्बन्धी यह कार्य लार्ड्स आफ अपील इन-आर्डिनरी (Lords of Appeal-in-Ordinary) ही करते हैं, सम्पूर्ण हाउस इस काम को सम्पादन नहीं करता । जब अपीलों की सुनवाई होती है तब लार्ड चाँसलर जो लार्ड्स आफ अपील-इन-आर्डिनरी में का एक लार्ड होता है सभापति का आसन ग्रहण करता है परन्तु जब मुकदमों की प्रारम्भिक सुनवाई होती है तो लार्ड हाई स्टीवार्ड (Lord High Steward), जो प्रत्येक मुकदमे के लिये विशेषरूप से राज्याधिकार से नियुक्त होता है सभापति का काम करता ।

पार्लियामेंट के अधिकार

पार्लियामेंट की सर्वोच्च सत्ता—प्रसिद्ध लेखक मैरियट (Marriot) ने पार्लियामेण्ट की महत्ता को इन शब्दों में वर्णन किया है "किसी भी दृष्टि से परीक्षा की जाय तो यह ज्ञात होगा कि अंगरेजी विधान-मण्डल संसार में सब से महत्वपूर्ण और रोचक संस्था है । प्राचीनता में इसके जोड़ की दूसरी संस्था नहीं है, इसका अधिकार-क्षेत्र बड़ा विशाल है और इसकी शक्ति की कोई मर्यादा नहीं है । अधिकारी होने के कारण और सर्वदा मानव जाति के एक चौथाई भाग के लिये विधि निर्बन्ध बनाते रहने से पार्लियामेण्ट (या यों कहिये पार्लियामेण्ट स्थित राजा) अपने आप से ऊंची किसी घरेलू सत्ता को नहीं मानती । इतने विशाल

अधिकारों की स्वामिनी पार्लियामेण्ट के जोड़ की दूसरी संस्था संसार में नहीं है।" आचार्य डायसी ने इस सर्वोच्च सत्ता का स्पष्टीकरण करने के लिये तीन बातें कही हैं (i) ऐसा कोई भी निर्बन्ध अर्थात् कानून नहीं है जिसे पार्लियामेण्ट न बना सकती हो (ii) ऐसा कोई निर्बन्ध नहीं जिसमें पार्लियामेण्ट संशोधन या परिवर्तन न कर सकती हो (iii) अंगरेजी शासन विधान में अवैधानिक और वैधानिक निर्बन्धों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है। स्टैट्यूट आफ वैस्टमिनस्टर (Statute of Westminster) यद्यपि पार्लियामेण्ट के विशाल अधिकारों का एक उदाहरण है पर उसके पास हो जाने से पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च सत्ता में कमी आगई क्यों कि उसके द्वारा औपनिवेशिक (Dominion) पार्लियामेण्टों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे अपने देश के लिये कोई भी निर्बन्ध बना सकती है चाहे वह निर्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेंट के किसी एक्ट के विरुद्ध भी हो। पर इन स्वायत्त-शासन वाले देशों को छोड़ कर ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे भाग अब भी पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च सत्ता के आधीन हैं। ब्रिटिश साम्राज्य में (औपनिवेशिक राज्यों के बाहर) कोई न्यायालय ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के बनाये हुये निर्बन्धों के वैध-अवैध होने पर शंका नहीं कर सकता। विधान की दृष्टि से सर्वोच्च सत्ता पार्लियामेण्ट में है, पर एक राजनैतिक सर्वोच्च सत्ता ब्रिटेन की जनता के हाथ में है जो इस पार्लियामेण्ट को चुन कर जन्म देती है।

पार्लियामेण्ट का मुख्य काम आर्थिक व दूसरे प्रकार के निर्बन्धों को बनाना है। सब निर्बन्ध सिद्धान्तः "किंग इन पार्लियामेण्ट" (King in Parliament) अर्थात् राजा और पार्लियामेण्ट की समिति से बनते हैं परन्तु व्यवहार में हाउस आफ कामन्स के जनतन्त्रात्मक बनने से और राजा द्वारा सारे अधिकार पार्लियामेण्ट को सौंपे जाने से हाउस आफ कामन्स ही सब विधि-निर्माण कार्य का सम्पादन करता है और मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखता है। इस शक्ति में १९११ के पश्चात् और भी अधिक वृद्धि हो गई है। राजा तो केवल इससे सन्तुष्ट रहने लग गया है कि उसको खर्च करने के लिये धन मिलता है और शासन के उत्तरदायित्व के भार से वह मुक्त है। सन् १९११ से पहले भी हाउस आफ लार्ड्स सब महत्वपूर्ण निर्बन्धों के विषय में हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार कर लेता था, विशेषकर अर्थ सम्बन्धी मामलों में हाउस आफ कामन्स वास्तविक शक्ति व अधिकार का उपभोग करता था यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स को परिवर्तन के सुझाव देने और अपना नियंत्रण रखने का कानूनी अधिकार प्राप्त था। एरसकिन (Erskine) ने बड़े स्पष्ट

शब्दों में राजा, हाउस आफ लार्ड्‌स को और हाउस आफ कामन्स के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की है जो इस प्रकार हैं :—

"राजा मुद्रा चाहता है, कामन्स उसे मंजूर करता है और लार्ड्‌स उस मंजूरी से सहमत होते हैं। पर कामन्स जब तक राजा को आवश्यकता न हो मुद्रा की मंजूरी नहीं देते, न वे नये कर लगाते या पुरानों में वृद्धि करते हैं जब तक ऐसा करना अनुदानों की मंजूरी के लिये आवश्यक न हो या आगम में कमी न पड़ गई हो। राजा को करों के प्रकार या उनके वितरण से कोई सरोकार नहीं रहता पर पार्लियामेंट के करारोपण का आधार उन समाज-सेवाओं की आवश्यकता है जिनको राजा ने अपने वैधानिक परामर्शदाताओं के द्वारा निश्चित कर दिया है।"

सन् १९११ का पार्लियामेंट ऐक्ट—सन् १९०९ में अर्थ-विधेयक के विषय में दोनों सदनों में जो विरोध उत्पन्न हुआ उसके फलस्वरूप सन् १९११ का पार्लियामेंट ऐक्ट एस्क्विथ के मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव करने पर बना। उस समय एस्क्विथ से उदार पक्ष को विरोधी पक्ष की अपेक्षा १२७ सदस्यों का बहुमत प्राप्त था। यद्यपि प्रस्तावना में जिस सुधार की आशा दिलाई गई थी वह सुधार अभी तक नहीं हो पाया है पर इस ऐक्ट में दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध को निश्चित रूप से स्थिर कर दिया और उस सन्देह को समाप्त कर दिया जो हाउस आफ लार्ड्‌स के अधिकारों के सम्बन्ध में जब तब हुआ करता था। पार्लियामेंट ऐक्ट द्वारा दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में निम्नलिखित वैधानिक परिवर्तन हुये :—

मुद्रा-विधेयकों के ऊपर हाउस आफ लार्ड्‌स का कोई अधिकार न रहा। ये मुद्रा विधेयक हाउस आफ कामन्स में पास हो जाने के ३० दिन बाद पास हुए समझे जाते हैं चाहे हाउस आफ लार्ड्‌स ने उनका विरोध ही क्यों न किया हो। स्पीकर को इस ऐक्ट से यह अधिकार दे दिया गया कि वह यह निर्णय करे कि कौनसा विधेयक साधारण विधेयक है और कौनसा मुद्रा विधेयक। स्पीकर के इस निर्णय के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में सुनवाई नहीं हो सकती। हाउस आफ लार्ड्‌स दूसरे विधेयकों को, जो मुद्रा-विधेयक न हों दो वर्ष तक टाल सकता है। हाउस आफ कामन्स को कानून बनाने का नियंत्रित अधिकार दे दिया गया है, इसमें केवल एक ही अपवाद है। वह यह कि ऐक्ट से ही निश्चित पांच वर्ष की अपनी अवधि को हाउस आफ कामन्स बढ़ा नहीं सकता।

सन् १९११ पार्लियामेंट ऐक्ट इतना महत्वशाली है कि इसकी मुख्य मुख्य धाराओं का अनुवाद यहां दिया जाता है :—

'क्योंकि यह आवश्यक है कि पार्लियामेंट के दोनों आगारों के सम्बन्ध को नियमित कर दिया जाय।'

'और क्योंकि यह विचार हो रहा है कि हाउस आफ लार्ड्स के स्थान पर एक द्वितीय आगार संगठित किया जाय और जो पैतृकाधिकार पर न बनाया जा कर लोकसत्तात्मक ढंग पर न बनाया जाय, पर ऐसे नये द्वितीय आगार बनाना अभी नहीं हो सकता।'

'और क्यों कि ऐसे नये द्वितीय आगार बनाने पर नये आगार के अधिकारों की परिभाषा और मर्यादा स्थिर करनी होगी पर यह वांछनीय है कि हाउस आफ लार्ड्स के अधिकारों की मर्यादा का प्रावधान इस एक्ट में जैसा किया गया है कर दिया जावे।

'इसलिये........यह व्यवस्था की जाती है कि : १ (१) यदि कोई मुद्रा-विधेयक हाउस आफ कामन्स में पास होकर हाउस आफ लार्ड्स के सत्र के समाप्त होने से कम से कम एक मास पहले भेज दिया गया हो और वह विधेयक उस प्रकार पहुंचने से एक मास के भीतर बिना संशोधन के पास न किया जाय, तो वह विधेयक हाउस आफ कामन्स का कोई विपरीत आदेश न होने पर, सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किया जावेगा और सम्राट् के सम्मति सूचक हस्ताक्षर होने पर वह विधेयक ऐक्ट बन जायगा चाहे हाउस आफ लार्ड्स ने उस विधेयक पर अपनी सम्मति न भी दी हो।

(२) मुद्रा-विधेयक वह सार्वजनिक विधेयक है जिसमें स्पीकर के मत से वही प्रावधान हैं जो आगे वर्णन किये हुये सब या इनमें से किसी एक विषय से सम्बन्ध रखते हों; कर का लगाना, तोड़ना, माफ करना, बदलना या सुव्यवस्थित करना, ऋण चुकाने का भार या किसी दूसरे व्यय का भार, एकत्रित कोष पर, या पार्लियामेण्ट से दिये हुये धन पर डालना, ऐसे व्यय में कमी या वृद्धि करना या बिलकुल समाप्त कर देना, सार्वजनिक धन का दान, पर्यादान उगाहना, सुरक्षित रखना और उसका हिसाब रखना व हिसाब की जांच कराना, किसी ऋण

की प्रत्याभूति (Guarantee) बढ़ाना या उस ऋण का चुकाना, या इन सब विषयों से सम्बन्धित कोई कार्यवाही करना। इस धारा में 'कर', सार्वजनिक 'धन' और 'ऋण' से स्थानीय संस्थाओं के 'कर', 'धन' और 'ऋण' से अभिप्राय न समझा जाय।

(३) जब कोई मुद्रा-विधेयक हाउस आफ लार्ड्स के लिये या सम्राट् की सम्मति के लिये भेजा जाय तो उस पर स्पीकर का प्रमाण लेख होना चाहिये कि वह मुद्रा-विधेयक है। इस प्रकार प्रमाणित करने के पूर्व, स्पीकर यदि सम्भव हो तो निर्वाचन समिति द्वारा प्रति सत्र के आरम्भ में नियुक्त सभापतियों में से दो व्यक्तियों से सम्मति लेगा।

२ (१) यदि कोई सार्वजनिक विधेयक (जो मुद्रा-विधेयक न हो या जो पार्लियामेण्ट की अवधि ५ वर्ष से अधिक न बढ़ाता हो) हाउस आफ कामन्स में लगातार तीन सत्रों में पास हो जाय (चाहे एक ही पार्लियामेण्ट में या दूसरी में) और वह हाउस आफ लार्ड्स के सत्र के समाप्त होने से एक मास पूर्व भेजा जाकर वहां उन सत्रों में से प्रत्येक सत्र में रद्द हो जाय तो वह विधेयक हाउस आफ लार्ड्स में तीसरे सत्र में रद्द होने पर हाउस आफ कामन्स के विपरीत आदेश न होने पर सम्राट् के सम्मुख सम्मति के लिये प्रस्तुत किया जावेगा और सम्मति मिलने पर एक्ट बन जायगा, चाहे हाउस आफ लार्ड्स ने उसे स्वीकार किया ही क्यों न हो। पर यह विधान लागू न होगा यदि उन तीनों सत्रों में से कामन्स के पहले सत्र के द्वितीय वाचक (Second Reading) के पश्चात् कामन्स के तीसरे सत्र तक जब यह विधेयक पास हुआ हो, २ वर्ष का समय न बीता हो।

२ (२) जब उपर्युक्त धारा के अनुसार विधेयक सम्राट् के सम्मुख प्रस्तुत किया जावेगा तो उसके साथ कामन्स के स्पीकर का प्रमाण-पत्र होगा कि इस धारा के प्रावधानों की पूर्ति हो चुकी है।

२ (३) हाउस आफ लार्ड्स में यदि विधेयक बिना संशोधन के या संशोधनों के साथ जो कामन्स ने मान लिये हों, पास न हो वह रद्द किया समझा जायगा।

२ (४) कोई विधेयक वही समझा जायगा जो पहले हाउस आफ लार्ड्स में भेजा गया था, यदि वह पहले विधेयक से मिलता जुलता हो या उसमें स्पीकर से प्रमाणित ऐसे परिवर्तन हों जो समय के बीतने के कारण आवश्यक हो गये हों या जो हाउस आफ लार्ड्स द्वारा किये हुये संशोधनों को मिलाने के लिये किये गये हों और यदि हाउस आफ लार्ड्स ने ऐसे संशोधन अपने तीसरे सत्र में कर दिये हों जो कामन्स को स्वीकार हों तो वह स्पीकर द्वारा प्रमाणित होकर उस विधेयक में शामिल कर लिये जायेंगे जो विधेयक सम्राट् की सम्मति के लिये प्रस्तुत किया गया हो।

पर हाउस आफ कामन्स यदि उचित समझे तो अपने दूसरे और तीसरे सत्र में पास होने पर और दूसरे संशोधनों का सुझाव कर सकता है, बिना उनको विधेयक में शामिल किये हुये, और ये सुझाव किये हुये संशोधन हाउस आफ लार्ड्स में विचार के लिये रखे जायेंगे और वहां स्वीकार होने पर ये संशोधन वे संशोधन समझे जायेंगे जो हाउस आफ लार्ड्स ने किये हों और कामन्स ने स्वीकार कर लिये हों। परन्तु हाउस आफ कामन्स के इस अधिकार-प्रयोग से इस धारा के कार्यान्वित होने पर कोई प्रभाव न पड़ेगा यदि हाउस आफ लार्ड्स इस विधेयक को रद्द कर दे।

३—इस एक्ट के अनुसार स्पीकर का प्रमाण पत्र अंतिम समझा जायगा और कोई न्यायालय उस पर विचार न कर सकेगा।

४, ५, ६......

७—सन् १७१५ के सैप्टेनियल एक्ट के अन्तर्गत पार्लियामेण्ट की महत्तम अवधि के सात वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया जाय।

८—यह एक्ट पार्लियामेण्ट एक्ट १९११ के नाम से पुकारा जाय।

विधायिनी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड के लिये ही निर्बन्ध नहीं बनाती पर ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों के लिये भी बनाती है। पर इन

सब निर्वन्धों के बनाने में एक ही पद्धति अपनाई जाती है। जो निर्वन्ध पार्लियामेण्ट बनाती है उसमें किसी सार्वजनिक हित-सम्वन्धी विषय पर लोकमत की छाया देखने को मिल सकती है। यह निर्वन्ध बड़ी लम्बी कार्यवाही के बाद बन पाता है इसलिये बर्नेट का यह मत है कि "इंगलैण्ड का निर्वन्ध जनता की सब से बड़ी शिकायत है क्योंकि वह बड़ा लचीला और विलम्बकारी है।"

विधेयक (Bill) और अधिनियम (Act) में क्या अन्तर है— निर्वन्ध-निर्माण पद्धति वर्णन करने से पूर्व विधेयक और अधिनियम का अन्तर समझना आवश्यक है। विधेयक (Bill) उस निर्वन्ध के पूरे मसविदे का ढाँचा होता है जिसके बनाने का विचार किया जा रहा हो। यह पहले पार्लियामेण्ट के किसी भी सदन में रखा जा सकता है, केवल मुद्रा-विधेयक कामन्स में ही और पीयरों के विशेषाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाला विधेयक हाउस आफ लार्ड्स में ही प्रथम प्रस्तुत किया जाता है। जब विधेयक दोनों सदनों में पास हो जाता है और सम्राट् उस पर अपनी सम्मति प्रकट कर देता है तब वह एक्ट या अधिनियम कहलाता है।

विधेयकों के प्रकार—विधेयक दो प्रकार के होते हैं, सार्वजनिक विधेयक और व्यक्तिगत विधेयक। सार्वजनिक (Public) विधेयक उसे कहते हैं जो सारी जनता के हित से सम्बन्ध रखता है या उसके एक बड़े भाग के हित से। व्यक्तिगत विधेयक किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह संस्था या कम्पनी से सम्बन्ध रखता है। व्यक्तिगत विधेयक को उस विधेयक से न मिला देना चाहिये जो किसी एक व्यवस्थापक व्यक्ति द्वारा धारा सभा में लाया गया हो। धारा सभा के किसी सदस्य द्वारा लाया हुआ विधेयक सार्वजनिक विधेयक भी हो सकता है और व्यक्तिगत भी, यदि वह किसी एक संस्था या कम्पनी के हित से ही सम्बन्ध रखता हो। पार्लियामेण्ट अपना अधिक समय उन्हीं विधेयकों पर विचार करने में व्यय करती है जो सरकार द्वारा उपस्थित किये गये हों। धारा सभा के सदस्य उन विधेयकों में संशोधन का प्रस्ताव रख सकते हैं या उनकी आलोचना कर सकते हैं। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हुये विधेयकों के पास होने की बहुत कम सम्भावना रहती है यदि सरकार उनका समर्थन न करे और सरकार ऐसा समर्थन बहुत कम करती है। यदि किसी मन्त्रिमण्डल को यह पता लग जाय कि सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया हुआ विधेयक वास्तव में लाभदायक होगा तो बाद में सरकार स्वयं अपना विधेयक उपस्थित करती है जो सदस्य के विधेयक के सिद्धान्तों के आधार पर तैयार किया हुआ होता है।

पार्लियामेंट के एक साधारण सदस्य का कार्य---उपर्युक्त वर्णन से यह पता लग जायगा कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में गैर सरकारी सदस्यों का काम केवल इतना है कि वे सरकार द्वारा प्रस्तावित योजनाओं की आलोचना ही करते रहें या सार्वजनिक व व्यक्तिगत मामलों में सरकार से पूछ ताछ के लिये प्रश्न करते रहें। प्रत्येक सदस्य को मन्त्रिमण्डल या किसी मण्डल के किसी एक सदस्य से जानकारी के लिये प्रश्न पूछने का अधिकार होता है और मन्त्रियों को उन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है तथा सूचना सामने रखनी पड़ती है यदि जनहित में ऐसा करना उचित हो। कोई रहस्य जिसका खुलासा करना जनहित-कारक न हो उसे बतलाने के लिये मन्त्री बाध्य नहीं होता। पार्लियामेण्ट के सदस्य सरकार की निन्दा का प्रस्ताव भी ला सकते हैं और यदि ऐसा-प्रस्ताव पास हो जाय तो मन्त्रि परिषद् पदत्याग कर देती है। आमतौर पर पार्लियामेण्ट तत्कालीन सरकार के वैधानिक कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगी रहती है।

विधेयक का नोटिस—किसी भी विधेयक को तैयार करने में पहली बात उसका मसविदा बनाना होता है। यह मसविदा सरकारी वकील जो "पार्लियामेण्टरी कौंसैल" कहलाता है तैयार करता है। किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किया हुआ विधेयक या तो उस सदस्य द्वारा ही तैयार होता है या वह किसी दूसरे से तैयार करा लेता है। पर उस पर नाम उसका ही होना चाहिये। जब सदस्य के विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा मिल जाती है तो वह अपना मसविदा पब्लिक बिल आफिस में ले जाता है और हाउस के सामने रखने के लिये उसे एक फार्म भरना पड़ता है। हाउस में वह बार (Bar) के पास जाता है और स्पीकर के पुकारने पर कहता है "ए बिल सर"। तब यह बिल या विधेयक हाउस के क्लर्क को दिया जाता है जो उस विधेयक के संक्षिप्त नाम को जोर से पढ़ता है। उसके पश्चात् यह समझ लिया जाता है कि हाउस में विधेयक आ गया।

विधेयक का प्रथम वाचन (First Reading)—दूसरी सीढ़ी विधेयक का प्रथम वाचन होता है। सरकारी विधेयक को कोई मन्त्री उपस्थित करता है तो विस्तारपूर्वक उस विधेयक का तथ्य समझाता है। उसके व्याख्यान के पश्चात् वाद-विवाद होता है फिर मत निर्णय किया जाता है, पर सब विधेयकों में पहली रीडिंग (प्रथम वाचन) में कोई वाद-विवाद नहीं होता। गैर सरकारी विधेयक की छपी कापियां सदस्यों को बांट दी जाती हैं, जो सदस्य उस विधेयक को पुनः

स्थापित करता है वह तद्विषयक सम्बन्धी एक फार्म भर देता है और स्पीकर के पुकारने पर उसे उसके आसन के पास ले जाता है जहां क्लर्क उसके संक्षिप्त नाम को पढ़ता है, और इस प्रकार उसका प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

द्वितीय वाचन (Second Reading)—उसके पश्चात् विधेयक का दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस द्वितीय वाचन में विधेयक के आधार-भूत सिद्धान्तों और धाराओं पर विस्तारपूर्वक वाद-विवाद होता है। पर द्वितीय वाचन में प्रस्ताव में यदि यह संशोधन कर दिया जाय कि इस विधेयक पर "तीन मास" (या और कोई समय की अवधि रख दी जाय जिससे उस सत्र में वह वाचन न हो सके) के पश्चात् विचार किया जाय और यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाय तो उसका अभिप्राय समझा जाता है कि विधेयक रद्द कर दिया गया। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हुये विधेयकों में से वहुत से इसी प्रकार रद्द कर दिये जाते हैं। पर जो विधे-यक द्वितीय वाचन में रद्द होने से बच जाता है वह एक समिति को भेज दिया जाता है। प्रत्येक मुद्रा विधेयक सदन की समिति के सामने रखा जाता है। यदि सदन आदेश दे तो वे विधेयक भी जो मुद्रा-विधेयक न हों सदन की समिति के सम्मुख रखे जा सकते हैं। वरना वे सम्बन्धित स्थायी-समितियों के लिये भेज दिये जाते हैं। कभी कभी स्थायी समिति या सदन की समिति के सामने जाने से पूर्व कोई कोई विधेयक सैलैक्ट समिति के सामने भी रखे जा सकते हैं। समिति-में विधेयक पर पूरी तरह से वाद-विवाद होता है। प्रत्येक खण्ड को अलग अलग लेकर विचार होता है और उन पर संशोधनों के प्रस्ताव हो सकते हैं। जिससे उसके दोष दूर हो जायं। जब इस प्रकार समिति में विधेयक पास हो जाता है तो वह फिर सदन में प्रस्तुत किया जाता है और अब सदन उसके ऊपर विस्तार पूर्वक विचार करना आरम्भ करता है। प्रत्येक खण्ड को लेकर वाद-विवाद होता है। यदि संशोधन के प्रस्ताव होते हैं और वे स्वीकार हो जाते हैं तो वे संशोधन विधेयक में कर दिये जाते हैं। कभी कभी विधेयक फिर दुबारा समिति को भेज दिया जाता है।

तृतीय वाचन (Third Reading)—इसके पश्चात् विधेयक का तीसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सारे विधेयक के रूप, सिद्धान्त व उपयोगिता पर विचार होता है। यदि इस समय संशोधन के प्रस्ताव हों और वे स्वीकार हो जायं तो विधेयक फिर समिति में भेज दिया जाता है। यदि तीसरे वाचन में द्वितीय वाचन से निकला हुआ विधेयक ज्यों का त्यों पास हो जाता

है और वह यह है कि सम्बन्धित मन्त्री के वेतन में कटौती का प्रस्ताव किया जाता है। कमेटी आफ सप्लाईज़ (Committee of Supplies) यह निर्णय करती है कि क्राउन (Crown) यानी कार्यकारिणी को कितना व्यय करने का अधिकार दिया जाय और कमेटी आफ वेज एण्ड मीन्स (Committee of Ways & means) यह निश्चित करती है कि किस प्रकार खर्चे के लिये धन एकत्रित किया जाय। नया कर लगाने के सब प्रस्ताव आर्थिक विधेयक (Finance Bill) में शामिल होते हैं और जब वह पास हो जाता है तो उसे आर्थिक विधान (Finance Act) कह कर पुकारते हैं।

सब मुद्रा विधेयकों को कार्यक्रम की उन सब सीढ़ियों को पार करना पड़ता है जो साधारण विधेयकों के लिये वर्णन की गई हैं। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि सन् १९११ के पार्लियामेण्ट के अनुसार यदि मुद्रा विधेयक सत्र की समाप्ति के कम से कम एक मास पूर्व हाउस आफ लार्ड्स में भेज दिया जाता है और वह एक मास के भीतर पास नहीं होता तो वह सम्राट् की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर अधिनियम बन जाता है। ऐसे मुद्राविधेयक को स्पीकर द्वारा प्रमाणित कराना पड़ता है कि वह मुद्राविधेयक है।

दोनों सदनों का मतभेद किस प्रकार समाप्त किया जाता है—सन् १९११ के पार्लियामेण्ट एक्ट के अनुसार हाउस आफ लार्ड्स में यदि कोई मुद्रा-विधेयक एक मास के भीतर स्वीकार न हो तो वह अपने आप सम्राट की सम्मति पाकर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार दोनों सदनों का मतभेद समाप्त हो जाता है। यदि मतभेद साधारण विधेयक के सम्बन्ध में हो और हाउस आफ लार्ड्स के संशोधनों को समाप्त न माने, और यदि वह विधेयक एक ही सत्र में या एक से अधिक सत्रों में कामन्स में तीन बार पास हो जाय और प्रथम तथा तृतीय बार पास होने में १ वर्ष का अन्तर हो जैसा कि १९४९ के संशोधन से निश्चित है तो वह सम्राट् की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार पास होने में केवल एक रुकावट है, वह यह कि कामन्स के पहली बार पास करते समय जो दूसरा वाचन हुआ था उससे लेकर तीसरी बार पास होने तक दो वर्ष का समय बीत चुका होना चाहिये। इसका निष्कर्ष यह है कि हाउस आफ लार्ड्स और कामन्स में मतभेद केवल दो वर्ष तक रह सकता है और उस विधेयक के पास होने में दो वर्ष का विलम्ब हो सकता है।

यहां पर सम्राट् की सम्मति के बारे में कुछ बातें कहनी आवश्यक हैं। सम्राट् की सम्मति केवल एक बाह्य व्यवहार (Formality) है, सन् १७०७ से लेकर अब तक यह सम्मति कभी भी नामंजूर नहीं हुई। यदि सम्राट् किसी योजना के विरुद्ध हो तो वह मन्त्रिपरिषद् को समझा कर उन्हें इस योजना को प्रस्तुत करने से वंचित कर सकता है या वह चाहे तो परिषद् का विघटन कर नई परिषद् बना सकता है या पार्लियामेण्ट का विघटन कर जनता से अपील (नये चुनाव) कर सकता है। राजसी सम्मति (Royal Assent) देने के लिये या तो सम्राट् स्वयं पार्लियामेण्ट में आता है या रायल साइन मैनूअल और ग्रेटसील द्वारा नियुक्त कमीशन द्वारा यह सम्मति दी जाती है। सन् १७०७ में अन्तिम बार यह सम्मति नहीं दी गई जब राजा ने स्काच मिलिशिया बिल को रद्द कर दिया था।

पाठ्य पुस्तकें

Adams.—Constitutional History of England (1934 edition).

Champion, G.F.M.—An Introduction to the Procedure of the House of Commons (1939 edition).

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1929 edition).

Finer, H.—Theory and Practice of Modern Government, Chs. XVIII—XXI.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution Chs. II–III.

Humphreys, J. H.—Practical Aspects of Electoral Reform.

Ilbert, Sir C.—Parliament. Its History, Constitution and Practice, (1911 edition).

Laski H. J.—Parliamentary Government in England. Chs. 3-4.

May, Sir, T. E.—Parliamentary Practice. (1924 edition).
Marriot, J. A. R.—English Political Parties and Politics, Chs. on Parliament and Legislation.
Poole, A.---English Constitutional History (edition IX), pp. 676---725.

अध्याय ७

कार्यपालिका : राजा और मंत्रिपरिषद्

"प्रत्येक श्रेष्ठ राजमुकुट कांटों का मुकुट है और इस पृथ्वीतल पर सर्वदा ऐसा ही रहेगा" (कालाई)

"मन्त्रिपरिषद् आपस की समझदारी से जीवित रहती और अपना कार्य करती है, राजा ने, पार्लियामेण्ट से, राष्ट्र से या आपस में एक दूसरे से या अपने प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करने वाली लिखित कानून या विधान की एक लकीर नहीं है" (ग्लैडस्टोन)

राजा

सिद्धान्ततः इंगलैण्ड का राज्यतन्त्र निरंकुश राज्यतन्त्र है क्यों कि प्रत्येक कानून या निर्बन्ध पर राजा के हस्ताक्षर होने चाहियें, मन्त्री राजा के मंत्री कहलाते हैं, न्यायालय राजा की ही न्याय संस्थायें हैं, पर बाह्यरूप से यह राज्यतन्त्र नियन्त्रित है क्योंकि राजा का कोई आदेश तब तक वैध नहीं जब तक कोई मंत्री उस पर अपने हस्ताक्षर न करे और राजा अपनी मन्त्रि परिषद् के परामर्श को सर्वदा स्वीकार करता है। व्यवहार में यह राज्यतन्त्र प्रजातन्त्र है, राजा केवल एक रबड़ की मुहर ही के समान है, राजनीतिक क्षेत्र में वह केवल इतना ही कर सकता है कि अपना परामर्श दे, उत्साहित करे या चेतावनी दे, कानूनों के बनाने वाले और मन्त्रि परिषदों का भाग्य निर्णय करने वाले तथा शासननीति को निश्चित करने वाले तो प्रजा के प्रतिनिधि और अन्ततः स्वयं प्रजा ही है। अंगरेजी राजतन्त्र (Monarchy) के जोड़ की कोई शासन सत्ता किसी दूसरे देश में नहीं मिल सकती, यह अपने ढंग की निराली है।

एंग्लो-सेक्सन काल में राजा निरंकुश था यद्यपि उस समय भी वह बुद्धिमानों की सलाह और सम्मति से ही कानून बनाता था। सन् १२१५ में बैरनों और पादरियों ने मिल कर जोन नामक राजा को मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया और इस प्रकार अंगरेजों की स्वतन्त्रता के प्रथम अधिकार-पत्र का जन्म हुआ। उसके पश्चात् वैधानिक राजतन्त्र (Constitu-

tional Monarchy) की ओर धारा का प्रवाह आरम्भ हो गया। उस बहाव में कभी कभी किसी राजा ने शासन सूत्र को अपने हाथ में फिर से करने के लिये रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्टूअर्ट-वंशीय राजाओं ने राजा के स्वेच्छाचारी शासनाधिकार का दावा किया और उसके समर्थन में राजा के दैवी अधिकार वाले सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके फलस्वरूप राजाओं और पार्लियामेण्ट में संघर्ष बहुत दिन तक चला। पर अन्त में सन् १६४६ और १६८८ की क्रांति होकर पार्लियामेण्ट की ही जीत हुई। जब जनता के प्रतिनिधि राजा से शासन सत्ता छीन लेने को लड़ रहे थे उस समय भी राजा के महत्व को कम नहीं समझा जाता था, यह बैकन (Bacon) द्वारा जेम्स प्रथम (James I) को दी हुई निम्नलिखित सलाह से प्रकट हो जायगा :—

"पार्लियामेण्ट को एक आवश्यक वस्तु समझो पर यही नहीं उसे राजा और प्रजा को मिलाने वाला एक अनुपम और मूल्यवान साधन समझो जिससे बाहरी दुनिया को यह दिखाया जा सकता है कि अंगरेज अपने राजा को कितना प्यार करते हैं और उसका कितना आदर करते हैं और उसका राजा किस प्रकार अपनी प्रजा पर विश्वास रखता है, इसके साथ खुलासा ढंग पर बर्ताव करो जैसे किसी राजा को करना चाहिये न कि फेरी वाले व्यापारी की तरह सन्देह की दृष्टि से। पार्लियामेण्ट से भय न करो, इसको बुलाने में चतुरता से काम लो पर उसे अपने समर्थकों से भरने का प्रयत्न न करो।

इसको वश में करने के लिये सारी चतुरता, मानव स्वभाव की जानकारी दृढ़ता और गौरव का प्रयोग करो, शरारती और बदमाशों को उनके उपयुक्त स्थान पर रखो पर अनावश्यक अड़ंगा लगाने का प्रयत्न न करो, प्रकृति को अपना कार्य करने दो, और हालांकि तुम इसे धन के लिये ही चाहते हो पर दूसरों पर यह प्रकट न होने दो कि इसके बुलाने से तुम्हारा यही अभिप्राय है। कानून बनाने में अग्रसर हो। अपने पास कोई न कोई रोचक और प्रभावशाली सुधार या नीति का विषय तैयार रखो और पार्लियामेण्ट से कहो कि वह उसके सम्बन्ध में तुम्हारी सलाह ले। इस बात का ध्यान रखो कि ऐसे विधेयकों को बनवा कर तैयार करा लो जिनसे राजा के आदर में वृद्धि हो और उसकी देखभाल मान्य हो, ऐसे विधेयकों को बनवाने के लिये प्रयत्न न करो जो राजा व उसकी कृपा को सस्ती बना डालें पर ऐसे विषय उपस्थित करो जिनके ऊपर पार्लियामेण्ट कुछ काम करने में लगे क्योंकि खाली पेट केवल विनोदपूर्ण बातों से नहीं भरते।"

चौथे अध्याय में हम यह दिखला आये हैं कि किस प्रकार सन् १६ में और १६८८ में जिस बात को राजा ने स्वीकार नहीं किया उसे पार्लियामेण्ट ने बरबश छीन लिया । १६८६ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और १७०१ के एक्ट आफ सैटिलमैण्ट (Act of Settlement) में राजा के अधिकारों की मर्यादा व राजा का उत्तराधिकार-क्रम निश्चित कर दिया गया है। जब राज्य सिंहासन खाली होता है तो राजमुकुट सबसे पहले ज्येष्ठ पुत्र को पहनाया जाता है। यदि ज्येष्ठ पुत्र जीवित न हो तो उसका बच्चा, लड़का हो या लड़की, राज सिंहासन पर बैठता है। उनके भी न होने पर दूसरे पुत्र को या उसके बच्चों को राजमुकुट पहनाया जाता है। इस प्रकार राज्य करने का अधिकार एक पैतृक है और राजसिंहासन कभी खाली नहीं रहता। "राजा मर गया, राजा चिरंजीवी रहे" (The King is dead, long live the King) इस कानूनी सिद्धान्त का यही मतलब है कि यद्यपि एक व्यक्ति विशेष राजा मर गया पर राजसिंहासन खाली नहीं है, दूसरा उत्तराधिकारी राजा उस पर अपने आप ही कानून की दृष्टि से आसीन है। यह उत्तराधिकार अपने आप ही प्राप्त हो जाता है जैसा एडवर्ड अष्टम के प्रिवी कौंसिल में दिये उस भाषण मे व्यक्त हो जायगा जो पंचम जार्ज की मृत्यु के पश्चात् दिया गया था। एडवर्ड अष्टम ने कहा, "रे प्रिय पिता सम्राट् की मृत्यु से ब्रिटिश साम्राज्य को जो हानि हुई है उसके पश्चात् सर्वोच्च सत्ता के कर्तव्य का भार मेरे ऊपर आ पड़ा है" आगे चल कर उन्होंने कहा "२६ वर्ष पूर्व जब मेरे पिता इस आसन पर आये थे उन्होंने घोषणा की थी कि उनके जीवन का एक उद्देश्य यह रहेगा कि वे वैधानिक राज्यतन्त्र को सुरक्षित रखें। इस बात में मैं स्वयं भी अपने पिता का अनुगामी बनूँगा और उनकी तरह अपने सारे जीवन भर अपनी प्रजा के सुख व कल्याण के लिये प्रयत्न करता रहूँगा। मुझे सारे साम्राज्य की प्रजा के प्रेम का सहारा है और मुझे विश्वास है कि उनकी पार्लियामेण्ट मेरे भारी काम में मुझे सहायता देगी और मैं प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर इस काम में मुझे मार्ग दिखावे।"

दूसरे दिन सेण्ट जेम्स नामक महल की खिड़की से निम्नलिखित संदेश सुनाया गया :—

"क्योंकि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने हमारे राजा जार्ज पञ्चम को अपने पास बुला लिया है जिससे ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड का राजमुकुट अकेले और अधिकारी ढंग से राजकुमार एलबर्ट जार्ज को प्राप्त हो गया है, इसलिये

हम इस देश के याजक व अयाजक लार्ड, सम्राट् की प्रिवी कौंसिल के लार्डों के साथ व दूसरे श्रेष्ठ पुरुषों, लन्दन के लार्ड मेयर, एल्डर मैन और नागरिकों के साथ एक स्वर, वाणी व अंतःकरण से यह घोषणा करते हैं कि महान् व शक्तिवान राजकुमार एलबर्ट जार्ज एण्ड्रू पैट्रिक डैविड, हमारे पुनीत स्मृति वाले राजा की मृत्यु के पश्चात्, अधिकारी वैधानिक रूप से एडवर्ड अष्टम हमारे राजा हुये, इत्यादि ।"

इस घोषणा व उस शपथ के शब्दों से, जो प्रत्येक इंगलैण्ड के राजा को राज्याभिषेक के समय लेनी पड़ती है, प्रकट हो जायगा कि यद्यपि ब्रिटिश राज्य-तन्त्र पैतृक है पर वह वास्तव में वैधानिक है और उसकी शक्ति की मर्यादा बंधी हुई है ।

राजा नाम के लिये कार्यपालिका सत्ता है—राजा प्रजा पर शासन नहीं करता केवल राज्य करता है, वर्तमान राजतन्त्र का पहले जैसा ही गौरव अब भी है, शायद पहले से अधिक ही हो पर वास्तविक शक्ति मन्त्रि परिषद् के हाथ में है इंगलैण्ड में राज्यतन्त्र को "वाह्य रूपी कार्यकारिणी" (Formal Executive) कह सकते हैं क्योंकि राजा के नाम से सारी शासन-सत्ता का उपभोग मन्त्री लोग करते हैं जो पालियामेण्ट को उत्तरदायी रहते हैं ।

दूसरे राष्ट्रपतियों की अपेक्षा राजा की आय—शासन-सत्ता को दूसरों के सौंपने के बदले में राजा को क्या मिला ? उसे शासन की जिम्मेदारी के बोझ से मुक्ति मिल गई । वह पालियामेण्ट के काम में हस्तक्षेप नहीं करता और उसके बदले में पालियामेण्ट प्रतिवर्ष उसके लिये एक बहुत बड़ी रकम मंजूर कर देती है जिससे वह बड़े राजसी ठाठ-बाठ से रह सकता है । जार्ज षष्ठम को प्रतिवर्ष ४१०,००० पौंड मिलता है और इसके अतिरिक्त लंकास्टर की जागीर की आय जो ५ लाख के लगभग है मिलती है । कार्नवैल की जागीर से भी उसे एक लाख पौंड की आय है जिसमें से १६,००० पौंड कुमारी एलिज़ाबैथ को व ड्यूक आफ ग्लीसेस्टर को दे दी जाती है । राजघराने के दूसरे सब लोगों को मिलाकर प्रति वर्ष १७०,००० पौंड दिया जाता है । इस प्रकार कुल ६,५०,००० पौंड का राज-घराने का खर्चा है । इसके मुकाबिले में हालैण्ड के राजा की आय ५०,००० पौंड, इटली के राजा की १,२५,००० पौंड, नार्वे और स्वीडन के राजाओं की ३५,००० पौंड और ८५,००० पौंड थी । फ्रांस के प्रैसीडेण्ट को ४५,००० पौंड और अम-रीका के प्रैसीडेण्ट को २०,००० पौंड मिलता है, इसके अलावा कुछ भत्ता और

दिया जाता है । इगलैण्ड के राजा की निजी सम्पत्ति भी बहुत है जो विक्टोरिया के समय से प्राप्त होती चली आ रही है । वह अपनी सम्पत्ति को अन्य व्यक्तियो के समान बेच सकता है और खरीद सकता है ।

अंगरेजी राजतन्त्र कानून की दृष्टि में और वास्तव में—कानून की दृष्टि मे अब भी इगलैण्ड का राजा उतना ही सर्वोच्च सर्वाधिकारी है जितना १६ वी शताब्दी के अन्त मे था । उसके कानूनी अधिकारो मे कोई कमी नही आई है । वही सर्वोच्च कार्यपालिका सत्ता है, वही पार्लियामेण्ट में अन्तिम विधायिनी शक्ति का स्वामी है और वह अब भी "जस्टिस (न्याय) और 'ऑनर' (प्रतिष्ठा) का निर्झर" है । वह धर्म-सघ (Church) का अब भी अध्यक्ष है, अब भी वह राष्ट्र की सैन्यशक्ति का नायक है और साम्राज्य व राष्ट्र की एकता और गौरव उसमे मूर्तिमान है । राजनीतिज्ञ बेजहोट (Bagehot) ने विक्टोरिया के राज्य-काल मे राजा की उन शक्तियो का सक्षिप्त वर्णन किया था जो वह बिना पार्लियामेण्ट की सम्मति के उपयोग कर सकता है । वह वर्णन इस प्रकार है "रानी सेना को भग कर सकती थी, वह सेनापति से लेकर सब अफसरो को बर्खास्त कर सकती थी, सब नाविको को भी अपने पद से हटा सकती थी, वह हमारे सब पोतो और उनका सब सामान बेच सकती थी । वह कार्नवैल की जागीर देकर सुलह कर सकती थी और ब्रिटेन की विजय के लिये युद्ध कर सकती थी । वह इंगलैण्ड के प्रत्येक स्त्री पुरुष को पीयर (peer) बना सकती थी और प्रत्येक पैरिश (Parish) को यूनिवर्सिटी बना सकती थी । वह सब राजकीय कर्मचारियों को बर्खास्त कर सकती थी और सब अपराधियो को क्षमा कर सकती थी । सक्षेप मे रानी सरकार के सारे काम कर सकती थी, बुरी लडाई या सुलह कर के राष्ट्र का अपमान करा सकती थी और समुद्री तथा दूसरी सेनाओ को तोड फोड कर हमको दूसरे राष्ट्रो के आक्रमण के लिये अरक्षित छोड सकती थी ।"* इगलैण्ड के राजा के अधिकारो की यह विस्तृत सूची है जिनको राजा आज भी काम मे ला सकता है ।

वास्तव में राजा के अधिकार नियंत्रित हैं—पर व्यवहार मे बडा अंतर है । राजा का कोई भी आदेश कार्यान्वित नही हो सकता जब तक कोई मन्त्री उस आदेश पर हस्ताक्षर न कर दे और हस्ताक्षर करने पर वह मन्त्री उस आदेश का उत्तरदायी हो जाता है । राजा को अपने मन्त्रियों को सलाह माननी पडती

* बजहौट इगलिश कस्टीट्यूशन, पृष्ठ ३६ ।

है। हलांकि यह बात प्रथानुसार मान्य हो गई है, इसके पीछे कोई वैधानिक लिखित नियम नहीं हैं, पर फिर भी वह अंगरेजी विधि-निर्वन्ध की ऐसी महत्व-पूर्ण अंग बन गई है कि सन् १९३६ में अष्टम् एडवर्ड को राजसिंहासन छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा क्योंकि उसके मन्त्रियों ने उसे अपनी 'प्रेयसी' से विवाह करने के विचार को त्याग देने की सलाह दी। राजकर्मचारियों के बरखास्त करने का राजा का विशेषाधिकार इसी प्रकार प्रतिबन्धित है। हैल्सबरी ने प्रीरोगेटिव (Preogativ e) अर्थात् राजा के विशेषाधिकार की परिभाषा इस प्रकार की है "प्रीरोगेटिव वह सर्वोच्च प्रतिष्ठा है जो प्राचीन प्रचलित नियमों से, पर उनकी परिधि के बाहर, राजकीय गौरव के कारण सब व्यक्तियों से अधिक राजा को मिलती है। इस प्रतिष्ठा के अन्तर्गत वे सब, स्वतन्त्रतायें, विशेषाधिकार, राजकीय ठाटबाट और शान-शौकत हैं जो प्राचीन प्रचलित नियम के अनुसार इंगलैण्ड के राजा को प्राप्त रहती हैं। जब इन विशेष राजकीय अधिकारों को काम में लाया जाता है तो न्यायालय को इनके अस्तित्व के सम्बन्ध में पूछताछ करने का अधिकार रहता है, क्योंकि सन् १६१० में यह तय किया गया था कि "राजा को ऐसा कोई विशेषाधिकार नहीं जो देश के कानून से न दिया गया हो और वह किसी कानून, प्राचीन प्रचलित नियम, प्रथा या परिपाटी को अपनी घोषणा से नहीं बदल सकता। राजा के विशेषाधिकारों पर चाहे वे वैधानिक हों या कार्यकारी, कुछ तो राजा और जनता के पारस्परिक समझौतों से, कुछ निषेधक कानूनों से और कुछ अप्रचलित होने से प्रतिबन्ध लग गये हैं। उदाहर-णार्थ, कानून का बनाना राजा का विशेषाधिकार है, सही, पर सन् १७०७ से अब तक पार्लियामेण्ट के बनाये हुए कानूनों पर राजसी सम्मति कभी भी मंजूर नहीं हुई है। राजा अपने विशेषाधिकार से नये पीयर बना सकता है। जार्ज चतुर्थ ने अर्ल ग्रे को पीयर बनाने की यह आज्ञा दी थी—"राजा अर्ल ग्रे को व लार्ड ब्रोघम को यह अनुमति देता है कि वे इतने पीयर बनादें जितने सुधार-विधे-यक को पास कराने के लिये पर्याप्त हों। पर पहले पीयरों के ज्येष्ठ पुत्रों को पीयर बनाया जाय।" यह सब ठीक है पर फिर भी राजा इस अधिकार को अभेदात्मक ढंग पर काम में नहीं ला सकता। इस बात को लार्ड लिन्धर्स्ट (Lord Lin-dhurst) ने स्पष्ट कर दिया था। उन्होंने कहा "इस का यह मतलब नहीं है कि क्यों कि यह बिलकुल वैध (legal) है इसलिये विशेषाधिकार का यह या और कोई प्रयोग विधान के सिद्धान्तों के अनुकूल है। राजा चाहे तो इस अधिकार के बल पर एक दिन में १०० पीयर बनादे और यह बिलकुल वैध

समझा जायगा पर हर एक को यह समझना और जानना है कि राजा द्वारा विशेषाधिकार का ऐसा प्रयोग विधान के सिद्धान्तों का तोड़ना होगा जो निन्द्य समझा जायगा।

इसलिये अब नये पीयर मन्त्रि परिषद् की सलाह से बनाये जाते हैं। राजा के दूसरे विशेषाधिकार भी इसी प्रकार प्रतिबन्धित हैं। सन् १६८८ की क्रान्ति के बाद राजा की स्थिति इस वाक्य में वर्णित है "राजा बनाया गया, राजा प्रतिबन्धित किया गया, राजा को वेतन दिया जाने लगा।"

राजा और न्यायपालिका—यद्यपि राजा को न्याय का निर्झर कह कर पुकारा जाता है और न्यायालय सम्राट् के न्यायालय कहलाते हैं पर सम्राट् न्याय-प्रबन्ध में न हस्तक्षेप करता है, न कर सकता है। यद्यपि न्यायाधीश राजा के हा द्वारा बाह्यरूप से नियुक्त और पदच्युत किये जाते हैं पर वास्तव में उनकी नियुक्ति मन्त्रियों द्वारा ही होती है और साधारणतया पार्लियामेण्ट के दोनों सदनों के कहने पर अपने पद से हटाये जा सकते हैं। यह भी ठीक है कि अपराधियों को क्षमा प्रदान करने के विशेषाधिकार को कार्यरूप देता है। राजा को केवल उन बातों की सूचना भर दे दी जाती है जिन पर उसे अपने हस्ताक्षर करने होते हैं, उसका उत्तरदायित्व मन्त्री पर रहता है।

राजा और विधायिनी शक्ति—राजा पार्लियामेण्ट का उद्घाटन और विघटन करता है पर यह काम वह केवल अपनी मर्जी के अनुसार ही नहीं करता, उसके इस अधिकार पर प्रचलित प्रथाओं के बन्धन लगे हुये हैं। उसे प्रतिवर्ष पार्लियामेण्ट बुलानी पड़ती है जिससे बजट पास हो सके और सेना सम्बन्धी अधिनियम (Act) स्वीकृत हो सके। सन् १९११ के पार्लियामेण्ट एक्ट से पार्लियामेण्ट की अवधि पांच वर्ष कर दी गई है। पार्लियामेण्ट स्वयं ही अपना कार्यक्रम निश्चित करती है। पार्लियामेण्ट के विघटन करने के अधिकार को काम में लाते समय राजा को राष्ट्र की इच्छा के अनुसार कार्य करना पड़ता है। विघटन के सम्बन्ध में ठीक वैधानिक स्थिति क्या है इसका विशद वर्णन अर्ल ग्रे और एस्क्विथ ने अपने १८ दिसम्बर सन् १९२३ के व्याख्यान में इस प्रकार किया था: 'इस देश में पार्लियामेण्ट का विघटन करना राजा का विशेषाधिकार है। यह अधिकार कोरी सामान्तशाही के समय से चली आने वाली प्राचीन परिपाटी नहीं है, पर यह हमारी वैधानिक प्रणाली का एक उपयोगी अंग है जिसके जोड़ की कोई वस्तु किसी दूसरे देश में नहीं मिलती, उदाहरणार्थ संयुक्तराष्ट्र अमरीका में।

इसका मतलब यह नहीं है कि राजा को इस अधिकार को कार्यान्वित करते समय स्वेच्छा से काम करना चाहिये और मन्त्रियों का परामर्श न लेना चाहिये, पर इस का मतलब यह अवश्य है कि जब तक राजा को ऐसे दूसरे मन्त्री मिल सकते हैं जो सरकार को चलाने के भार को अपने ऊपर लेने को तैयार हों, उस समय तक राजा किसी मन्त्री की ऐसी सलाह मानने को बाध्य नहीं जिससे प्रजा को एक के बाद दूसरे निर्वाचन के कुहराम से कष्ट उठाना पड़े।" राजा विघटन की तभी आज्ञा देता है जब वह यह अच्छी प्रकार समझ लेता है कि हाउस आफ कामन्स ने जनता का प्रतिनिधित्व करना बन्द कर दिया है। राजा को यदि पालियामेण्ट से कुछ कहना होता है तो वह सत्र के आरम्भ में या उसकी समाप्ति पर अपने राज्यसिंहासन से वक्तृता देकर या संदेश भेजकर कर सकता है। पालियामेण्ट का उद्घाटन करते, स्थगन करते या विघटन करते समय ही राजा हाउस आफ लार्ड्स में, जहां कामन्स के सदस्य भी बुलाये जाते हैं, उपस्थित होता है। पर राजा के सारे संदेश व वक्तृतायें तत्कालीन मन्त्रिपरिषद् तैयार करती है और उसी की शासन शक्ति उस संदेश आदि में बतलाई जाती है। पलियामेण्ट में वाद-विवाद होते समय राजा वहां उपस्थित नहीं हो सकता और यद्यपि सारे कानून राजा व पालियामेण्ट के नाम से ही बनते हैं पर वास्तव में केवल पालियामेण्ट या यों कहिये केवल हाउस आफ कामन्स ही कानूनों को बनाता है। हाउस आफ लार्ड्स हस्तक्षेप नहीं कर सकता, राजा तो उससे भी कम हस्तक्षेप कर सकता है। यही नहीं बल्कि नये उपनिवेशों के शासन प्रबन्ध के लिये निकाली हुई घोषणायें व भारतवर्ष के लिये निकाले हुये आर्डर-इन-कौंसिल (Orders in-Council) यद्यपि प्रिवी कौंसिल में स्थित राजा द्वारा निकाले हुये समझे जाते हैं पर वास्तव में मन्त्री ही उन सब को तैयार करते हैं।

इस सब वर्णन से यह न समझना चाहिये कि विधेय-निर्माण में राजा का प्रभाव नहीं के बराबर है। कई मन्त्रि परिषद् का अनुभव प्राप्त कर लेने से कभी कभी वह इस योग्य हो जाता है कि मन्त्रियों को किसी कार्य करने या किसी विधेयक को पुनः स्थापित करने से समझा बुझा कर रोक दे। पर यदि पालियामेण्ट किसी योजना को पास कर दे तो फिर वहाँ उस पर अपनी सम्मति देने से इन्कार नहीं करता। वह कानून से परे है अर्थात् वह किसी भी वैधानिक रीति से न्यायालय में उपस्थित नहीं कराया जा सकता और किसी अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसके सब कार्यों का उत्तरदायी कोई न कोई मन्त्री ही होता है।

राजा और कार्यपालिका शक्ति—राज्य का अध्यक्ष होने से राजा मुख्य मजिस्ट्रेट होता है और कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। पर व्यवहार में मन्त्रि-परिषद् ही कार्यपालिका सत्ता है। राजा प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से दूसरे मन्त्रियों को नियुक्त करता है, पर वास्तव में मन्त्री हाउस आफ कामन्स द्वारा ही नियुक्त होते हैं क्यों कि प्रधान मन्त्री को नियुक्त करते समय राजा को उस व्यक्ति को प्रधान मन्त्री स्वीकार करना पड़ता है जो कामन्स में बहुमत प्राप्त कर सके। बहुमत वही पायेगा जो कामन्स का विश्वास पात्र होगा अर्थात् जिसको कामन्स के अधिक सदस्य चाहते हों। मन्त्री राजा के मन्त्री कहलाते हैं पर व्यवहार म वे लोग राजा को उत्तरदायी न होकर कामन्स को उत्तरदायी होते हैं अर्थात् जनता के प्रतिनिधियों को। यदि कोई राजा अपनी इच्छा से किसी मन्त्रिमण्डल को हटावे तो उसका यह काम संवि-धान-विरुद्ध समझा जायगा। नाममात्र को वैदेशिक मामलों में यद्यपि ब्रिटिश राजदूतों को राजा ही मनोनयन करके भेजता और विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है पर वास्तव में ब्रिटिश राजदूतों की नियुक्ति मन्त्रि मण्डल द्वारा ही होती है। महारानी विक्टोरिया व एडवर्ड सप्तम के राज्यकाल में वैदेशिक नीति में राजा का बड़ा प्रभाव था और ये लोग महत्वपूर्ण मामलों को समय समय पर हस्तक्षेप कर विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करने के बाद अपना बड़ा प्रभाव डालते थे पर उनका ऐसा करना कानूनी अधिकार से न हो कर उनकी वैयक्तिक योग्यता के कारण होता था।

क्राउन और किंग का भेद्—अब तक हमने सुविधा के लिये क्राउन (Crown) और किंग (King) दोनों के लिये ही राजा शब्द का ही उप-योग किया है। पर इन दोनों शब्दों में अन्तर है और ब्रिटिश संविधान के इति-हास के विद्यार्थी को इस अन्तर को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। 'क्राउन' एक संस्था है जो कभी विघटित नहीं होती, 'किंग' एक व्यक्ति है जो उस संस्था का स्वामी होता है और जो मृत्यु से या किसी और प्रकार से किंग नहीं रहता। क्राउन साम्राज्य की एकता का प्रतीक है, यह वह स्वर्ण-शृङ्खला है जो ब्रिटिश साम्रा-ज्य के विभिन्न भागों को जोड़ कर रखती है, प्रजा की भक्ति क्राउन के प्रति मानी जाती है। व्यक्ति-रूप से राजा(किंग)को समाज में बड़ा ऊंचा स्थान दिया जाता है। किंग को बहुत सी बातों का पता भी नहीं चलता जो क्राउन के नाम से की जाती हैं। क्राउन सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति है और उसके अधिकारों का उपभोग राजा अपने मन्त्रियों की सलाह से करता है। क्राउन की ख्याति और प्रभाव एक

ऐसे रहस्यमय वैभव से लिपटे हुये हैं जो इसके लम्बे इतिहास और परम्परा में व्याप्त हैं। इसकी स्थिति इसे शक्ति प्रदान करती है। ऐसी शक्ति जिसे वही व्यक्ति दबा सकता है जो बड़े सुदृढ़ चरित्र वाला हो। नम्र स्वभाव वाला निर्बल भावुक व्यक्ति स्वयं ही उसके प्रभाव में आ जायगा। क्राउन की स्थिति और प्रभाव को संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है: क्राउन को यह अधिकार है कि उसे देश के भीतर व बाहर की राजनैतिक स्थिति से परिचित रखा जाय, इसीलिये सभी कानूनों और बहुत से सरकारी पत्रों पर उसके हस्ताक्षर की आवश्यकता रहती है। यह आपत्ति का प्रतिवाद कर सकता है, सुझाव दे सकता है, पर शासन प्रबन्ध में रुकावट नहीं डाल सकता। पहले मन्त्री राजा को सलाह देते थे किन्तु अब परिस्थिति बदल गई प्रतीत होती है क्योंकि अब राजा मन्त्रियों को सलाह देता है और शक्तिशाली राजा कभी कभी यह काम बड़ी अच्छी तरह करता भी है।

मन्त्रिपरिषद्

असली कार्यपालिका तो इंगलैण्ड में मन्त्रिपरिषद् है जिसके ऊपर ब्रिटेन और उसके साम्राज्य के शासन-प्रबन्ध का भारी बोझ रहता है। सरकार बराबर रहनी चाहिये इसलिये जब एक मन्त्रिपरिषद् पदत्याग कर देती है उसके स्थान पर दूसरी बना दी जाती है। आचार्य डायसी ने मन्त्रिपरिषद् के बारे में यह कहा है "यद्यपि राष्ट्र का प्रत्येक कार्य राजा के नाम से होता है पर वास्तविक कार्यपालिका सरकार मन्त्रिपरिषद् है, हां यह कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि एक ऐसा अस्पष्ट घेरा भी है जिसके भीतर संविधान के अन्तर्गत साम्राज्ञी की वैयक्तिक इच्छा का बड़ा प्रभाव रहता है।" दूसरी राज्यसंस्थाओं से तुलना करते हुये ग्लैडस्टान (Gladstone) ने मन्त्रिपरिषद् के बारे में यह कहा था :

"मन्त्रिपरिषद् तीन मोड़ वाला वह कब्जा है जो ब्रिटिश संविधान के तीन अंगों को अर्थात् राजा या रानी, लार्ड्स कामन्स को मिला कर कार्य में प्रवृत्त करता है। धक्का संभालने वाले यन्त्र की स्प्रिंग के समान यह सम्पूर्ण भार को अपने ऊपर वहन करता है और इसके भीतर उस धक्के के पारस्परिक विरोधी तत्व लड़ भिड़ कर ठण्डे हो जाते हैं। आधुनिक समय में राजनैतिक संसार में यह एक अनुपम रचना है। इसकी अनुपमता इसके गौरव के कारण नहीं पर इसकी सूक्ष्मता, लचीलापन और बहुमुखी शक्ति की विविधता के कारण है जो राजा, पार्लियामेण्ट, राष्ट्र या सदस्यों के आपस के सम्बन्ध या अपने

प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करती हो, ऐसी लिखित संविधान की एक लकीर भी नहीं है पर केवल पारस्परिक समझ के आधार पर यह जीवित है और अपना काम कर रही है।"

क्राउन की तीन कौंसिलें—मन्त्रिपरिषद् अंगरेजी प्रथा, रीतिरिवाज़ और प्रचलित नियमों से उत्पन्न हुई एक बड़ी अनुपम संस्था है। इस समय क्राउन अर्थात् राजा की तीन कौंसिलों में से यह एक है, दूसरी दो में से एक हाउस आफ लार्ड्स है और एक प्रिवी कौंसिल। हाउस आफ लार्ड्स की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में पहले ही वर्णन हो चुका है। वर्तमान मन्त्रिपरिषद् के कर्तव्यों को भली भांति समझने के लिये यहां आवश्यक है कि इसमें और प्रिवी कौंसिल में भेद स्पष्ट कर दिया जाय।

क्यूरिया का प्रारम्भिक इतिहास—नार्मन काल में राजा के परामर्श-दाताओं की एक स्थायी समिति थी जो न्याय, अर्थ तथा शासन सम्बन्धी व दूसरे परामर्श देने वाले कार्य करती थी। इस समिति का नाम क्यूरिया (Curia) था। जैसे जैसे समय बीतता गया और इस समिति का काम बढ़ा, इसका न्याय सम्बन्धी काम किंग्स बैंच और कामन प्लीज़ नामक दो न्याय संस्थाओं में बांट दिया गया और अर्थ सम्बन्धी (Financial) काम अर्थ विभाग या राजकोष विभाग (Exchequer) को सौंप दिया गया। बचे हुये काम जो सामान्य शासन और राजा को परामर्श देने से सम्बन्धित थे वे कण्टीन्यूअल कौंसिल (Continual Council) करने लगी। यह कण्टीन्यूअल कौंसिल हैनरी सप्तम के समय में बड़ी प्रख्यात हुई। इसके सदस्य प्रतिवर्ष चुने जाते थे, उनको वेतन दिया जाता था और उन्हें कौंसिल की बैठकों में उपस्थित होना पड़ता था। इसके कर्तव्य वे सब थे जो कार्यपालिका के हुआ करते हैं और इस-लिये सरकार की यह कार्यपालिका परिषद् बन गई। एडवर्ड षष्टम के समय में यह प्रिवी कौंसिल के नाम से पुकारी जाने लगी। उसके पश्चात् ट्यूडर काल में यह छोटी छोटी समितियों में विभक्त होकर काम करने लगी थी। इसके सदस्यों की संख्या बदलती रही, सन् १५०९ में यह संख्या ११, १५४७ में २५, मेरी (Mary) के समय में ४६ पर एलिज़ाबेथ के समय में केवल १३ थी। जनता के प्रतिनिधि (हाउस आफ कामन्स) इस पर इसके सदस्यों के विरुद्ध अभियोग लगाकर इसका नियन्त्रण किया करते थे। सन् १८३३ में एक एक्ट से प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति (Judicial Committee) बना दी गई। इसी

प्रकार समय समय पर और भी समितियां और बोर्ड इसमें से बन कर अलग हो गये जैसे, बोर्ड आफ ऐज्यूकेशन (शिक्षा बोर्ड), स्थानीय बोर्ड इत्यादि।

मन्त्रि परिषद् (Cabinet)—षष्टम एडवर्ड के समय में प्रिवी कौंसिल की एक समिति को कुछ महत्वपूर्ण कार्यों के करने का भार सौंप दिया गया था और इसलिये उसको 'कमिटी आफ स्टेट' (Committee of State) कह कर पुकारा जाता था। चार्ल्स द्वितीय ने कुछ विश्वस्त मन्त्रियों की एक समिति बनाई जिसका नाम "कैवल" (Cabal) रखा और जिसका काम राजा को परामर्श देना था। इसी समिति का बाद में कैबिनैट (Cabinet) नाम पड़ा। यही कैबिनेट शासन नीति निश्चित करती थी जिसे प्रिवी कौंसिल राजा की ओर से स्वीकार कर लेती थी और जिसके अनुसार विभिन्न शासन विभाग अपना काम करते थे। विलियम तृतीय के समय में कैवल के द्वारा काम करने की प्रणाली का विरोध होने लगा, इसलिये एक्ट आफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) में यह निश्चय कर दिया गया कि प्रिवी कौंसिल स्वयं ही सब विषयों में निर्णय किया करे और अन्तिम निर्णय पर सब उपस्थित सदस्य अपने हस्ताक्षर किया करें। इस एक्ट ने यह भी निश्चित कर दिया कि सरकारी वेतन भोगी व्यक्ति पार्लियामेण्ट के सदस्य नहीं हो सकते, पर रानी ऐन के समय में इन अधिनियमों को रद्द कर दिया गया।

हैनोवर राजवंश के समय की कैबिनैट अर्थात् मन्त्रि-परिषद्—जार्ज प्रथम के राजसिंहासनारूढ़ होने पर मन्त्रिपरिषद् की बनावट और कार्यपद्धति में बड़ा परिवर्तन हुआ। जार्ज प्रथम जर्मनी में स्थित हैनोवर प्रदेश का जागीरदार था। इंगलैंड के राजसिंहासन पर हैनोवर वंश के राजाओं में वह प्रथम था वह अंग्रेज़ी भाषा से परिचित न था। उसने अपनी मन्त्रि परिषद में उदार पक्ष के मुख्य नेता रखे पर अंगरेज़ी भाषा से अनभिज्ञ रहने के कारण वह मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में शामिल न होता था और इस प्रकार शासन कार्य व उसकी नीति स्थिर करने में उसका हाथ न रहा। इस बात में उसका स्थान प्रधान मन्त्री ने ले लिया। जार्ज द्वितीय के समय में सर राबर्ट वालपोल ने मन्त्रिपरिषद्-प्रणाली को अच्छी तरह स्थापित कर संचालित कर दिया और उस प्रणाली को व्यवस्थित रूप दे दिया। जार्ज तृतीय को यह प्रणाली पसन्द न थी इसलिये टोरियों की सहायता से उसने इसे नष्ट करना चाहा। पर अमरीकन उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने से राजा का वैयक्तिक शासन समाप्त हो गया और अनुदार पक्ष भी मंत्रि-

परिषद् व पक्ष-प्रणाली का उतना ही भक्त हो गया जितना उदार पक्ष था। रानी विक्टोरिया ने भी कुछ दुविधा के बाद इस प्रणाली को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार राजा के ऊपर पूरा लोकनियंत्रण हो गया।

मन्त्रिपरिषद् आजकल शासन की प्रेरणात्मक शक्ति है। यह इस सिद्धांत पर बराबर बनी रहती है कि राजा की सरकार चलनी ही चाहिये। इसलिये जब एक मन्त्रिमण्डल पदच्युत हो जाता है तो दूसरा तुरन्त बन जाता है मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिये राजा पार्लियामेण्ट के राजनैतिक पक्षों में से उस पक्ष के नेता को बुला भेजता है जो पार्लियामेण्ट में अपनी ओर बहुमत को कर सके। (पार्लियामेण्ट से यहां हाउस आफ कामन्स ही समझना चाहिये) और उस नेता को राजा अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त कर देता है। उसके पश्चात् प्रधान मन्त्री मन्त्रि परिषद् बनाता है। साधारण स्थिति में प्रधान मन्त्री अपने प्रक्ष के बड़े बड़े व्यक्तियों से सलाह लेता है और सलाह लेने के पश्चात् अपनी मन्त्रिपरिषद् के मन्त्रियों के नाम राजा के सामने प्रस्तुत कर देता है जो विधिपूर्वक स्वीकृत हो जाते हैं और मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के नाम गजट में छाप दिये जाते हैं। असाधारण स्थिति में मिली जुली (Coalition) मन्त्रिपरिषद् बनाई जाती है जिसमें सब राजनैतिक पक्षों के प्रमुख व्यक्ति रखे जाते हैं। यद्यपि प्रधानमंत्री अपने साथी मन्त्रियों को चुनने में स्वतन्त्र है पर राजा तीन प्रकार से इस काम में अपना प्रभाव डाल सकता है। (१) किसी विशेष राजनीतिज्ञ के नाम का सुझाव देकर (२) प्रधान मन्त्री द्वारा प्रस्तावित किसी राजनीतिज्ञ को स्वीकार करने से इन्कार कर और (३) किसी पसन्द किये हुये राजनीतिज्ञ की अयोग्यता की कटुआलोचना कर। पर यह सब प्रभाव बलपूर्वक बाध्य करने के रूप में न होकर केवल समझाने के रूप में डाला जाता है।

कैबिनैट अर्थात् मन्त्रिपरिषद् की रचना—मन्त्रि परिषद् के बनाने का काम प्रधानमन्त्री के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। अधिकतर वह ऐसे व्यक्तियों को ही चुनता है जो योग्य व प्रभावशाली होते हैं पर कभी कभी इस काम में यह भी देखना पड़ जाता है कि अधिक से अधिक सुविधाजनक पसन्द कौन सी होगी। अनुभवी व्यक्तियों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी छांट लिये जाते हैं जिनकी केवल योग्यता है कि वे प्रधानमन्त्री के मित्र रह चुके हैं। मिनिस्टर्स आफ दी क्राउन एक्ट (Ministers of the Crown Act) के पास हो जाने के बाद यह नियम हो गया है कि हाउस आफ लार्ड्स से भी कम से कम तीन कैबि-

नैट मन्त्री और तीन पार्लियामेण्टरी उपसचिव लेने चाहियें। इस एक्ट के अनुसार कैबिनैट मन्त्री ये कहे जाते हैं—प्रधान मन्त्री, अर्थ मन्त्री, कोष मन्त्री, गृह-मन्त्री, उपनिवेश मन्त्री, विदेश मन्त्री, डोमिनियन (Dominion) मन्त्री, युद्ध मन्त्री, वायुसेना मन्त्री, भारत मन्त्री, (अब यह पद टूट गया है क्योंकि भारत अब स्वतन्त्र है) स्काटलैण्ड का मन्त्री, नौसेना मन्त्री, व्यापार बोर्ड का अध्यक्ष, कृषि मन्त्री, शिक्षा-बोर्ड का अध्यक्ष, स्वास्थ्य मन्त्री, श्रम-मन्त्री, यातायात मन्त्री, नियामक (Co-ordination) मन्त्री, कौंसिल का लार्ड प्रैसीडेण्ट, लार्ड प्रिवी सील, पोस्टमास्टर जनरल, निर्माण विभाग का प्रथम कमिश्नर और पेंशन मन्त्री। इनके वेतन एक्ट द्वारा निश्चित रहते हैं, वहीं मन्त्रिमण्डल बनते और बिगड़ते हैं और जनता के प्रतिनिधियों के समान सरकार को वहीं अपनी नीति के बारे में लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उसका औचित्य दिखलाना पड़ता है, इसलिये अधिकतर मन्त्री और पार्लियामेण्टरी उपसचिव हाउस आफ कामन्स के सदस्यों में से ही लिये जाते हैं।

मन्त्रिपरिषद् के व्यक्तियों की नियुक्ति स्थायी नहीं होती क्योंकि समय समय पर प्रधान मन्त्री पुराने सदस्यों के स्थान पर नये मन्त्री नियुक्त करता रहता है। प्रधान मन्त्री को परिषद् बनाने का ही अधिकार नहीं वरन् उसमें समय-समय पर परिवर्तन कर उसे पुनर्संगठित करने का भी अधिकार है, यदि ऐसा करना उसके विचार में वांछनीय हो। यह तभी होता है जब या तो कोई मन्त्री किसी विशेष विपत्तिजनक परिस्थिति के कारण या साधारण रूप से पद त्याग कर दे, किसी सामान्य निर्वाचन में सफल होने के पश्चात् कोई प्रधान मन्त्री अपनी परिषद् का पुनर्संगठन करना चाहे या जब प्रधान मन्त्री परिषद् को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना चाहे। ऐसा करते समय प्रधान मन्त्री केवल अपने पक्ष के नेताओं से सलाह नहीं लेता वरन् उन मन्त्रियों और व्यक्तियों की सलाह भी लेता है जिन पर इस पुनर्संगठन का असर पड़ता हो।

प्रधान मन्त्री—किसी मन्त्रिपरिषद् की शासन नीति क्या होगी और वह कितनी सफलीभूत सिद्ध होगी, यह प्रधान मन्त्री के पौरुष, व्यक्तित्व और उसकी योग्यता पर निर्भर रहता है। एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि कैबिनैट राज्यपोत का परिचालन करने वाला पहिया है और प्रधान मन्त्री उसका परि-चालक है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि यद्यपि अंगरेजी शासन विधान वाली पुस्तकों में प्रधान मन्त्री के नाम व पद का इतना वर्णन पाया जाता है पर १९०५ तक यह नाम या पद मान्य न हुआ था और सन् १९१७ में ही जाकर कहीं कानून

में इसका समावेश हुआ। सन् १९३७ के वेतन सम्बन्धी एक्ट में प्रधान मन्त्री और प्रथम राजकोष मन्त्री के वेतन का वर्णन पाया जाता है। जब कोई राजनीतिज्ञ राजा से चुना जा कर मन्त्रिमण्डल बनाने का कार्यभार स्वीकार कर लेता है तो वह प्रधान मन्त्री बन जाता है। मन्त्रि परिषद् का वह प्रमुख व्यक्ति होता है। उसका मुख्य कार्य मन्त्रि परिषद् को बनाना, बुलाना, स्थगित करना और उसके अध्यक्ष का काम करना है। वह मन्त्रियों को नियुक्त करता और बरखास्त करता है, और अपने साथी मन्त्रियों की सलाह से शासन नीति की रूप रेखा निश्चित करता है। वह राजा को पार्लियामेण्ट के विघटन करने और सामान्य निर्वाचन करने की आज्ञा देने की सलाह देता है। यद्यपि कानून के अनुसार प्रधान मन्त्री की विघटन सम्बन्धी प्रार्थना का राजा विरोध कर सकता है पर वह केवल प्रधान मन्त्री को विघटन के विरुद्ध समझाने बुझाने तक ही अपने प्रभाव का उपयोग करता है। मन्त्रिमण्डल और राजा के बीच में प्रधान मन्त्री ही बातचीत का एक साधन है। उपाधि वितरण में उसका निर्णायक मत माना जाता है। शासन नीति सम्बन्धी विषयों पर पार्लियामेण्ट में उसकी ही बात अन्तिम निर्णय करने वाली समझी जाती है। इसलिये वही हाउस आफ कामन्स का सर्वमान्य नेता होता है। प्रधान मन्त्री ही सरकार की शासन नीति की जनता के सम्मुख घोषणा करता है और वही पत्रकारों के प्रतिनिधियों से मिलता है। वैदेशिक नीति का उत्तरायित्व प्रमुख रूप से उसी के ऊपर रहता है चाहे वह वैदेशिक मामलों के विभाग का अध्यक्ष न हो पर फिर भी वैदेशिक नीति व वैदेशिक सम्बन्धों की रूप रेखा निश्चित करने में वह सक्रिय भाग ले सकता है। उदाहरणार्थ, चैम्बरलेन ने हिटलर से बातचीत कर म्यूनिक के समझौते पर हस्ताक्षर किये हालांकि विदेश मन्त्री लार्ड हैलीफैक्स थे। राजकोष के प्रथम लार्ड (First Lord of the Treasury) के पद के अतिरिक्त प्रधान मन्त्री और भी जो काम करना चाहे उसका भार अपने ऊपर ले सकता है।

मन्त्रिपरिषद् का भीतरी संगठन—मन्त्रिपरिषद् का भीतरी संगठन क्रमिक विकास के फलस्वरूप हो पाया है। पहले तो राजा ही मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था। जार्ज प्रथम के समय से यह प्रथा जाती रही और सब शक्ति प्रधान मन्त्री के हाथ में आ गई और वही अक्ष्यक्ष का पद लेने लगा। मन्त्रि परिषद् की बैठकों में शासन-सम्बन्धी मामलों पर विचार होता है। मन्त्रिपरिषद् की बैठक बुलाना प्रधान मन्त्री की इच्छा पर रहता है। कोई भी मन्त्री बैठक बुलाने के लिये प्रार्थना कर सकता है पर प्रधान मन्त्री ऐसा

प्रार्थना को मानने न मानने में बिलकुल स्वतन्त्र रहता है बैठकों के होने का समय व दिन प्रधान मन्त्री ही निश्चय करता है पर परिषद् की बैठक में क्या कार्यवाही होगी उसका ब्यौरा नहीं दिया जाता हालांकि सब मंत्री जानते हैं कि किन विषयों पर विचार किया जावेगा। परिषद् की बैठक प्राय: शाम के समय हुआ करती हैं। काम के बढ़ जाने से पहिले की अपेक्षा युद्धोत्तर काल में बैठकों की संख्या बहुत बढ़ गई है। युद्ध के समय में तो प्रतिदिन बैठक होती थी।

परिषद् की बैठक में उपस्थिति— परिषद् की बैठक के लिये कोई गणपूरक (Quorum) संख्या निश्चित नहीं है। प्रधान मन्त्री या और कोई मन्त्री अस्वस्थ होने पर अनुपस्थित रह सकते हैं। अनुपस्थित मन्त्री चाहे तो किसी विचाराधीन विषय पर अपना मत प्रधान मन्त्री को पत्र के रूप में भेज सकता है। जब प्रधान मन्त्री अनुपस्थित रहता है तो अध्यक्ष का काम वह मन्त्री करता है जो पुराना राजनीतिज्ञ हो या और किसी दूसरी प्रकार से प्रभावशाली हो। जब बैठक होती है तो मन्त्रियों के बैठने का कोई निश्चित क्रम नहीं है पर प्रभावशाली मन्त्री प्रधान मन्त्री के पास बैठते हैं।

परिषद् में किन विषयों पर विचार होता है—परिषद् अब महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करती है। प्रत्येक मन्त्री अपने अपने विभाग के विषयों को परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है क्योंकि सारी परिषद् शासन-नीति को निश्चित करती है। "जो विषय परिषद् के सम्मुख रखे जाते हैं वे साधारणतया तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं। परिषद् के सदस्य छोटी छोटी बातों पर ध्यान न देकर अपनी बुद्धि व ध्यान उन बातों के सुलझाने पर केन्द्रित करते हैं जो उनके सम्मुख बड़ा महत्व रखती हैं।"* बजट और राजा का भाषण ये बड़े महत्वपूर्ण विषयों में गिने जाते हैं, उसके बाद वैदेशिक नीति महत्वपूर्ण समझी जाती है। परिषद् के निर्णय किसी लेख्य में नहीं लिखे जाते, हां निर्णयों की टिप्पणियां बनाली जाती हैं जो राजा को परामर्श देने, आगे होने वाले दूसरे मन्त्रिपरिषद् की सूचना के लिये और गलती व भ्रान्ति का निवारण करने के लिये काम देती हैं। मन्त्रियों को परिषद् में टिप्पणियां बनाना मना है, केवल प्रधान मन्त्री ही टिप्पणियाँ लिख सकता है क्योंकि उसे अपने व अपने साथी मन्त्रियों के विचार राजा को बतलाने में इनकी आवश्यकता रहती है। प्राय: निर्णय मताधिक्य के द्वारा होता है पर प्रधान मन्त्री के विचारों को बड़ा

* यू: दी इंगलिश कैबनैट सिस्टम, पृ० २४१।

महत्व दिया जाता है क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो शासन नीति का निर्देश करता है। परिषद् की कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

परिषद् सचिवालय का काम—परिषद् के साथ एक सचिवालय भी रहता है। इस सचिवालय के कर्तव्यों की सूची संक्षिप्त रूप से सन् १९१७ की युद्ध-परिषद् की रिपोर्ट में इस प्रकार दी है। (१) युद्ध-परिषद् की कार्यवाही का विवरण रखना, (२) युद्ध-परिषद् के निर्णयों को उन विभागों को बतलाना जिन्हें उन निर्णयों को कार्यान्वित करना है या जो और किसी प्रकार उनसे सम्बन्धित हैं। (३) कार्यक्रम तैयार करना, मन्त्रियों व दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का इन्तज़ाम करना जो उस कार्यक्रम से सम्बन्धित हों और विचाराधीन विषयों पर आवश्यक सूचना एकत्रित कर सब मन्त्रियों के पास भेजना (४) युद्ध परिषद् के काम से सम्बन्धित पत्र व्यवहार करना और (५) पूर्व धारा में वर्णित रिपोर्ट तैयार करना।"*

मन्त्रिपरिषद् की समितियां—परिषद् के सम्मुख जब कोई विशेष प्रकार के मामले विचार के लिये आते हैं तो परिषद् उनको भली प्रकार निवटाने के लिये छोटी छोटी समितियों में बंट जाती है। इन समितियों में एक महत्वपूर्ण समिति साम्राज्य-सुरक्षा समिति (Committee of Imperial Defence) है जिसमें नौसेना मन्त्री (Frist Lorb of the Admiralty) युद्ध मन्त्री और वायु सेना मन्त्री के अतिरिक्त वे परिषद् के बाहर के व्यक्ति सदस्य हैं जिनको उनकी विशेषज्ञता के कारण प्रधान मन्त्री नियुक्त कर देता है। दूसरी समिति गृह-विषयों की है जो देश के भीतरी शासन प्रबन्ध के मामलों पर विचार करती है। कुछ एतदर्थ समितियां (Ad hoc Committees) भी होती हैं जो विशेष मामलों पर विचार करती और उनसे सम्बन्धित विधेयकों को पार्लियामेण्ट में उपस्थित करने के लिये तैयार करती हैं।

अन्तरीय परिषद् (Inner Cabinet)—इतने बड़े सम्राज्य पर शासन करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि शासन नीति का निर्माण-कार्य व उसके सम्बन्ध रखने वाले निर्णय गुप्त रखे जायं। पर ऐसा करना २३ सदस्यों वाली बड़ी संख्या में सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये प्राय: उन मामलों के लिये जिनका गुप्त रखना बहुत आवश्यक है एक अन्तरीय परिषद् होती है जिनमें कुछ प्रभावशाली मन्त्री होते हैं जिनकी राय लेने के बाद प्रधान मन्त्री

---

* यू: दी इंगलिश कैबिनैट सिस्टम, पृ० २५८।

मामलों को बड़ी परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है। इसमें एक सुगमता यह भी होती है कि जब मन्त्रिपरिषद् में वाद-विवाद होता है तो प्रधान मन्त्री के मत को दृढ़ समर्थन प्राप्त हो जाता है।

युद्ध-परिषद् (१९१६–१९)—अन्तरीय परिषद् की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध के समय में प्रतीत हुई जब युद्ध सम्बन्धी मामलों में तुरन्त निर्णय और परिषद् की कार्यवाही को गुप्त रखना अनिवार्य हो गया। लायड जार्ज ने प्रथम यह अन्तरीय परिषद् सन् १९१६ के दिसम्बर मास में बनाई जब मिस्टर एस्क्विथ ने लायड जार्ज से मतभेद होने के कारण पदत्याग किया। इस अन्तरीय परिषद् में जो युद्ध परिषद् के नाम से प्रसिद्ध हुई, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज के अतिरिक्त लार्ड कर्ज़न (प्रैसीडैण्ट आफ दी कौंसिल), लार्ड मिलनर, मिस्टर आर्थर हैण्डरसन और मिस्टर बौनरला (अर्थ मन्त्री) थे। कुछ समय पश्चात् जनरल स्मट्स भी इसमें शामिल कर लिये गये जिससे युद्ध में साम्राज्य की दृढ़ एकता दिखला दी गई। इस प्रकार कार्यकारी शक्ति और उत्तरदायित्व २३ सदस्यों की मन्त्रिपरिषद् में न होकर ६ व्यक्तियों की एक छोटी युद्ध-परिषद् में केन्द्रित हो गई।

सन् १९३९ की युद्ध परिषद्—सन् १९३९ में जब इंगलैण्ड ने जर्मनी से युद्ध करने की घोषणा की तो मिस्टर चैम्बरलैन ने अपनी युद्ध-परिषद् बनाई जिसमें ९ सदस्य थे: चैम्बरलेन, लार्ड हैलीफैक्स, होर-बैलीशा, चर्चिल, सर चार्ल्स किंग्सले वुड, लार्ड चैटफील्ड, सर जौन साइमन, सर सैमुअल होर, लार्ड सांके। एन्थौनी ईडिन को यद्यपि उसका सदस्य नहीं बनाया गया पर उन्हें बैठकों में बुलाया जाता था। पर इस छोटी परिषद् की भी विरोधी पक्ष ने कटु आलोचना की और कहा कि युद्ध को अच्छी प्रकार संचालन करने के लिये यह बहुत विशाल संस्था है।

मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमंडल के भेद—मन्त्रिपरिषद् १७ सदस्यों की छोटी संस्था है पर मन्त्रिमण्डल में इन १७ व्यक्तियों के अतिरिक्त १५ अन्य मन्त्री जिनका कैबिनैट में स्थान नहीं है और कई पदाधिकारी और पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी होते हैं। सन् १९१४ के युद्ध से पूर्व मन्त्रिमण्डल में ६० से ७० व्यक्ति तक होते थे। पर युद्धोत्तर काल में सरकारी काम के बढ़ जाने से नये विभाग व नयी जगहें बनानी पड़ीं। नये मन्त्रिमण्डल में श्रम मन्त्री और पेंशन

मन्त्री व खाद्य नौपरिवहन (Shipping) कण्ट्रोलर भी शामिल हो गये। एक वायुयान बोर्ड भी बनाया गया और उसके पश्चात् राष्ट्रीय सेवा (National Service), पुनर्निर्माण (Reconstruction) यातायात और एकीकरण विभाग भी खुले। इन सब के खुल जाने के फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या १०० से अधिक हो गई। मन्त्रिमण्डल की संख्या किसी कानून से निश्चित नहीं होती पर यह केवल प्रधानमन्त्री से की हुई व्यवस्था पर निर्भर रहती है। जब मन्त्रिपरिषद् पदत्याग करती है तो मन्त्रिमण्डल के सब पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी और दूसरे राजकर्मचारी जो मन्त्रिपरिषद् के आने पर नियुक्त हुये थे त्याग-पत्र दे देते हैं।

सर सिडनी लो ने, अन्तरीय मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमण्डल की रचना में जो भारी परिवर्तन हुआ है, उस पर लिखते हुये कहा है "शासन प्रबन्ध करने वाली पार्लियामेण्ट को उत्तरदायी, पार्लियामेण्ट के सदस्यों में से चुन कर बनाई, हाउस आफ कामन्स से निकट सम्बन्ध रखने वाली पक्ष-प्रणाली पर संगठित हुई और गुप्त रूप से मन्त्रणा करने वाली मन्त्रिपरिषद् के स्थान पर अब हमारे यहां ऐसी परिषद् है जो मन्त्रिमण्डल नहीं कही जा सकती और ऐसा मन्त्रिमण्डल है जिसे मन्त्रिपरिषद् नहीं कह सकते। अन्र परिषद् (Inner Cabinet) केवल निर्देश करती है, शासन नहीं करती, और मन्त्रिमण्डल ने सामूहिक उत्तर-दायित्व के स्थान पर वैयक्तिक उत्तरदायित्व का भार ले लिया है। अब अन्तरीय परिषद् व हाउस आफ कामन्स का सम्बन्ध बड़ा दूरवर्ती हो गया है और किन्हीं बातों में तो परिषद् हाउस से बिलकुल स्वतन्त्र होकर कार्य करती है क्योंकि यह परिषद् दलबन्दी के प्रतिबन्धों से दूर रहती है और अपनी गुप्त मन्त्रणाओं में देश के तथा साम्राज्य के उपराष्ट्री के प्रतिनिधियों को भी बुलाती है।... और दूसरी अनेकों क्रांतियों के समान यह क्रांति भी एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है। अन्तरीय परिषद् तो पहिले से ही थी हालांकि उसका अस्तित्व मान्य नहीं हुआ था। मिस्टर एस्क्विथ ने उसको व्यवस्थित रूप देकर मान्य कर दिया। उन्होंने इसके अमान्य गुप्त रूप को तोड़ने में एक कदम और आगे बढ़ाया और इस परिषद् का एक मन्त्री (सेक्रेटरी) भी नियुक्त कर दिया।"

मन्त्री परिषद् का शासन प्रणाली में स्थान—ब्रिटिश शासन प्रणाली में जो स्थान व शक्ति मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त है उसे देख कर राजनीतिज्ञों को आश्चर्य होता है और वे उसकी प्रशंसा भी करते हैं। यद्यपि सिद्धान्ततः

मन्त्रिपरिषद् पार्लियामेण्ट की सेवक है क्यों कि वह पार्लियामेण्ट (वस्तुतः हाउस आफ कामन्स) की निश्चित की हुई नीति को कार्यान्वित करती है और उसी समय तक अपने स्थान पर आरूढ़ रहती है जब तक हाउस आफ कामन्स का उसमें विश्वास रहता है, पर व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् सेवक न रह कर सदन की स्वामिनी वन जाती है और अनेकों प्रकार से उसका नियंत्रण करती है। मन्त्रि-परिषद् में वहुमत वाले पक्ष के व्यक्ति ही होते हैं और प्रधान मन्त्री उन सबका नेता होता है। पक्ष की नियम-निष्ठा के अनुसार पक्ष के छोटे बड़े सब व्यक्ति हाउस में मन्त्रिपरिषद् की नीति का समर्थन करते हैं। मन्त्रिपरिषद् ही पक्ष के नियामकों (Whips) को यह वतलाती है कि पक्ष के सदस्य किसी योजना पर किसकी ओर अपना मत दें। इसके अतिरिक्त वहुमत वाला पक्ष स्वयं भी उत्सुक रहता है कि उसकी परिषद् ही अधिक से अधिक समय तक पदासीन रहे इसलिये पक्ष के व्यक्ति स्वयं भी पक्षनियामकों (Party-whips) की आज्ञाओं का अक्षरशः, बिना हिचकिचाये, पालन करते हैं। ऐसा होने से पक्ष के सदस्यों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता जाती रहती है। विशेषकर मन्त्रिपरिषद् की नीति की आलोचना करने के लिये तो वे बिलकुल मुंह खोल ही नहीं सकते। मन्त्रिपरिषद् ही यह निर्णय करती है कि किस दिन गैर सरकारी विधेयकों पर विचार किया जा सकता है। सदन का अधिकतर समय तो परिषद् से प्रस्तुत की हुई साधारण तथा अर्थसम्बन्धी योजनाओं पर विचार करने में ही लगा रहता है। विरोधी पक्ष वाले चाहें तो परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सदन में रख सकते हैं पर मन्त्रिपरिषद् यह जानती है कि उसके पक्ष के व्यक्ति तो आंख बन्द करके उसका समर्थन करेंगे और इस समर्थन के बल पर वह विरोध पक्ष की आलोचना और दोषारोपण को हंस कर टाल सकती है। यदि किसी गैर सरकारी सदस्य को अपनी योजना हाउस में पास करानी हो तो उसे मन्त्रिपरिषद् को अपनी ओर झुकाना पड़ेगा वरना उसे अपनी योजना को स्वीकृत कराने की किञ्चित भी आशा न करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् सदन का नियंत्रण करती है। इस नियंत्रण को प्रायः मन्त्रिपरिषद् की निरंकुश सत्ता कह कर पुकारा जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हाउस मन्त्रिपरिषद् की इच्छा पर अपनी मुहर भर लगा देता है, यद्यपि कभी कभी परिषद् को अपनी नीति की कटुआलोचना भी सुननी पड़ जाती है।

पाठ्य पुस्तकें

Anson, W.R.—Law and Custom of the Constitution, chs. on King, Cabinet and Ministers.

Bagehot, W.—English Constitution, chs. I. VI, VIII, IX.

Courtney,—Working Constitution of the United Kingdom, chs, XII—XIII.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution (1936 edition) pp. XCVII, CXV—CXX, CXIII—IV, 156, 468--466.

Emden, Cecil. S.---Select Speeches on the Constitution, (World Classics,) Vol. I pp. 1-66.

Finer, H.---Theory & Practice of Modern Governments, pp. 953-94 and 1110-28.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution, che. IV and V.

Laski, H. J.—Parliamentary Government in England, chs, V and VIII.

Marriot, J. A. R.—English Political Institutions, chs. III & V.

Muir, Ramsay---How Britain is Governed, chs. III

Yu Wengteh—The English Cabinet System. (1936 edition)

अध्याय ८

'जितनी राजनैतिक परम्परायें इंगलैण्ड में वर्तमान हैं उनमें जो कम से कम विदित हैं पर जो सबसे अधिक जानने योग्य हैं वह परम्परा है जिससे विशेषज्ञ और अनाड़ी का सम्बन्ध स्थिर होता है।'

(प्रैसीडेण्ट लावेल)

'दृष्टिकोण, शक्ति, बुद्धि की तत्परता, मनुष्यों से निवेदन की कुशलता, किसी कार्य को प्रारम्भ करने और उसकी जिम्मेदारी लेने को हर समय तत्पर रहना ये सब गुण तभी विकसित होते हैं जब राजकीय कर्मचारी को अपने कार्य की पृष्टभूमि में वह ज्ञान होता है जिससे उसका मस्तिष्क विकसित हुआ है।' (लार्ड हल्देन)

दी व्हाइट हाल

(The White Hall)

व्हाइट हाल क्या है--यदि नं० १० डाउनिंग स्ट्रीट में, जो ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का राजकीय निवास स्थान है और जहाँ मन्त्रिपरिषद् की बैठकें प्रायः हुआ करती हैं, शासन नीति की रूपरेखा निश्चित होती है और वह नीति पार्लियामेण्ट में स्वीकृत होती है तो व्हाइट हाल में उस नीति के अनुसार राज कर्मचारियों और शासन विशेषज्ञों द्वारा शासन प्रबन्ध परिचालित होता है। व्हाइट हाल के अफसर अपने काम में लगे रहते हैं चाहे पार्लियामेण्ट में कैसा ही राजनैतिक संघर्ष क्यों न हो रहा हो और चाहे मन्त्रिपरिषद् में कैसी ही गुप्त मन्त्रणा क्यों न हो रही हो। कोई मन्त्रि-परिषद् जाय या रहे और शासन विभागों के अध्यक्ष अपने स्थान पर रहें या अलग हो जायं पर स्थायी शासन विशेषज्ञ अपने शासन-प्रबन्ध कार्य बराबर करते रहते हैं।

शासन नीति का निश्चय करना मन्त्रिपरिषद् का काम है, उसको कार्यान्वित करना और उसके सम्बन्ध में दिन प्रति दिन की कार्यवाही करना विविध प्रशासन विभागों पर छोड़ दिया जाता है।

प्रशासन-विभागों के अध्यक्ष--प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता है जो मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है। वही उस विभाग के कार्य अकार्य का

उत्तरदायी हुआ करता है। प्रत्येक विभाग में एक उपसचिव भी रहता है। प्रायः इन दोनों व्यक्तियों में एक हाउस आफ लार्ड्स से और एक हाउस आफ कामन्स से नियुक्त किया जाता है जिससे प्रत्येक सदन में ऐसा एक व्यक्ति रहे जो उस विभाग के कार्य के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर दे सके।

इन विभाग अध्यक्षों के अतिरिक्त, जो पार्लियामेण्ट के सदस्य होते हैं, एक बड़ी संख्या स्थायी राज्य कर्मचारियों की होती है। प्रायः पार्लियामेण्ट विभाग अध्यक्षों को शासन विभाग के कार्य संचालन की जानकारी व अनुभव नहीं होता इसलिये ऐसे स्थायी अफसरों का होना बड़ा आवश्यक है जिनके ऊपर विभागाध्यक्ष विश्वास कर सकें और जो प्रत्येक विभाग के कार्य का क्रम बनाये रहें। वास्तव में ये ही लोग अधिकतर शासन प्रबन्ध चलाते हैं। ये लोग अपने काम के लिये सचिव या उपसचिव को उत्तरदायी रहते हैं पर पार्लियामेण्ट को उत्तरदायी सचिव या उपसचिव को ही रहना पड़ता है।

वर्तमान प्रशासन-विभागों का धीरे धीरे विकास हुआ है। आरम्भ में जिन्हें हम अब सिविल सर्वेण्ट कहते हैं वे लोग कर वसूल करने वाले राजा के कोषमुन्शी या राजा का सन्देश प्रजा तक पहुँचाने वाले सेक्रेटरी होते थे। पर अब इन लोगों का वेतन राजा की आय से न दिया जाकर पार्लियामेण्ट में प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा मंजूर होता है। सन् १८४८ के बाद से ही विभागों के आगमन (Estimate) पार्लियामेण्ट के सामने रखे जाने लगे हैं। इन विभागों के कर्तव्य तो बहुत प्राचीन हैं केवल उनका आधार पहले से भिन्न है।

पार्लियामेण्ट ही साधारणतया विविध विभागों के कर्तव्यों को निश्चित कर देती है। पार्लियामेण्ट के सदस्य और साधारण जनता प्रायः यह भूल जाती है कि जब कोई नयी सरकारी योजना तैयार होती है तो उसको कार्यान्वित करने के लिये किसी न किसी को नियुक्त करना पड़ता है। शासन-नीति या योजना तो पार्लियामेण्ट के एक्ट के रूप मे आ गयी पर वह एक्ट स्वसंचालनशील तो होता नहीं। कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का संगठन उसे कार्यरूप देता है। जब पार्लियामेण्ट किसी एक्ट को पास करती है तो प्रायः यह भी निश्चित कर देती है कि किस विभाग में इसका संचालन किया जावेगा। कभी कभी एक नया विभाग ही खोलना पड़ जाता है।

इस समय निम्नलिखित प्रशासन-विभाग वर्तमान हैं जिनमें उनके सामने लिखा हुआ काम होता है :—

होम आफिस (गृह विभाग)—पुलिस, जेल, घरेलू शान्ति व सुव्यवस्था, कारखानों में श्रमिकों को काम की सुविधायें।

फौरिन आफिस (वैदेशिक विभाग)—विदेशी राज्यों से सम्वन्ध।

डोमिनियन आफिस—डोमिनियनों में सम्वन्ध, इम्पीरियल कान्फ्रेन्स का काम।

कोलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग)—उपनिवेशों का शासन प्रवन्ध।

वार आफिस (युद्ध विभाग)—सेना का प्रबन्ध।

एयर मिनिस्ट्री (वायु विभाग)—वायु सेना का प्रवन्ध तथा वायुयानों से यातायात सम्वन्धी शासन।

इण्डिया आफिस—भारतवर्ष का शासन (अब यह विभाग तोड़ दिया गया है)

बर्मा आफिस—ब्रह्मा का शासन (यह भी ब्रह्मा की स्वतन्त्रता के पश्चात् तोड़ दिया गया है)

एडमिरैलटी—(नौसेना विभाग)—नौसेना सम्बन्धी प्रशासन।

मिनिस्ट्री फार दी कोरडीनेशन आफ डिफेन्स—सुरक्षा सम्वन्धी विभागों का संयोजन।

बोर्ड आफ ट्रेड—(व्यापार विभाग)—व्यापारिक व औद्योगिक उन्नति।

मिनिस्ट्री आफ सप्लाई—युद्ध विभाग के लिये सामग्री जुटाना।

मिनिस्ट्री आफ हैल्थ—(स्वास्थ्य विभाग)—स्थानीय शासन, स्वास्थ्य, घर-निर्माण और नगर निर्माण।

मिनिस्ट्री आफ ट्रांसपोर्ट—(यातायात विभाग)—यातायात के साधनों का प्रवन्ध, सड़कें तार इत्यादि।

बोर्ड आफ एज्यूकेशन (शिक्षा विभाग)—शिक्षा प्रवन्ध।

मिनिस्ट्री आफ लेबर (श्रम विभाग)—बेकारी और रोजगार, श्रमिकों के झगड़े।

मिनिस्ट्री आफ पैंशन्स—पैंशनों का प्रवन्ध।

मिनिस्ट्री आफ एग्रीकलचर एण्ड फिशरीज (कृषि व मत्स्य विभाग)—कृषि व मछली पैदा कराने का प्रवन्ध, बाज़ार सम्बन्धी योजनाओं का प्रवन्ध।

ट्रेजरी (अर्थ विभाग)—आय व्यय का प्रवन्ध।

स्काटलैंड विभाग—स्काटलैण्ड सम्बन्धित सब विभागों का प्रबन्ध।

आफिस आफ वर्क्स—सरकारी इमारतों, प्राचीन स्मृति सदन, शाही बाग आदि का प्रवन्ध।

कुछ दिनों से यह भावना बढ़ती जा रही है कि विभागों की संख्या बढ़ने से शासन-प्रबन्ध में अक्षमता (Inefficiency) आती जाती है इसलिये इस संख्या को कम करने के लिये विभागों का पुनर्गठन हो। इस सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं पर अभी कोई कार्यान्वित नहीं हो पाया है।

अर्थ-विभाग को छोड़ कर जो सब विभागों का एक प्रकार से नियंत्रण करता है, बचे हुये विभागों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रथम, वे विभाग ह जो सरकार के मुख्य काम करते हैं जैसे सुरक्षा व शान्ति का प्रबन्ध। इस श्रेणी में युद्ध विभाग, नौसेना विभाग, वायुसेना विभाग, गृह विभाग व स्काटलैण्ड विभाग; दूसरी श्रेणी में वैदेशिक मामलों से सम्बन्ध रखने वाले, वैदेशिक विभाग, स्काटलैण्ड के सेक्रेटरी का आफिस, इण्डिया आफिस व कोलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग) रखे जा सकते हैं। तीसरी श्रेणी में व्यापारिक विभाग (बोर्ड आफ ट्रेड), श्रम विभाग, कृषि विभाग व यातायात विभाग और चौथी में शिक्षा विभाग व स्वास्थ्य विभाग। पोस्टमास्टर जनरल का दफ्तर तीसरी श्रेणी में रखा जा सकता है हालांकि उसका काम अर्थ-विभाग से सम्बन्धित है।

इन विभागों का संगठन विविध प्रकार का है। कुछ के ऊपर एक सचिव होता है जैसे गृह विभाग, वायु, वैदेशिक, युद्ध, स्काटलैण्ड, डोमिनियन, उपनिवेश, विभाग, दूसरे बोर्डों के रूप में संगठित हैं हालांकि उन पर एक ही व्यक्ति का नियन्त्रण रहता है जैसे अर्थ विभाग, शिक्षा विभाग, व्यापार विभाग, नौसेना विभाग। इनके अतिरिक्त कुछ के अध्यक्ष मन्त्री होते हैं जैसे कृषि, स्वास्थ्य, यातायात तथा पेन्शन विभाग। प्रत्येक विभाग एक पृथक इकाई है पर उन विषयों के लिये जो एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित हैं मिली जुली समितियां हैं जो उन विषयों पर विचार करती हैं और प्रबन्ध में एकरूपता लाती हैं। हाल ही में एकीकरण कराने वाला संगठन बहुत बढ़ गया है।

इस पुस्तक में सब विभागों के संगठन और कर्तव्यों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता इसलिये मुख्य मुख्य विभागों का विवरण ही दिया जायगा।

अर्थ विभाग (The Exchequer)—यह सब से पुराना विभाग है। यह वह धुरी है जिस पर इंगलैण्ड का सारा आर्थिक संगठन घूमता है। नार्मन काल में यह केवल राजा के करों को वसूल करने का काम करता था पर समय बीतने पर यह राज्य के कर वसूल करने का काम करने लगा, तब भी उस पर नियंत्रण स्वयं राजा का ही रहा। सन् १६८९ में ही जा कर इस पर पार्लियामेण्ट का

नियन्त्रण आरम्भ हुआ। पार्लियामेण्ट का नियन्त्रण इस रूप में रहता है कि बिना पार्लियामेण्ट की अनुमति के न तो राजकोष में कोई धन आ सकता है न बाहर जा सकता है। चाहे मुद्रा कर लगाने के फलस्वरूप आवे या ऋण के द्वारा, सब राजकोष में पहले जमा किया जाता है। इस राशि में से एक पैनी भी बाहर नहीं दी जा सकती जब तक कि पार्लियामेण्ट की उसके लिये अनुमति न हो। कभी कभी पार्लियामेण्ट एक बार यह निश्चय कर देती है कि अमुक अमुक व्यय कोष में से बराबर दे दिया जाया करे पर अधिकतर व्यय प्रति वर्ष पार्लियामेण्ट मंजूर करती है।

इस विभाग का अध्यक्ष अर्थमन्त्री, जिसे चान्सलर आफ दी एक्सचैकर कह कर पुकारते हैं, होता है, वह मन्त्रिपरिषद् का एक प्रमुख सदस्य होता है। विदेश-सचिव को छोड़ कर वही मन्त्रिपरिषद् में सब से महत्वपूर्ण विभाग का अध्यक्ष होता है। यह आवश्वक नहीं है कि इस विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो मुद्रा सम्बन्धी मामलों का विशेषज्ञ हो क्यों कि उसको परामर्श देने के लिये कई विशेषज्ञ इस विभाग में रहते हैं जो प्रत्येक पेचीदा विषय में उचित सलाह दे सकते हैं। फिर भी चांसलर को संख्याओं से प्रेम, उनको समझने और याद रखने की शक्ति और छोटी छोटी बातों में रुचि होना आवश्यक है पर सब से बड़ी बात जो अर्थमन्त्री में होनी चाहिये वह है विचार करने में तत्परता और अपने विचार को भली भांति प्रकट करने की योग्यता। हाउस आफ कामन्स में सब ओर से प्रश्न पर प्रश्न किये जाते हैं और उसमें उन सब का उत्तर थोड़े से शब्दों में ऐसे देने की योग्यता होनी चाहिये जिससे उत्तर का अभिप्राय सुगमता से समझ में आ जाय। क्यों कि प्राय: प्रश्न इसलिए नहीं किये जाते कि उसको परेशान किया जाय बल्कि इसलिये कि साधारण पार्लियामेण्ट के सदस्य बहुत सी बातों को समझने नहीं पाते और प्रश्न के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं। बहुत से व्यक्तियों में थोड़े से शब्दों में किसी बात को समझने की योग्यता नहीं होती। वे समझाते समय उल्टा समझने वाले को और अधिक चक्कर में डाल देते हैं।

चांसलर आफ दी एक्सचैकर इस प्राचीन विभाग का ही परम्परागत अध्यक्ष नहीं, वह तो ट्रैज़री अर्थात् राजकोष विभाग इन दोनों नामों से समझने में होता है, यहां अर्थ विभाग और राजकोष विभाग इन दोनों नामों से समझने में कुछ गड़बड़ हो सकती है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में ट्रैजरी नाम से पुकारा जाने वाला एक विभाग वाशिंगटन में है। उस विभाग का अध्यक्ष सेक्रेटरी आफ दी ट्रेज़री कहलाता है जो प्रेसीडेण्ट की मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है वही संयुक्त-

राष्ट्र अमरीका का अर्थ मन्त्री (Finance Minister) होता है। पर इंगलैण्ड में राजकोष एक बोर्ड या समिति के आधीन है और उस समिति का अध्यक्ष फर्स्ट लार्ड आफ दी ट्रेजरी (First Lord of the Treasury) होता है। यह पद प्रायः प्रधान मन्त्री ग्रहण करता है पर वास्तव में वह राजकोष का अध्यक्ष नहीं होता। यह बोर्ड केवल नाममात्र का बोर्ड है। इस बोर्ड तथा इसके अध्यक्ष का सारा काम चान्सलर आफ दी एक्सचैकर अर्थात् अर्थ मन्त्री ही करता है। अर्थमन्त्री ही यह देखता है कि खर्चे को पूरा करने के लिये आवश्यक मुद्रा कर आदि साधनों से एकत्रित हो और उसके लिये आवश्यक कानून आदि की योजना हो। सरकार की आय-व्यय सम्बन्धी नीति की उपयुक्तता को सिद्ध करने के लिये वही कामन्स में उस नीति पर दोषारोपण का उचित उत्तर देता है। उसके आय-व्यय सम्बन्धी प्रस्ताव केवल अर्थ विभाग के बनाये हुए प्रस्ताव ही नहीं होते, वे सारे मन्त्रिमण्डल की ओर से स्थिर किये हुये प्रस्ताव होते हैं। मन्त्रि परिषद् के सदस्य के नाते ऐसे प्रस्तावों को वह पहले परिषद् के सम्मुख उपस्थित करता है और वहां ऐसा हो सकता है कि वह अपने मित्रों के अनुरोध पर उन प्रस्तावों में परिवर्तन कर दे विशेषकर यदि ऐसा करना किसी महत्वपूर्ण विषय में आवश्यक हो, पर प्रायः मन्त्रिपरिषद् अर्थमन्त्री के प्रस्ताव का उचित आदर करती है। ऐसा करना अनिवार्य भी हो जाता है क्योंकि वे प्रस्ताव अर्थ विभाग के विशेषज्ञों द्वारा व अर्थ मन्त्री के बड़े विचार-पूर्वक अनुमान के फल-स्वरूप बनाये हुये होते हैं इसलिये उन सब को जितना अर्थ मन्त्री समझता है, दूसरे मन्त्री उनकी पेचीदगी को उतना नहीं समझ सकते।

गृह विभाग—गृह विभाग या होम आफिस एक छोटा सा विभाग है जिसमें कई छोटे छोटे काम होते हैं। इसका अध्यक्ष होम सेक्रेटरी कहलाता है जो मन्त्रि परिषद् का सदस्य हुआ करता है। उसके आधीन एक उस सेक्रटरी, बन्दी गृह-कमिश्नर, एक पुलिस कमिश्नर, चीफ इन्सपैक्टर आफ फैक्टरीज़, आदि अफसर होते हैं। केवल होम सेक्रटरी और उप-सेक्रेटरी ही पार्लियामेण्ट के सदस्य होते हैं जो मन्त्रिपरिषद् के पदत्याग करने पर अपने पद से हट जाते हैं। दूसरे अफसर स्थायी अफसर होते हैं। वे मन्त्रिमण्डल के बदलने पर नहीं बदलते।

गृह विभाग का साधारण काम देश में शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा करना है। इस काम में पुलिस, पुलिस-न्यायालय, बन्दीगृह, क्षमा प्रदान, विदेशी व्यक्तियों का देशीयकरण करना, अपराधियों का प्रत्यर्पण (Extradition) आदि विषयों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त यह विभाग

कारखानों की देखभाल भी करता है और कारखानों से सम्बन्धित कानूनों को कार्यान्वित करता है। यह अनोखी सी बात है कि यह औद्योगिक कार्य भार गृह-विभाग पर डाला गया है, पर इसका एक ऐतिहासिक कारण है। एक शताब्दी पूर्व सन् १८३३ में जब पहले पहल फैक्टरी सम्बन्धी कानून पास हुये तो इनकी देख भाल करने वाले राज कर्मचारी विभाग गृह-यिभाग के आधीन कर दिये गये क्यों कि और किसी विभाग के आधीन करना सुकर न दिखाई पड़ता था। उस समय इन कारखानों के अन्तर्गत देख-भाल करने का काम पुलिस के काम जैसा समझा जाता था। आजकल इस काम का अधिक व्यापक उद्देश्य है और शान्ति सुव्यवस्था से कोई उसका सरोकार नहीं पर फिर भी वह काम पहले की तरह अभी उसी विभाग में होता चला आ रहा है। यूरोप के राष्ट्रों की तरह गृह विभाग का इंगलैण्ड में स्थानीय शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो केवल वहाँ की पुलिस की देख-भाल ही करता है।

वैदेशिक विभाग—वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष सैक्रेटरी आफ स्टेट फौर फोरिन एफेअर्ज़ (Secretary of State for Foreign Affairs) या वैदेशिक मन्त्री कहलाता है। वह सर्वदा मन्त्रिपरिषद का सदस्य होता है कभी कभी इस पद का भार प्रधान मन्त्री भी अपने ऊपर ले लेता है वैदेशिक मन्त्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेण्टरी उपसेक्रेटरी, एक स्थायी उप-सेक्रटरी, कुछ परामर्शदाता आदि होते हैं। इनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी संख्या राजकर्मचारियों की होती है जो इस विभाग में काम करते हैं। इस विभाग का काम संसार के प्रत्येक विभाग से सम्बन्ध रखना है। काम के प्रकार पर आधारित न रह कर इस विभाग के काम का विभाजन देशों के आधार पर होता है अर्थात् इस विभाग का एक भाग अफ्रीका, दूसरा जापान, तीसरा अमरीका आदि से सम्बन्धित पत्र-व्यवहार आदि के काम को निबटाता है। युद्ध के समय में इस विभाग का महत्व बहुत बढ़ जाता है, यहां तक कि सब प्रशासन विभागों में सब से अधिक महत्व इसी विभाग का हो जाता है।

इस विभाग में सब देशों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित होकर उसका निरीक्षण किया जाता है। उस निरीक्षण के आधार पर इस विभाग से विदेश स्थित अंगरेजी राजदूतों को आवश्यक आदेश भेजे जाते हैं। इंगलैण्ड स्थित विदेशों के राजदूतों से भी यही विभाग सम्पर्क रखता है। विदेशी राज्यों से संधि करना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में इंगलैण्ड के प्रतिनिधि नियुक्त करके भेजना आदि काम भी इसी विभाग में होते हैं। कुछ समय पहले इंगलैण्ड के व्यापारिक

प्रतिनिधियों की देखभाल भी इसी विभाग से होती थी पर इन प्रतिनिधियों का प्रमुख काम यानी विदेशी व्यापार की उन्नति और व्यापार सम्बन्धी संधियों की बातचीत करना अब बोर्ड आफ ट्रेड के विदेशी व्यापार विभाग द्वारा होता है। वैदेशिक विभाग केवल इंगलैण्ड सम्बन्धी विषयों से नहीं वर्तता बल्कि सारे ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल की ओर से कार्यवाही करता है।

श्रम-विभाग—यह नया विभाग है जो सन १९१७ में स्थापित हुआ। आरम्भ से ही इस विभाग का अध्यक्ष श्रम मन्त्री मन्त्रिपरिषद का सदस्य होता चला आ रहा है। इस विभाग के कर्तव्य बिलकुल नये नहीं हैं उनमें बहुत से पहले बोर्ड आफ ट्रेड विभाग में निवटाये जाते थे। साधारणतः उद्योग सम्बन्धी मामलों से जैसे श्रमिकों के सम्बन्ध में उठाने वाले या कच्चे माल को जुटाने वाले प्रश्नों से, यह विभाग सम्पर्क रखता है। श्रमिकों और उद्योगपतियों के बीच झगड़ों को निवटाना, एम्प्लायमेण्ट एक्सचेन्ज, बेकारी का बीमा, व्यापारिक समितियों और श्रमियों की संख्या एकत्रित करना आदि बातों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है संक्षेप में यह विभाग उद्योगों में काम करने वालों की समस्याओं के सुलझाने ही का काम करता है, उत्पादन, उसकी बिक्री या पूंजी आदि से इस विभाग का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उद्योग-न्यायालय सम्बन्धी सन् १९१९ के एक्ट के अन्तर्गत यही विभाग कार्यवाही करता है, उद्योग समितियों से भी इसका सम्बन्ध रहता है। ये समितियां इस विभाग के आश्रय में बनाई जाती हैं और इनमें उद्योगपतियों, श्रमिकों व साधारण जनता के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। जब यह समिति किसी उद्योग के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देती है तो श्रम विभाग यह आज्ञा निकाल देता है कि प्रत्येक उद्योगपति को वह मजदूरी अपने काम करने वालों को अवश्य देनी होगी। एम्प्लायमेण्ट एक्सचेन्ज सब से पहले सन १९०९ में बनी थी। युद्ध के पश्चात इनकी संख्या बहुत बढ़ गई और अब सारे देश में इनका जाल बिछा हुआ है। इस का काम मजदूरों को काम दिलाना और काम के लिये मजदूरों की व्यवस्था करना है। सन १९२० में बेकारी बीमा एक्ट पास हो जाने से इस विभाग का काम और खर्चा और अधिक बढ़ गया है। बेकारी आधुनिक समाजिक व आर्थिक संगठन का अपरिहार्य परिणाम है बेकारी से पीड़ित व्यक्ति समाज की औद्योगिक सेना के सिपाही की तरह हैं जिनकी देख भाल करना राज्य का कर्तव्य हो जाता है। इस लिये बीमा के लिये एकत्रित धन इस संरक्षित औद्योगिक सेना को ठीक प्रकार से रखने में व्यय किया जाता है। संरक्षित औद्योगिक सेना किसी विशेष उद्योग के लिये ही नहीं रहती पर सारे समाज के हित के लिये ही सरकार इसका पालन-पोषण

करती रहती हैं।

सब बातों के देखते हुये यह कहा जा सकता है कि श्रमिक-विभाग काम दिलवाने और उद्योगपतियों व श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्ध को सहयोगपूर्ण बनाने का काम करता है। कुछ सीमा तक इन सम्बन्धों पर यह विभाग अपना नियंत्रण भी रखता है पर अधिकतर प्रवृत्ति यह रहती है कि सरकारी नियंत्रण न रह कर स्वतः ही उद्योगपतियों व श्रमिकों की सहयोग-समितियां आदि बनें जिनमें वे स्वयं आपस के मामलों को प्रेमपूर्वक निबटा लें।

स्वास्थ्य विभाग—यह विभाग सन् १९१९ में स्थापित हुआ है। इसका काम स्वास्थ्य सम्बन्धी काम का निर्देशन करना है पर वास्तव में स्वास्थ्य सम्बन्धी काम की मात्रा बहुत थोड़ी है, प्रमुखतः तो यह विभाग स्थानीय शासन से सम्पर्क रखता है। जो काम पहले स्थानीय-शासन बोर्ड करता था वह इस विभाग ने ले लिया और इसको नेशनल इन्श्यौरेन्स कमिश्नरों के काम से मिला दिया। दूसरे शासन-विभागों से भी कुछ काम हट कर इस विभाग में आ गया। उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल का काम व गृह-विभाग से पागलों आदि के सम्बन्ध का काम। दूसरी ओर स्थानीय शासन का सब काम इस विभाग में न आकर दूसरे विभागों में भी बांट दिया गया जैसे ट्राम गाड़ियों का काम यातायात विभाग में कर दिया गया।

साधारणतया इस विभाग में निम्नलिखित काम होता है :—स्थानीय शासन संस्थाओं के हिसाब की जाँच, छूतरोग सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाना, संक्रामक बीमारियों के रोकने का प्रबन्ध करना व दूसरी नगर व ग्राम की शासन-संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली बातों की देखभाल करना।

इस विभाग के आधीन चार परामर्शदात्री समितियां स्थापित की गई हैं जो स्थानीय स्वास्थ्य-प्रबन्ध, चिकित्सा तथा औषधि सम्बन्धी काम, मान्य-समितियों की कार्यवाही की देखभाल और सामान्य स्वास्थ्य की समस्याओं पर ध्यान रखती हैं। वृद्धावस्था की पैंशन का प्रबन्ध भी इस विभाग में होता है। अन्धों की देखभाल के लिये भी आयोजन है। वासस्थान (Housing) का प्रबन्ध इसका एक मुख्य काम है। अन्वेषण का आरम्भ व उसके लिये आवश्यक सहायता देने का अधिकार भी इस विभाग को दिया गया है। इस विभाग के मन्त्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी और अनेक चिकित्सा अफसर होते हैं।

सन् १९१४ के युद्ध काल में कई नये विभाग खोले गये थे पर उनमें से अधिकतर युद्ध के समाप्त होने पर तोड़ दिये गये। जो बचे, उनमें पैंशन विभाग व यातायात विभाग मुख्य थे जो स्थायी रूप से स्थापित हो गये। पैंशन विभाग सन् १९१६ में पार्लियामेण्ट के एक एक्ट द्वारा स्थापित हुआ और इसको पेंशन सम्बन्धी सारा काम युद्ध-विभाग, नौसेना विभाग व चैलसिया-कमिश्नरों से हटा कर सौंप दिया गया। एक दूसरा युद्धोत्तर विभाग जो बड़े महत्व का है वह वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण विभाग है। सन् १९१५ में इसके लिये एक समिति नियुक्त कर दी गई थी। इस समिति को यह काम दिया गया था कि वह पार्लियामेण्ट से मंजूर किये हुये अनुदानों को अर्थ विभाग के आदेशानसार वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण के काम में व्यय करे। इस समिति का अध्यक्ष कौंसिल का लार्ड प्रैसीडैण्ट होता है। दूसरे सदस्यों में उपनिवेश मन्त्री, अर्थ मन्त्री, स्काटलैण्ड-मन्त्री, आयरलैण्ड का प्रधान सचिव, व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष और पांच दूसरे व्यक्ति होते हैं। इस समिति की स्थापना के साथ ही साथ एक परामर्श देने वाली समिति व एक पृथक विभाग भी स्थापित किया गया जिनको अन्वेषण सम्बन्धी सब प्रार्थना-पत्र भेजे जाते थे। विभाग के आश्रय में मुख्य मुख्य विषयों पर अन्वेषण करने के लिये विशेष बोर्ड भी नियुक्त किये गये जैसे ईंधन-अन्वेषण बोर्ड (Fuel Research Board) आदि।

इन विभागों के अतिरिक्त कई दूसरे विभाग भी हैं जैसे व्यापार विभाग या बोर्ड आफ ट्रेड (जिसके दो भाग हैं (१) नौकरियों का प्रबन्ध व (२) व्यापार और उद्योग) कृषि-विभाग, शिक्षा-विभाग, पोस्टमास्टर जनरल, कमिश्नर आफ वर्क्स इत्यादि। ये विभाग अपने अपने नाम के अनुसार काम करते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय यह प्रथा चल गई कि किसी बड़े राजनीतिज्ञ को मन्त्रि-परिषद् का मन्त्री बना दिया जाता था पर उसके आधीन किसी शासन विभाग का प्रबन्ध न होता था। यह प्रथा द्वितीय महायुद्ध में भी चालू रही।

इण्डिया आफिस—सन् १९४७ के अगस्त मास तक इण्डिया आफिस सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया का कार्यालय था। सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया की गिनती प्रमुख पांच सेक्रेटरियों में होती थी। इसके कार्यालय से ही भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध का नियन्त्रण होता था। इसके आधीन दो उप-सेक्रेटरी, एक पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी और एक स्थायी सेक्रेटरी होता था। पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी पार्लियामेण्ट का सदस्य होता था पर मन्त्रिपरिषद् का सदस्य न बनाया जाता था। एक परामर्श देने वाली समिति भी थी जिसमें कम से कम

तीन और अधिक से अधिक छः व्यक्ति होते थे जिनको सेक्रटरी आफ स्टेट पांच वर्ष के लिये नियुक्त करता था। यह समिति सेक्रेटरी को अपने काम को अच्छी प्रकार सम्पादित करने में सलाह दिया करती थी। भारतवर्ष के सब मामलों में सेक्रेटरी आफ स्टेट सम्राट का वैधानिक सलाहकार था और वह गवर्नर जनरल व गवर्नरों के काम की देखभाल रखता तथा उनको आदेश देता था। वही इण्डियन सिविल सर्विस की नौकरियों के लिये भर्ती करता था और मन्त्रियों के समान भारतीय मामलों में पार्लियामेंट को उत्तरदायी था।

सिविल सर्विस

सिविल सर्विस कार्यपालिका के हाथ व पैर हैं, जो कार्यशील बना, उसके उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होते हैं। सिविल सर्विस अपनी कार्य-कटुता के लिये प्रसिद्ध है। इस सिविल सर्विस का प्राचीन इतिहास बड़ा रोचक है। सोलहवीं शताब्दी से पूर्व ऐसे व्यक्ति देश के दूरवर्ती भागों में शासन प्रबन्ध करते थे जो राजा के दरबारियों में मनोनीति हुये होते थे। उस समय की प्रबन्ध प्रणाली बड़ी दोषपूर्ण व असफल थी। शासन कर्मचारियों का काम सोलहवीं शताब्दी के बीच से १८ वीं शताब्दी के अन्त तक इतना खराब था कि केन्द्रीय शक्ति को बार बार नये कानून बनाने पड़ते थे जिनकी प्रस्तावना में शिकायतें झिड़कियां व धमकियां भरी रहती थीं। स्थानीय अफसरों के काम की देखभाल करने वाले केन्द्रीय शासन के अफसर न होने से राज्य करों में बड़ा घाटा पड़ता था और प्रजा पर अनाचार तथा अत्याचार भी होता था। राज्य के कानून प्रायः ऐसे व्यक्तियों के द्वारा कार्यान्वित होते थे जो इस कार्य में कुशल न होते थे और जिनको इस काम के लिये सरकार की ओर से कोई वेतन न मिलता था। उस समय न्यायकारी तथा कर्मचारी कर्तव्यों का पृथक् विभाजन न हुआ था।

स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियंत्रण १६वीं शताब्दी से आरम्भ होने लग गया था। यह नियंत्रण अकाल पीड़ित व्यक्तियों के कष्ट को दूर करने के लिये पूअर ला (Poor Law) अर्थात् निर्धनों के कानून को अच्छी तरह कार्यान्वित करने के लिये विशेषरूप से आरम्भ किया गया। सन् १६३१ में निर्धन-सहाय सम्बन्धी सूचना एकत्रित करने के लिये तथा न्याय-प्रबन्ध को सुधारने के लिये आदेश पुस्तक (Book of Orders) में तत्सम्बन्धी आदेश तथा निर्देश प्रकाशित किये गये। गृह-युद्ध के छिड़ जाने से इस केन्द्रीयकरण की गति रुक गई। १७वीं व १८वीं शताब्दी में पार्लियामेण्ट का ध्यान उपनिवेश-सम्बन्धी विषयों में लगा रहा। जब वैधानिक सुधार का समय आया तभी शासन-

प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार हुये क्योंकि पहले के विना दूसरे में सुधार करना असम्भव था और दोनों ही बड़े दोषपूर्ण हो चुके थे। उस समय वेतन-भोगी राजकर्मचारियों की न कोई लिखा पढ़ी थी न हिसाब किताब। इसलिये केन्द्रीय शासन का उनपर नियन्त्रण भी कैसे हो सकता था। बहुत से वेतन पाने वाले राजकर्मचारी अमरीकन उपनिवेश में जाकर मौज उड़ाया करते थे।

सन् १८५५ में वर्तमान सिविल सर्विस का श्रीगणेश हुआ। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मैकाले ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन भारतीय सिविल सर्विस की भर्ती के लिये जो योजना बनाई उसी के अनुरूप ब्रिटिश सिविल सर्विस को भी बना कर सुधार करने की योजना बनाई गई। लार्ड जान रसल (Lord-John Russel) प्रधान मन्त्री व सर चार्ल्स वुड अर्थमन्त्री ने शासन प्रबन्ध के विभिन्न विभागों में पूछताछ करने का काम सर चार्ल्स ट्रैविलयान व सर स्टफार्ड नार्थकोट को सौंपा। उनकी रिपोर्ट सन् १८५३ में प्रकाशित हुई और इनकी योजना का बड़ा स्वागत हुआ। शासन की विभिन्न नौकरियों में भर्ती के लिये एक विशेष परीक्षा का आयोजन किया गया। उन्होंने यह शिफारिश भी की कि प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं के लिये सामान्य शिक्षा न कि विशेष शिक्षा का माप रखा जाय। इन परीक्षाओं का प्रबन्ध करने के लिये सन् १८५५ में एक सिविल सर्विस कमीशन की नियुक्ति कर दी गई। कमीशन को प्रतियोगिताओं की योग्यता, आयु, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा साधारण जानकारी आदि को निश्चय करने का भार सौंप दिया गया। पर कमीशन की परीक्षा में सफलता केवल अनुमतिदायक थी, वह सिविल सर्विस के लिये अनिवार्य न की गई थी क्योंकि विना कमीशन के प्रमाणपत्र पाये हुये व्यक्ति यदि परिपक्व आयु के होते थे तो वे भी नौकरियों में भर्ती किये जा सकते थे।

सन् १८७० में कहीं जाकर नौकरियों में नियुक्ति करने की प्रणाली की ठीक व्वस्था हो पाई जब (१) नौकरियों में भर्ती होने से पूर्व प्रतियोगितात्मक परीक्षा अनिवार्य कर दी गई (२) व्यवसायी पदों के कर्मचारियों के लिये इस परीक्षा के बन्धन हटाने का अधिकार कमीशन को दे दिया गया (३) कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति सीधे राजा द्वारा होने का आयोजन कर दिया गया (४) विभागाध्यक्षों को यह अधिकार दे दिया गया कि कमीशन की सम्मति से वे कुछ पदों के लिये परीक्षा का प्रतिबन्ध हटा सकें और (५) अर्थ विभाग को विभागों के संगठन करने का अधिकार दे दिया गया। इसके पश्चात् भी

कई कमीशन नियुक्त किये गये जिन्होंने नौकरियों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक नियमावली आदि बना कर सिविल सर्विस को बिलकुल व्यवस्थित रूप दे दिया।

वर्तमान सिविल सर्विस प्रणाली ने, जिसका मूलसिद्धान्त खुली प्रतियोगिता है, विभिन्न श्रेणियों के कुशल राजकर्मचारी प्रदान किये हैं। इस समय इंगलैंड में लगभग ५ लाख या इससे भी अधिक व्यक्ति विभिन्न शासन विभागों में काम करते हैं। प्रबन्धकर्ता अफ़सर नौकरियों के लिये वही काम करते हैं जो काम शरीर में मस्तिष्क करता है और ये लोग अधिकतर आक्सफोर्ड और कैम्ब्रज के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाये हुये होते हैं।

राजकर्मचारियों को किसी राजनैतिक दल में शामिल होने की अनुमति नहीं होती। स्थायी नौकर होने के कारण उनका काम यही है कि मन्त्रियों व विभागाध्यक्षों की नीति और आज्ञाओं को उनके आदेशानुसार कार्यान्वित करें।

पाठ्य पुस्तकें

Allen, C. K.—Bureaucracy Triumphant (1931).
Allen, C. K.—Law in Making. (1627).
Allen, C. K.—The Development of Civil Service (1922).
Cripps, Sir Stafford—Democracy up-to-date (1939)
Finer, H.—Theory and Practice of modern Government, pp, 1163—1514.
Greaves, H. R. G.—The British Constitution, ch. VII.
Laski J. H.—Parliamentary Government in England (1938), pp. 309—359.
Low, Sir Sidney.—Governance of England, pp. 199—217.
Gretton—The King's Government.
Marriot—English Political Institutions, ch. V.

सब अनुमानों को स्पष्टतया न समझ लें। इस सिद्धान्त से स्वेच्छाचार के स्थान पर विधिपूर्वक बनाये हुये कानून को प्रतिष्ठित कर दिया गया है। इसने कानून की दृष्टि में सब श्रेणियों व वर्गों के व्यक्तियों की समानता मान्य कर दी है। सब से बड़ी बात तो यह है कि शासन-विधान को भी इसने साधारण कानून की नींव पर ही खड़ा किया है।'

विधि-शासन के अपवाद—विधि-शासन में कुछ अपवाद भी मान लिये गये हैं। इन अपवादों में राजा प्रथम है। 'राजा कोई गलती नहीं करता' इस कानूनी सिद्धान्त के अनुसार राजा पर कोई माल या फौजदारी का अभियोग नहीं लगाया जा सकता। यदि राजा कोई अपराध करता है तो उसे किसी न्याया-लय में उपस्थित होने के लिये आदेश नहीं दिया जा सकता। उसे पागल करार देकर डाक्टरों की देख रेख में रखा जा सकता है पर किसी भी कानून से उस पर उसी के न्यायालयों में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। इसी प्रकार सम्पत्ति सम्बन्धी मामलों में या प्रजा के किसी व्यक्ति की राजा द्वारा हानि हो जाय तो वह केवल राजा से प्रार्थना कर सकता है और राजा चाहे तो अपनी कृपा दृष्टि से, न कि प्रार्थी के अधिकार की रक्षा के लिये, उस क्षति को पूरा कर दे। इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है। दूसरे अपवाद में राज्य के अफसर आते हैं। अपने सरकारी काम में यदि वे कोई काम करते हैं जिससे किसी कानून का उल्लंघन होता है तो वैयक्तिक रूप से उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। उसके ऐसे सब कामों के लिये राज्य ही जिम्मेदार समझा जाता है। तीसरे, यदि न्यायाधीश अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर भी अनजाने कोई अपराध कर दें तो वे वैयक्तिक रूप से अपराधी नहीं ठहराये जा सकते। छोटे मजिस्ट्रेट (Justices of the Peace) भी यदि द्वेषपूर्ण व्यवहार न करें तो अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी राजकीय कार्यवाही के लिये अपराधी नहीं ठहराये जा सकते।

विधि-शासन से अनुमानित नागरिक अधिकार—यह कहा जाता है कि इंगलैण्ड में नागरिक अधिकारों की घोषणा के अभाव की पूर्ति विधि-शासन द्वारा होती है। विधि-शासन के सिद्धान्त से कुछ नागरिक अधिकार अनुमान द्वारा मान्य हो गये हैं जिनको न्यायालय निर्णय देते समय शिरोधार्य करते हैं। ये अधिकार हैं:—(१) दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार (२) वाक् स्वातन्त्र्य का अधिकार (३) सार्वजनिक सभा करने का अधिकार। दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार के कारण कोई भी व्यक्ति बिना किसी कानून-भंग का अपराधी

हुये बन्दी नहीं बनाया जा सकता और उसका अपराध साधारण न्यायालय द्वारा निर्णीत होगा। कोई भी न्यायालय किसी व्यक्ति को दण्ड देने की आज्ञा नहीं दे सकता जब तक उस व्यक्ति का अपराध सिद्ध न हो जाय। प्रत्येक न्यायालय अपराध सिद्ध करने में उस व्यक्ति को अपने बचाव का पूरा अवसर देगा। यदि कोई कर्मचारी किसी नागरिक को पकड़ कर जेल में बन्द कर दे तो वह नागरिक हेबियस कारपस की लिखित आज्ञा के लिये न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है जिससे उसे न्यायलय के सम्मुख उपस्थित करना पड़ेगा। इसके पश्चात् उसके अपराध की परीक्षा आरम्भ होगी। विधि शासन के अनुसार व्यक्ति अपनी रक्षा के लिये बल प्रयोग करने का अधिकारी भी है। अपने ऊपर किये आक्रमण से बचने के लिये यदि वह बल प्रयोग करे तो वह उसका अपराधी नहीं समझा जायगा।

वाक्स्वातन्त्र्य का अधिकार इंगलैण्ड में विधि-शासन द्वारा ही प्राप्त है जब कि फ्रांस, बेलजियम आदि देशों में इसका उल्लेख शासन-विधान में कर दिया गया है। इंगलैण्ड में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह जो चाहे सो कह सकता है और किसी के बारे में जो चाहे लिख सकता है। प्रतिबन्ध केवल यही है कि यदि वह कोई ऐसी बात कहे या लिख कर प्रकाशित करे जिसके कहने या प्रकाशित करने का उसे कानून से अधिकार प्राप्त न हो। ऐसी दशा में वह दण्डनीय समझा जायगा। उदाहरण के लिये कोई ऐसी बात नहीं कही जा सकती जो किसी व्यक्ति की निन्दा करती हो, झगड़ा-फिसाद फैलाती हो या धर्म के विरुद्ध हो। इंगलैण्ड में समाचार पत्रों पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं लगाये गये हैं, वे साधारण कानूनों से ही प्रतिबन्धित हैं।

जब दैहिक स्वतन्त्रता और वाक्स्वातन्त्र्य का अधिकार मान्य है तो सार्वजनिक सभा करने का अधिकार अपने आप ही सिद्ध है। दूसरे देशों में यह अधिकार शासन विधान द्वारा दिया जाता है। इसलिये जब तक शान्ति भंग होने का भय न हो (केवल सन्देह ही न हो), तब तक किसी भी सम्मेलन या सभा को होने दिया जाता है और उसे अवैध घोषित नहीं किया जाता। यदि उस सभा या सम्मेलन का उद्देश्य वैध है और सभा करने वालों का अभिप्राय ऐसा है जो किसी कानून के विरुद्ध नहीं है।

सब व्यक्ति एक ही कानून व एक प्रकार के न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में रहते हैं। सरकारी कर्मचारियों के लिये पृथक् न्यायालय नहीं बने हुये हैं। इन सब न्यायालयों में साधारण कानून के अनुसार ही अपराध की परीक्षा

की जाती है। इसलिये साधारण नागरिक को यदि किसी राजकर्मचारी से हानि पहुँचे तो वह किसी भी न्यायालय में उस कर्मचारी के विरुद्ध अभियोग लगा सकता है। इस प्रथा के विपरीत यूरोप के देशों में सरकारी कर्मचारियों पर लगाये हुये अभियोगों की सुनवाई के लिये प्रशासन-न्यायालय हैं जिनमें प्रशासन-न्याय (Administrative Law) के अनुसार न कि साधारण कानून के अनुसार, अपराध की परीक्षा होती है।

विधि-शासन प्रभुत्व अब कुछ समय से घटता जा रहा है। उसके कई कारण हैं। पहला तो यह कि हाल ही में पार्लियामेंट ने कुछ ऐसे ऐक्ट पास कर दिये हैं जिनसे राजकर्मचारियों को न्याय करने के अधिकार दे दिये गये हैं। फैक्टरी ऐक्ट, ऐज्यूकेशन ऐक्ट के अन्तर्गत मामले न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रख दिये गये हैं। उन मामलों में उन विभागों के अफसर अपना निर्णय देकर तय करते हैं। दूसरे, मजदूर संघों की यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि वे अपने आन्तरिक संगठन में न्यायालयों का हस्तक्षेप सहन नहीं करना चाहते चाहे संगठन के नियमों से किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता कितनी ही प्रतिबन्धित होती हो। तीसरे, कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि उनके कार्य समाज के हितकारक हैं। हालांकि कानून की दृष्टि से वे हेय हैं। वे कानून का इसलिये विरोध करते हैं। चौथे, नियमावली बनाने, अस्थाई आदेश, आर्डर्स-इन-कौंसिल आदि निकालने के अधिकार भी अधिकाधिक बढ़ते जा रहे हैं। ये बहुत कुछ कानून के समान ही लागू होते हैं पर कोई न्यायालय इनके कार्य रूप करने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

अंगरेज़ी न्यायपालिका के दूसरे सिद्धान्त—न्यायशासन के सिद्धान्त के अतिरिक्त अंगरेजी न्याय-प्रणाली के कुछ दूसरे सिद्धान्त भी हैं जो दूसरी किसी न्याय-प्रणाली में नहीं मिलते। सारा न्याय संगठन इस प्रकार संगठित है कि सब व्यक्ति उस तक आसानी से पहुँच सकते हैं। न्यायालय दो प्रकार के हैं माल व फौजदारी (व्यवहारी व दण्ड न्यायालय) और इन दोनों की कई श्रेणियां हैं, सब से छोटे न्यायालय, पुनर्विचार न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय। इन न्यायालयों के न्यायाधीश स्वतन्त्र व निरपेक्ष रहते हैं उन पर कार्यपालिका का किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता न उनके काम में वह हस्तक्षेप कर सकती है। परिणामस्वरूप सब के साथ एकसा न्याय बरता जाता है। यह इसलिये सम्भव है क्योंकि न्यायाधीशों को तब तक उनके पद से हटाया नहीं जा सकता जब तक उनके विरुद्ध पक्की तरह से अपराध सिद्ध न हो गया हो। जब तक वे अपने पद पर रहते हैं उनके वेतन में कमी नहीं की जा सकती। पार्लियामेण्ट

के दोनों सदनों की प्रार्थना पर ही वे राजा द्वारा हटाये जा सकते हैं। इंगलैण्ड की न्यायपालिका के इतिहास में ऐक्ट आफ सैटिलमेण्ट से अब तक सिवाय लार्ड मैक्लसफील्ड के किसी भी न्यायाधीश की सत्यतत्परता पर सन्देह नहीं हुआ और पार्लियामेण्ट में न्यायाधीशों के पक्षपात व्यवहार के सम्बन्ध में वाद-विवाद के बहुत कम अवसर प्राप्त हुये हैं। न्यायाधीश अयोग्य भले ही रहे हों पर बेईमान नहीं रहे।

इंगलैण्ड में जूरी (पंच) प्रणाली—अंगरेजी न्यायपालिका की एक और विशेषता है। वह है जूरी पंचप्रणाली। इस प्रणाली का जन्म १२ वीं शताब्दी में हुआ। अब की तरह पहले पंच गवाही सुन कर निर्णय न दिया करते थे, वे अपनी जानकारी के आधार पर ही या परम्परा का सहारा लेकर निर्णय दिया करते थे। बाद में गवाह की हैसियत को छोड़ कर वे केवल वास्तविकता का निर्णय करने वाले रह गये। १६ वीं शताब्दी में पंचों को असत्य निर्णय देने पर दण्ड भी दिया जाता था पर १६७० यें इस प्रकार के दण्ड से मुक्ति कर दी गई। पंच प्रणाली अब दोनों माल व फौजदारी मुकदमों में प्रचलित है। पंच समुदाय में १२ व्यक्ति होते हैं जिनका यह कर्तव्य होता है कि वे वास्तविकता का पता लगावें और न्यायालय को निर्णय देकर सहायता करें। पंच समुदाय सारे मुकदमे को सुनता है और सुनने के बाद यह वह बतलाता है कि वह व्यक्ति जिस पर अभियोग लगाया गया है, अपराधी है या नहीं।

न्यायपालिका का संक्षिप्त इतिहास—सैक्सन-काल में राजा की निर्बलता के कारण गांवों, नगरों व जिलों में न्यायप्रबन्ध राजा के नियंत्रण से परे रहता था और राजा की इन स्थानों के न्यायालय तक पहुँच न थी। जब नौर्मन-विजय के पश्चात् नौर्मन राजाओं ने शान्ति स्थापित कर अपने आप को अच्छी तरह प्रतिष्ठित कर लिया तब से राजा की शक्ति का प्रभाव राज्य के कोने कोने में जमने लगा। पहले पहले तो राजा ने जहां तहां न्यायालय के काम में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। धीरे धीरे यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि हैनरी प्रथम जब गद्दी पर बैठा तो उसने न्याय प्रवन्ध को केन्द्रस्थ व सुव्यवस्थित करने का काम अपने हाथ में लिया। इस ओर कदम बढ़ाने में सबसे पहला काम जो किया गया वह यह था कि भ्रमणशील न्यायाधीशों को घूम घूम कर अभियोगों की सुनवाई करने के लिये और उनका निबटारा करने के लिये चारों ओर भेजना आरम्भ किया। प्रायः यह न्यायाधीश क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के सदस्य होते थे और राजा इनसे देश की परिस्थिति के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर लेता था। जब इन न्यायाधीशों का काम बढ़ा और क्यूरिया रेजिस को यह कठि-

नाई होने लगी कि राजकीय शासन प्रबन्ध में राजा की सहायता के साथ साथ न्याय-सम्बन्धी यह काम भी भली प्रकार करे तो इस काम को पहले दो, फिर तीन शाखाओं में बांट दिया गया और प्रत्येक शाखा का काम पृथक् पृथक् व्यक्तियों को सौंप दिया गया। पर मैग्नम कौंसिलियम (Magnum Concilium) सब मामलों, न्याय-सम्बन्धी व दूसरे शासन-सम्बन्धी, में सर्वोच्च सत्ता बनी रही। जब यह पार्लियामेण्ट के रूप में परिणत हो गई तब भी इसके न्याय सम्बन्धी कर्तव्य ज्यों के त्यों बने रहे। इस प्रकार पार्लियामेण्ट के अतिरिक्त कई न्याय संस्थायें स्थापित हो गईं जिनमें विभिन्न प्रकार के मुकदमों की सुनवाई होती थी। इस विकास को एक रेखा चित्र से आसानी से समझा जा सकता है।
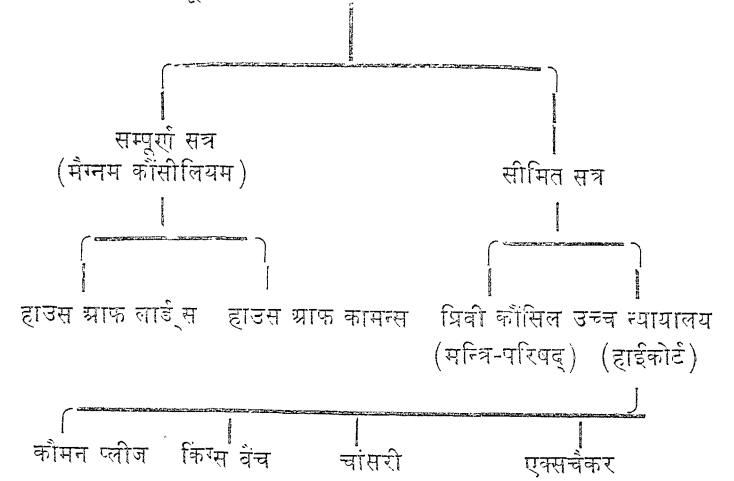
हाउस आफ लार्ड्स और हाउस आफ कामन्स के इतिहास का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

एक्सचैकर क्यूरिया रैजिस का आर्थिक अंग था और उन मुकदमों को निवटाता था जो राजकीय कर आदि से सम्बन्ध रखते थे।

किंग्स बैंच को हैनरी द्वितीय ने सन् ११७८ में पृथक् रूप से स्थायी न्यायालय स्थापित किया। इसमें क्यूरिया के सदस्यों में से पांच व्यक्ति न्यायाधीश नियुक्त होते थे और इसके निवटाये हुये मुकदमों की अपील सीधी राजा के पास हो सकती थी।

मैग्ना कार्टा ने कौमन प्लीज के न्यायालयों की स्थापना का प्रबन्ध करा दिया था। इनमें समय समय पर प्रजा के लोगों पर पारस्परिक झगड़ों का निब-

टारा होता था ।

उपर्युक्त तीनों न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुये थे । हैनरी तृतीय के समय में इन तीनों में अलग अलग न्यायाधीश नियुक्त कर दिये गये, पर इनके केन्द्रीकरण में केवल इसी बात की कमी थी कि संगठन में समानता न थी और इनका अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से निर्धारित न किया गया था । इस कमी को दूर करने के लिये पार्लियामेण्ट ने सन् १८७३ का जुडीकेचर ऐक्ट पास किया जिससे और सुधारों के साथ साथ ये तीनों न्यायालय मिला कर एक न्यायालय के रूप में कर दिये गये। सन् १८८१ के एक दूसरे ऐक्ट से ये हाई-कोर्ट उच्च न्यायालय के एक विभाग में मिला दिये गये ।

कोर्ट आफ चांसरी तेरहवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित हुई । कामन लौ (Common Law) न्यायालयों के निर्णयों से लोगों को संतोष न होता या तो वे राजा से अपील करते थे और राजा उनकी अपीलों को चांसलर के पास भेज दिया करता था । इस प्रकार कुछ दिनों में चांसलर भी एक पृथक् न्याय संस्था हाईकोर्ट का ही एक विभाग बना दिया ।

यद्यपि उपर्युक्त सब न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुये पर फिर भी क्यूरिया न्यायकार्य करती रही और बड़े मुकदमों को निबटाती थी । जब हैनरी सप्तम् सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने कौंसिल की एक समिति बनाई जिसको देश में शान्ति स्थापित करने के हेतु बड़े बड़े न्यायकारी व दण्ड देने वाले अधिकार दे दिये । यह समिति कोर्ट आफ स्टार चैम्बर के नाम से प्रसिद्ध हुई और इसकी स्थापना के पीछे जो उद्देश्य था वह राजनैतिक था न कि प्रशास-नीय । बाद में इसका नाम हाई कमीशन कोर्ट पड़ा, पर इस ने बड़े कठोर दण्ड दिये जिससे यह बड़ी अप्रिय हो गई जिसके कारण पार्लियामेण्ट ने सन् १६४१ में इसे तोड़ दिया । पर इससे राजा का अधिकार जिससे वह अपनी प्रजा की प्रार्थना सुन सकता था नहीं छीना गया विशेष कर इंगलैण्ड से बाहर रहने वाली प्रजा की प्रर्थना सुनने का । इसलिये प्रिवी कौंसिल की जुडिशियल कमेटी की स्थापना हुई जो ब्रिटिश साम्राज्य की सब से ऊंची अदालत है ।

इन न्यायालयों के अतिरिक्त कुछ दूसरे न्यायालय भी स्थापित हुये जैसे कोर्ट आफ एडमिरल्टी, जिसमें समुद्र में किये हुये अपराधों के दण्ड की व्यवस्था होती थी, और धर्म न्यायालय जिनमें राजकीय धर्मसंघ के अधिकार क्षेत्र में आने वाले मामले निबटाये जाते थे ।

इन सारी न्याय संस्थाओं को एक सूत्र में बांधने के लिये व इनके संगठन और कार्य पद्धति में समानता लाने के लिये ही पार्लियामेण्ट ने सन् १८७३ और १८७९ के बीच न्यायपालिका का पुनर्संगठन किया।

वर्तमान न्यायपालिका का संगठन नीचे दिये हुये रेखा चित्र से भली प्रकार समझ में आ जायगा।

(१) फौजदारी या दण्ड-न्यायालयः—
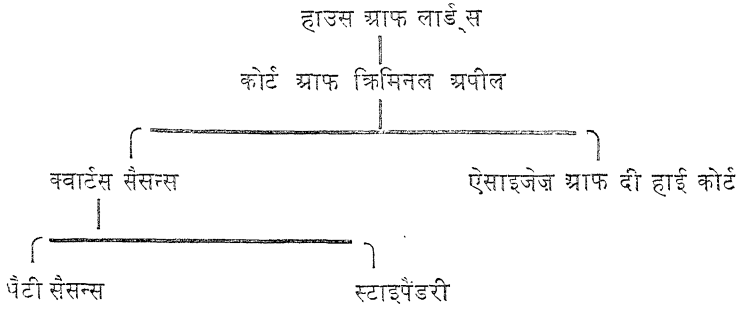
(२) माल या व्यवहार न्यायालय :—
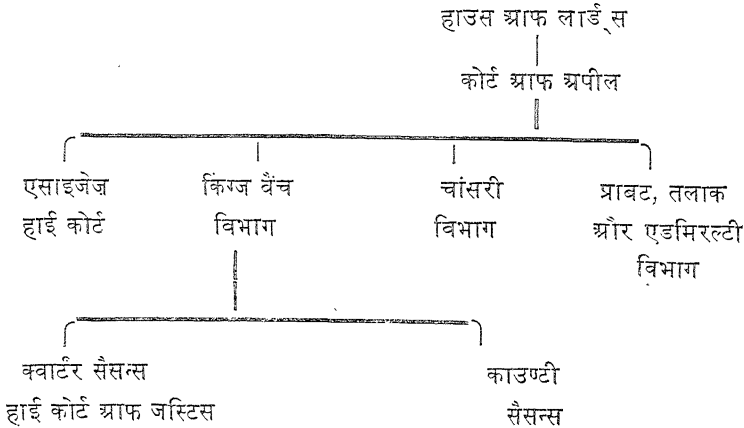
(३) विशेष मुकदमों के न्यायालय :—
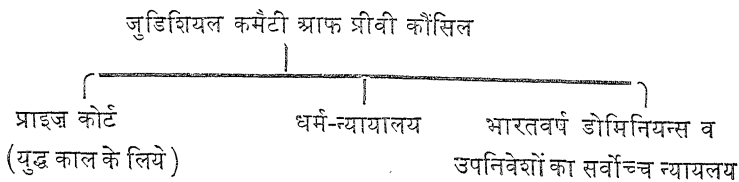
इंगलैण्ड में हाउस आफ लार्ड्स ही सर्वोच्च न्याय-संस्था है जहां माल व फौजदारी के मुकदमों की सुनवाई होती है। जब हाउस इस काम के लिये बैठता है तो लार्ड चांसलर प्रधान का पद ग्रहण करता है और लार्ड्स आफ अपील-इन आर्डिनरी व पीयर जो न्यायधीशों का पद प्राप्त किये हुये होते हैं या कर चुके होते हैं उनकी अनुपस्थिति से ही सदन की बैठक समझ ली जाती है चाहे और दूसरे पीयर उपस्थित हों या न हों। प्रिवी कौंसिल की जुडीशियल कमैटी का लार्ड चांसलर भी सदस्य होता है और उसके अतिरिक्त वे लार्ड्स आफ अपील इन आर्डिनरी भी होते हैं जो हाउस आफ लार्ड्स में जब सदन अपील सुनने के लिये बैठता है, उपस्थित रहते हैं। इस कमेटी में साम्राज्य के जिस देश से मुकदमा आता है वहां का एक न्यायाधीश बैठता है।

कोर्ट आफ अपील में एक मास्टर आफ रौल्स और पांच लार्ड न्यायाधीश होते हैं। इस न्यायालय में कानून की व्याख्या-सम्बन्धी पुनर्विचार ही नहीं होता बल्कि घटना सम्बन्धी प्रश्नों पर भी पुनर्विचार होता है।

चांसरी विभाग में पांच न्यायधीश होते हैं और चांसलर अध्यक्ष होता है। किंग्स बैंच विभाग में १५ न्यायाधीश होते हैं और प्राइवेट कोर्ट में दो। इस प्रकार हाईकोर्ट २३ न्यायाधीशों से बनती है। काम की सुविधा के लिये इसके विभाग कर दिये हैं जिनमें अपने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत मुकदमों की सुनवाई होती है। प्रायः एक ही न्यायाधीश एक मुकदमे को सुनता है इसलिये हाईकोर्ट २३ न्यायालयों जितना काम करती है।

न्यायपालिका में लार्ड चांसलर सबसे महत्वशाली व्यक्ति है क्योंकि बहुत से न्यायालयों का वह अपने पद के कारण ही अध्यक्ष रहता है। इसके अतिरिक्त वह मन्त्रिपरिषद् का सदस्य भी होता है। उसका कानूनी ज्ञान बड़े ऊँचे दर्जे का होता है। उसको न्यायमन्त्री कहा जा सकता है क्योंकि वह परिषद् के साथ ही साथ अपना पद ग्रहण और पद-त्याग करता है। वह अपने पक्ष का सदस्य बना रहता है पर न्याय के मामलों में कानून का पक्का समर्थक बना रहता है।

काउण्टी कोर्टों में ५० पौण्ड तक के मुकदमों का निबटारा होता है, किन्हीं में १०० पौंड तक के मुकदमे भी सुने जाते हैं। जिन मुकदमों में २० पौण्ड से अधिक वाले मुकदमों की प्रथम सुनवाई हाईकोर्ट में ही होती है।

एसाइज़ेज़ (Assizes) वे भ्रमणशील न्यायालय हैं जिनके न्यायाधीश वर्ष में तीन या चार बार निश्चित नगरों में जाकर माल व फौजदारी के मुकदमे सुनते और तय करते हैं। इस काम के लिये काउण्टी को आठ जिलों

या सरकिटों (Circuits) में बांट दिया जाता है। ये न्यायालय बड़े-बड़े अपराधों के मुकदमों की परीक्षा करते हैं। दूसरे छोटे मुकदमे क्वार्टर सैशन्स (Quarter Sessions) कहाने वाले न्यायालयों में सुने जाते हैं। इनमें उस काउण्टी के दो या दो से अधिक मजिस्ट्रेट न्याय करते हैं।

जैसे हमारे देश में कुछ उच्च व्यक्ति अपने नगर या ज़िले में अवैतनिक मजिस्ट्रेट (Honoaay Magistrate) बनाये जाते हैं ऐसे ही इंगलैण्ड में जस्टिसेज़ आफ दी पीस (Justices of the peace) नियुक्त किये जाते हैं। वे कोई वेतन नहीं पाते और प्रायः जीवन भर इस पद को ग्रहण किये रहते हैं। वे अपने नगर के छोटे मुकदमे सुनते और अपनी बुद्धि व सद्भावना के सहारे उनको तय करते हैं।

सब फौजदारी मुकदमों में पंच-प्रणाली अपनायी जाती है। माल के मुकदमों में भी पंचों की सहायता ली जा सकती है। पर छोटे-छोटे मुकदमों में ऐसा नहीं किया जाता। प्रायः २० पौंड से अधिक के मुकदमों में पांच पंचों की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश जन्म भर के लिये नियुक्त किये जाते हैं और वे अपने काम में स्वतन्त्र व सुरक्षित रहते हैं। इन सब बातों के कारण अंगरेज़ी न्यायपालिका राजनैतिक प्रभावों से परे और स्वतन्त्र है।

पाठ्य पुस्तकें

Blackstone—Commentaries.
Carter, A. T.—History of the English Courts (1935 Edition).
Dicey, A. V.—Law of English Constitution (1939 Edition).
Finer, H.—Theory and Practice of Modern Government (Selected portions).
Greaves, H. R. G.—The British Constitution, pp. 211—221.
Holdsworth—History of English Law.
Laski H. J.—Parliamentary Government in England, ch. VII.
Marriot, J. A. R.—English Political Institutions, ch. XII.
McIlwain, C. H.—High Court of Parliament and its Supremacy (1910).
Potter, H.—Historical Introduction to English Law and its Background (1932).
Poole, A. L.—English Constitutional History (9th Edition). pp. 130-161, 726-743.

अध्याय १०

अंगरेज़ी स्थानीय शासन

> "स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति उनके नागरिकों की स्थानीय सभाओं में रहती है। विज्ञान के लिये जो काम प्राथमिक शिक्षालय करते हैं वही काम नगर सभायें स्वतन्त्रता के लिये करती हैं। ये सभायें स्वतन्त्रता को जनता तक पहुँचाती हैं, वे मनुष्यों को यह सिखाती हैं कि इस स्वतन्त्रता को किस प्रकार प्रयोग व भोग किया जाय। कोई राष्ट्र स्वतन्त्र सरकार भले ही स्थापित कर ले पर स्थानीय शासन संस्थाओं के बिना उसमें स्वतन्त्रता की भावना नहीं रह सकती" (टौकविलि)

स्थानीय शासन का प्रयोजन—स्थानीय शासन स्वतन्त्रता उन्नति और सामाजिक नियंत्रण के बीच समझौता-स्वरूप है। "जिस श्रेणी में संघ-शासन, अनुपाती प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं उसी में इसकी भी गिनती है। सामूहिक अभेदकारी उस व्यवहार के अत्याचार से इसके द्वारा ही बचत हो सकती है जिसमें व्यक्तियों की मौलिकता पर नाक भौंह सिकोड़े जाते हैं और उसको एकता बनाने वाली प्रथाओं से कुचल कर नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है।"*

स्थानीय शासन के बिना जनता में नागरिक भावना जाग्रत नहीं हो सकती और राष्ट्र की वही प्राकृतिक स्थिति होगी जिसका वर्णन हौब्स ने किया है। यह बात अब सब मानने लग गये हैं कि स्थानीय शासन नगर में हो या ग्राम में, जिले में हो या प्रान्त में, जितना ही अच्छा होगा उतने ही वहां के निवासी सुखी व सम्पन्न रहेंगे। इसीलिये संसार के सब सभ्य देशों में (भारतवर्ष को छोड़ कर) शासन का बहुत बड़ा भाग राजधानियों में बैठी हुई सरकार द्वारा न होकर सारे देश में फैली हुई स्थानीय शासन संस्थाओं द्वारा सम्पादित होता है।

अंगरेज़ी स्थानीय शासन का इतिहास—स्थानीय स्वायत शासन इंगलैण्ड में सबसे प्राचीन है यहां तक कि संसार भर के स्थानीय लोकतन्त्र की यही प्रणाली जन्मदात्री है। इस प्रणाली का सबसे अधिक लम्बा और

---

* हरमन फाइनर : इंगलिश लोकल गवर्नमेण्ट (१९३३), पृ० ४।

क्रमिक इतिहास है। यह बड़े लम्बे ऐतिहासिक विकास के परिणाम का फल है। सैक्सन काल में शायर, हण्ड्रेड, नगर (Townships) व बरो थे। नार्मन-विजय के पश्चात् शायर काउण्टी में, नगर मैनरों में और बरो सनद प्राप्त म्यूनिसिपैल्टियों अर्थात् नगर पालिकाओं में परिणत हो गये। दी हण्ड्रेड तो समाप्त ही हो गये। इसी बीच में पैरिश का जन्म हुआ और उसने नगरों (Townships) का स्थान ले लिया, यद्यपि प्रारम्भ में इसकी स्थापना का अभिप्राय धर्म संघ के मामलों की देखभाल करना भर था। १८ वीं शताब्दी के अन्त तक केवल काउण्टी (County), बरो (Borough) और पैरिश (Parish) ही जीवित रह गये। काउण्टी का शासन जस्टिस आफ दी पीस (Justice of the Peace) करते थे और बरो का शासन उसका फ्रीमेन (Freeman) करता था। बरो और पैरिश का शासनसंगठन लोकतन्त्रात्मक था और लोग अपने अफसरों को स्वयं ही चुनते थे। ट्यूडर और स्टुअर्ट राजाओं की निरंकुशता का इस पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ा। पर १७ वीं शताब्दी के अन्त में औद्योगिक क्रान्ति ने सारी परिस्थिति को बदल डाला. गांव के रहने वाले शहरों में जाकर रहने लगे जहां पर शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, निर्धनों की देख भाल आदि की समस्यायें पेचीदा होने लगीं। सरकार ने पुरानी संस्थाओं को तो न मिटाया पर नई संस्थायें बना दी जैसे स्थानीय सुधारक जिले जो स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक सुविधाओं की देखभाल करते थे और पूअर ला यूनियन (Poor Law Union) आदि। इसका परिणाम यह हुआ कि इन स्थानीय संस्थाओं की संख्या सन् १८८३ में बढ़ कर २७,००० हो चुकी थी और उनका अधिकार क्षेत्र पृथक् पृथक् न होकर एक दूसरे से मिले रहने से बड़ी अंधाधुन्धी चल रही थी।

१६ वीं शताब्दी में स्थानीय शासन का सुधार—इन कठिनाइयों के कारण विशेषकर उदार आन्दोलन (Liberal Movement) के उठने से पार्लियामेण्ट ने स्थानीय शासन-संस्थाओं को नया रूप देकर उनमें सुधार करने का काम अपने हाथ में लिया। सब से पहले सन् १८८५ का कौरपोरेशन ऐक्ट पास हुआ जिससे बरो (नगरों) को स्थानीय शासन सम्बन्धी वह प्रणाली मिली जो अब तक बिना परिवर्तन के ज्यों की त्यों चलती आ रही है। सन् १८८८ के लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट से काउण्टी के शासन का पुनर्संगठन किया गया और उसको वे अधिकार सौंप दिये गये जो तब से पहले जस्टिसेज़ आफ़ दी पीस (Justices of the Peace) को प्राप्त थे। उसके पश्चात् सन् १८६४ के डिस्ट्रिक्ट एण्ड पैरिश कौंसिल ऐक्ट से उस समय तक जो छोटे छोटे विशेष

जिले चलते आ रहे थे उनको तोड़ दिया।

इस प्रकार यह प्रकट है कि वर्तमान प्रणाली क्रमिक विकास का फल है। यह किसी क्रान्ति के फलस्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है इसकी स्थापना पार्लियामेण्ट के किसी एक ऐक्ट से न होकर कई ऐक्टों के बाद इसका वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। परन्तु यह सब होते हुये भी हम देखेंगे कि इस विषय में बहुत प्राचीन काल से यही प्रवृत्ति रही कि शासन क्षेत्र में स्थानीय स्वतन्त्रता की रक्षा व अधिकाधिक वृद्धि की जाय। यूरोप में इसके विपरीत यह प्रयत्न किया गया कि जहां तक हो सके शासन का केन्द्रीयकरण किया जाय। अमरीका की तरह इंगलैण्ड में स्थानीय शासन-कर्मचारियों पर अविश्वास रख कर कानून की सहायता से शासन के दोष मिटाने की प्रवृत्ति नहीं रही परन्तु इसके विपरीत नागरिकों के प्रतिनिधियों पर जनमत का दबाव डाल कर दोषों को सुधारने का प्रयत्न किया गया।

स्थानीय शासन के वर्तमान क्षेत्र—इस समय स्थानीय शासन के पांच मुख्य क्षेत्र हैं : पैरिश (Parish), रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District), अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District), बरो (Borough) और काउण्टी (Councty)। अंगरेजी स्थानीय शासन के सम्बन्ध में यह जानने योग्य बात है कि कोई भी स्थानीय शासन संस्था या अधिकारी व्यक्ति कानूनी अधिकार के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। उसकी इच्छा कानून की सीमा से प्रतिबन्धित रहती है। दूसरे, स्थानीय शासन स्वतन्त्र हैं, श्रेणी बद्ध नहीं। प्रत्येक इकाई को अपने अधिकार क्षेत्र में इच्छानुसार काम करने की स्वतन्त्रता है, केवल शर्त यह है कि उसकी सब कार्यवाही सद्भावना से होनी चाहिये।

रूरल पैरिश (Rural Parish)—पैरिश कई प्रकार के हैं : असैनिक (Civil) पैरिश, धर्म पुजारियों के पैरिश और भूमिकर पैरिश। स्थानीय शासन में हमारा अभिप्राय केवल असैनिक पैरिश से ही है। असैनिक पैरिश के भी दो विभिन्न रूप हैं, एक ग्रामीण दूसरा नागरिक। दूसरा तो अरबन डिस्ट्रिक्ट के शासन में मिल कर विलीन हो गया पर पहला अभी तक चलता चला आ रहा है। इसका शासन संगठन निजी है। ग्रामीण पैरिश छोटे बड़े कई प्रकार के हैं। जिस ग्रामीण पैरिश में १०० निवासी से अधिक हैं वहाँ साधारणतया एक पैरिश कौंसिल रहती है, जहां १०० से कम लोग रहते हैं ऐसे एक से अधिक पैरिशों को मिला कर उनके लिये एक पैरिश कौंसिल बना दी जाती है कौन्सिल में ५ से कम व १० से अधिक सदस्य नहीं होते। इसकी अवधि

एक वर्ष होती है और सदस्यों का निर्वाचन मार्च में पैरिश के वार्षिक सम्मेलन में होता है। वोट हाथ उठा कर दिये जाते हैं। कौंसिल की कम से कम तीन बैठकें एक वर्ष में होनी चाहियें। पैरिश कौंसिल के अधिकार विभिन्न प्रकार के और बहुत कुछ विस्तृत हैं पर उन पर डिस्ट्रिक्ट कौंसिल और काउण्टी कौंसिल, इन दो उच्चाधिकारी संस्थाओं का नियंत्रण रहता है। वे पैरिश सभाभवन, पुस्तकों आदि का इन्तजाम कर सकती हैं। शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण उद्यान आदि का प्रबन्ध भी कर सकती हैं। पैरिश में कर लगाने का भी अधिकार उन्हें रहता है पर कर एक पौंड में ३ पैंस से अधिक न होना चाहिये। पैरिश के हिसाब किताब की जांच स्वास्थ्य-विभाग के डिस्ट्रिक्ट आडीटर करते हैं।

रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District)—जितने ग्राम-पैरिश हैं वे सब रूरल डिस्ट्रिक्ट अर्थात् ग्राम-जिलों में संगठित हैं। इन ग्राम-जिलों की अपनी अपनी प्रतिनिधिक कौंसिलें हैं। इन कौंसिलों में ३०० निवासियों वाले पैरिश का एक प्रतिनिधि होता है। इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन तीन साल के लिये होता है और सब प्रतिनिधियों में एक-तिहाई प्रति वर्ष अपने पद से हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाता है। चुनाव शलाका पद्धति द्वारा होता है, हाथ उठा कर नहीं। कौंसिल का सभापति जस्टिस आफ दी पीस भी होता है। कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी व्यक्ति को या बाहर के व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिल की एक महीने में एक बैठक अवश्य होती है। अधिकतर काम कौंसिल की समितियां करती हैं। सफाई, जल, जन-स्वास्थ्य आदि का प्रबन्ध, छोटी सड़कों की देखभाल व मरम्मत, कुछ लाइसेन्सों (अनुज्ञापत्र) का देना आदि काम ये कौंसिलें करती हैं। उद्योग के बढ़ने से इन संस्थाओं के कर्तव्य और महिमा कम होती जा रही है। यदि कौंसिलें अपनी कम से कम कार्यवाही को पूरा करने में बेपरवाही दिखाती हैं तो केन्द्रीय सरकार उन्हें भला बुरा कह कर उनके हिसाब की जांच कराकर या कानून के द्वारा, उनके काम में हस्ताक्षेप कर सकती है।

अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District)—नगर-जिलों की कौंसिल बनावट में व अधिकार में लगभग ग्रामीण जिलों की कौंसिल से मिलती जुलती है। किन्तु ग्राम जिलों का क्षेत्रफल नगर-जिले से बहुत अधिक होता है। नगर में जितने पैरिश (मौहल्ले) होते हैं उनका एक प्रतिनिधि कम से कम अवश्य नगर-जिले की कौंसिल का सदस्य होता है। कौंसिल को छोटी सड़कों, मकानों, सफाई, जनस्वास्थ्य और लाइसेन्स देने आदि के सम्बन्ध में स्थानीय अधिकार होते हैं। नगर-जिले व बरों में कोई विशे अन्तर नहीं होता केवल म्यूनिसिपल

कारपोरेशन ऐक्ट के अन्तर्गत उसे बरो का रूप नहीं दिया होता। प्रत्येक बरो नगर-जिला अवश्य होता है। बरो और नगर-जिले की कौंसिल का ढांचा एक समान ही होता है।

काउन्टी (County)--सब ग्राम व नगर-जिलों को मिला कर एक काउन्टी बनती है। स्थानीय शासन की यह सब से बड़ी इकाई है। यह दो प्रकार की होती है--ऐतिहासिक काउन्टी (Historical Counties) की सीमा प्राचीन काल से निश्चित हैं। ये न्याय-प्रबन्ध की इकाई है। ऐसी ५२ काउण्टी इस समय वर्तमान हैं। पार्लियामेन्ट के चुनाव के लिये ये ही निर्वाचन-क्षेत्र का काम देती हैं। ऐसी काउण्टी के लिये एक लार्ड लेफ्टिनेण्ट और एक शैरिफ होता है जिनका कोई काम नहीं होता। वे केवल दिखावे के अफसर हैं। उन्हें कोई वेतन भी नहीं मिलता। इन काउण्टियों में कोई कौंसिल या और कोई ऐसा अफसर नहीं होता जो इनका प्रबन्ध करे। प्रशासन काउण्टी (Administrative County) की एक कौंसिल होती है जिसमें सभापति, एल्डरमैन (Aldrman) और कौंसिलर्स होते हैं। कौंसिलर्स का चुनाव करने के लिये सारी काउण्टी को निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इसलिये जनसंख्या के अनुसार प्रत्येक काउण्टी के कौंसिलर्स की संख्या भिन्न भिन्न है। ये कौंसिलर्स अपनी संख्या के छठवें हिस्से के बराबर अपने में से ही एल्डरमैन चुन लेते हैं। ये एल्डरमैन बाहर के व्यक्ति भी चुने जा सकते हैं। कौंसिलर्स तीन साल तक और एल्डरमैन ६ साल तक अपने पद पर रहते हैं। परन्तु दोनों को मत देने का अधिकार एक समान है। दोनों मिल कर अपने में से किसी एक को या बाहरी व्यक्ति को अपना सभापति चुनते हैं। काउण्टी कौंसिल साल में कम से कम चार बार अपनी सभा करती है। इसके अधिकार विस्तृत हैं और विभिन्न प्रकार के काम इसको करने पड़ते हैं। यह ग्राम-जिलों की कौंसिल के काम की देख भाल करती है। बड़ी सड़कों की मरम्मत, पुलों की मरम्मत, आश्रमों, बाल-अपराधियों के चरित्र सुधारने के स्कूल व औद्योगिक स्कूलों का खोलना, पुलिस का इन्तजाम करना, काउण्टी के भवनों की देख रेख करना आदि काम इस कौंसिल को करने पड़ते हैं। शिक्षा का काम केवल इसी को करना पड़ता है, वृद्धावस्था की पेंशन का भी काम यही करती है। यही कर लगा सकती है। इसका सब काम समितियों द्वारा होता है। प्रत्येक सेवा के लिये एक स्थायी समिति होती है जो विस्तार पूर्वक सब बातों की छान बीन करती है और प्रबन्ध योजना बनाती है। इन समितियों के अतिरिक्त स्थायी कर्मचारियों द्वारा भी काम होता है ये कर्मचारी पक्ष पद्धति के आधार पर नियुक्त

नहीं होते। कौंसिल इनको स्वयं नियुक्त करती है परन्तु ये सिविल के अन्तर्गत नहीं गिने जाते। कौंसिल स्वास्थ्य अफसर को छोड़ कर इन में से किसी को अपने पद से हटा सकती है। अमरीका की तरह इंगलैण्ड में स्थानीय शासन कर्मचारियों को अपने पदों पर बने रहने के लिये प्रति वर्ष राजनीति के पचड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है और वे स्थायी रूप से अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। इसीलिये इंगलैण्ड का स्थानीय शासन प्रबन्ध बहुत उत्तम है और अमरीका की अपेक्षा बहुत अधिक अच्छा है।

नगर बरो (Urban Boroughs)—नगरों में बरो सबसे अधिक महत्वशाली है। प्रत्येक बरो एक चार्टर से स्थापित हुआ होता है। यह चार्टर बड़ी पेचदार लम्बी कार्यवाही के पश्चात् प्रदान किया जाता है। चार्टर लेने के लिये निम्नलिखित बातें पूरी करनी पड़ती हैं।

(१) जिस नगर-जिला को यह चार्टर लेना हो वहां के निवासी या वहां की कौंसिल स्वयं इसके लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजती है।

(२) इस प्रार्थना का नोटिस जनता की जानकारी के लिये लन्दन गजट में छाप दिया जाता है।

(३) उस प्रार्थना के विरोध में यदि किसी को कुछ कहना होता है तो उसके लिये एक मास का समय दिया जाता है।

(४) एक कमिश्नर तब जांच करता है और अपनी रिपोर्ट देता है।

(५) यह रिपोर्ट स्वास्थ्य मिनिस्ट्री के पास आलोचना और सलाह के लिये भेज दी जाती है।

(६) चार्टर का मसविदा, विस्तृत योजना और एक मानचित्र तैयार किया जाता है।

(७) तब प्रिवी कौंसिल से उन्हें स्वीकृत कराया जाता है।

(८) यदि चार्टर की प्रार्थना का किसी ने विरोध किया हो तो चार्टर देने के निर्णय पार्लियामेण्ट से समर्थन कराने की भी आवश्यकता पड़ती है।

चार्टर इसलिये मांगा जाता है क्योंकि बरो को चार्टर के मिल जाने से कई सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं। बरो नगर की कारपोरेशन है जिसका शाश्वत उत्तराधिकार (Perpetual Succession), निजी मुद्रा (Seal), नगर-भवन, विशिष्ट चिन्ह और दूसरी परिचायक विभूतियां होती हैं। नगर जिले की अपेक्षा बरो को यह विशेष सुविधा प्राप्त रहती है कि वह 'अच्छे शासन के हित में दिये हुये सामान्य अधिकार के बल पर उप-विधि बना सकता है। बरो को स्थानीय शासन संस्थाओं में ऊंचा स्थान प्राप्त रहता है। यह कहा

जाता है कि जब किसी नगर के निवासी बरो के रूप में संगठित हो जाते हैं तो वे स्थानीय शासन में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। बरो में कौंसिल अधिक बड़ी होती है इसलिये अधिक व्यक्ति शासन में भाग ले सकते हैं।

बरो का शासन—बरो का प्रबन्ध एक कौंसिल की सहायता से होता है। बरो के अधिकार कामन ला, कारपोरेशन ऐक्टों और पार्लियामेण्ट के स्थानीय शासन सम्बन्धी या वैयक्तिक कानूनों से प्राप्त रहते हैं। कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन विभागों के आदेश से भी मिल जाते हैं। पार्लियामेण्ट इन विभागों को इन आदेशों के देने की अनुमति दे चुकी होती है। इनके कारण नगर पालिकाओं (Municipalities) के अधिकारों में समानता न रह कर विभिन्नता आ जाती है। बरो कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। निवर्चान के लिये बरो को वार्डों में बांट दिया जाता है और गूढ़ शलाका (Secret ballot) द्वारा निर्वाचन होता है। पक्ष प्रणाली (Party System) पर यह निर्वाचन होने वाला नहीं समझा जाता फिर भी पक्षवंदी का असर आये बिना नहीं रहता। कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन हो जाने के पश्चात् ये सदस्य आपस में या बाहर से अपनी संख्या के छठे भाग के बराबर संख्या में व्यक्तियों को चुनते हैं जो एल्डरमैन (Aldermen) कहलाते हैं ये छः साल के लिये चुने जाते हैं और उनमें से आधे तीन वर्ष बाद हट जाते हैं। कौंसिलर्स और एल्डरमैन दोनों के समान अधिकार हैं परन्तु अधिक अनुभवी होने के कारण नीति-निर्णय में एल्डरमैन का अधिक प्रभाव रहता है। एल्डरमैन और कौंसिलर्स मिलकर एक व्यक्ति को चुनते हैं जो मेयर (Mayor) कहलाता है। उसका निर्वाचन एक साल के लिये होता है पर एक ही व्यक्ति पुनर्निर्वाचन के लिये फिर खड़ा हो सकता है। प्रायः प्रतिवर्ष एक नया व्यक्ति ही चुना जाता है क्योंकि यह पद प्रतिष्ठा व सम्मान का है। मेयर नाम-मात्र के लिये नगर का अध्यक्ष रहता है। वह कार्यकारी प्रधानाधिकारी नहीं होता। वह किसी नयी नीति को कार्यान्वित करने के लिये, किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिये निर्वाचित नहीं किया जाता है। कौंसिल पर न वह अपना प्रभुत्व जमा सकता है न उसकी बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है। वह बरो के अफसरों या कर्मचारियों की नियुक्ति भी नहीं करता। केवल एक आडीटर (Auditor) अर्थात् लेखा परीक्षक और अस्थायी नगर-लेखक की नियुक्ति ही वह कर सकता है। वह आय-व्यय का लेखा (Budget) बनाने में कोई काम नहीं करता। कौंसिल अपना काम स्थायी समितियों द्वारा करती है। प्रत्येक नगर में १ से १२ तक समितियां हो सकती हैं। कानून से इनके सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं होती पर स्थायी आदेशों से यह संख्या प्रतिबन्धित है। विशेष विषयों पर विचार करने के लिये

भी अलग समितियां बना दी जाती हैं। बरो कौंसिल और काउण्टी कौंसिल की मिली जुली समितियां होती हैं। ये समितियां बड़ा काम करती हैं, हालांकि इनको अन्तिम निर्णय का अधिकार नहीं होता, वे परामर्श ही दे सकती हैं। समितियों में आपस में मतभेद होने पर कौंसिल अपने निर्णय से मतभेद को मिटाती है।

कौंसिल के अधिकार—कौंसिल को उप-विधियां (Bye-laws) बनाने का अधिकार रहता है जिनमें से कुछ के लिये केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अर्थसम्बन्धी मामलों में कौंसिल ही प्रमुखतः अधिकारी है। बरो के फंडों की यही कौंसिल रक्षक है। कुछ खर्च के लिये कौंसिल को केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की अनुमति लेनी पड़ती है और कुछ मामलों के लिये कौंसिल को अनिवार्य रूप से खर्चा करना पड़ता है। यदि बरो के पास पर्याप्त फण्ड नहीं होता जिनसे उपर्युक्त खर्चा हो सके तो उसे स्थानीय टैक्स लगाने का अधिकार रहता है। प्रति वर्ष सब विभिन्न समितियां पदाधिकारियों से परामर्श कर अनुमान से अपने वार्षिक व्यय तैयार करती हैं। तब आर्थिक समिति उसकी परीक्षा कर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करती है और उसे बजट का रूप देती है जो कौंसिल के सामने रखा जाता है और साधारण बहुमत से स्वीकृत हो जाता है। यद्यपि कर्ज लेने का अधिकार पार्लियामेण्ट पृथक् पृथक् बरो की योग्यतानुसार प्रदान करती है किन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार इस कार्य के लिये कुछ नियम बना देती है। कौंसिल के प्रबन्ध-कार्य के अन्तर्गत सड़कों का बनवाना, पानी का इन्तजाम, सार्वजनिक स्वास्थ्य, मनोविनोद की सुविधायें देना, उद्यान शिक्षणालयों व दूसरे सार्वजनिक भवनों का बनवाना, लाइसेन्सों का देना, निर्धनों की देखभाल करना आदि काम आते हैं। पुलिस, शिक्षा तथा मद्य लाइसेन्सों पर कौंसिल का अधिकार नहीं होता। सफाई के सम्बन्ध में कौंसिल ही स्थानीय अधिकारी संस्था है। यह श्रमिकों के लिये मकान बनवाती है और उनकी मरम्मत आदि की देखभाल करती है। यह बाजारों का नियमन करती है और उच्चाधिकारियों की नियुक्ति करती है।

प्रशासन काउन्टी (Administrative County)—जब कोई बरो बहुत बड़ा हो जाता है और उसकी संख्या बढ़ जाती है तो उसे काउण्टी से पृथक् कर दिया जाता है और वह स्वयं ही एक प्रशासन काउण्टी बन जाता है। तब इसको काउण्टी बरो के रूप में संगठित कर दिया जाता है। उसकी कौंसिल के लगभग वही कर्तव्य व अधिकार होते हैं जो बरो कौंसिल के होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रकट हो जायगा कि इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं का गोरखधन्धा सा बना हुआ है। परन्तु इंगलैण्ड में इन संस्थाओं के

राजकर्मचारियों को एक श्रेणी के नियंत्रण में नहीं रहना पड़ता जैसा फ्रांस में होता है। उदाहरण के लिये पैरिश (Parish) को कई छोटे बड़े राजपदाधिकारियों को अत्याचार का कष्ट उठाना पड़ता है वरन् उसका सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से रहता है। इंगलैण्ड की पेचीदा स्थानीय शासन प्रणाली को निम्नलिखित रेखाचित्र से सुगमता से समझाया जा सकता है :—
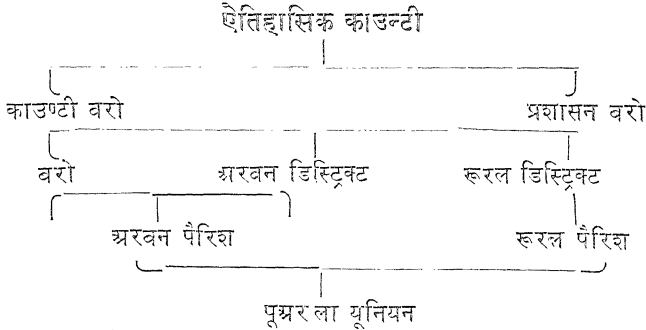
इंगलैण्ड में केन्द्रीय सरकार सामान्य नियन्त्रण रखती है पर शासन प्रवन्ध स्थानीय शासन संस्थाओं पर छोड़ दिया जाता है। स्थानीय संस्थाओं के शासन प्रवन्ध की देख भाल केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन-विभाग करते हैं। इससे यह भ्रम न होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार और स्थानीय शासन संस्थाओं के कर्तव्यों या उद्देश्यों में भिन्नता है। उन दोनों का एक ही उद्देश्य है और वह यह है कि देश पर अच्छे से अच्छे ढंग से शासन किया जाय और जनता को अधिक से अधिक सुख पहुँचाया जाय। इसलिये वे दोनों बड़े प्रेम व मित्रता से सब काम करते हैं।

इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण— इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण न तो यूरोप के समान कड़ा है न अमरीका की तरह बिलकुल ढीला है। यूरोप की नगर-पालिकाओं (Municipalities) जैसा अंगरेजों नगरपालिकाओं पर धारा सभा का नियंत्रण नहीं रहता परन्तु उनके काम में प्रशासन सम्बन्धी केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप अधिक रहा करता है। अंगरेजी बरो को बहुत से विस्तृत अधिकार सौंपे हुये रहते हैं परन्तु उन अधिकारों को कार्यरूप देने में व्हाइट हाल में स्थित किसी न किसी केन्द्रीय सरकारी विभाग का उस पर नियंत्रण रहता है। वह बरो उन अधिकारों को स्वेच्छानुसार नहीं भोग सकता। यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि अंगरेजी शासन संस्थायें श्रेणी-बद्ध (Hierarchical) नहीं है। फ्रांस में स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध है। उदाहरणार्थ फ्रांस मे कई अधिकारी, लगभग हिन्दू देवताओं की श्रेणी के समान, छोटी से छोटी स्थानीय शासन की

इकाई कम्यून पर अपना नियंत्रण रखते हैं। इंगलैण्ड में सब से प्रथम इस बात की सफलता प्राप्त हुई थी कि स्थानीय शासन की विकेन्द्रित प्रणाली के साथ शासन की उत्तमता व व्यवस्था भी हो। स्थानीय स्वायत्त-शासन दो प्रकार की कही जाती है, एक अंगरेज़ी, दूसरी यूरोपीय। अंगरेज़ी प्रणाली में स्थानीय संस्थायें स्वयं अपनी नीति निर्धारित करती हैं, केवल उन पर केन्द्रीय सरकार का सामान्य नियंत्रण रहता है। योग्यता के नियमों के अनुसार अपने कर्मचारियों को वे स्वयं ही नियुक्त करती हैं और खर्चे का अधिकतर भाग वे स्वयं ही टैक्स लगा कर पूरा करती हैं। असल में उनका एक पृथक् शासन संगठन और शासन प्रणाली ही है। वे केन्द्रीय सरकार की कोरी आधीन संस्थायें ही नहीं हैं। यूरोपीय स्थानीय शासन प्रणाली में इसके विपरीत, स्थानीय शासन का प्रमुख अधिकारी, जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों का सेवक नहीं होता वरन् वह केन्द्रीय सरकार का अफसर ही होता है, जिसे अमुक स्थान पर केन्द्रीय सरकार के आदेशों को कार्यान्वित करने के लिये नियुक्त कर दिया जाता है। इसलिये यूरोप में स्थानीय शासन में केन्द्रीय सरकार की ही प्रेरक शक्ति काम करती है न कि जनता की।

अमरीका में जहां इंगलैण्ड जैसा अलिखित एकात्मक शासन-विधान होकर लिखित व संघात्मक शासन-विधान है, वहां स्थानीय शासन संस्थाओं को अधिक स्वतन्त्रता मिली हुई है। वहां नगरपालिकाओं पर केन्द्रीय अर्थात् संघ-सरकार की धारा सभा का अधिक आधिपत्य रहता है परन्तु निश्चित प्रशासन-मर्यादा के भीतर वे स्वेच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र रहती हैं यदि हम उसे स्थानीय शासन की अराजकता कहें तो अनुचित न होगा। परन्तु अमरीकन स्थानीय-शासन प्रणाली अन्तर्वर्ती युग से गुजर रही है। नित नई योजनायें बनायी जाती हैं और ठुकरा दी जाती हैं। इंगलैण्ड और अमरीका की प्रणालियों में भेद का कारण यह है कि अमरीका में जनता अपनी सरकार का विश्वास नहीं करती और उसके अधिकारों को बहुत सीमित कर देती है। इंगलैण्ड में सरकार जनता पर विश्वास नहीं करती और लोकसत्ता के क्षेत्र को बढ़ाने से हिचकती है।

इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं के ऊपर जितना नियंत्रण स्वास्थ्य विभाग का है उतना किसी दूसरे विभाग का नहीं है पर फिर भी यह नियंत्रण फ्रांस के गृह-विभाग का सा कठोर नहीं है। मुनरो (Munro) के कथनानुसार यह स्वास्थ्य विभाग स्थानीय शासन के इंजन का काम नहीं करता, केवल संतुलन-चक्र का काम ही करता है। स्वास्थ्य-विभाग का काम यह नहीं है कि

शासन-संगठन की रूप-रेखा निश्चित करे पर उसका इतना ही काम है कि वह यह देखता रहे कि नगर कौंसिल या दूसरी अधिकारी संस्थायें उस शासन पत्र को अच्छी तरह परिचालित करती हैं या नहीं। स्वास्थ्य-विभाग को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक स्वास्थ्य, निर्धन-विधि (Poor Law), सफाई, सीमायें और दूसरी नई शासन संस्थाओं के बारे में कानून बनावे। यह विभाग पार्लियामेण्ट के एजेण्ट की तरह काम करता है और पार्लियामेण्ट ही इस विभग के अधिकारियों को छीन सकती है। शासन-संस्थाओं की उप-विधियों को स्वास्थ्य विभाग रद्द कर सकता है परन्तु प्रायः वही उप-विधि अस्वीकृत होती हैं जो राष्ट्रीय विधियों के प्रतिकूल पड़ती है। यह विभाग पार्लियामेण्ट व स्थानीय संस्थाओं, दोनों को शासन व अर्थ सम्बन्धी मामलों में सलाह देता है। यह इन संस्थाओं के विरुद्ध व्यक्तियों की प्रार्थनाओं पर विचार कर निर्णय भी देता है। इस विभाग को अर्थ सम्बन्धी बड़े विस्तृत अधिकार हैं। इसको ऋण की स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है। यातायात विभाग के अतिरिक्त और जिन जिन सेवाओं के लिये ऋण की संस्थाओं को आवश्यकता होती है उसे मंजूर करने का अधिकार स्वास्थ्य-विभाग को होता है। इस विभाग को यह भी अधिकार है कि प्रत्येक बरो से निश्चित उसके खर्चे का व्यौरा मंगा कर देखे। स्वास्थ्य विभाग के अतिरिक्त बोर्ड आफ ट्रेड इन संस्थाओं के व्यापार और उद्योग की उन्नति में सहायता देता है। माप तौल व गैस और बिजली के ऊपर भी इस विभाग का सामान्य नियंत्रण रहता है। यातायात विभाग बिजली की गाड़ियों, रेल, बिजली प्रकाश आदि से सम्बन्ध रखता है। होम आफिस पैंशन, तरुण अपराधियों के न्यायालयों, उत्पादि-वलि (Excise), पुलिस, रजिस्ट्रेशन, आचार, निर्वाचन, कारखाने और खानों से सम्बन्ध रखता है। पुलिस का प्रबन्ध करना इस विभाग का मुख्य काम है। केन्द्रीय सरकार के दूसरे विभाग स्थानीय शासन की दूसरी शाखाओं का नियंत्रण करते हैं।

पार्लियामेण्ट का नियंत्रण—पार्लियामेण्ट स्थानीय-शासन-इकाइयों पर अधिक आधिपत्य रखती है। जिस जिस सेवा की योजना की जाती है उसके लिये पार्लियामेण्ट कानून से तत्सम्बन्धी एक केन्द्रीय शासन विभाग स्थापित कर देती है। इस कानून को आदेशों द्वारा व नियम-उपनियमों द्वारा वह शासन विभाग कार्यान्वित करता है। प्रत्येक केन्द्रीय शासन विभाग में अफसरों की एक बड़ी भारी संख्या होती है जिसका यही काम है कि वह अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से स्थानीय शासन संस्थाओं की सहायता करे। पार्लियामेण्ट ही प्रौविंसियल तथा स्पेशल आर्डर्स से या प्राइवेट विधेयकों से स्थानीय शासन संस्थाओं को बहुत से

अधिकार प्रदान करती है। स्थानीय संस्थाओं के क्षेत्रों में परिवर्तन करने के लिये, उप-विधियों के बनाने और नयी शासन प्रणालियों की स्थापना करने के लिये केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति आवश्यक है। स्थानीय शासनाधिकारियों की योग्यता व अवधि को हाउस आफ कामन्स ही निश्चित करता है क्योंकि इस सम्बन्ध में लोग स्थानीय संस्थाओं का विश्वास नहीं करते। जब कोई शासन-संस्था अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करती तो पार्लियामेण्ट हाईकोर्ट के आदेश से उस संस्था का प्रबन्ध न्यायालय के आधीन रख सकती है। केन्द्रीय सरकार कानून के तोड़ने या उसकी ठीक व्याख्या करने के प्रश्नों में अपना निर्णय देती है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय मामलों की छानबीन करा सकती है और रिपोर्ट प्रकाशित करती है। उनके आय-व्यय की जांच करना और संस्थाओं के लिये ऋण देना भी केन्द्रीय सरकार का ही काम है। केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण इसलिये और अधिक बढ़ता जाता है क्योंकि राष्ट्रीय कोष से अब इन संस्थाओं को सहायक-अनुदान देने की रीति चल पड़ी है। जब सरकार इनको धन से सहायता करती है तो उनके ऊपर अपनी शर्तें लादने का अधिकार भी प्राप्त कर लेती है।

पर केन्द्रीय सरकार अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करती और प्रायः इन संस्थाओं की स्वतन्त्रता का समुचित आदर करती है। उसकी यह इच्छा रहती है कि ये संस्थायें इस स्वतन्त्रता का बिना हस्तक्षेप के सदुपयोग करें। जब तक बरो कौंसिल अपने वैध अधिकारों की सीमा के भीतर काम करती है तब तक केन्द्रीय हस्तक्षेप से बची रहती है, जब इस सीमा का उल्लंघन जाने या अनजाने करती है तो केन्द्रीय हस्तक्षेप का स्वागत ही करना चाहिये न कि उसके प्रति विरोध। फिर भी अंगरेज़ी जनता इस हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करती और उसका विरोध करती है। प्रायः यह कहा जाता है कि स्थानीय संस्थाओं में जो स्थानीय व्यक्ति हैं वे स्थानीय मामलों को हाउस आफ कामन्स के सदस्यों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझते हैं। पिछले चालीस वर्षों में विकेन्द्रीकरण की मात्रा बढ़ाने के लिये समय समय पर प्रयत्न किये गये परन्तु कोई विशेष परिवर्तन अभी तक नहीं हो पाया है। सन् १८९८ में काउण्टी कौंसिलों को कुछ विषयों को सौंपने का प्रस्ताव काउण्टी कौंसिल एसोसियेशन ने किया था। सन् १९२० की डिवौल्यूशन कान्फ्रेंस के द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि पार्लियामेण्ट के ढंग पर स्थानीय धारा सभायें स्थापित की जायें। तीसरी, मैकडौनैल्ड की योजना थी जिसमें यह कहा गया कि प्रदेशीय एक सदन वाली (Regioned Unicameral) धारा सभायें बनाई जायें जिनमें पार्लियामेण्ट के चुने हुये व्यक्ति सदस्य हों।

लन्दन का शासन प्रबन्ध

लन्दन का स्थानीय-शासन उसके ऐतिहासिक विकास, उसके आकार और कुछ दूसरे विषयों के कारणों से अपने ढंग का अनुपम है। शासन प्रबन्ध के लिये लन्दन तीन भागों में बंटा हुआ है। ये भाग जनसंख्या व क्षेत्रफल में एक दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं और उनका शासन संगठन भी एक दूसरे से भिन्न हैं। इन तीनों भागों को सिटी आफ लन्दन, काउण्टी आफ लन्दन और लन्दन मैट्रोपोलिटन डिस्ट्रिक्ट कहते हैं।

सीटी आफ लन्दन—सीटी आफ लन्दन एक कार्पोरेशन है जिसमें नगर के फ्रीमेन (Freemen) हैं। उनका शासन प्रबन्ध लार्ड मेयर और तीन समितियों द्वारा होता है। इन तीनों समितियों को कोर्ट आफ एल्डरमैन, कोर्ट आफ कामन कौंसिल और कोर्ट आफ कामन हाल कहते हैं। कोर्ट आफ एल्डरमैन में लार्ड मेयर (Lord Mayor) और २० आजीवन-एल्डरमैन होते हैं। इसके अधिकार नहीं के बराबर हैं। यह शहर के लेख्यों को सुरक्षित रखती है। काउण्टी कामन कौंसिल सिटी की मुख्य शासन-संस्था है। इसमें २०६ कौंसिलर्स होते हैं जिनका सालाना चुनाव होता है और २६ वही एल्डरमैन होते हैं जो कोर्ट आफ एल्डरमैन में होते हैं। यह संस्था नगर के लिये उप-विधियां (Bye Laws) बनाती है और अग्नि-रक्षा, नालियों, पानी, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शहर की रेलों को छोड़ कर सब काम करती है। प्रत्येक सेवा के लिये पृथक् पृथक् समिति बनी हुई हैं और उसके स्थायी कर्मचारी हैं जिनको कौंसिल नियुक्त करती है। कोर्ट आफ कामन हाल में लार्ड मेयर, एल्डरमैन, शैरिफ और लन्दन के सब लाइवरीमैन (Liverymen) होते हैं। साल में एक बार इसकी बैठक होती है जब यह अपने दो ज्येष्ठ एल्डरमैन के पास लार्ड मेयर के पद के लिये प्रस्ताव करके भेजती है। कोर्ट आफ एल्डरमैन इन दोनों में से एक को लार्ड मेयर चुनती है। लार्ड मेयर को कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं मिले हुये हैं। उसका पद अवैतनिक है। वह केवल सम्मानसूचक है। वह नगर के किसी पदाधिकारी की नियुक्ति नहीं करता और न कोई दूसरा कार्यकारी कर्तव्य करता है। वह तीनों कौंसिलों की बैठकों में केवल अध्यक्ष का काम करता है और उत्सवों में नगर का प्रतिनिधित्व करता है।

काउण्टी आफ लन्दन—लन्दन की प्रशासन काउण्टी का शासन एक काउण्टी कौंसिल करती है जिसमें १२४ निर्वाचित सदस्य व २० एल्डरमैन होते हैं। कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं और चुने जाने के बाद वे अपने में से या बाहर से एल्डरमैन चुनते हैं जो ६ वर्ष तक अपने पद पर बने रहते हैं, केवल प्रति तीन वर्ष बाद उनमें से आधे हट जाते हैं। कौंसिल के निर्वाचित सदस्य

और एल्डरमैन मिल कर अपने में से या बाहर से किसी व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिल से और एल्डरमैनों को समान अधिकार मिले होते हैं केवल शिष्टाचार की दृष्टि से ही उनमें भेद होता है। कौंसिल में तीन दल हैं: म्युनिसिपल रिफौर्म्स (Municipal Reforms) प्रोग्रेसिव्ज (Progressives) और लेबर (Labour)। कौंसिल स्वयं शासनाधिकारिणी संस्था है और स्वयं अपने कर्मचारियों को नियुक्त करती है। कौंसिल का अधिक समय सामान्य शासन सिद्धान्तों को निश्चित करने में ही व्यतीत हो जाता है। उनको कार्यान्वित करने का भार समितियों पर छोड़ दिया जाता है। इसके लिये १८ स्थायी समितियां बनी हुई हैं और एक कार्यकारणी समिति भी है। इस कार्यकारिणी समिति में १८ स्थायी समितियों के सभापति रहते हैं। इन समितियों के सभापति व उपसभापतियों को कौंसिल चुनती है। अधिकतर समितियां अपनी उपसमितियां बना देती है जिनमें से कुछ को शासन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करने का अधिकार भी रहता है। ये समिति केवल परामर्श देने वाली संस्थायें हैं, उनको ऋण आदि लेने का अधिकार नहीं होता। कौंसिल का कार्यक्रम पार्लियामेण्टरी ढंग पर चलता है।

लन्दन काउन्टी कौंसिल के कर्तव्य—काउण्टी कौंसिल के अधिकार में राजधानी सम्बन्धी सब सड़कें रहती हैं। नालियों व कूड़े आदि का प्रबन्ध भी इसी के हाथ में रहता है। सुरंगों, नाव के पुलों व दूसरे पुलों, अग्नि-रक्षा, सफाई सार्वजनिक स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, म्यूनिसिपल-गृह शिक्षा, मनोविनोद के उद्यान मेले आदि का प्रबन्ध भी ये कौंसिल ही करती है। यह ट्रामवे चलाती है, पर मोटरों और भूमि के नीचे चलने वाली रेल गाड़ियों पर इसका आधिपत्य नहीं है। अपने सब कामों में यह बिलकुल तंत्रहीन नहीं रहती क्योंकि सरकार का इस पर नियंत्रण रहता हैं। फिर भी इसनें बड़े बड़े काम किये है और लन्दन के शासन सम्बन्धी कई कानूनों के बनने में इसने बड़ी सहायता दी है।

लन्दन मैट्रोपलिटन बरो—सन् १८९९ के लन्दन गवर्नमेण्ट ऐक्ट के अनुसार लन्दन को २८ मैट्रोपोलिटन बरो में बांट दिया गया है। प्रत्येक बरो में एक कौंसिल है जिसमें मेयर एल्डरमैन और दूसरे सदस्य होते हैं। दूसरे बरो-कौंसिलों की अपेक्षा इनके अधिकार अधिक सीमित हैं। कौंसिल मुख्य मुख्य सड़कों को बनवाती है व उनकी सफाई, मरम्मत व उन पर प्रकाश आदि का प्रबन्ध भी कराती है। सार्वजनिक स्नानगृहों, वाचनालयों, श्रमिकों के रहने के मकानों और स्थानीय समाधिक्षेत्रों का भार इसी के ऊपर रहता है।

इन तीन शासन संस्थाओं के अतिरिक्त कई स्वतन्त्र बोर्ड भी हैं जैसे पानी बोर्ड, मैट्रोपोलिटन आश्रम बोर्ड आदि। जिस शासन में इतनी पृथक् पृथक्

स्वतन्त्र संस्थायें हों वह स्वभावतः संतोषजनक नहीं हो सकता। इसको अधिक उत्तम बनाने के लिये सारे संगठन को अधिक सीधा-सादा बनाने की आवश्यकता है। लन्दन का शासन, प्रशासन-काउण्टी के शासन से कहीं अधिक विशाल हो गया है इसलिये ग्रेटर लन्दन (Greater London) शासनसंस्थाओं का एक गोरखधन्धा बन गया है जिसको समझने में राजधानी के शासन के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को बड़ी असुविधा पड़ती है।

संक्षेप में इंगलैण्ड में वर्तमान स्थानीय शासन एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। एंग्लो-सैक्सन काल से अब तक यह विकास इतना आकस्मिक ढंग से हुआ है कि बहुत सी अनोखी समयं-भ्रमकारक बातें पाई जाती हैं। इन स्थानीय संस्थाओं में अब भी इतनी स्वतन्त्रता पाई जाती है कि लोग अपने मत व असुविधाओं को खुल कर प्रकट कर सकते हैं। इन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण न कठोर है और न बहुत ढीला। लन्दन का शासन संगठन इंगलैण्ड में ही नहीं वरन् संसार में अनुपम है। कुछ समय से समाजवादी प्रवृति के कारण स्थानीय जीवन का स्तर इतना नीचा हो गया है कि इसके बड़े उत्साही समर्थक भी इसकी टीका-टिप्पणी करने लगे हैं और इस शासन की खुले ढंग से बुराई करते हैं।

पाठ्य पुस्तकें

Bagehot, W.—The English Constitution.

Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government (Portion dealing with Local Government in Great Britain).

Harris, G. Montagu—Municipal self-government in Britain (1939 E d.)

Harris, P. A.—London and its Government (1933).

Laski, H.J.—A Century of Municipal Progress (1935).

Lowell, A. L.—Government of England.

Maud. J. P. R.—Local Government in England (1932).

Muir, Ramsay—How Britain is Governed (Constable London) Ch. on Local Government.

Munro, W. B—Government of Europe (1930) (Macmillan), pp. 316—335.

Munro, W. B. Government of European cities (Macmillan) Chs. on Local Government

Ogg, F. A—Governments of Europe (Macmillan) Chs. on Local Government.

Robson, R.A.—The Development of Local Government (1931).

Sidney Low—Government of England (Chs. on Local Government).

अध्याय ११

डोमिनियन स्टेटस

(Dominion Status)

"वह समाज जिसमें थोड़ी सी भी राष्ट्रीयता की भावना वर्तमान है दूसरे राष्ट्र की आधीनता में सम्भवतः अधिक हठी और अपने कार्यों के लिये कम जिम्मेदार सिद्ध होगा, उस स्थिति की अपेक्षा जब कि अपनी समस्याओं के सुलझाने का भार पूर्णरूप से उस ही के उपर हो।" (राइट ऑनरेबिल जे० जी० लैथम)

"आप कुछ भी कहें पर स्वराज्य सब प्रकार से सब से उत्तम है। विदेशी सरकार पूर्णतया धार्मिक पक्षपात से रहित हो, देशी व विदेशी व्यक्तियों के प्रति समान व्यवहार करती हो, प्रजा के लिये माता पिता के समान दयालु, हितैषी और न्यायप्रिय हो पर फिर भी वह उसको पूर्णरूप से सुखी नहीं बना सकती।" (स्वामी दयानन्द)

ब्रिटिश साम्राज्य—क्षेत्रफल, जनसंख्या, निवासियों की भाषा, रीति-रिवाज, रहन सहन, आर्थिक व सांस्कृतिक विभिन्नता आदि की दृष्टि में रखते हुये ब्रिटिश साम्राज्य संसार के राजनैतिक इतिहास में सबसे आश्चर्यजनक घटना है। इसका क्षेत्रफल १,३२,६०,००० वर्गमील है जो कुल स्थलभूमि का पांचवां भाग है। इसकी जनसंख्या ४८७० लाख है जो संसार की जन संख्या का पांचवां भाग है। ब्रिठिश साम्राज्य का आधुनिक नाम ब्रिटिश कामनवैल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of Nations) हो गया है। इस कौमनवैल्थ अर्थात् राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत ये देश हैं: (१) यूनाइटेड किंगडम आफ ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंड (२) स्वायत्त शासन करने वाले उपराष्ट्र (Dominion) जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड दक्षिणी अफ्रीका, आइर (दक्षिणी आयरलैण्ड) (३) भारतवर्ष और ब्रह्मा (४) उपनिवेश-साम्राज्य जिसनें क्राउन कौलीनीज़ (Crown Colonies), प्रौटैक्टरेट्स (Protectorates) व मैण्डेटैड प्रदेश (Mandated territories) गिने जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कामन वैल्थ के आकार प्रचार में बड़ा परिवर्तन हो चुका है। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिलने

के साथ साथ नये उपराष्ट्र (Dominion) का जन्म हुआ जिसे पाकिस्तान कह कर पुकारा जाता है। ब्रह्मा व लंका भी स्वतन्त्र घोषित कर दिये गये हैं। न्यू फाउण्डलैण्ड ने कनाडा में शामिल होने का निश्चय कर लिया है जिससे वह अब कौमनवैल्थ का पृथक् सदस्य न रह कर कनाडा का ही एक प्रान्त बन जायगा। आइर (Eire) अर्थात् दक्षिणी आयरलैण्ड ने अपने आपको लोकतण्त्र-गण-राज्य (Republic) घोषित कर कौमनवैल्थ से पृथक् रहने का निश्चय कर लिया है। भारतवर्ष ने भी अपने आपको लोकतन्त्र गणराज्य के रूप में संगठित करने की इच्छा घोषित कर दी है। साम्राज्य के पूर्व-सदस्यों को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् कौमनवैल्थ की रचना में जो परिवर्तन हुये उन पर विचार करने के लिये अप्रैल सन् १९४९ ई० में लन्दन में रह कर कामनवैल्थ के प्रधान-मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में प्रमुखतः इन प्रश्न पर विचार हुआ कि भारतकर्ष को गण-राज्य के रूप में रह कर कामनवैल्थ मे स्थान मिल सकता है य नहीं। सम्मेलन के अन्त में २८ अप्रैल को जो घोषणा की गई उसके अनुसार उसमें यह कहा गया कि इंगलैण्ड का राजा (Crown) कामन-वैल्थ में स्वेच्छा से रहने वाले राष्ट्रों के संसर्ग भर का प्रतीक है: इस घोषणा से कामनवैल्थ के बन्धन को बहुत अधिक ढीला और व्यापक बना दिया जिससे इसमें उन राष्ट्रों को भी रहने की सुविधा प्रदान कर दी गई जो लोकतन्त्र के रूप में रहना चाहते हैं और ब्रिटेन के राजा की सत्ता स्वीकार करना नहीं चाहते।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का संगठन ऐसा अपूर्व है कि उसको राजनीति-शास्त्र के किसी पूर्व परिचित नाम से नहीं पुकारा जा सकता। "न यह राष्ट्र है न संघ-शासन। इसका कोई लिखित शासन विधान नहीं, न कोई पार्लियामेण्ट, न कोई निजी सामूहिक सरकार, न निजी संरक्षक सेना या कार्यकारिणी सत्ता। इसकी उत्पत्ति ऐतिहासिक घटनाओं और क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है न कि किसी पूर्व निश्चित रचना शैली के अनुसार। अब भी इसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का विकास क्रम बराबर चल रहा है।"

साम्राज्य की स्थापना के आधारभूत अभिप्राय— अंगरेजों ने पिछली तीन शताब्दियों में अनेकों अभिप्रायों की सिद्धि के लिये इस साम्राज्य की स्थापना की थी। संक्षेप में हम इन्हें व्यापार-वृद्धि, बढ़ती हुई जन-संख्या के लिये स्थान, अपराधियों को दूर बसाने के लिये स्थान और जलवायु तथा स्थल सेनाओं का रखने के लिये सामरिक स्थान प्राप्त करना ही कह सकते हैं। इस लम्बे समय में ब्रिटिश उपनिवेश नीति में कई परिवर्तन हुये।

समुद्र पार स्थिति साम्राज्य से इंगलैण्ड को लाभ—इंगलैण्ड को अपने समुद्रपार साम्राज्य से बड़ा महत्व व आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। प्रथम लाभ यह था कि उपनिवेशों से कर के रूप में इंगलैण्ड को बहुत सा धन मिलता था। प्रारम्भ में ब्रिटेन ने उपनिवेशों पर कर न लगाया था पर बाद में फिर क्रांति के फलस्वरूप जो युद्ध हुये उनसे ब्रिटेन की आर्थिक अवस्था ऐसी गिर गई कि उसे उत्तरी अमरीका के उपनिवेशों पर कर लगाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेश ब्रिटेन का विरोध करने लगे और अन्त में अमरीकन स्वतन्त्रता-युद्ध हुआ जिससे अमरीका ब्रिटेन के आधिपत्य से निकल गया। दूसरे इन उपनिवेशों में ब्रिटेन ने अपनी नाविक व स्थल सेना के अड्डे बना रखे थे, जिससे ब्रिटेन के व्यापार मार्गों की रक्षा होती थी। जिब्राल्टर, माल्टा आदि सब भी ब्रिटिश साम्राज्य के सैनिक अड्डे हैं। तीसरे, ब्रिटेन को इन उपनिवेशों से व्यापार करने में सुविधा रहती थी। यूरोप के आधुनिक राष्ट्रों को जब यह प्रतीत हुआ कि उपनिवेशों से कर उगाहना सम्भव नहीं है तो उन्होंने उन्हें व्यापार व उद्योग की उन्नति का साधन बनाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये कई प्रकार की चालें चली गईं। आधीन उपनिवेशों से स्वामी-राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र के जलयानों के व्यापार करने पर रोक लगा दी। उपनिवेशों पर यह प्रतिबन्ध लगाया कि वे स्वामी-राष्ट्र से ही व्यापार कर सकते हैं संसार के और किसी देश से नहीं कर सकते। औपनिवेशिक एकाधिकार की नीति का जिस कड़ाई के साथ स्पेन ने पालन किया उतना दूसरे किसी यूरोपयिन राष्ट्र ने नहीं किया पर फिर भी ब्रिटेन की नीति अधिक उन्नत नहीं थी। बाइन एडवर्ड ने अपनी 'वैस्ट इण्डीज का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है कि यूरोप के सब सामुद्रिक राष्ट्रों (जिसमें इंगलैण्ड भी शामिल है) की औपनिवेशिक नीति का मूलमन्त्र व्यापारिक एकाधिकार था। यह अधिकार बड़ा व्यापक था। इसके अन्तर्गत उपनिवेश को सब प्रकार की वस्तुओं को देना, उनके कच्चे माल को खरीदना और उससे पक्के माल का बनाना आदि सब बातें आती थीं। उपनिवेशों के निवासी अपनी आवश्यक्ता की वस्तुओं को दूसरे देशों से न मंगा सकते थे,उन्हें अपनी मुख्य उपज स्वामी-राष्ट्र को ही बेचनी पड़ती थी और उन्हें पक्का माल बनाने का अधिकार न था, केवल स्वामी-राष्ट्र ही उनके कच्चे माल को अपने कारखाने में पक्का करके उससे लाभ उठा सकता था। यह अन्तिम नीति इतनी कड़ाई के साथ बरती गई कि अर्ल चैथम की पार्लियमेण्ट में एक बार यह शिकायत करने पर बाध्य होना पड़ा कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेशों के निवासियों को

घोड़े की नाल में लगने वाली कील भी बनाने का अधिकार नहीं है। इन उपनिवेशों से लाभ यह भी था कि स्वामी-राष्ट्र की बढ़ती हुई आवश्यकता से अधिक जन-संख्या को बाहर जाकर बसने का अवसर व सुविधा मिली। इन उपनिवेशों से यह भी सुविधा थी कि स्वामी-राष्ट्र के अपराधी इनमें भेज दिये जाते थे। इंगलैण्ड अपने अपराधियों को आस्ट्रेलिया भेजा करता था। इन सब लाभों के अतिरिक्त साम्राज्य से गौरव की प्राप्ति होती थी।

परन्तु यह नीति जिसमे उपनिवेशों को इंगलैण्ड के स्वार्थ-साधन का ही क्षेत्र माना जाता था न कि उपनिवेश के निवासियों का कल्याण-साधन, बहुत दिन न चली। इस नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। उपनिवेशों की प्राकृतिक समृद्धि का जो उपयोग हुआ उससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरने लगी और सामाजिक विकास भी हुआ। उपनिवेशों के निवासी स्वामी-राष्ट्र के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध करने लगे। सबसे बड़ी झगड़े की जड़ उपनिवेश-निवासियों की यह मांग थी जिससे वे अपनी मातृभूमि इंगलैण्ड की लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं को अपने यहां स्थापित करना चाहते थे और इंगलैण्ड इस मांग का विरोध करता था। जार्ज तृतीय के मन्त्रियों ने उपनिवेशों पर पार्लियामेण्ट का प्रभुत्व सुरक्षित रखने की चिन्ता में अमरीका के १३ उपनिवेशों पर नये कर लगाये जिससे उपनिवेश-निवासियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता पर किये गये इस आघात का विरोध किया और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" इस ब्रिटिश प्रजातन्त्र के प्रथम सिद्धान्त की दुहाई देना आरम्भ किया। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ मौजूद थे जिनको उपनिवेशों पर बिना उन्हें प्रतिनिधित्व दिये कर लगाने की बुराइयों का आभास मिल चुका था। उदाहरणार्थ लार्ड कैमडन (Lord Camden) ने इस विषय पर बोलते हुये पार्लियामेण्ट में कहा था..."किसी मनुष्य की वस्तु पूर्णतया उस ही की है, दूसरे किसी मनुष्य को उस वस्तु को उससे बिना उसकी सम्मति के लेने का अधिकार नहीं है, वह सम्मति स्पष्ट हो या अस्पष्ट। जो कोई भी ऐसा करने का प्रयत्न करता है वह हानि पहुंचाता है, जो कोई ऐसा करता है वह डाका डालता है, वह स्वाधीनता व पराधीनता के भेद को फेंक कर चूर चूर करता है। कर लगाना और प्रतिनिधित्व देना इस शासन विधान के लिये अत्यावश्यक है और विधान के साथ ही साथ उसका जन्म भी हुआ है।......माई लार्ड्स, मैं चुनौती देता हूँ कि मुझे कोई भी ऐसा समय बतलावे जब पार्लियामेण्ट ने किसी व्यक्ति पर बिना

उस व्यक्ति का पार्लियामेण्ट में प्रतिनिधित्व हुये कर लगाया हो।" ※ आठ वर्ष बाद हाउस आफ कामन्स में एक प्रस्ताव रखा गया जिससे विरोधी पक्ष ने अमरीकन चाय कर ऐक्ट को रद्द करना चाहा। यह प्रस्ताव बहुमत से गिर गया और पास न हो सका। एडमण्ड बर्क ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुये सरकार की नीति की इन शब्दों में कटु आलोचना की "महोदय दूसरी ओर बैठे हुये महानुभाव अपनी योग्यता को सामने लायें और उनमें से जो सबसे अधिक कुशल व्यक्ति हो, खड़ा होकर मुझे बतलाये कि अमरीकनों के पास स्वतन्त्रता का कौनसा चिन्ह है और परतन्त्रता का कौनसा कलंक उस पर नहीं है, यदि व्यापार पर जितनी भी रुकावटें हो सकती हैं उनको लगा कर उन उद्योगशील निर्धनों को बाँध कर रखा जाय और साथ साथ बिना उनको प्रतिनिधित्व दिये आपकी स्वेच्छा से लादे हुये करों का ढोने वाला टट्टू भी बनाया जाय।....... अमरीका में बसने वाला अंगरेज यह समझेगा कि यह दासता है, यह दासता कानूनी है, ऐसा समझने से उसके मन व मस्तिष्क पर पड़े आघात की क्षतिपूर्ति न होगी।"१ पर उस समय की सरकार ने दूसरी ही नीति को अपनाना ठीक समझा जिससे स्थिति संकटपूर्ण हो गई। अन्ततोगत्वा अमरीकी स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ा जिससे इंगलैण्ड को उन १३ उपनिवेशों से हाथ धोना पड़ा।

डरहम की रिपोर्ट और औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन—इस महंगे अनुभव ने ब्रिटेन की १९वीं शताब्दी की औपनिवेशिक नीति में बड़ा भारी परिवर्तन कर उसका बिलकुल रूप ही बदल दिया। इस नीति परिवर्तन का सूत्रपात लार्ड डरहम की उस रिपोर्ट से हुआ जो उन्होंने कनाडा की राजनैतिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार के सम्मुख उपस्थित की थी। इस महत्वशाली रिपोर्ट के अन्तिम शब्द ये थे : "यदि उस विवेक के विधान में जिससे इस जगत का नियमन होता है, यह लिखा हुआ है कि ये देश सर्वदा ब्रिटिश साम्राज्य के अंग नहीं रहेंगे तो हमें अपने सम्मान की रक्षा के लिये ऐसा कदम उठाना उचित है जिससे जब ये देश हमसे अलग हों तो अमरीका महाद्वीप में ये ही ऐसे देश न रह जायें जिनमें अपने शासन भार संभालने की योग्यता

※ Speech in the House of Lords; 24th Feb., 1766.

१ ,, ,, ,, 19th April, 1774.

न हो।" इस प्रकार लार्ड डरहम ने उपनिवेशों के शासन की उस उत्तम नीति का समर्थन किया जिससे यह उपनिवेश कुछ समय बाद अपना शासन भार स्वयं अपने ऊपर लेने के योग्य हो जायं। सर सी० पी० लूकस ने इस कथन की आलोचना करते हुये कहा कि "ये शब्द कनाडा व अमरीका के बाहर भी लागू होते हैं। इनमें निहित भावना किसी देश-प्रदेश की सीमा से बंधी हुई नहीं है। यह ब्रिटिश साम्राज्य की जीती जागती शक्ति है।" इन शब्दों में एक अंगरेज ने अपनी जाति वालों को यह सन्देश दिया था कि हमारे लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि हम अपने पीछे वह वसीयत छोड़ जायें जो सब समय और सब तरह से महान् और उत्तम हो।" * सन् १८४० ई० में ब्रिटेन ने कनाडा के लिये ऐसे शासन-विधान की व्यवस्था की, जिससे आगे चल कर सन् १८६७ ई० में कनाडा में संघ-शासन प्रणाली स्थापित की गई और वह एक स्वशासित उपनिवेश बन गया। इसमें संशय नहीं कि १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में औपनिवेशिक नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ पर फिर भी बहुत से उपनिवेशों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ।

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औपनिवेशिक नीति—ग्रेट ब्रिटेन के २,०००,००० निवासियों ने बाहर जाकर इन उपनिवेशों को बसाया था और कुछ अंगरेज़ों को यह विश्वास होने लगा था कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति बड़ी दोषपूर्ण है। इस ओर जनता का भी ध्यान आकर्षित होने लगा। यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि इन उपनिवेशों की शासन-प्रणाली में वे सब दोष हैं जो निरंकुश शासन में हुआ करते हैं इसका कारण यह था कि शासन-सूत्र ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था जिनको शासित व्यक्तियों की समृद्धि व सुख में तनिक भी रुचि नहीं थी, जो उनसे दूर रहते थे और जिन्हें उनकी दशा का अनुभव न था। इनके ऊपर उन सब बुरी बातों का प्रभाव था जो स्वतन्त्रता और लोक प्रशासन के अभाव में फैल जाया करती हैं। शासन करने वाले व्यक्ति अपनी शासन शक्ति का उस दोषपूर्ण ढंग से उपयोग करते थे जिस प्रकार स्वेच्छाचारी निरंकुश शक्ति का उपयोग दूरस्थित निवासियों पर हुआ करता है परन्तु १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उपनिवेशों की शासन नीति में सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

---

* Sir C. P. Lucas in his Introduction to Lord Durham's Report.

ग्लैडस्टन जो उदारपक्ष का प्रसिद्ध प्रधानमन्त्री था उसने २६ अप्रैल सन् १८७० को हाउस आफ कामन्स में सरकार की औपनिवेशिक नीति का इन शब्दों में स्पष्टीकरण किया था :—

"हमें यूरोपियन देशों द्वारा उनके उपनिवेशों पर लगाई हुई प्रतिबन्धों वाली नीति का अनुभव हो चुका था। पहले का यह अनुभव ही हमारा पथ-प्रदर्शक न था परन्तु हमें बहुत भारी चेतावनी भी मिल चुकी थी विशेषकर कनाडा के सम्बन्ध में। इसलिये हमारे समय के इतिहास में यह एक गौरवपूर्ण अध्याय है कि हमारे राजनीतिज्ञों का, बिना दलबन्दी का विचार किये, यह सतत प्रयत्न रहा है कि ऐसी नीति कार्यान्वित की जाय जिससे जब कभी भी ये उपनिवेश पृथक् हों तो उस विपत्ति और कलंक से बचाव हो जाय जो हिंसा और रक्त प्रवाह द्वारा पृथक होने पर उत्पन्न होता है। यही नीति अब भी अपनाई जा रही है। यह जैसा समझा जाता है कोई नई नीति नहीं है किन्तु उन्हीं पुराने सिद्धान्तों को फिर से लागू करना है जिनको विभिन्न राज-नीति के समर्थक सत्ताधिकारियों ने स्वीकार कर स्थापित किया है और जो सर्व-सम्मति से मान्य हो चुके हैं। यही बात उस नीति के बारे में सत्य है जो हमने अपनाई है। इस नीति से मातृभूमि व उपनिवेशों के पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल एवं कटु न होकर इसके विपरीत ऐसे मैत्रीपूर्ण हो जायंगे कि जब कभी पृथक होने का समय आवेगा तो शांतिपूर्वक पृथकीकरण हो सकता है और साथ ही साथ इस बात का सबसे अधिक अवसर रहता है कि पृथक होने के पश्चात् अनिश्चित काल तक उन उपनिवेशों से स्वतन्त्रता पूर्वक सम्बन्ध चलता रहे। इसी आधार पर हमने अपने पूर्वगामियों के समान अपनी औपनिवेशिक नीति को स्थिर किया है। स्वतन्त्रता और स्वेच्छा हमारे पारस्परिक सम्बन्ध के मुख्य चिन्ह हैं और हमारी नीति से यह न समझना चाहिये कि हम छिपे ढंग से उपनिवेशों को दूर करने के पूर्वनिश्चित उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं वरन् यह नीति अद्वितीय न भी हो तब भी वह सबसे उत्तम व सच्चा साधन है जिससे हम उनके प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकते हैं।"

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति में इस परिवर्तन के हो जाने से ब्रिटेन और उसके समुद्रपार स्थित उपनिवेशों में सहयोग की सम्भावना बढ़ गई। इसलिए रानी विक्टोरिया की जयन्ती के अवसर पर पहला औपनिवेशिक सम्मेलन बुलाया गया। यह सम्मेलन ब्रिटेन और उपनिवेशों के समान हित वाले मामलों पर विचार करने के लिए बुलाया गया था। सब उपनिवेशों के

प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और इस अवसर पर बहुत सी बातों में ब्रिटिश मंत्रीमण्डल से बातचीत कर लाभ उठाया। इसके दस वर्ष बाद सन् १८९७ में दूसरा औपनिवेशिक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें कनाडा, न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, न्यूजीलैंड, क्वीन्सलैंड, केप कौलोनी, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, न्यू फाउंडलैंड, टसमानिया, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और नैटाल के प्रधानमन्त्री उपस्थित हुए। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य उपनिवेशों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना था न कि किन्हीं ऐसे निर्णयों पर पहुँचाना जो उप-निवेशों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाते हों और जिन्हें कार्यान्वित करने के लिये वे उपनिवेश इच्छुक न हों। इस विचार-विनिमय का एक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य-संघ शासन (Imperial Federation) का विचार निश्चित ढंग से ठुकरा दिया गया। परन्तु सुरक्षा, व्यापार व विदेश वास सम्बन्धी विषयों में पारस्परिक सहयोग के कई अच्छे सुझाव रखे गये।

सन् १९०२ में जब सप्तम एडवर्ड के राजतिलक का उत्सव मनाया गया तब तीसरा सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि सहयोग की भावना को बराबर जाग्रत रखने के लिये एक स्थायी परामर्श देने वाली समिति की स्थापना की जाय। इस समय तक ये उपनिवेश स्वायत्त-शासन की बाल्यवस्था को पार कर चुके थे और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट से प्रदत्त प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं को सफलतापूर्वक चला चुके थे। इसलिये ब्रिटेन को अब इन पूर्ण विकसित उपनिवेशों पर साम्राज्य के भीतर रहने वाले राष्ट्रों से मुकाबिला करना पड़ता था। इस सम्मेलन के पश्चात् सन् १९०७ में एक और सम्मेलन हुआ जो बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसने इस बात पर जोर दिया कि साम्राज्य की उन्नति जितनी राजनैतिक संगठन पर निर्भर है उतनी ही आर्थिक सहयोग पर भी। साम्राज्य के इतिहास में इस सम्मेलन ने एक नये युग का आरम्भ किया क्योंकि इसने अपने आपको इम्पीरियल कान्फ्रेंस अर्थात् साम्राज्य-सम्मेलन के रूप में परिवर्तित कर लिया और स्वायत्त-शासन करने वाले उपनिवेशों को डोमिनियन (Dominion) अर्थात् उपराष्ट्र की उपाधि दे दी जिससे उनके उन्नत पद का समुचित आदर कर दिया गया" * इस सम्मेलन में यह भी निर्णय हुआ कि साम्राज्य सम्मेलन प्रति चार वर्ष बाद हुआ करे। सन् १९११ में द्वितीय-साम्राज्य-सम्मेलन हुआ पर युद्ध के कारण १९१५ में होने वाला सम्मे-लन न हो सका।

* कीथ: कन्स्टीट्यूशन, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड लौ आफ दी एम्पायर, पृ० १०३

सन् १९१७ का साम्राज्य-सम्मेलन—सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पूर्व कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका पार्लियामेण्ट के विभिन्न एक्टों के अनुसार स्वायत्त-शासन वाले उपनिवेश हो चुके थे जिनमें उत्तरदायी सरकारें शासन करती थीं। युद्ध में जिस स्वेच्छाकृत अनुराग और भक्ति का इन उपनिवेशों ने प्रदर्शन किया उससे ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की उस बुद्धिमानी का पर्याप्त परिचय मिल गया जिसके द्वारा उन्होंने लार्ड डरहम की रिपोर्ट में सुझाई गई उत्तरदायी स्वायत्त-शासन देने की नीति को कार्यान्वित किया। सन् १९१७ के सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि इंगलैण्ड और उपनिवेशों के बीच यदि शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन हो तो घरेलू मामलों में पूर्ण अधिकार व स्वायत्त-शासन के साथ साथ इस आधार पर आगे बढ़ा जाय कि डोमिनियन इम्पीरियल कामनवैल्थ (Imperial Commonwealth) के स्वतंत्र देश हैं, इस परिवर्तन से यह भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये कि वैदेशिक नीति और विदेशी सम्बन्धों के बारे में उन्हें भी अपनी राय देने का अधिकार है। इसके साथ साथ ऐसा भी आयोजन होना चाहिये जिससे साम्राज्य के समान हित वाले मामलों में बराबर पारस्परिक परामर्श सम्भव हो सके और उस परामर्श के फल-स्वरूप ऐसी सम्मिलित कार्यवाही हो सके जिसका निर्णय विभिन्न सरकारें कार्यान्वित करें।

सन् १९२१ में फिर एक सम्मेलन हुआ हालांकि सन् १९१७ व १९१८ की युद्ध परिषद् बराबर डोमिनियन प्रधान मन्त्रियों से युद्ध-सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श करती रही थीं। सन् १९२६ से सम्मेलन ने एक नया कदम उठाया और लार्ड बालफोर की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना का जिसको अन्तर्साम्राज्य सम्बन्धों के बारे में छान बीन करने का काम सौंपा गया। पूर्ण सत्ताधिकारी डोमिनियनों का साम्राज्य में क्या स्थान हो, इस विषय पर समिति ने एक बहुत महत्वपूर्ण निर्णय किया जिसको बालफोर-घोषणा (Balfour Declaration) के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति ने उपनिवेशों के पद की यह व्याख्या की :—"ये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्र समाज हैं जो पद में एक दूसरे के बराबर हैं, अपने घरेलू व वैदेशिक मामलों में किसी प्रकार भी एक दूसरे के अधीन नहीं हैं यद्यपि राजमुकुट के प्रति एक समान भक्तिभाव रखने से वे एक दूसरे से मिले हुये हैं और ब्रिटिश कौमनवैल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of Nations) अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के स्वेच्छा से बने हुये सदस्य हैं।" इस समिति ने साथ ही साथ यह मत प्रकट किया कि उस समय (१९२६ में) जो प्रबन्ध चल रहा था वह इस घोषणा

में वर्णित स्थिति के अनुसार न था। कुछ ऐसे प्रतिबन्ध उस समय मौजूद थे जिनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करना था, विशेषकर राजसी उपाधियों और गवर्नर जनरल के पद के सम्बन्ध में। इस समिति के सुझाव पर सम्मेलन ने एक समिति बनाने की सिफारिश की जिसमें ब्रिटेन और डोमिनियनों के प्रतिनिधि हों और जो इस प्रश्न पर विचार करे और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। तदनुसार लन्दन में सन् १९२९ में एक कान्फ्रेंस डोमिनियनों के कानूनों और व्यापार पोतों से सम्बन्धित कानून (Merchant Shipping Legislation) के कार्यान्वित होने की परीक्षा करने के लिए एकत्रित हुई। उसने अपनी रिपोर्ट तैयार की जो सन् १९३० के साम्राज्य-सम्मेलन में विचारार्थ उपस्थित की गई। इस सम्मेलन ने इस रिपोर्ट में की गई अधिकतर सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और यह सुझाव सामने रक्खा कि पार्लियामेण्ट समानता के पद को, जो बालफोर-घोषणा में दिया हुआ था, कानून द्वारा अंगीकार करे और उन वैधानिक प्रतिबन्धों को हटावे जिससे डोमिनियन इस पद को प्राप्त कर सकें।

१९३१ की वैस्टमिंस्टर व्यवस्था—(Statute of Westminister of 1931)—तदनुसार पार्लियामेण्ट ने वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था स्वीकार की जिस पर राजा ने सम्मति सूचक हस्ताक्षर सन् १९३१ में किये। इस व्यवस्था के पास हो जाने से, जो ब्रिटिश शासन-विधान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, उपनिवेश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nations) में ग्रेट ब्रिटेन के बराबरी के पद पर स्थित हो गये। यह समानता का पद घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही विषयों में इनको प्राप्त हो गया।

सन् १८६७ के कनाडा के शासन-सम्बन्धी एक्ट (British North America Act) से लेकर सन् १९०९ तक जब दक्षिणी अफ्रीका में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई बराबर औपनिवेशिक सरकारों के अधिकारों व शक्तियों पर कुछ कानूनी प्रतिबन्ध बने हुये थे। ये प्रतिबन्ध व्यवस्था सम्बन्धी, प्रशासन व न्याय-सम्बन्धी थे। जितने कानून पास होते थे उन पर राजा की स्वीकृति लेना आवश्यक होता था। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधि होता था इसलिये राजा के नाम से डोमिनियन धारासभा द्वारा पास किये कानून पर अपनी स्वीकृति रोक सकता था। दूसरे गवर्नर-जनरल राजा के नाम से डोमिनियन मन्त्रिमण्डल की इच्छा का निरादर कर दिया करता था, इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट द्वारा बनाये हुए कानून के विरुद्ध डोमिनियन पार्लिया

मेण्ट कोई कानून न बना सकती थी, न डोमिनियन पार्लियामेंट १८९४ ई० के व्यापार-पोत एक्ट (Merchant Shipping Act) के विरुद्ध या कौलोनियल लाज़ वैलडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act of 1865) के विरुद्ध कोई कानून बना सकती थी। न्याय-क्षेत्र में यह प्रतिबन्ध था कि डोमिनियन न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति में अपील हो सकती थीं। कनाडा की पार्लियामेंट ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट १८६७ (British North America Act 1867) में संशोधन न कर सकती थी, ऐसा करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंण्ट का मुंह देखना पड़ता था। वेस्टमिंस्टर की व्यवस्था ने कई महत्वपूर्ण कानूनी परिवर्तन किये—इस व्यवस्था के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् किसी भी डोमिनियन पार्लियामेंट के बनाये हुए कानून के लिये १८६५ का कौलोनियल लाज़ वैलडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act) लागू न हो सकता था। न किसी उपनिवेश का कानून इसलिये रद्द समझा जा सकता था क्योंकि वह किसी वर्तमान या भविष्य में बनने वाले इंगलैंड के कानून के विरुद्ध है। डोमोनियन पार्लियामेन्ट को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह अपने यहां लागू इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुये कानून में यदि चाहे तो संशोधन कर सकती हैं या उसे रद्द कर सकती हैं। इस व्यवस्था के पश्चात् इंगलैण्ड की पार्लियामेंट का कोई भी कानून डोमोनियन में लागू हो सकता था जब तक कि अमुक डोमिनियन ने इसके हेतु प्रार्थना न की हो और अपने यहां उस कानून को लागू करने के लिये सहमत न हो। इस प्रकार वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था (Statute of Westminster) ने उपनिवेशों के व्यवस्थापन कार्य के ऊपर से वे सब प्रतिबन्ध हटा लिये जो कौलोनियल लाज़ वैलिडिटी ऐक्ट से लगे हुए थे। संक्षेप में इस व्यवस्था ने अपना शासन अपने आप करने वाली डोमोनियन के पद की व्याख्या कर दी और निश्चित कर दिया कि ये डोमिनियन अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी आयरलैंड, न्यूजीलैंड व न्यूफ़ाउण्डलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (British Commonwealth of Nations) में ब्रिटेन के बराबरी पद वाली हैं। सन् १७७३ की उपनिवेश सम्बन्धी नीति और १९३१ की इस वैस्टमिंस्टर व्यवस्था में बड़ा भारी अन्तर हो गया।

उपनिवेशों में राजा का स्थान—वैस्टमिंस्टर की व्यधस्था की प्रस्तावना में यह घोषणा की गई थी कि इंगलैंड का राजमुकुट (Crown) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्यों के स्वेच्छाकृत सम्मिलन का परिचायक चिन्ह

है क्योंकि यह सब सदस्य सामान राजभक्ति के कारण एक दूसरे से संयुक्त हैं इसलिए राजसिंहासन सम्बन्धी उत्तराधिकार व राजकीय पदवियों आदि के बारे में यदि किसी वर्तमान कानून में परिवर्तन हो तो उस पर इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट की सम्मति के साथ साथ डोमिनियनों की पार्लियामेंटों की भी सम्मति ली जाया करे। डोमिनियनों में राजा के स्थान का एक नवीन अर्थ हो गया। यह अब प्रत्येक डोमिनियन का राजा समझा जाने लगा। उदाहरणार्थ कनाडा में राजा का अधिकार है वे कनाडा के राजा के रूप में है न कि इंगलैण्ड के राजा के रूप में। इसलियें कनाडा का राजा कनाडा के मन्त्रियों की सलाह से कनाडा के शासन सम्बन्धी मामलों में कार्य करता है। सन् १९३२ में जब राजा ने लन्दन में स्थित कुछ नये दक्षिणी अफ्रीका के सरकारी भवनों का उद्घाटन किया उस समय राजा के पार्श्व में इंगलैण्ड का गृहमन्त्रि न था वरन् दक्षिण अफ्रीका की सरकार का प्रतिनिधि था। इसी प्रकार जब सम्राट् १९३९ में कनाडा गया तो उसने स्वयं राजसी कार्य किये। वह कनाडा की पार्लियामेंट में स्वयं उपस्थित हुआ, विधेयकों का प्रवर्तन किया और कनाडा भेजे हुए अमरीकी राजदूत के अधिकार-पत्रों को ग्रहण किया। उसने कनाडा की प्रिवी कौंसिल की बैठक में भाग लिया। यह सब उसने कनाडा के राजा की हैसियत से किया न कि इंगलैंड के राजा की हैसियत से।

उपनिवेशों की वाह्य संज्ञा—वैसे तो सन् १९३१ से पूर्व भी उपनिवेश वैदेशिक मामलों में पूर्ण सत्ताधारी की तरह ही व्यवहार करते थे पर वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था से इसको वैध रूप दे दिया गया। उनकी इस स्वतण्त्रता का परिचय उस समय मिला जब वे स्वतन्त्र रूप से लीग आफ नेशन्स (League of Nations) अर्थात् राष्ट्रसंघ की सदस्य हुये और उनको लीग की कौंसिल में निर्वाचित स्थान दिया गया। सन् १९३६ में जब राजत्याग एक्ट पास हुआ तो डोमिनियनों की सम्मति पहिले से ही मन्त्री परिषद ने प्राप्त करली थी क्योंकि इस एक्ट से राजतन्त्र में एक महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन किया गया था। जब सन् १९३९ में युद्ध की घोषणा हुई तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से उपनिवेशों की वैधानिक स्थिति की परीक्षा का समय आया। इंगलैंड ने न कि उपनिवेशों ने ३ सितम्बर सन् १९३९ को युद्ध की घोषणा की आस्ट्रेलिया ने ५ सितम्बर को घोषणा की। दक्षिणी अफ्रीका में जनरल हर्नजोग के मन्त्रिमंडल ने पार्लियामेंट में तटस्थ रहने का प्रस्ताव उपस्थित किया जो अस्वीकृत होगया। प्रस्ताव के अनुकूल ६७ मत थे और ८० विरुद्ध थे। मंत्रीमण्डल न *त्याग* पत्र

दे दिया और जनरल स्मट्स ने नया मंत्रीमण्डल बनाया। उसके पश्चात् ६ सितम्बर को दक्षिणी अफ्रीका ने युद्ध की घोषणा की। कनाडा की पार्लियामेंट ने युद्ध में भाग लेने के प्रश्न पर विचार किया और ६ सितम्बर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का अनुमोदन किया। आयरलैंड की पार्लियामेंट ने अपनी तटस्थता की घोषणा की। ये सब निर्णय डोमिनियनों ने स्वयं किये, ब्रिटेन का इस सम्बन्ध में उनके ऊपर कोई दबाव न डाला गया था।

कई उपनिवेश विदेशों में अपने निजी राजदूत रखते हैं। व्यापारिक तथा दूसरे सम्बन्धित विषयों में उन्होंने विदेशी राष्ट्रों से स्वतंत्र समझौते किये हैं। कुछ राजनीतिज्ञों का तो यहां तक कहना है कि वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था से उपनिवेशों को ब्रिटिश राष्ट्र-संगठन से पृथक होने का अधिकार भी प्राप्त हो गया है। दक्षिणी अफ्रीका में इस ओर कुछ बातचीत चली थी पर यह सम्भव नहीं मालूम होता कि कोई डोमिनियन पृथक होने का निश्चय करेगी और संगठन की सुरक्षा सम्बन्धी सहायता को खोयेगी।

औपनिवेशिक गवर्नर जनरल—वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था पास हो जाने के पश्चात् औपनिवेशिक गवर्नर जनरल के पद का महत्व बढ़ गया है। वह अब इंगलैण्ड के राजा का नहीं वरन् कनाडा के राजा का प्रतिनिधित्व करता है। गवर्नर जनरल की नियुक्ति राजा द्वारा होती है पर उसके चुनने में उसी डोमिनियन के मंत्रियों से वह परामर्श लेता है जिसके गवर्नर जनरल को नियुक्त करना हो। सन् १९३० के साम्राज्य सम्मेलन (Imperial Conference) ने उपनिवेशों को यह अधिकार दे दिया था कि वे अपने गवर्नर जनरल का स्वयं चुनाव कर लें। इसके बाद ही आस्ट्रेलिया में सर आइज़क आइज़क्स (Sir Issac Issacs) व कनाडा में लार्ड बैसबौरो (Lord Bess-borough) आस्ट्रेलिया व कनाडा के मंत्रियों की सलाह से गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। औपनिवेशिक गवर्नर-जनरल को अब सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) की मध्यस्थता से छुट्टी नहीं मिलती, औपनिवेशिक प्रधानमंत्री ही यह कार्य करता है। इस प्रकार उपनिवेश के राजा का प्रतिनिधित्व करने वाला गवर्नर-जनरल उसी प्रकार केवल वैधानिक अध्यक्ष है जो अपने मंत्रिमण्डल की सलाह से कार्य करता है, जैसे इंगलैण्ड का राजा ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् की सलाह से काम करता है।

ब्रिटिश शासन पद्धति इतनी लचीली है कि इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण वैधनिक परिवर्तन भी स्थिति के अनुकूल स्थान पा लेते हैं। १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान के दो डोमिनियन भी वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के अनुसार कामनवेल्थ में सम्मिलित हो गये, उधर लंका (Ceylon)

ने भी औपनिवेशिक पद प्राप्त कर लिया। परन्तु जब भारत के विधान परिषद् (Constituent Assembly) ने भारत को लोकतंत्र (Republic) बनाने का निश्चय कर लिया तो अप्रैल १९४९ में लंदन में उपनिवेशों और इंगलैण्ड के प्रधान मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के समाप्त होने पर यह महत्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत के लोकतंत्र (Republic) होने पर भी भारत कामनवेल्थ (Commonwealth) का पूर्ण सदस्य माना जायेगा। केवल ब्रिटिश राजा को कामनवेल्थ के ऐक्य का चिन्ह भारत समझेगा, इससे अधिक नहीं। दिसम्बर १९४९ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून बनाकर घोषित किया कि भारतवासियों को (भारत के प्रजातंत्र घोषित होने के पश्चात् भी) ब्रिटेन में वे ही अधिकार और स्वत्व प्राप्त रहेंगे जो पहले थे। २६ जनवरी १९५० को भारत, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से लोकतंत्र बन गया, फिर भी वह कामनवेल्थ का वैसा ही सदस्य है जैसा आस्ट्रेलिया व कनाडा।

पाठ्य पुस्तकें

Borden, R. L.—Canada and the Commonwealth, (Oxford 1929).

Dawson, R. M.—Constitutional Issues in Canada (Oxford 1933).

Emden, C. S.—Selected Speeches on the Constitution (Oxford 1919).

Evatt, H. V.—The King and his Dominion Governors (Oxford 1936).

Hughes, H.—National Sovereignty and Judicial Autonomy in the British Common-wealth (P. S. King 1931).

Keith A. B.—Letters on Imperial Relations etc. (Macmillan 1929).

Keith, A. B.—Sovereignty of the British Dominions (Macmillan 1935).

Keith, A. B.—Constitutional Law of the British Dominions (Macmillan, 1938).

Keith, A. B.—The Dominions as Sovereign States (Macmillan, 1938).

Palmer, G. E. H.—Consultation and Cooperation in the British Commonwealth (Oxford, 1934).

Wheare, K. C.—The Statute of Westminster (Oxford, 2nd Edition).

हो गया। जब सन् १८४८ ई० में विक्टोरिया का पृथकीकरण स्वीकृत हुआ। उस समय उपनिवेश मंत्री अर्ल ग्रे (Earl Grey) ने जो शब्द कहे, वे आस्ट्रेलिया के भविष्य सूचक थे। उन्होंने कहा :—"स्थानीय मामलों के प्रबन्ध के लिये आयोजन करते समय यह आवश्यक है कि हम उन सब बातों का जो स्थानीय न होकर सब के हितों से सम्बन्ध रखती हैं, प्रबन्ध करना न भूल जायँ.........कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो सामूहिक रूप से आस्ट्रेलिया में स्थानीय कहे जा सकते हैं पर किसी एक उपनिवेश के लिये वे स्थानीय नहीं कहे जा सकते हालांकि उस सामूहिक हित में सबका हिस्सा हो" ऐसे मामलों को हाथ में लेने के लिये उन्होंने यह दिखलाया कि एक केन्द्रीय शासन की आस्ट्रेलिया में आवश्यकता है।

आस्ट्रेलिया की संस्थायें इंगलैंड से लाई गईं—उपनिवेश-वासी पहले अपने देश में श्रमिक वर्ग के मध्य व उच्च श्रेणी के लोगों में से थे। इसलिये अपनी मेहनत और साहस से उन्होंने देश की प्राकृतिक समृद्धि का विकास किया। यद्यपि वे ऐसे लोग न थे जो पहले ही से पार्लियामेंट्री शासन-प्रणाली में कुशल हों पर ब्रिटिश परम्परागत भावनाओं व विचारों को अवश्य अपने साथ लाये थे। जब ब्रिटेन ने आस्ट्रेलियन उपनिवेशों को प्रतिनिधिक स्वायत्त शासन वाली संस्थायें प्रदान कीं तो इन लोगों ने उन्हें अपनी विशेष परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिये उनमें थोड़ा परिवर्तन कर दिया जिससे वे ब्रिटिश नमूने से बहुत कुछ फिर भी मिलती रहीं। न्यू साउथ वेल्स (New South Wales), विक्टोरिया (Victoria), टसमानिया (Tasmania) व दक्षिणी आस्ट्रेलिया (South Australia), १८५५-५६ में स्वतन्त्र उपनिवेश बन गये। क्वीन्सलैंड सन् १८५९-६० और पश्चिमी आस्ट्रेलिया सन् १८९० ई० में स्वतंत्र हुये। विविध उपनिवेशों की कौंसिलों ने जो शासन विधान का ढांचा अपने लिये तैयार किया था उसके विशेष लक्षणों का समावेश प्रत्येक उपनिवेश को शासन विधान देने वाले पार्लियामेंट के एक्ट में कर दिया गया था, जिससे निवासियों को अपने ही ढांचे को संचालित करने का काम करना पड़ा। ब्राइस ने आस्ट्रेलिया के प्रजातंत्र का इन शब्दों में वर्णन किया है : "आदर्श लोकतंत्र जैसी कोई वस्तु नहीं है क्योंकि हर एक देश में उसकी प्राकृतिक बनावट व स्थिति तथा परम्परागत संस्थायें उस देश व राष्ट्र के राजनैतिक विकास पर ऐसा प्रभाव डालती हैं कि उसकी शासन प्रणाली अपने ढंग की अनुपम होती है। परन्तु यदि ऐसे देश व उसकी सरकार को चुना जाय जिसमें हमें यह देखने को

मिल सके कि स्वाधीन निवासी बाहरी प्रभावों से अप्रभावित रह कर और परम्परा प्राप्त विचारों से अबाधित रहते हुए किस मार्ग का अवलम्बन कर आगे बढ़ते हैं, तो वह देश आस्ट्रेलिया होगा। लोकतन्त्र देशों में यह सब से नया है। यह उस मार्ग पर सब से तेज व सब से आगे चल चुका है जिससे लोकसमूह के अमर्यादित शासन की प्राप्ति होती है। और जगह की अपेक्षा यहां हमें उन प्रवृत्तियों के अध्ययन की अधिक सामग्री मिलेगी जो ऐसे अमर्यादित शासन के नित्यप्रति के व्यवहार में प्रकट हुआ करती हैं।" *

संघ शासन के विचार का आरम्भ—हालांकि आस्ट्रेलिया के लोकतंत्र की प्रवृत्ति आरम्भ में एक केन्द्रात्मक (Unitary) बनने की ओर थी क्योंकि प्रत्येक उपनिवेश की पृथक सरकार थी पर कुछ घटनाओं के कारण यह आवश्यकता हुई कि इन उपनिवेशों में इनके भविष्य की रक्षा के हेतु कुछ पारस्परिक सहयोग होना चाहिये। घटनायें ये थीं कि जर्मनी ने न्यूगिनी द्वीप पर अधिकार कर लिया, न्यूकैलैडोनिया से फ्रांसीसी अपराधी भाग कर आस्ट्रेलिया में आ गये और फ्रांस ने न्यू हैब्रैडीज द्वीप समूह में अपना शासन चाहा। इन सब बातों ने आस्ट्रेलिया निवासियों को भयभीत बना दिया। इन लोगों के सम्मुख कनाडा का उदाहरण उपस्थित था जहां सन् १८६७ के एक्ट से उपनिवेशों को संघात्मक इकाई में संगठित किया जा चुका था। इसके अतिरिक्त संयुक्त-राज्य अमरीका का भी उदाहरण था। न्यू साउथ वेल्स के फ्री ट्रेड (Free Trade) दल के नेता सर हैनरी पार्क्स ने आस्ट्रेलिया-संघ निर्माण का कार्य पक्की तरह से अपने हाथ में लिया। सन् १८८३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने फैडरल कौंसिल आफ आस्ट्रेलिया एक्ट (Federal Council of Australia Act) पास किया जिससे आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों की एक फैडरल कौंसिल (Federal Council) अर्थात् संघ-समिति बना दी गई।

संघ-समिति के कर्तव्य व शक्तियां—इस समिति को आस्ट्रेलिया व शांत महासागर के द्वीपसमूहों के बीच सम्बन्धों, अपराधियों के निवेश, आस्ट्रेलिया के सागर में मछली मारना (प्रदेश सीमा के बाहर), उपनिवेश की सीमा के बाहर न्यायालयों की आज्ञा व निर्णयों को कार्यान्वित करना, इन सब बातों में कानून व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया। इस समिति को सुरक्षा, प्रत्याधिकार पेटेन्ट, हुण्डी, विवाह व तलाक, जानपद बनाना और दूसरे मामलों में भी व्युत्पन्न अधिकार था जिसको दो या अधिक उपनिवेश

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक I. पृ० १८१।

इस सौपना चाहे। आशा यह थी कि इस एक्ट को कुछ वर्ष तक कार्यान्वित करने से आस्ट्रेलिया-सघ स्थापित करने का मार्ग खुल जायगा। परन्तु इस सघ समिति से वह आशा पूरी नही हुई। न्यू साउथ वेल्स व दक्षिणी आस्ट्रेलिया की उदासीनता, जिसके कारण उन्होने इस समिति मे भाग न लिया इस असफलता का कारण था ही पर उसके अतिरिक्त और भी कई असफलता के कारण थे। इस समिति मे कई दोष थे, इसके सदस्य उपनिवेशो की सरकारो से मनोनीत होते थे वह समिति न तो सेना भर्ती कर सकती थी न कोई सेना रख सकती थी। यह कानून बना सकती थी पर उनका पालन कराना इसके हाथ मे न था। इसकी सदस्यता उपनिवेशो की इच्छा पर छोड दी गई थी।

परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् सन् १८८९ मे मेजर जनरल बीवन एडवर्ड्स (Beven Edwards) की रिपोर्ट प्रकाशित होने से आस्ट्रेलिया-सघ निर्माण करने का फिर प्रयत्न आरम्भ हुआ। बोवन एडवार्ड्स को ब्रिटिश सरकार ने आस्ट्रेलिया की सुरक्षा के सम्बन्ध मे रिपोर्ट तैयार करने को नियुक्त किया था। इन्होने आस्ट्रेलिया के सब उपनिवेशो के लिये एक सयुक्त सेना बनाने की सिफारिश की थी। सर हैनरी पार्क्स ने फिर सघ सम्बन्धी प्रश्न को उठाया और सब उपनिवेशो के प्रधान मन्त्रियो को एक तार भेजा जिसमे एक सयुक्त सेना के सगठन, उपनिवेशो के मध्य आयात-निर्यात करो को कम करने और कुछ मामलो मे सब उपनिवेशो मे समान कानून होने पर जोर दिया गया। सर हैनरी पार्क्स की प्रार्थना पर उपनिवेशो के मन्त्री मैलबोर्न (Melbourne) मे एकत्रित हुये और वहा परामर्श करने के पश्चात् सिडिनी मे एक सम्मेलन किया। इस सम्मेलन की अन्तिम बैठक मे कौमनवैल्थ बिल (Commonwealth Bill) का ढांचा तैयार हुआ परन्तु जनता का समर्थन प्राप्त न होने के कारण यह प्रश्न वही ठण्डा हो गया। लोकमत को अनुकूल बनाने के लिये इसके पश्चात् एक फैडरल लीग (Federal League) अर्थात् सघसम्मेलन बनाया गया जिसने सारे महाद्वीप मे सघ-शासन स्थापित करने के विचार का प्रचार किया। सन् १८७९ मे आस्ट्रेलिया को आर्थिक विपत्ति का सामना करना पडा और वह विपत्ति लाभकर ही सिद्ध हुई क्योकि उससे यह पूरी तरह प्रकट हो गया कि जल्दी ही उपनिवेशो के मध्य इस प्रकार के सकटों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए कोई निकट संबध स्थापित होना आवश्यक है। उपनिवेशो के प्रधान मन्त्री इस स्थिति पर परामर्श करने के लिए होबार्ट नगर मे एकत्रित हुये (१८९७) और अन्त मे उन्होने

एक अपील निकाली जिसमें उपनिवेशों की सरकारो से प्रार्थना की गई कि वे विधान-सम्मेलन के लिये अपने अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजे । इस प्रार्थना को सब उपनिवेशो ने स्वीकार किया और सम्मेलन एडिलेड नगर मे हुआ जिसमें मुख्यत· १८६१ के मसविदे के आधार पर एक शासन विधान का ढाचा तैयार किया गया । यह भी निश्चय हुआ कि इस नये मसविदे को लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किया जाये और यदि प्रत्येक उपनिवेश मे कुछ निश्चित कम से कम मत उसके पक्ष मे हो तो, उपनिवेश उस मसविदे को मानने का बाध्य समझे जाये । इस लोक निर्णय मे यद्यपि बहुमत सब उपनिवेशो मे मसविदे के पक्ष मे था पर न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) मे कम से कम सख्या ८०,००० मत की प्राप्त न हो सकी क्योकि कुल ७१,९९५ मत ही उसके पक्ष मे प्राप्त हुये । एक बार फिर प्रयत्न किया गया जिससे न्यू साउथ वेल्स के प्रधान मन्त्री श्री रीड का समर्थन प्राप्त हो । मसविदे में कुछ साधारण सशोधन कर दिये गये । यह सशोधन मसविदा फिर १० जून १८९९ को लोक निर्णय के लिये रखा गया और सब उपनिवेशो मे बहुत अधिक मतो से स्वीकार हो गया । इस प्रकार सब उपनिवेशो ने एक आस्ट्रेलिया भर की मिली-जुली सघात्मक सरकार की स्थापना के विचार का समर्थन किया । अब वह समय आ गया था जब दस वर्ष के इस सारे प्रयत्न को सफलीभूत किया जाय ।

उपनिवेशो की सरकार के प्रतिनिधि इगलैण्ड गये और वहाँ ब्रिटिश सरकार को इस बात मे राजी करने मे सफल हुए कि उनके मसविदे को लगभग जैसा का तैसा स्वीकार कर सघशासन स्थापित करने की उनकी इच्छा को पूरा किया जाय । उपनिवेश मन्त्री श्री चेम्बरलेन ने १४ मार्च, १९०० को पार्लियामेण्ट मे कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया बिल (Commonwealth of Australia Bill) पेश किया। आस्ट्रेलिया के सघ की विशेषता का उन्होने इस प्रकार वर्णन किया—"यह विधेयक जो आस्ट्रेलिया के सब मे योग्य राजनीतिज्ञो के परिश्रम का फल है, उस महाद्वीप को अग्रेजी भाषा बोलने वाले राष्ट्रो की गिनती मे आने योग्य बना देगा । अब वह ऐसे महाद्वीपो का ढेर न रहेगा जो एक दूसरे से पृथक और पूर्णतया स्वतन्त्र हो जिस अवस्था मे यह कोई भी अस्वीकार न करेगा, आपस की प्रतिस्पर्धा से एक बडी विपत्ति आ सकती थी या कम से कम पारस्परिक विरोध के कारण वे सब निर्बल हो सकते थे।"*
विधेयक मे अपनाई गई सपूर्ण आस्ट्रेलिया के लिये केवल एक नीति की विवेचना

* न्यूटन—फेडरल एण्ड यूनीफाइड कंस्टीट्यूशन्स, पृ० ३११-१२ ।

करने के पश्चात उन्होंने कहा हमें विश्वास है कि यह आस्ट्रेलिया के हित में ही होगी और हमारे लिये यही सबसे बड़ी बात रही है। परन्तु हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते कि यह हमारे हित में भी रहेगी। हमको विश्वास है कि उन उपनिवेशों व हमारे बीच जो भविष्य में सम्बन्ध रहेंगे वे अधिक सीधे सादे हो जायेंगे, उनकी आवृत्ति बढ़ जायेगी और रुकावटें दूर हो जायेंगी और वे सम्बन्ध उस समय अधिक मैत्रीपूर्ण होंगे जब हम पृथक पृथक छः स्वतन्त्र सरकारों से परामर्श करने के स्थान पर एक केन्द्रीय सरकार से व्यवहार करेंगे। जो आस्ट्रेलिया के हित में है वह सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये भी हितकारी है।"* विधेयक को स्वीकार करने की आवश्यकता बतलाते हुए उन्होंने कहा "यह विधेयक बिना हम से पूछे तैयार किया गया है। मुख्य मुख्य बातों में अधिकतर इसमें आस्ट्रेलिया के निवासियों की इच्छा का समावेश है·········हम मानते हैं कि अपने मामलों में वे ही सर्वोत्तम निर्णय कर सकते हैं और हम इस बात से संतुष्ट हैं कि उनके प्रतिनिधियों के विचारों को इन मामलों में सर्वोपरि स्वीकार कर लेना चाहिए और जिस विधेयक को मैं सदन में रखने जा रहा हूं वह ९९ प्रतिशत उन विचारों का ही फल है। मैं समझता हूं और यह कह सकता हूं कि इस विधेयक का अधिकतर भाग ९९/१०० वही है जो आस्ट्रेलिया में लोक-निर्णय से स्वीकार हुआ है।"[१] थोड़े से परिवर्तनों के साथ ब्रिटिश पार्लियामेंट ने उस विधेयक को पास कर "कौमनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट" के नाम से घोषित किया। इसी एक्ट में आस्ट्रेलिया का वर्तमान संघ-शासन विधान दिया हुआ है।

सन् १९०० का शासन-विधान

इस संविधान के रचने वाले के सम्मुख संसार में प्रचलित तीन संघ-शासन विधान थे, संयुक्त राज्य अमरीका का स्विट्जरलैंड का व कनाडा का, और अपनी वैधानिक कठिनाइयों पर जीत पाने के लिये उन्होंने इन देशों के अनुभव से लाभ उठाया। संयुक्त राज्य अमरीका की तरह, पर कनाडा व स्विट्जरलैंड के विपरीत आस्ट्रेलिया में भाषा, जाति या धर्म विभेदों की समस्या न सुलझानी थी। परिश्रमशील व साहसी लोग होने के कारण उनकी राजनीति में आर्थिक हित को ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। आस्ट्रेलिया में श्रमिक वर्ग ने कानून से स्थापित सरकार को अपने हाथ में पहले कर लिया फिर अपनी शासन कुशलता का परिचय दिया। राज्य ने कानून से काम के घंटे व मजदूरी

---

* फैडरल एण्ड यूनिफाइड कंस्टीट्यूशन्स, पृ० ३१२।

१ " " " पृ० ३१६-३१७।

निश्चित कर सारे उद्योग-धन्धों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न किया। मध्य श्रेणी के लोगों का बाहुल्य होने से और आदिवासियों की कोई बड़ी समस्या न होने से उन्होने ऐसे शासन-विधान के बनाने में सफलता पाई जो वास्तव में अपनी अच्छाई के कारण "समय की सब से अर्वाचीन उत्पत्ति" कह कर पुकारा जाता है।

शासन-विधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "न्यू साउथ वेल्स,, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, क्वीन्सलैंड और टसमानिया ईश्वर की दया का भरोसा लेकर ब्रिटिश राज छत्र के नीचे अविघटनशील संघ शासन में संगठित होनें पर सहमत हुये हैं"। इससे प्रगट है कि यद्यपि शासन-विधान पार्लियामेंट के एक्ट से बना है, इसको अपनी सारी शक्ति व अधिकार संघ में आने वाले उपनिवेशों की जनता से ही प्राप्त हैं। कामनवैल्थ (Commonwealth) की स्थापना की है जिस शब्द से एक ऐसे राज्य संगठन का बोध होता है जो संघ शासन की अपेक्षा अधिक लोकसत्तात्मक है। संघ को अविघटनशील घोषित कर दिया गया है जिससे संघ से सम्बन्धोच्छेद कर पृथक होने के प्रश्न को सदा के लिये समाप्त कर दिया है। * पश्चिमी आस्ट्रेलिया संघ शासन में आने को उत्सुक न था इसीलिये एक्ट की प्रस्तावना में इसका नाम नहीं है पर एक्ट में नये सदस्यों के बनने का आयोजन कर दिया गया था (धारा १२१-१२४ देखो)। परन्तु एक्ट के पास हो जाने के पश्चात् पश्चिमी आस्ट्रेलिया में भी संघ शासन में आने के लिये कार्यवाही की गई। यह प्रश्न लोक निर्णय के लिये रखा गया और जनता ने २५,१०९ के बहुमत से संघ में शामिल होने का निर्णय किया। इसके पश्चात सम्राज्ञी ने १७ सितम्बर १९०१ का दिन संघ-शासन-विधान के कार्यरूप देने का श्रीगणेश करने के लिये निश्चित किया। बीसवीं शताब्दी का यह पहला दिवस था जो आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयता के जन्म के लिये विशेश अर्थपूर्ण व महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसीलिये यह वास्तव में "समय की सबसे अर्वाचीन उत्पत्ति" है।

संघ शासन में आने से पूर्व आस्ट्रेलिया के उपनिवेश-राज्य अपने आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से स्वतंत्र थे। वे स्वतंत्रता को खोने के लिये तैयार न होते थे। इसी लिये शक्ति-विभाजन (Division of Powers) में उन्होंनै संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान का अनुकरण किया और केन्द्रीय सरकार को निश्चित शक्तियां सौंपी गई।

आस्ट्रेलिया का शासन-विधान आधुनिक विधानों में सबसे अधिक

* इसके विपरीत कुछ समय बाद पश्चिमी आस्ट्रेलिया की पृथक होने की माँग हुई।

प्रजातन्त्रात्मक है। इसमें जनता को बहुत सी बातों में पर्याप्त अधिकार दिये हुये हैं। उदाहरण के लिये सीनेट के लिये निर्वाचन, लोक निर्णय द्वारा संविधान संशोधन आदि।

संघ-सरकार

शासन-विधान से एक केन्द्रीय संघ-सरकार की स्थापना कर उसको निश्चित विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक सत्ता सौंप दी गई है। क्योंकि केन्द्रीय सरकार की सृष्टि उपराज्यों ने की है, शेष व अन्तिम शक्तियां उपराज्यों ने अपने पास ही रखी हैं। हालांकि ऐसा करना आस्ट्रेलिया की वैधानिक समस्याओं को सुलझाने के लिये उस समय सर्वोत्तम साधन समझा गया था। परन्तु अनुभव ने संघ-सरकार पर अविश्वास रखने की उसी गलती को दिखला दिया है जो अमरीका में की गई थी। संविधान के कार्य-भूत होने से यह स्पष्ट हो गया "कि साधारण से साधारण मन्तव्य यदि संविधान की लिखावट के पेचीदा व सीमित शब्दों में रखा जाय" तो व्यर्थ हो जाता है। यह बात विशेषतया संविधान से अभिप्रेत उपराज्यों की राज्यकर-विषयक व आर्थिक आधीनता के विषय में सिद्ध हुई।"*

संघ-सरकार की शक्तियाँ—संघ सरकार की शक्तियाँ आस्ट्रेलिया में वही हैं जो कनाडा में औपनिवेशिक सरकार को दी गई हैं। निम्नलिखित शक्तियाँ ऐसी हैं जो कनाडा में संघ-सरकार को स्पष्टतया नहीं सौंपी गई हैं :—

१—वस्तुओं के उत्पादन व निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये सरकारी सहायता। ऐसी सहायता सब उपराष्ट्रों में एक समान होगी।

२—समुद्रतट-प्रदेश की सीमा से बाहर मछली मारने का अधिकार।

३—सरकारी बीमा।

४—वृद्धावस्था व अशक्त व्यक्तियों को पेंशन।

५—बाहरी मामले।

६—एक उपराज्य की सीमा से बाहर तक फैले हुये औद्योगिक झगड़ों को निबटाने व रोकने के लिये पंच फैसला या राजीनामा आदि।

७—वे मामले जिनके सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट या आस्ट्रेलिया की संघ-समितियां संविधान बनते समय कार्यवाही कर सकती थीं, उनमें उन सब उपराज्यों की पार्लियामेण्टों की प्रार्थना पर कार्यवाही करना जो उस कार्यवाही से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो।

* सेलेक्ट कन्स्टीट्यूशन्स आफ दी वर्ल्ड, पृ० ३५७।

८—संविधान ने जो शक्ति पार्लियामेंट, संघ कार्यपालिका या न्यायपालिका को या किसी शासन-विभाग या अफसर को प्रदान की हो उसके उपभोग के सम्बन्ध में आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करने की शक्ति संघ सरकार को है।

९—किसी भी उपराज्य से अपने अधिकार में रहने वाले काम के लिये उचित शर्तों पर जायदाद खरीदना, जैसे रेल इत्यादि।

१०—सेना सम्बन्धी कामों में उपराज्यों की रेलों पर आवश्यक नियन्त्रण रखना।

कुछ अधिकार ऐसे भी हैं जो कनाडा की संघ सरकार को प्राप्त हैं परन्तु आस्ट्रेलिया की संघ सरकार को स्पष्टतया नहीं दिये गये हैं जैसे :—

१—नौतरण व नौपरिवहण।

२—समुद्रतट व देश के भीतर मछली मारना।

३—दण्ड विधि (Criminal Law)।

४—वे अधिकार जो उपराज्यों के अधिकारों की गिनती से बचे हों शेषाधिकार (Residuary powers)।

संघ सरकार से शासित प्रदेश—संघ-सरकार कुछ प्रदेशों को अपने ही शासन में रखती है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया ने अपने उत्तरी प्रदेश को पहली जनवरी सन् १९११ को संघ सरकार के सुपुर्द कर दिया था, यह प्रदेश ५२३,६२० वर्ग मील है परन्तु इसमें केवल १०,८६८ निवासी रहते हैं। पैपुआ (Papua) जो पहली ब्रिटिश गाइना (British Guinea) के नाम से प्रसिद्ध था संघ सरकार के आधिपत्य में पैपुआ ऐक्ट (Papua Act) में दी हुई शर्तों पर सितम्बर १, सन् १९०६ को आया। पैपुआ की जन-संख्या ३,०३,२३९ और क्षेत्रफल ९०,५४० वर्ग मील है। न्यू गाइनी (New Guinea) का कुछ भाग संघ सरकार को जर्मनी से वार्सा्ई की सन्धि के अन्तर्गत संरक्षित प्रदेश की तरह प्राप्त हुआ था। संघ-प्रदेश जिसमें संघ सरकार की राजधानी कैनबैरा है, न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) से सन् १९११ में खरीद लिया गया था। इसका क्षेत्रफल ९३९ वर्ग मील है और जन-संख्या १६९०५ है। जिन प्रदेशों पर संघ सरकार का पूर्ण आधिपत्य है उसके शासन-प्रबन्ध के लिये संघ सरकार ने पृथक-पृथक प्रबन्ध कर दिया है।

संघ-सरकार की आर्थिक-शक्तियाँ—आर्थिक शक्तियों के विषय में आस्ट्रैलिया की संघ सरकार, संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से अधिक

शक्तिशाली है। इसकी कर लगाने की शक्ति असीमित है। जब तक यह कर प्रत्येक उपराज्य में एक समान है। आयात-निर्यात करों पर उसे पूरा अधिकार है। संघ बनने के समय उपराज्यों के तत्कालीन ऋण का भार संघ सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था परन्तु साथ ही साथ स्वयं रुपया उधार लेने की शक्ति भी प्राप्त कर ली थी। पर पहले दस वर्ष तक आयात-निर्यात् कर से जो आमदनी हुई उसका चौथाई भाग ही संघ सरकार ने अपने पास रखा, बचा हुआ प्रतिमास उपराष्ट्रों को लौटा दिया जाता था। इस प्रकार अमरीका की अपेक्षा इसके आर्थिक अधिकार अधिक हैं पर कनाडा की सरकार की अपेक्षा कम हैं। यह भी सच है कि श्रमिक पक्ष की सरकार बनने से केन्द्रीकरण की प्रवृति बढ़ती जाती है। अमेरिका में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बना दिया है जैसे अमेरिका में अंगीभूत होने वाली इकाइयां उपराज्य (State) कहलाती हैं, वैसा ही आस्ट्रेलिया में भी है, जिससे कनाडा के प्रान्तों की अपेक्षा उनके ऊँचे पद का निर्देश होता है।

संघ विधान मंडल

आस्ट्रेलिया की विधायिनी सत्ता पार्लियामेंट में विहित है। पार्लियामेंट में, राजा, प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) और सीनेट (Senate), इन तीनों की गिनती की जाती है। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधित्व करता है और वह उन अधिकारों का प्रयोग करता है जो सम्राट ने उसको सौंप दिये हों। गवर्नर जनरल पार्लियामेंट के सम्मिलित होने का समय निश्चित करता है और अपनी घोषणा के द्वारा उसका अवसान भी करता है। उसी प्रकार से वह प्रतिनिधि सदन का विघटन भी करता है पार्लियामेंट साल में कम से कम एक बार अपनी बैठक अवश्य करती है।

सीनेट—सीनेट में जो संघ का ऊपरी सदन है, आरम्भ में ३६ सदस्य थे। प्रत्येक उपराज्य ६ सदस्यों को चुन कर भेजता था परन्तु १९४८ के प्रतिनिधि अधिनियम से यह संख्या ६० कर दी गई है और प्रत्येक उपराज्य के १० सदस्य हैं। इनकी नियुक्ति ६ साल के लिये होती है और आधे हर तीन साल बाद हट जाते हैं। इस प्रकार यह अविच्छिन्न संस्था है। सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन के लिये प्रत्येक उपराज्य एक निर्वाचन क्षेत्र रहता है पर मतदाता एक बार ही मतदान कर सकता है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाय तो सीनेट का विघटन हो सकता है। यह एक विशेषता है जो और राज्यसंगठनों म नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया की सीनेट की और दूसरी

विशेषता है जिसके कारण यह संसार की दूसरी संघ-सीनेटों की अपेक्षा अधिक लोकतंत्रात्मक है। सीनेट के निर्वाचन के लिये प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक मतधारक है और कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिधि सदन का सदस्य बनने योग्य है वह सीनेट के निर्वाचन के लिए खड़ा हो सकता है। कनाडा की सीनेट की अपेक्षा, जिसमें गवर्नर जनरल से मनोनीत व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की योग्यता के सहारे सदस्य होते हैं और अपने जीवन भर सदस्य बने रहते हैं, आस्ट्रेलिया की सीनेट अधिक लोक-तंत्रात्मक है। उपराज्यों को सीनेट में बराबर संख्या में प्रतिनिधि भेजने का यह अर्थ लगाया गया कि उपराज्यों की प्रभुता (Sovereignty) सर्वमान्य है और साथ ही साथ उपराज्यों के अधिकारों की रक्षा प्रत्याभूत समझी गई।

क्या सीनेट उपराज्य-प्रभुता का द्योतक है—व्यवहार में स्थिति भिन्न है "सीनेट से जो आशा की जाती थी वह पूरी नहीं हुई। उपराज्यों के हितों की रक्षा नहीं की है क्योंकि उन हितों पर कोई प्रश्न ही न उठा........ न यह ज्ञानी पुरुषों का सदन रहा क्योंकि कुशल राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि सदन में चले जाते हैं जहां संघर्ष के पश्चात् मंत्रिपद मिलता है। वैदेशिक नीति या उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति पर नियंत्रण जैसा कोई विशेष कर्तव्य न होने के कारण, जिनसे अमरीका सीनेट को कुछ शक्ति प्राप्त है, आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि-सदन की एक निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि भर ही है।"*

सीनेट में आकस्मिक रिक्त स्थानों का भरना—आकस्मिक रिक्त स्थानों को भरने के लिये जिस उपराज्य के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो उसके दोनों सदन मिली जुली बैठक में एक व्यक्ति को उस स्थान के बचे हुए समय तक के लिये चुन लेते हैं। यदि उपराज्य की पार्लियामेंट की बैठक न हो रही हो तो उपराज्य का गवर्नर अपनी कार्यपालिका की सलाह से एक व्यक्ति को सीनेट का सदस्य नियुक्त कर सकता है और वह व्यक्ति के चुने जाने तक, जो कोई भी पहले हो, अपने स्थान पर बना रहेगा। यदि कोई सीनेट का सदस्य लगातार दो सत्रों में उपस्थित न रहेगा तो वह सीनेट का सदस्य न रहेगा कोई भी सीनेट का सदस्य अपना त्यगपत्र सीनेट के सभापति या उसकी अनुपस्थिति में गवर्नर जनरल को भेज कर अपने पद का त्याग कर सकता है।

गणपूरक और मतदान—सीनेट अपना सभापति स्वयं चुनती है।

---

*माडर्न डैमोक्रेसीज़, भाग II, पृ० २०४।

सब प्रश्न बहुमत से निर्णित होते हैं। प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। सभापति को भी एक मत देने का अधिकार है। परन्तु जब पक्ष व विपक्ष के मत बराबर होते हैं तो प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जाता है। सीनेट की गणपूर्ति उनकी तिहाई संख्या है।

प्रतिनिधि सदन—प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) में सन् १९४८ के प्रतिनिधि कानून के अनुसार इस समय १२१ सदस्य हैं जो उपराज्यों में जनसंख्या के आधार पर वितरित हैं। न्यू साउथ वेल्ज़ के ४७, विक्टोरिया के ३३, क्वीन्सलैंड के १८, दक्षिणी आस्ट्रेलिया के १०, पश्चिमी आस्ट्रेलिया से ८ और टसमानिया के ५ प्रतिनिधि इस सदन के लिये चुने जाते हैं। सन् १९२२ के एक्ट के अनुसार उत्तरी प्रदेश के लिये तथा १९३२ में संघीय राजधानी का बिना मताधिकार वाला एक सदस्य बैठता है। सदन की अवधि तीन वर्ष है पर संविधान के अन्तर्गत और प्रचलित प्रथा के अनुसार मंत्रिमण्डल को सलाह देने पर गवर्नर-जनरल इस अवधि से पूर्व ही सदन का विघटन कर सकता है। प्रतिनिधियों के चुनाव में प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति, पुरुष या स्त्री, मत दे सकता है। प्रतिनिधि बनने के लिये व्यक्ति की आयु २१ वर्ष की होनी चाहिये, उसे मतदान का अधिकार होना चाहिये और वह कामनवेल्थ का तीन वर्ष का निवासी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे जन्मतः या कानून द्वारा बनाया हुआ ब्रिटिश जानपद होना चाहिए।

यह प्रतिनिधि सभा अपना सभापति स्वयं ही चुनती है। सभापति को साधारण तथा मत देने का अधिकार नहीं होता पर जब पक्ष व विपक्ष में मत बराबर होते हैं तो उसे निर्णय देने का अधिकार है। सभा के सब निर्णय बहुमत से होते हैं और अपनी कार्य पद्धति के नियम सभा स्वयं बनाती है।

कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सीनेट और प्रतिनिधि सदन का सदस्य नहीं हो सकता। सीनेट या प्रतिनिधि सदन का सदस्य अपनी सदस्यता खो बैठता है जब वह किसी परराष्ट्र का जानपद हो जाता है, दिवालिया घोषित हो जाता है, देश द्रोह का अपराधी सिद्ध होकर दण्डित हो जाता है या राज्य से किये हुये किसी ठेके में उसका कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित बंध जाता है। अन्तिम शर्त में अपवाद यह है कि २५ सदस्यों से अधिक सदस्यों वाली कम्पनी के सदस्य के नाते यदि उसका राज्य के ठेके में कोई हित है तो वह अपनी सदस्यता न खोयेगा। सीनेट व प्रतिनिधि सदन का प्रत्येक सदस्य प्रतिमास १००० पौंड भत्ते के रूप में पाता है और जब तक वह सदस्य

बना रहता है, सदस्यता के साधारण अधिकार, मुक्तियाँ व सुविधायें भोगता है।

विधान मण्डल की शक्तियां—दोनों सदनों को समान शक्तियां प्राप्त हैं पर कर लगानें वाले व आगम से सम्बन्ध रखने वाले, अर्थात् मुद्राविधेयक निचले सदन में आरम्भ होते हैं। कर लगाने वाले या राजकोष से साधारण वार्षिक सेवाओं के लिये धन का प्रयोग कराने वाले विधेयकों में सीनेट संशोधन नहीं कर सकती। सीनेट किसी भी विधेयक में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो जनता पर प्रस्ताविक आर्थिक भार को बढ़ा दे। "राजकीय जीवन में निचला सदन ही शक्ति-केन्द्र है पर इसकी शक्ति उस समय से घट गई जब श्रमिकों के गुप्त पक्ष की स्थापना हुई क्योंकि इस गुप्त पक्ष में सीनेट के श्रमिक-सदस्य व निचले सदन के श्रमिक सदस्य मिलकर नीति का निर्णय पहले से ही कर लेते हैं और प्रतिनिधि सदन की कार्यवाही व्यर्थ सी रहती है।" [१] यह गुप्त पक्ष ही शक्ति का केन्द्र बन गया है।

दोनों सदनों के मतभेद को सुलझाने का उपाय—जब दोनों सदनों की शक्तियां समान हैं तो सम्भव है कि उनमें कभी मतभेद हो जाये और उनमें से कोई भी अपना मत बदलने को तैयार न हो। ऐसे मतभेद का समाधान करने की रीति संविधान की ५७ वीं धारा में दी हुई है। यदि निचला सदन किसी विधेयक को पास करे और सीनेट उसे पास न करे, रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को स्वीकार न हों और यदि वह सदन तीन महीने बाद उसी सत्र में या दूसरे सत्र में उसी विधेयक को सीनेट के द्वारा किये हुये या सुझाये हुये संशोधनों सहित या उनके बिना पुनः पास कर दे और सीनेट उसे रद्द कर दे या पास न करे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को पसन्द न हों, तो गवर्नर-जनरल सीनेट और प्रतिनिधि-सदन दोनों का एक साथ विघटन कर दे। पर ऐसा विघटन निचले सदन की अवधि की साधारण समाप्ति के छः मास पूर्व वाले समय में नहीं हो सकता।

यदि ऐसे विघटन और नये निर्वाचन के पश्चात् निचला सदन उस प्रस्तावित विधेयक को सीनेट से सुझाये हुये या सीनेट द्वारा स्वीकार या समावेश किये हुये संशोधनों के साथ या बिना उनके पास कर दे और सीनेट उसे पास न करे या रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को स्वीकार न हों गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सदस्य मिलकर विचार करेंगे

---

१ मोडर्न डैमोक्रेसीज़, भाग II, पृ० २०६।

और मिलकर ही मत देंगे। वे चाहें तो एक सदन के द्वारा स्वीकार किये हुये और दूसरे से अस्वीकार हुये संशोधनों पर विचार करें या न करें। सीनेट व प्रतिनिधि-सदन की कुल संख्या के परम बहुमत (Absolute majority) से जो संशोधन स्वीकृत हो जायेंगे वे ही पास समझे जायेंगे। इनसे यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया की सीनेट को कनाडा या अमरीका की सीनेट से अधिक शक्तियां मिली हुई हैं। सीनेट के सदस्यों की योग्यता व उनके निर्वाचन की प्रजातंत्रात्मक विशेषता देखते हुए यही आशा की जाती थी।

गवर्नर जनरल की सम्मति—जब दोनों सदन किसी कानून को पास कर देते हैं तो लागू होने के पूर्व उसे गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त होनी चाहिये। गवर्नर जनरल यदि चाहे तो अपनी सिफारशों के साथ उस कानून को पालियामेण्ट के पास भेज सकता है जिससे उस पर फिर विचार हो या वह उसे सम्राट की अस्वीकृति के लिये, जो एक वर्ष के भीतर मिल जानी चाहिये, अपने पास रख सकता है। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के पास होने के पश्चात् आस्ट्रेलिया की पालियामेण्ट की व्यवस्था सम्बन्धी शक्तियों पर जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे हट गये हैं।

संघ-कार्यपालिका

संघ की कार्यपालिका सत्ता राजा (इंगलैण्ड के क्राउन के रूप में नहीं वरन् कौमनवैल्थ के क्राउन के रूप में) में विहित है और इस सत्ता का भोग गवर्नर-जनरल राजा का प्रतिनिधि होने के नाते करता है। गवर्नर-जनरल नौसेना व स्थल सेना का सेनापति भी हैं।

कनाडा की तरह आस्ट्रेलिया के संघ-शासन में भी शासन कार्य में गवर्नर-जनरल को मंत्रणा देने के लिये एक कार्यपालिका परिषद् का आयोजन है। इस परिषद् के सदस्यों को गवर्नर-जनरल आमन्त्रित कर उन्हें कार्यपालिका परिषद् के सदस्य बनाने की शपथ दिलाता है। ये सदस्य उसके अनुग्रह प्राप्त करते रहने पर अपने पद पर स्थित रहते हैं। यह तो संविधान का आयोजन है पर व्यवहार में जो होता है वह यह है कि गवर्नर प्रतिनिधि सदन में जो पक्ष बहुमत प्राप्त पक्ष होता है उसके नेता को बुला कर प्रधानमंत्री नियुक्त करता है और प्रधानमंत्री तब अपने पक्ष के लोगों की सलाह से अपने मित्र मंत्रियों को चुनता है जिन्हें गवर्नर--जनरल विधिवत् कार्यपालिका के सलाहकार नियुक्त कर देता है। इस समय प्रधानमंत्री समेत कुल कार्यपालिका परिषद् के सदस्य ११ हैं। प्रधानमंत्री अपने लिये जो काम या शासन विभाग चाहता है रख लेता है। दूसरे मंत्रियों में ये होते हैं; परिषद् का उपसभापति और सीनेट का नेता,

व्यापार-मंत्री, एटार्नी-जनरल, उद्योग मंत्री, वैदेशिक कार्य मंत्री, पोस्टमास्टर जनरल आयात निर्यात कर व व्यापार मंत्री, कोषाध्यक्ष व विकास और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अन्वेषण का प्रबन्ध करने वाले मंत्री, वायुयान व निर्माण मंत्री, सुरक्षा मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री और गृह मंत्री। प्रधान मंत्री जिस प्रकार चाहता है इन कार्य विभागों को अपने साथी मंत्रियों में बांटता है। वह परिषद् का अध्यक्ष रहता है और उसकी नीति निर्धारित करता है। उसे ८००० पौंड प्रति वर्ष वेतन मिलता है। कुछ मंत्री ऐसे भी नियुक्त किये जा सकते हैं जिनको किसी शासन विभाग का कार्य नहीं सौंपा जाता। वैधानिक प्रथा के अनुसार परिषद् प्रतिनिधि सदन को उत्तरदायी है और उसका विश्वास खोने पर पद त्याग कर देती है। परिषद् ही सामान्य शासन नीति निश्चित करती है और सिविल सर्विस उस नीति को कार्यरूप देती है।

मंत्रि-परिषद् की रचना—परिषद् के बनाने में प्रधान मंत्री उपराज्यों की इच्छा से समुचित आदर करता है और ऐसा प्रयत्न करता है कि प्रत्येक उपराज्य का कम से कम एक व्यक्ति मंत्री अवश्य हो। परिषद् सामुदायिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करती है पर यदि कोई मंत्री अपने मित्रों से कोई मौलिक मतभेद रखता है तो वह पद त्याग कर देता है। परिषद् स्वयं ही अपनी नीति निर्धारित करती है और विधान मंडल के कार्य में उसके मार्ग प्रदर्शक का कार्य करती है। पर श्रमिक पक्ष के मंत्रिमंडल के पदारूढ़ होने पर यह नीति, पक्ष की गुप्त समिति द्वारा निर्धारित होने लगी है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कामनवैल्थ की वास्तविक कार्यपालिका सत्ता मंत्रिपरिषद् में विहित है हालांकि सिद्धान्ततः यह गवर्नर-जनरल में विहित है। गवर्नर-जनरल परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं होता। वैधानिक प्रथानुसार परिषद् इतनी महत्वपूर्ण होती जा रही है कि गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट उसकी सलाह से ही करता है।

संघ न्याय-पालिका

संघ की न्यायकारी सत्ता आस्ट्रेलिया की हाईकोर्ट और दूसरा न्यायालयों में जिनको संघ पार्लियामेण्ट आवश्यक अधिकारों से शक्ति सम्पन्न बनाती है, विहित है। संघ में हाईकोर्ट सर्वोच्च न्याय संस्था है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश व छः और न्यायाधीश होते हैं। इन सब को गवर्नर जनरल नियुक्त

करता है और ये न्यायाधीश जब तक सदाचार बर्तते हैं अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। यदि एक ही सत्र में दोनों सदन गवर्नर-जनरल से प्रार्थना करें कि किसी न्यायाधीश को उसके सिद्ध हुये दुराचार या अयोग्यता के कारण पद से हटा दिया जाय तो गवर्नर जनरल मंत्रिमण्डल की सलाह से उसे हटा सकता है। जब तक न्यायाधीश अपने पद पर रहते हैं उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता। इन सब शर्तों से न्यायपालिका में स्वतन्त्रता व निरपेक्षता बनी रहती है। हाईकोर्ट अपने निर्णयों की निरपेक्षता के लिये प्रख्यात हो गई है, इसलिये अमरीकन उपराज्यों की तरह यहां इस बात का कोई पक्का प्रयत्न नहीं किया गया है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति निर्वाचन के द्वारा हो। हाईकोर्ट के प्रारम्भिक अधिकार का भोग करने वाले न्यायाधीशों के निर्णयों पर, उन छोटे न्यायालयों के निर्णयों पर जो संघ-अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते हैं और उन मुकदमों पर जो उपराज्य के सर्वोच्च न्यायालयों के पुर्नविचार करने के लिये भेजे गये हों, पुर्नविचार करने का हाईकोर्ट को अधिकार है। और इस पुर्नविचार के पश्चात् हाईकोर्ट का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

हाईकोर्ट की शक्तियाँ—यदि हाईकोर्ट स्वयं ही प्रमाण-पत्र द्वारा अनुमति दे तो उसके निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति में अपील की जा सकती है। पर राजा स्वयं भी प्रिवी कौंसिल में अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। आगे कहे हुये विषयों में हाईकोर्ट प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है : जब किसी ऐसी संधि के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो जो वैदेशिक प्रतिनिधियों से सम्बन्ध रखता हो, या जिसमें संघ सरकार वा उसकी ओर से कोई व्यक्तिवादी या प्रतिवादी हो, जब दो उपराज्यों व उसके निवासियों या एक उपराज्य के किसी निवासी के बीच झगड़ा हो, या जब किसी संघ सरकार के अफसर के विरुद्ध यह आज्ञापत्र मांगा जा रहा हो कि उस अफसर की आज्ञाओं का पालन न हो।

पार्लियामेण्ट कानून बना कर किसी भी विषय में हाईकोर्ट को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार दे सकती है यदि वह विषय शासन विधान के अन्तर्गत उठा हो, या नावाधिकरण क्षेत्राधिकार तथा सामुद्रक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी पार्लियामेण्ट के किसी कानून के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो या जब उस विषय का सम्बन्ध ऐसे मामलों से हो जो दो या अधिक उपराज्यों के कानून के भीतर आता है।

इससे यह प्रकट है कि हालांकि हाईकोर्ट के निर्णयों के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील हो सकती है, पर अधिकारक्षेत्र की दृष्टि से यह हाईकोर्ट बहुत कुछ

अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय से मिलती जुलती है और इसकी शक्तियां कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय से निश्चय ही अधिक हैं। प्रायः प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति देने से इन्कार कर हाईकोर्ट ने वह स्वतन्त्रता व महत्ता प्राप्त कर ली है जो कनाडा की हाईकोर्ट को प्राप्त नहीं है।

संविधान का संशोधन

संविधान-संशोधन की रीति कनाडा की रीति से भिन्न और अमरीकन रीति से मिलती जुलती है। कनाडा को संविधान में संशोधन ब्रिटिश पार्लियामेंट ही कर सकती है, कम से कम सिद्धान्ततः तो यही ठीक है। परन्तु आस्ट्रेलिया का शासन-विधान अधिक लोक तंत्रात्मक है, उसका संशोधन आगे दी हुई दो रीतियों में से किसी एक के अनुसार हो सकता है।

(१) प्रस्तावित संशोधन पहले दोनों सदनों में परम मताधिक्य से पास होना चाहिये। उसके दो मास के बाद पर छः मास से पहले यह संशोधन प्रत्येक उपराज्य के उन निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाना चाहिये जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को चुनते हैं।

(२) यदि प्रस्तावित संशोधन एक सदन में परम मताधिक्य से पास हो जाय। पर दूसरा सदन उसे पास न करे, या रद्द कर दे या ऐसे परिवर्तन करके पास करे जो पहले सदन को पसन्द न हों और यदि तीन मास बीतने पर पहला सदन उस प्रस्तावित संशोधन को फिर परम मताधिक्य से पास कर दे (उसी सत्र में या अगले सत्र में) और यदि दूसरा सदन पूर्व सदन की पसन्द के अनुसार उसे पास न करने पर अड़ा रहे, तो गवर्नर जनरल पूर्व सदन से अन्तिम बार प्रस्तावित संशोशध को बिना उन परिवर्तनों के या उन परिवर्तनों के साथ जो बाद में दोनों सदनों ने मान लिये हों, उप-राज्यों के निवाचकों के सम्मुख रख सकता है जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के चुनाव में भाग ले सकते हैं।

संशोधन का प्रस्ताव निर्वाचकों के सम्मुख रखे जाने पर यदि बहुसंख्यक उपराज्यों के बहुसंख्यक मतदाता और सारे आस्ट्रेलिया संघ के मतदाताओं की अधिक संख्या उस संशोधन को स्वीकार कर लें तो वह प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। इसके पश्चात् यह स्वीकृत प्रस्ताव सम्राट की ओर से सम्मति देने के लिये गवर्नर जनरल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्मति अब व्यवहार में रोकी नहीं जा सकती।

संविधान-संशोधन के सम्बन्ध में पार्लियामेण्ट पर प्रतिबन्ध— पार्लियामेण्ट विधान-संशोधन के द्वारा किसी भी केन्द्रीय-सदन में किसी

उपराज्य के अनुपाती प्रतिनिधित्व को या प्रतिनिधि-सदन में उसके प्रतिनिधियों की कम से कम संख्या को घटा नहीं सकती। न किसी उपराज्य की सीमा न संविधान के वे प्रविधान जिनसे उपराज्य का पद स्थिर हुआ हो, बदले जा सकते हैं, जब तक उस उपराज्य में मतदाताओं के बहुसंख्यकों ने इसे स्वीकार न कर लिया हो।

उपराज्य और स्थानीय शासन

आस्ट्रेलिया-संघ में छः उपराज्य हैं जिनकी राजधानी व जनसंख्या नीचे सारिणी में दी है:—

उपराज्य का नाम	राजधानी	क्षेत्रफल (वर्ग मीलों में)	जनसंख्या (३१-१२-४७ को अनुमानित)
न्यू साउथ वेलस	सिडनी	३०९, ४३३	२९,८४,८३८
विक्टोरिया	मेलबोर्न	८७,८८४	२०,५४,७०१
क्वीन्सलैंड	ब्रिज़बेन	६७०,५००	११,०६,४१५
दक्षिणी आस्ट्रेलिया	ऐडिलेड	८८०,०७०	६,४६,०७३
पश्चिमी आस्ट्रेलिया	पर्थ	९७५,९२०	५,०२,४८०
टसमानिया	होबार्ट	२६,२१५	२,५७,०७८

संघ सरकार उत्तरी प्रदेश, संघ-राजधानी-प्रदेश, पैपुआ और संरक्षित प्रदेशों पर स्वयं शासन करती है।

संघ स्थापित होने से पूर्व उपराज्य स्वतन्त्र थे—कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट जिससे आस्ट्रेलिया में संघ शासन की स्थापना हुई, उसके पास होने से पूर्व आस्ट्रेलिया के प्रान्त एक दूसरे के आश्रित न थे। उनमें उत्तर-दायी स्वायत्त-शासन होता था और वे ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की आधीनता स्वीकार करते थे पर आपस में वे एक दूसरे के आधीन न थे। तात्पर्य यह है कि उनकी वही स्थिति थी जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उपराज्यों की सन् १७७७ से पूर्व थी। यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि प्रत्येक प्रांत या राज्य की जनता की स्पष्ट इच्छा से ही संघ की स्थापना हुई। इसलिये संघ की स्थापना राज्यों की सम्मति से हुई और उन्होंने केवल वही अधिकार व शक्तियां केन्द्रिय सरकार के सुपुर्द किये जिनको उन्होंने देश के हित में आवश्यक समझा। सन् १९०० के एक्ट ने इसीलिये राज्यों के स्वतन्त्र पद को मान्य स्वीकार कर यह निश्चय कर दिया कि उनका शासन विधान वही रहेगा जो

संघ की स्थापना के समय या संघ में शामिल होने के समय वर्तमान था। यह शासन विधान उसी संविधान में दी हुई पद्धति से बदला अवश्य जा सकता है।

उपराज्यों की शक्तियाँ—प्रत्येक राष्ट्र की वे शक्तियां सुरक्षित हैं जो सन् १९०० के शासन-विधान द्वारा संघ सरकार को नहीं दे दी गई हैं। ऐसी ही स्थिति संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के उपराज्यों की है। इसके विपरीत कनाडा में विशेष शक्तियां प्रांतों को न देकर औपनिवेशिक सरकार को दी गई हैं और प्रांतों को वे ही शक्तियाँ व अधिकार प्राप्त हैं जो ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट ने उनको दिये हैं। इस प्रकार अमरीका संघ व आस्ट्रेलिया संघ की अंगीभूत इकाइयों का पद कनाडा के प्रांतों के पद से ऊँचा है। आस्ट्रेलिया व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उपराज्यों के बनाये हुये अधिनियमों को संघ सरकार रद्द नहीं कर सकती पर कनाडा में गवर्नर-जनरल किसी भी प्राँतीय अधिनियमों को रद्द कर सकता है।

गवर्नर—अमरीका में उपराजकीय शासन के अध्यक्ष को जो गवर्नर कहलाता है, जनता चुनती है और वह संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के प्रेसीडेंट के किसी प्रकार भी आधीन नहीं होता। आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में एक गवर्नर होता है जिसको सम्राट् नियुक्त करता है और जो न तो उपराज्य की जनता को न गवर्नर जनरल को उत्तरदायी होता है, परन्तु कनाडा में प्रांत का शासनाध्यक्ष लेफ्टिनेंट गवर्नर कहलाता है और गवर्नर जनरल द्वारा ही नियुक्त होता है व हटाया जाता है। इसलिये वह गवर्नर-जनरल का मातहत ही है। उपराज्यों की न्यायपालिका आस्ट्रेलिया व कनाडा के प्रान्तों के न्याय-पालिकाओं की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है, वे संघ न्यायपालिका के उतने आधीन नहीं जितने कि कनाडा में हैं। संक्षेप में अमरीका के उपराज्यों को अधिक से अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता है, उसमें कम शक्तिशाली और स्वतन्त्र आस्ट्रेलिया के उपराज्य हैं और सब से कम शक्तिशाली कनाडा के प्रांत हैं।

उपराज्यों के विधान मण्डल—आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में दो सदन का विधान मंडल है। ऊपरी सदन कौंसिल और निचला सदन असेम्बली के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों में से असेम्बली ही अधिक प्रभावशाली है। "यह आय-व्यय पर नियन्त्रण रखती है और मंत्रिमण्डलों को बनाती बिगाड़ती है। इसलिये इसी में योग्य व सामर्थ्यवान् व्यक्ति आने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय संघ सरकार के बन जाने से उपराज्यों की असेम्बलियों का पहला सा महत्व नहीं रहा पर अब भी उनका इतना महत्व है कि कम से कम बड़े उपराज्यों में वे व्यक्ति जो जनमत से शीघ्र प्रभावित होते हैं, जो

व्यवहार कुशल हैं और राजनैतिक युद्ध लड़ना जानते हैं, इनमें निर्वाचित होकर आते हैं।"* पर कौंसिलें, चाहे वे लम्बी अवधि वाली हों या थोड़ी अवधि वाली, शांत संस्थाएँ हैं। उनकी बैठक थोड़े समय के लिये ही होती है और मन्त्रिमण्डल के बनने बिगड़ने से उनका सम्बन्ध न होने से वे अधिक महत्व नहीं रखतीं। जब दोनों सदनों में कार्यवरोधक मतभेद हो जाता है उस समय ही ये राजनीति में थोड़ा सा भाग लेती है सो भी बहुत साधारण सा। ये कौंसिल अमरीकन उपराज्यों की सीनेटों से बहुत कम मिलती जुलती हैं, न उनकी तुलना फ्रांस की सीनेट से की जा सकती है क्योंकि उनमें बहुत थोड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो राजनीति में विख्यात हों। पर फिर भी उन्होंने जो काम अब तक किया है वह उनके अस्तित्व के समर्थन में पर्याप्त हैं। उन्होंने जल्दबाज विधायकों को बाध्य कर दिया है कि वे अपने प्रस्तावों पर पुर्नविचार कर संशोधन करें और उनका पुर्ननिर्माण करें।

उपराज्यों की विधायिनी शक्ति—उपराज्यों की विधायिनी शक्ति कनाडा के प्रांतों के अधिकार से अधिक हैं पर अमरीकन उपराज्यों के अधिकारों से कम हैं। संघ-सरकार को जो मामले नहीं सौंपे गये हैं उन सब में उपराज्यों को कानून बनाने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ समवर्ती शक्तियां (Concurrent powers) भी हैं जिनका उपभोग वे संघ पार्लियामेंट के साथ साथ करती हैं। यदि उपराज्य का कानून संघ-कानून के विरुद्ध हो, तो उपराज्य का कानून जहाँ तक ऐसा विरोध है अमान्य हो जाता है। संविधान की ११४ व ११५ वीं धारा के अनुसार उपराज्य कोई स्थल या जल सेना बिना पार्लियामेंट की सम्मति से न भर्ती करेगा न संगठन व पालन करेगा। न उपराज्य संघ सरकार की सम्मति पर कोई कर लगायेगा। संघ सरकार भी उपराज्यों की सम्पत्ति पर कोई कर न लगायेगी। ११५ वीं धारा से उपराज्य के मुद्रा बनाने पर निषेध लगाया गया है। कोई उपराज्य सिवाय सोने और चांदी के सिक्कों के दूसरी किसी वस्तु को ऋण चुकाने का माध्यम न बनायेगा। संविधान की ११६ वीं धारा के अनुसार कौमनवेल्थ ऐसा कोई कानून न पास करेगी जिससे किसी धर्मविशेष को मान्य ठहराया जाय या कोई धर्म व्यवहार लोगों पर लादा जाय या किसी धर्म के आचरण पर रोक लगाई जाय। एक दूसरी धारा के अनुसार संघ सरकार उपराज्य की कार्य-पालिका की प्रार्थना पर उपराज्य की बाहरी आक्रमण या भीतरी विद्रोह से रक्षा करेगी।

* मोडर्न डेमोक्रेसीज, भाग II, पृ० २०१—२।

उपराज्य की कार्यपालिका सत्ता गवर्नर में विहित है जो उपराज्य की मन्त्रिपरिषद की सिफारिश पर सीधे सम्राट् द्वारा नियुक्त होता है। उपराज्य का निवासी उसी उपराज्य का गवर्नर नहीं बनाया जाता। गवर्नर केवल वैधानिक अध्यक्ष ही होता है वास्तव में तो मन्त्रिपरिषद ही सब काम करती है। यह परिषद् साधारण रीति से बनती है और असैम्बली को उत्तरदायी होती है।

न्याय संगठन—प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक न्याय संगठन है जिसकी चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय रहता है और इसके निर्णयों की अपील संघ-हाईकोर्ट में होती है।

संघ पार्लियामेंट में नये उपराज्यों को शामिल कर सकती है और नये उपराज्य स्थापित कर सकती है।

हालांकि आस्ट्रेलिया के उपराज्यों की स्वतन्त्रता की मात्रा बहुत है, इतना होने हुये भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने विद्रोह करने की ठाना। वहां के विधान मंडल ने सन् १९३२ में एक एक्ट पास किया जिसके अन्तर्गत संघ से पृथक होने के प्रश्न पर लोकनिर्णय लिया गया। इस लोक निर्णय में ६७९४७ मत पृथक होने के पक्ष में अपेक्षाकृत अधिक पड़े। जब मताधिक्य से इस प्रकार जनमत पृथकीकरण की ओर झुका हुआ सिद्ध हुआ तो उपराज्य की सरकार ने यह प्रश्न ब्रिटिश सरकार के सामने रखा पर ब्रिटिश सरकार ने सब बातों को विचार कर यह निर्णय किया कि उपराज्य का संघ से पृथक होना संघ-शासन-प्रणाली के विरुद्ध है और इसलिए पश्चिमी आस्ट्रेलिया की मांग अस्वीकृत कर दी। ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय ने ब्रिटिश संघ प्रणाली पर बड़ा प्रभाव डाला है।

राजनैतिक पक्ष

प्रारम्भ में पक्षों का अभाव—जब पृथक पृथक आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों को उत्तरदायी स्वायत्त शासन का अधिकार मिला उस समय ब्रिटेन में जैसी शासन संस्थायें थीं वैसी ही इन उपनिवेशों में भी बनाई गई। इन शासन संस्थाओं का संचालन एक सुसंगठित पक्ष प्रणाली पर निर्भर करता है। जब एक संगठित पक्ष की पदासीन सरकार का विरोध करने के लिये एक सुसंगठित अल्पसंख्यक पक्ष रहता है, तो निश्चय ही वाद-विवाद रुचि पूर्ण होता है और योजनाओं के गुण-दोष का विचार भी भली भांति होता है। पर प्रारम्भ में उपनिवेशों के बसने वालों में आपस के कोई विरोधी हित न थे। उनमें अधिकतर क्या ९९ प्रतिशत अंगरेज थे इसलिये जाति, भाषा व संस्कृति

का भेद न था। वे ऐसे देश में आकर बसे थे जो बिल्कुल नया था और विस्तृत भूमि-प्रदेश उनके सामने खुला पड़ा था जिसे वे मन-चाहा काम में ला सकते थे। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने आपको राजनैनिक पक्षों में संगठित करने का समय या अवसर ही न था। "परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक बड़ी गड़बड़ चलती रही। मन्त्रिमण्डल बनते थे और बिगड़ते थे और किसी भी मन्त्रिमण्डल को बहुत समय तक समर्थन पाने का भरोसा न रहता था।" × विक्टोरिया में सात वर्ष में आठ मन्त्रिमण्डल बने और बिगड़े और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में ४० वर्ष में ४१ मन्त्रिमण्डल।

पक्षों के आधारभूत आर्थिक प्रश्न— उत्तरदायी शासन के प्रारम्भिक काल में प्रौढ़ मताधिकार के मिल जाने के कारण वैधानिक प्रश्नों का अस्तित्व ही न था। इसलिये जिन प्रश्नों पर राजनीतिज्ञों में भेद उत्पन्न हुआ, वे आर्थिक प्रश्न थे। संरक्षणवादियों व निःशुल्क व्यापारवादियों के दो पक्ष पहले से ही चले आ रहे थे। संरक्षणवादियों की न्यू साउथ वेल्स में प्रधानता थी और निःशुल्क व्यापारवादियों की विक्टोरिया में। केवल १९वीं शताब्दी के अन्त में ही आस्ट्रेलिया की राजनीति में नये प्रश्नों का आविर्भाव हुआ। श्रमिकों के नेताओं ने अपना संगठन करना आरम्भ किया और ऐसे सब संगठनों की तरह उन्होंने भी आठ घंटे के काम और अधिक मजदूरी मिलने की मांग सामने रखी। 'प्रत्येक उपनिवेश में छोटे-छोटे अनेक पूर्वस्थित संघों को मिला कर व्यापार व श्रमिक समितियाँ बनने लगीं और उनके नेता इस प्रकार राजनीति में भाग लेने लगे जो पूर्व समय के मजदूर संघियों को स्यात् पसन्द न था।"१ ये श्रमिक संघ बड़े होने लगे और उन्होंने विधान-मण्डलों में कुछ स्थान प्राप्त करने में सफलता भी पाई। उनका संगठन बहुत दृढ़ होने के कारण मंत्रिमण्डलों को कभी कभी उनकी मांगें स्वीकार करनी पड़ती थीं।

संघ पार्लियामेण्ट के लिये जब प्रथम निर्वाचन हुआ तो दोनों सदनों की १११ सीटों में से २४ श्रमिक पक्ष को मिलीं। दूसरे पक्ष वही संरक्षणवादी और निःशुल्क व्यापारवादी थे। पर इन दोनों में किसी की भी संख्या इतनी न थी जो उनके अतिरिक्त पक्षों की संख्या से अधिक होती है। अर्थात् उनका परम मताधिक्य न होने से श्रमिक पक्ष के हाथ में ही शक्ति प्राप्त कराने की कुंजी

× वुड: कंस्टीट्यूशनल डेवलपमेंट आफ आस्ट्रेलिया, पृ० १९३।

१ मार्डन डेमोक्रेसीज़, भाग ११ पृ० २२४।

थी। इसलिये प्रारम्भ में मंत्रिमण्डल थोड़े समय तक ही अपने स्थान पर टिक पाते थे। श्रमिक पक्ष के शक्तिशाली होते जाने के कारण दूसरे दो पक्षों ने मिल जाने में ही अपना श्रेय समझा। उनके मिल जाने का कारण उनके दृष्टि-कोण की समानता न थी पर कारण यह था कि वे दोनों ही समाजवाद के विरोधी थे। सन् १९१० के निर्वाचन में श्रमिक पक्ष के प्रतिनिधियों का प्रतिनिधि सदन में काम चलाऊ मताधिक्य था और सीनेट मे वह बहुसंख्यक थे। इसलिये श्रमिक पक्ष का मन्त्रिमण्डल बना।

"इस प्रकार उस त्रिभुजाकार संघर्ष का अन्त हुआ जिसके कारण संघ शासन की स्थापना के पश्चात् दस वर्षों में छः बार मंत्रिमण्डल में परिवर्तन हुए जिसके कारण मन्त्रिमण्डलों में अस्थिरता रहती थी व षड्यंत्र आदि को प्रोत्साहन मिलता था। इसके पश्चात् पुराने दोनों पक्ष मिलकर एक हो गये और उन्होंने अपना नाम राष्ट्रीय पक्ष रखा। उपराज्यों को विधान मंडलों में भी ऐसी ही घटनायें हुईं जिसके फलस्वरूप केवल दो ही राजनैनिक पक्ष श्रमिक और राष्ट्रीय रह गये।

कुछ समय के बाद कृषकों ने श्रमिक-पक्ष के कुछ सदस्यों को अपनी तरफ मिलाकर अपना पृथक संगठन किया। राष्ट्रीय पक्ष ने भी अपना नाम बदल कर यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी (United Australia Party) रख लिया और ऐसा कार्यक्रम बनाया जो समाजवाद-विरोधी था। इस प्रकार अब आस्ट्रे-लिया में तीन राजनैतिक पक्ष हैं। श्रमिक-पक्ष सबसे अधिक दृढ़ और सुसंगठित पक्ष है इसीलिये इसकी सबसे अधिक ख्याति है। सारे देश के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में इसकी ट्रेड यूनियन कौंसिल (Trade Union Council) और पोलिटिकल लेबर लीग (Political Labour League) है। इस कौंसिल के सदस्य को पत्र के कौंसिल के संविधान पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिसके अनु-सार सदस्य को कड़े अनुशासन में रहना पड़ता है। उपराज्यों के विधानमण्डलों के निर्वाचन होने के पहले ही इन कौंसिलों व लीगों के प्रतिनिधि मिलकर निर्वाचन का कार्यक्रम विचार करने के बाद निश्चय करते हैं। जब एक बार यह कार्यक्रम बहुमत से स्वीकार हो जाता है तब सबको इसे मानकर काम करना पड़ता है। विधान-मण्डल के उम्मेदवारों को एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं कि विधान-मंडल में पक्ष की गुप्त समिति की आज्ञा का पालन करेंगे। यही नहीं विधान-मण्डल पद त्याग करने वाले कोरे त्यागपत्र पर उनके हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं। ये त्यागपत्र गुप्त समिति के पास रखे रहते हैं और भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर काम में लाये जाते हैं।

इसी प्रकार सब संघ पार्लियामेंट के लिये निर्वाचन होता है, हरएक उपराज्य में स्थित पक्ष के केन्द्रीय संगठन के छः प्रतिनिधि एक सम्मेलन में एकत्रित होते हैं और केन्द्रीय निर्वाचनों के लिये अपना नीति सम्बन्धी एक घोषणा पत्र व कार्यक्रम तैयार करते हैं। जिन व्यक्तियों को उम्मेवार चुना जाता है वे प्रतिज्ञापत्रों व त्याग-पत्रों पर हस्ताक्षर करते हैं, जैसा उपराज्यों के निर्वाचनों में होता है।

निर्वाचनों के समाप्त हो जाने पर संघ-विधान मण्डलों में व उपराज्य विधान मण्डलों में श्रमिक पक्ष के सब सदस्य संगठित रूप से कार्य करते हैं और कड़े अनुशासन में रहते हैं। वे सप्ताह में कम से कम एक बार बन्द कमरे में एकत्रित होकर विधानमंडल में जो योजनायें विचाराधीन हों उन पर अपना क्या दृष्टिकोण हो, यह निश्चित करते हैं। जब श्रमिक पक्ष का ही मंत्रि मण्डल होता है तब भी यह बैठकें होती हैं और यह गुप्त समिति ही, न कि मंत्रिमण्डल सरकार की नीति का निर्णय करती है। मंत्रिपरिषद् के बनाने में यह समिति ही मंत्रियों को चुनती है। प्रधान मंत्री को अपने मित्र-मंत्रियों के चुनने की स्वतंत्रता नहीं रहती। प्रत्येक मंत्री अपने शासन प्रबन्ध के लिये समिति को उत्तरदायी रहता है न कि प्रधान मंत्री को। जब इस पक्ष की विधान मंडल में बहुत अधिक संख्या होती है तब तो इसके कड़े अनुसान व दृढ़ संगठन के कारण विरोधी पक्ष शक्तिहीन हो जाता है। हालांकि यह प्रणाली संसदात्मक शासन पद्धति की भावना पर कुठाराघात करती है पर इससे शासन में स्थिरता व शक्ति अवश्य आ जाती है।

यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी ने भी श्रमिक पक्ष जैसा संगठन उपराज्यों में व संघ में बना रखा है। परन्तु आस्ट्रेलिया की जैसी वर्तमान स्थिति है उसमें श्रमिक पक्ष का कार्यक्रम अधिक आकर्षक है जिससे जनमत उसके साथ है।

इन राजनैतिक पक्षों के कार्यक्रम ऐसे हैं कि उपराज्य अपने पृथक् व्यक्तित्व को भूलते जा रहे हैं। प्रतिनिधि-सदन तथा सीनेट में अब मतभेद किसी उपराज्य विशेष के हित-अहित के आधार पर नहीं होता पर अधिक व्यापक विषयों पर होता है जो सारे संघ के हित से सम्बन्धित है। इससे आस्ट्रेलिया में संघ शासन प्रणाली पर महत्वशाली प्रभाव पड़ रहा है। उप-राज्यों की पृथकत्व-भावना के स्थान पर केन्द्रीय सरकार की शक्ति अब बढ़ती जा रही है। इस सब का अधिक श्रेय विशेषकर श्रमिक-पक्ष को है जिसकी नीति ही आस्ट्रेलिया को एक दृढ़ सम्बन्ध सूत्र में बांधना है।

पाठ्य पुस्तकें

Bryce, Viscount—Modern Democracies,
Vol. II chs. XLVI—LII (Macmillan & Co., 1923).

Cramp, K. R.—The State and Federal Constitution of Australia (1914 Sydney).

Egerton, H. E.—Federations and Unions in the British Empire pp. 40-47, and 185-230 (Oxford).

Hunt, E. M.—American Precedents in the Australian Commonwealth, (1930 Columbia).

Keith, A. B.—The Constitution, Administration & Laws of the Empire (Collins, 1924).

Newton, A. P.—Federal and Unified Constitutions, pp. 295 301 311-358 and Introduction.

Portus, G. V.—Studies in the Australian Constitu tion, 1933 (London).

Quick & Garron—Annotated Constitution of the Australian Commonwealth (London 1901).

Sharma, B. M.—Federal Polity, Chs. II C (vi) III & IV, (U. I. P. H. Lucknow, 1931).

Wheare, K. C.—The Statute of Westminster, (Oxford, 1933).

Wood, F. L. W.—The Constitutional Development of Australia pp 200-254 (Harrap, London 1933).

Select Constitutions of the World, pp. 309-352.

अध्याय १९

संयुक्त-राज्य अमेरिका का संघ-शासन

> "जैसे अमेरिका अंग्रेरेज़ी बन गया वैसे ही उपनिवेशों में अंग्रेरेज़ी संस्थायें अमरीकी बन गईं। इन संस्थाओं में पृथक पृथक उपनिवेशों के राजनैतिक जीवन की नयी स्थितियों व नई सुविधाओं के अनुकूल अपने आपको ढाल लिया; ये उपनिवेश प्रारम्भ में कठिनाइयों से लड़े, फिर विस्तृत हुए और अन्त में विजयी हुए। इन्होंने बिना अंग्रेरेज़ी स्वभाव छोड़े अमेरिकन रूप व रस प्राप्त कर लिया।"
>
> (वुड्रो विलसन)

संयुक्त-राज्य अमेरिका नई दुनिया की सबसे बड़ी इकाई है। इसका क्षेत्रफल ३,६७३,६६० वर्ग मील है और जनसंख्या १४६,५७१,००० है। इन संख्याओं में संयुक्त राज्य के आधीन उपनिवेशों व प्रदेशों की भी संख्यायें शामिल हैं। संघ के ४८ उपराज्यों का ही कुल क्षेत्रफल २,६७३,७७६ वर्ग मील है और जनसंख्या १२२,७७५,०४६ है। यह देश पश्चिम में प्रशान्त महासागर व पूर्व में अटलांटिक महासागर के मध्य स्थित है। इसकी भौगोलिक विभिन्नता से बहुत सी राजनैतिक समस्याएँ खड़ी हुई और उसी से उन समस्याओं के सुलझाने की रीति भी निश्चित हुई। लगभग प्रत्येक राष्ट्रीय प्रश्न में भौगोलिक परिस्थिति ने संयुक्त-राज्य के राजनैतिक जीवन पर अपना प्रभाव डाला है। आधुनिक युग में संयुक्त-राज्य अमेरिका का ही प्रथम ऐसा उदाहरण है जहाँ ऐसी पृथक इकाइयों को मिलाकर एक वास्तविक जनतांत्रिक संघ-राज्य की स्थापना हुई जिनके हितों का स्वतन्त्रता-युद्ध (War of Independence) से पूर्व कहीं भी मेल न होता था।

शासन विधान का इतिहास

पूर्वकालीन उपनिवेश—संयुक्त-राज्य अमेरिका के शासन को संसार

का सबसे महान राज्य-शासन प्रयोग समझा जाता है। प्रारम्भ में अटलांटिक के तट पर अंग्रेजों द्वारा बसाये हुए १३ उपनिवेश थे। इन उपनिवेशों में अंग्रेजों के अतिरिक्त यूरोप की कुछ दूसरी जातियों के लोग भी आकर बसे थे पर उनकी संख्या अधिक न थी। ये प्रवासी अपने साथ अपनी मातृभूमि की राज-नैतिक संस्थायें भी लाये थे और भावनायें भी। इस बात का नई दुनिया के इतिहास पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। ये उपनिवेश तीन प्रकार के थे:—

(१) **सम्राट् के उपनिवेश**—(Crown Colonies) जिनमें न्यू हैम्प-शायर, न्यूयार्क, न्यूजर्सी, उत्तरी व दक्षिणी कैलौरीना और जॉर्जिया शामिल थे। प्रत्येक में गवर्नर शासन करता था जो सम्राट की शक्ति का प्रतीक था। उसकी सहायता करने के लिए एक कौंसिल होती थी।

(२) **स्वाम्याधीन उपनिवेश**—(Proprietory Colonies) जिन में पैंसिलवेनिया, डेलावेयर और मेरीलेंड शामिल थे। उनका शासन ऐसे व्यक्तियों के अधीन था जिन्होंने शासन करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन व्यक्तियों का इन उपनिवेशों से वही सम्बन्ध था जो सम्राट का अपने उपनिवेशों से।

(३) **चार्टर उपनिवेश**—(Charter Colonies) इसमें रोडद्वीप और कनैक्टीकट शामिल थे। इनका शासन वहां के नागरिकों को सीधे सम्राट ने अपनी आज्ञा से सुपुर्द कर दिया था।

उपनिवेशों में समानताएँ—शासन-संगठन की साधारण विभिन्नताएँ इन उपनिवेशों में पाई जाती थीं परन्तु समानताएँ अधिक थीं। "सब उपनिवेशों में निर्वाचित असेम्बलियों और राजसत्ता में नियुक्त गवर्नर व उसकी कौंसिल के बीच झगड़ा चलता रहता था। गवर्नरों को ऊपर से ऐसे आदेश मिलते थे जो प्रायः उपनिवेशों के रहने वालों के विचारों से या उनके हितों से मेल न खाते थे। उपनिवेश निवासी निस्संदेह सम्राट के प्रतिनिधियों को हैरान करके क्रुद्ध करते थे। किन्तु साथ ही साथ यह भी बात थी कि जो अफ़सर इंगलैण्ड से भेजे जाते थे, वे विवेकहीन होते थे, जिनका परिणाम यह होता था कि वह अनावश्यक ही अमेरिकन भावनाओं पर आघात किया करते थे।"※ इसका परिणाम यह हुआ था कि शासक व शासितों के हितों में बड़ा भेदसंघर्ष खड़ा हो गया। अन्त में लोग असेम्बली को अपना मित्र और गवर्नर को अपना वैरी मानने लगे। दूसरे शब्दों में, विधानमंडल लोकप्रिय हो गई और कार्यपालिका लोक-अप्रिय बन गई।............इस संघर्ष का एक परिणाम यह हुआ कि

※ टी०एच०रीड—फौर्म्स एण्ड फंकशंस आफ़ अमेरिकन गवर्नमेंट, पृ० १०-१८।

असेम्बली अर्थात् विधानमंडल का अध्यक्ष जो स्पीकर के नाम से विख्यात था और जो सभा का नेता व लोकेच्छा से शक्ति पाया हुआ सबसे बड़ा अफसर था, राज्य संगठन में सब से प्रभावशाली राजनैतिक नेता बन गया।*

उपनिवेश-निवासी अँगरेजी संस्थायें चाहते थे—उपनिवेश निवासियों ने अपनी मातृभूमि की राजनैतिक संस्थाओं को जहां तक सम्भव हो सका, अपने नये देश में चलाने का प्रयत्न किया। उनकी सबसे मूल्यवान् पैतृक सम्पत्ति "इंगलिश कामन ला" थी, जिसके अन्तर्गत अंगरेजों के वे सब मौलिक अधिकार सुरक्षित हैं, जिन्हें राजा भी नहीं छीन सकता और एक समय तो वे इतने आदरणीय थे कि यह माना जाता था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट का अधिनियम भी उनको नहीं मिटा सकता[1]। अन्त में इन्हीं अधिकारों के ऊपर झगड़ा यहां तक बढ़ा कि उपनिवेशों व मातृभूति में विच्छेद हो गया। सन् १७५०-७५ के बीच में उपनिवेश-वासियों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की उन अधिकारों के कुचलने की अनाधिकार चेष्टा के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट किया। उन्होंने सम्राट व पार्लियामेंट से लगाये हुए करों को देना अस्वीकार कर दिया और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" के सिद्धान्त पर अड़ गये जो अँगरेजों की राजनैतिक बाइबिल का प्रथम आदेश है।

'मातृभूमि' के विरुद्ध युद्ध घोषणा—अन्त में इन १३ उपनिवेशों ने इंगलैंड और उसके सम्राट के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी और ४ जुलाई सन् १७७६ को एक मत होकर यह घोषणा प्रकाशित की:—

"यह कि ये संगठित उपनिवेश स्वतन्त्र व मुक्त राज्य हैं और उनका यह अधिकार है कि वह स्वतन्त्र व मुक्त रहें, यह कि वे ब्रिटिश सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा से प्रतिबन्धित नहीं है, यह कि ग्रेट ब्रिटेन व उनके बीच राजनैतिक यातायात बन्द है और बिल्कुल बन्द होना चहिए और यह कि स्वाधीन और मुक्त राज्य होने से उन्हें युद्ध, सन्धि, सुलह और वे सब बातें और कार्य करने का अधिकार है जिन्हें मुक्त व स्वतन्त्र राज्य अधिकारी होने से वे कर सकते हैं।"

इस प्रसिद्ध घोषणा में "मुक्त व स्वतन्त्र राज्य अधिकारी होने से कर सकते हैं" शब्दों का उपनिवेशों के वैधानिक संघर्ष पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

---

* उसी पुस्तक में पृ० १९।
कनाडा में पैपीनाऊ और भारतवर्ष में वी० बी पटेल का भी ऐसा ही उदाहरण है।
[1] उसी पुस्तक में पृ० २१।

अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करने के बाद तुरन्त ही उपनिवेश-वासियों ने सब से प्रथम अपना ध्यान संगठित होकर युद्ध करने की ओर दिया। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये उन्होंने जून सन् १७७६ को एक समिति नियुक्त कर संघ की नियमावली का लेख बनवाया। इस नियमावली को राज्यों की कांगरेस ने १५ नवम्बर सन् १७७७ को स्वीकार किया। यद्यपि इस नियमावली को अनुसमर्थन (Ratification) अर्थात् अनुमोदन सब राज्य १७८१ से पूर्व न कर पाये किन्तु उसको कांग्रेस के पास होने के बाद तुरन्त ही लागू कर दिया गया। इस नियमावली की पहली धारा से संघ का नाम "संयुक्त-राष्ट्र अमेरीका" रख दिया गया। यही नाम अब तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है। दूसरी धारा में यह लिखा था कि प्रत्येक राज्य अपनी उस स्वन्त्रता व सत्ता, और हर प्रकार की शक्ति व अधिकार का स्वामी है जिसको सब स्थापित कर संयुक्त-राज्य की काँग्रेस को नहीं सौंपा गया है। इससे स्पष्ट है कि राज्य अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में कितने संदेही व सावधान थे और वे कुछ मिश्रित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही संगठित हुये जो तीसरी धारा में दिये हुए थे। तीसरी धारा यह थी: 'पूर्ववर्णित राज्य इसके द्वारा पृथक रूप के पारस्परिक मित्रता, सुरक्षा, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा और पारस्परिक सामान्य हितपूर्ति करने वाले दृढ़ संगठन में प्रवेश करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि धर्म, सत्ता, व्यापार या और किसी बहाने से किये हुये आक्रमण किये जाने पर या बल प्रयोग किये जाने पर वे एक दूसरे की सहायता करेंगे"। कांग्रेस ही एक ऐसी सार्वजनिक संस्था थी जिसकी स्थापना की गई। इसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि थे। कम से कम दो और अधिक से अधिक ७ प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार प्रत्येक राज्य को मिला हुआ था। प्रत्येक राज्य को केवल एक मत ही देने का अधिकार था चाहे उसके प्रतिनिधियों की संख्या कुछ भी हो। राज्य के प्रतिनिधियों का बहुमत राज्य की इच्छा का द्योतक समझा जाता था। यदि किसी राज्य के प्रतिनिधियों में दोनों ओर के मत बराबर होते थे तो राज्य का मत रद्द समझा जाता था। कांग्रेस के अधिवेशन काल के अतिरिक्त समय में एक समिति कार्यसंचालन करती थी। इस समिति में प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि होता था और यह समिति वह सब कार्य कर सकती थी जिसको करने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त था। काँग्रेस अपना सभापति जिसे प्रेसीडेंट कहा जाता था स्वयं चुनती थी। किन्तु प्रेसीडेंट को कार्य संचालन का अधिकार न दिया गया था क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि प्रेसीडेंट के रूप में उन पर दूसरे प्रकार का राजा बैठा दिया जाय।*

* रीड—फोर्म्स एण्ड फन्कशन्स आफ अमेरिकन गवर्नमेंट, पृ० ३९।

यह वास्तविक स्थायी संघ न था—निस्सन्देह उपनिवेश-वासियों की इच्छा तो यही थी कि एक स्थायी संघ की स्थापना हो "परन्तु संविधान की जो नियमावली बनाई गई उससे राज्यों का वास्तविक अनुकलन नहीं हुआ। प्रारम्भ में ही वे बालू की रस्सी के समान थे जो किसी को बाँध सकने में असमर्थ थी।.........उनके नियमों के अनुसार काँग्रेस संघ की शक्ति को कार्यान्वित करती थी। काँग्रेस की समितियाँ ही इस संघकी कार्यकारी व न्यायकारी अंग थे। वास्तव में इसे कार्यकारी अंगों की आवश्यकता ही न थी क्योंकि इसे कार्य संचालन के कोई अधिकार ही न थे। इसका काम केवल परामर्श देना था न कि आदेश देना। यह राज्यों का हर बात में मुह देखती थी। संघ का संविधान केवल एक अन्तःराष्ट्रीय समझौते के समान था।"[१] कोई भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव तब तक पास न समझा जाता था जब तक कि ९ राज्य उससे सहमत न हों। कई राज्यों ने अपने प्रतिनिधि ही न भेजे थे इस लिये संघ का योगाकर्षण जाता रहा और काँग्रेस की शक्ति भी जाती रही। काँग्रेस राज्यों से मुद्रा, मांग सकती थी परन्तु उसके पास कोई ऐसा साधन न था जिससे वह उन्हें उस मांग को पूरा करने पर बाध्य कर सकती। यह संधि व समझौता कर सकती थी पर उसकी शर्तों का पूरा करना राज्यों पर छोड़ना पड़ता था। यह ऋण ले सकती थी किन्तु उसे चुकाने के लिये उसे राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। यह एक ऐसी संस्था थी जिसे बहुत से विस्तृत अधिकारों से विभूषित किया जाता था परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति नहीं दी गई थी। काँग्रेस केवल परामर्श देने वाली संस्था ही थी। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् यह राज्यों को एक सूत्र में बांधने में असफल रही।

"इस काम करने की असमर्थता के कारण ही वर्तमान अधिक पूर्ण व अधिक दृढ़ राज्य संगठन की स्थापना सम्भव हुई"[२] मेरीलैंड (Maryland) और वर्जिनिया (Virginia) के राज्यों में पोटोमेक (Potomac) नदी में नौका चलाने के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को निबटाने के लिये जो कमीशन नियुक्त किये गये उन्होंने यह सिफ़ारिश की कि एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया जाय जो दोनों राज्यों से लगाये हुये आयात-निर्यात-करों के प्रश्न में छानबीन करे। इस पर विर्जिनिया ने व्यापार सम्बन्धी संघ के अधिकारों को अधिक विस्तृत करने पर विचार करने के लिये एक

१ विलसन—दी स्टेट (१९०० की आवृति) पैरा १०६७।

२ उसी पुस्तक में पैरा १०६९।

सम्मेलन बुलाया। सन् १७८६ में यह सम्मेलन एनापोलिस नगर में हुआ जिसमें केवल पांच राज्यों ने ही अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्मेलन ने अन्य प्रतिनिधियों के आने का इन्तजार न करके एक प्रस्ताव स्वीकार किया और सम्मेलन समाप्त कर दिया। प्रस्ताव यह था कि कांग्रेस सब राज्यों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन फिलाडेलफिया नगर में बुलावे जो संघ के विधान में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करे क्योंकि उसके बिना इसकी राय में संघ का शांति पूर्वक चलना असम्भव था।

फिलाडेलफिया सम्मेलन—तदनुसार कांग्रेस ने सन् १७८७ का प्रसिद्ध फिलाडेलफिया सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में जो प्रतिनिधि उपस्थित हुये वे सब लोक-कार्य में अनुभवी व्यक्ति थे इसलिये उन्होंने सारी समस्या को बड़े अच्छे ढंग से वस्तुस्थिति को देखते हुये सुलझाना आरम्भ किया। उनका उद्देश्य "एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना करना था जिसके साथ साथ राज्य की अधिक से अधिक स्वतंत्रता भी सुरक्षित रहे।" कई दिनों के वादविवाद के पश्चात् उन्होंने सन् १७८७ के संविधान का मसविदा तैयार किया। इस संविधान ने संयुक्त राज्य की सरकार का रूप ही बदल दिया क्योंकि इससे केन्द्रीय सरकार को सीधे उपराष्ट्रों के नागरिकों से सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति प्रदान कर दी गई।

१७८७ का शासन-विधान

इस मसविदे को कांग्रेस ने राज्यों की स्वीकृति के लिये भेजा और जून २१, सन् १७८७ को जब नवें उपराज्य (न्यु हैम्पशायर) ने इसे स्वीकार कर लिया तो तुरन्त ही नौ उपराज्यों में इसे लागू कर दिया गया। इस नये शासन विधान के अन्तर्गत प्रथम कांग्रेस का अधिवेशन ४ मार्च सन् १७८९ को हुआ।

विधान सर्वोच्च अधिनियम है :—इस संविधान का सबसे महत्वपूर्ण भाग इसकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना में कहा गया है कि सब राज्यों की प्रजा संयुक्त-राज्य अमेरिका के लिये यह संविधान स्थापित करती है। पूर्ववर्ती संघ के संविधान की अपेक्षा नये विधान में यह एक महत्वपूर्ण सुधार था क्योंकि पुराने विधान में लोकमत को कोई स्थान न दिया गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात छटे अनुच्छेद की धारा २ में दी हुई है जिसमें कहा गया है कि यह संविधान और इसके अन्तर्गत बनाये हुये निर्बन्ध व वे सब संधियां संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की सत्ता के अन्तर्गत की जायेंगी, राष्ट्र का सर्वोच्च अधिनियम समझी जायेंगी। प्रत्येक उपराष्ट्र में न्यायाधीश उनके प्रविधानों

अनुसार निर्णय दिया करेंगे चाहे उपराज्य का विधान या कोई निर्बन्ध उनके विरुद्ध ही क्यों ना हों।" इस धारा से संविधान बहुत ही सुरक्षित और संघ का शासन बहुत ही दृढ़ हो गया, क्योंकि जब कभी संघ सरकार के या किसी उपराज्य के कानून का संविधान से विरोध खड़ा होता है, संविधान की ही विजय होती है और ऐसे मामलों में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के हाथ में रहता है जो पूर्णतया स्वन्त्र न्यायालय है।

शासन-विधान की अन्य विशेषताएँ—यह शासन विधान आधुनिक राष्ट्रों के संविधानों में सबसे संक्षिप्त हैं। अमरीकनों ने इसमें दो प्रमुख सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा है, पहला लोकसत्ता व दूसरा संघ में उपराज्यों की समानता उन्होंने इसमें पूर्णतया शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त को अपनाया है। आगे चल कर ज्ञात होगा कि कार्यकारी, विधायिनी वा न्यायिक सत्ता एक दूसरे से बिल्कुल पृथक हैं। यह बहुत ही कठिन परिवर्तनशील संविधान है। अब तक केवल २२ ही संशोधन इसमे हुये हैं। इसमें "बन्धन व संतुलन की पद्धति" (System of checks & balances) रखी गई है। इसके कुछप्र विधानों की आलोचना की जाती है जैसे, सीनेट को सन्धि व नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान करना उचित नहीं समझा जाता। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात हैं कि सन् १७८७ के विधान-निर्माता उस समय की परिस्थितियों का सामना करने के लिये योजना बना रहे थे, इसलिए "कल की सरकार को आज के मापदण्ड से मापना है"* संविधान का संचालन बहुत असंतोपजनक सिद्ध नहीं हुआ है और इसके बनने के समय से राज्य की उत्तरोत्तर वृ हुई और वह समृद्धि-शाली हुआ। यह सच है कि प्रायः १६० वर्ष के इस लम्बे समय में भयंकर विवाद खड़े हुये और यह प्रतीत हुआ था कि सन् १८६१ का गृहयुद्ध संघ को तितर-वितर कर देगा, किन्तु फिर भी इसका कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों सहित अब तक बराबर बना रहना इस बात का प्रमाण है कि यह फ्रांस के शासन विधान से अधिक दृढ़ है क्योंकि उतने ही समय में फ्रांस के शासन विधान में कई बड़े परिवर्तन हो चुके हैं।

संघ सरकार की शक्तियां

संयुक्त-राज्य अमेरीका की संघ सरकार की शक्तियां निश्चित रूप से

---

* फौर्म्स एण्ड फंकशन्स आफ अमेरिकन गर्वनमेंट, पृ० ४३।

स्थिर की हुई हैं जिन्हें उस सरकार के भिन्न-भिन्न अंग कार्यान्वित करते हैं। बिधायिनी शक्ति, अर्थात् कांग्रेस (जिसमें सीनेट व प्रतिनिधि सदन दो सभायें हैं) की प्रथम अनुच्छेद की ८ वीं धारा के अनुसार निम्नलिखित शक्तियां हैं :–

विविध प्रकार के कर लगाना और मुद्रा एकत्रित करना, ऋण चुकाना संयुक्त-राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक हित साधन का प्रबन्ध करना, किन्तु सब प्रकार के कर सारे संयुक्त-राज्य में एक समान होंगे।

संयुक्त-राज्य की सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

विदेशी राष्ट्रों से उपराष्ट्रों के बीच व मूल निवासियों से व्यापार सम्बन्धी-नियमन करना।

नागरिक बनाने व दिवालिया निश्चित करने वाले एक समान नियम व अधिनियम सारे संयुक्त-राज्य के लिये बनाना।

मुद्रा बनाना, उसका मूल्य स्थिर करना, विदेशी मुद्रा का मूल्य स्थिर करना, और माप तौल स्थिर करना।

संयुक्त-राज्य के नकली प्रचलित मुद्रा व ऋण के प्रमाणपत्रों को बनाने पर दण्ड का विधान करना।

डाकघर स्थापित करना और डाक मार्ग बनवाना।

लेखकों व वैज्ञानिकों को अपने लेख व अन्वेषण के उपयोग का कुछ समय के लिये अनन्य अधिकार देकर उपयोगी कला व विज्ञान की उन्नति करना। सर्वोच्च न्यायालय से छोटे संघ न्यायालय स्थापित करना।

समुद्री लूट-पाट की व्याख्या करना व उसके लिये दण्ड का विधान करना, अन्तःराष्ट्रीय अधिनियम के विरुद्ध किये अपराधों के लिये दण्ड देना।

युद्ध की घोषणा करना, बदला लेने के आज्ञापत्र देना और युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में नियम बनाना।

सेना एकत्रित करना व शिक्षित करके तैयार रखना। किन्तु इस काम के लिये दो वर्ष से अधिक समय के लिये एक साथ मुद्रा का आयोजन नहीं हो सकता।

जल सेना संगठित कर उसका भरण पोषण करना।

स्थल सेना व जल सेना के शासन व नियमन सम्बन्धी नियम बनाना।

संघ के अधिनियमों को कार्यान्वित करने के लिये, विद्रोह को दबाने के लिये, और आक्रमण से रक्षा के लिये सेना बुलाने का आयोजन करना।

सेना को संगठित, शिक्षित व सुसज्जित करने और उसके उस भाग पर नियंत्रण रखने का आयोजन करना जो संयुक्त राज्य की सेवा में उपयोग किया जा रहा हो। उपराज्यों को, बचे हुये सेना के भाग को, काँग्रेस द्वारा निश्चित शिक्षण के अनुसार शिक्षित करने का व सेना के अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार देना।

ऐसे जिले मे जिसका क्षेत्रफल १० वर्ग मील से अधिक न हो, जिसको उपराज्यों ने संघ सरकार के सुपुर्द कर दिया हो व काँग्रेस ने स्वीकार कर लिया हो, और इस प्रकार स्वीकृत होकर जो संघ सरकार का निवास-स्थान बन गया हो, उसमें अनन्य रूप से शासन करना। वैसा ही शासन उन सब जगहों में करना जो संघ सरकार ने उपराज्यों की विधानमंडल की सम्मति से खरीद ली हों और जिनमें किले, बारूदखानें, अस्त्रागार, बन्दरगाह व दूसरी आवश्यक इमारतें बनी हों। और उन सब निर्बन्धों को बनाना जो पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक व उचित हों और उन दूसरी शक्तियों को कार्यरूप देने के लिये आवश्यक व उचित हों जो संविधान ने संयुक्त-राज्य की सरकार या उसके किसी शासन विभाग या अफसर में विहित कर दी हों।

प्रथम अनुच्छेद की ९ वीं धारा ने नकारात्मक प्रतिबन्ध लगा कर कांग्रेस की शक्तियाँ और भी कम कर दी हैं, जैसे :—

(१) जब तक वास्तव में विद्रोह या आक्रमण न हुआ हो कांग्रेस अपराधी को न्यायालय में उपस्थित किये जाने का आदेश दिलवाने की सुविधा को स्थगित नहीं कर सकती।

(२) यह कोई गतानुदर्शी अधिनियम पास नहीं कर सकती।

(३) यह उच्चता की कोई उपाधि नहीं दे सकती।

सन् १७८७ में जब संविधान का निर्माण हुआ, नागरिकों के अधिकारों को संविधान में घोषित करने का प्रश्न इतना महत्वशाली न हुआ था क्योंकि उस समय संघ सरकार की शक्तियों के विरुद्ध उपराष्ट्रों के क्या अधिकार होने चाहिये, यह प्रश्न अधिक महत्व रखता था। चार वर्ष बाद सन् १७९१ में लगभग १० संशोधन संविधान में किये गये जिनमें से नौ संशोधनों से नागरिकों के अधिकार प्रत्याभूत (Guaranteed) हुये और इस प्रकार संघ सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रख दिया गया। इन संशोधनों से निम्नलिखित बातें निश्चित हो गईं :—

(१) कांग्रेस ऐसा कोई अधिनियम न बनायेगी जिससे कोई धर्म विशेष प्रतिष्ठित होता हो या स्वतन्त्रता पूर्वक उसके अनुसार आचरण करने पर रोक लगती हो, या वक्तृता देने, छापने व प्रकाशित करने, या जनता के शान्ति पूर्वक समुदाय बनाकर रहने या सरकार से अपनी तकलीफों की शिकायत करने की स्वतन्त्रता कम होती हो।

(२) स्वतन्त्र राज्य की रक्षा के लिये शिक्षित सेना आवश्यक होने से जनता का अपने पास अस्त्र रखने का अधिकार नहीं छीना जायेगा।

(३) शान्ति के समय में कोई सैनिक किसी घर में उसके स्वामी की सम्मति के बिना न बसाया जायेगा और युद्ध समय में भी सिवाय अधिनियमानुसार ढंग के किसी दूसरे ढंग पर कोई सैनिक न बसाया जायगा।

(४) किसी व्यक्ति का शरीर, घर, उसके कागज व सामान बिना कारण न कुर्क किया जा सकता है न उनकी तलाशी ली जा सकती है।

(५) नरहत्या या अन्य बदनाम करने वाले अपराधों की जाँच पंचों द्वारा होगी।

(६) सब अपराधी अभियोगों की जांच जल्दी से जल्दी खुले ढंग पर निरपेक्ष पंचों द्वारा होगी।

(७) २० डालर से अधिक मूल्य के अभियोगों में पंचों द्वारा जाँच होने का अधिकार सुरक्षित रहेगा।

(८) बहुत अधिक जमानत न मांगी जायगी न बहुत अधिक जुर्माना किया जायगा और न निर्दयतापूर्ण या असाधारण दण्ड ही दिया जायगा।

(९) शासन में किन्हीं अधिकारों की गिनती हो जाने का यह अर्थ न लगाया जायगा कि बचे हुये जनता के अधिकार मान्य नहीं हैं या वे कम आदरणीय हैं।

सन् १८७० में पास हुये १५वें संशोधन में यह कहा है कि संयुक्त राज्य के किसी नागरिक को मताधिकार से वंचित न किया जायगा न उस अधिकार को सीमित किया जायेगा क्योंकि वह किसी विशेष जाति, वर्ण का है या पूर्व दासता की स्थिति में रहा है। सन् १९२० में किये गये १९ वें संशोधन से स्त्री पुरुष दोनों को मताधिकार दे दिया गया।

शक्तियों की सीमा स्थिर करना—सन् १७९१ में हुये संविधान के दसवें संशोधन में कहा गया है कि संविधान ने जिन शक्तियों को संघ सरकार के सुपुर्द नहीं किया है व जिन शक्तियों का उपराज्यों द्वारा कार्यान्वित किये

जाने का संविधान से निषेध किया गया है वे शक्तियाँ उपराज्यों या जनता के लिये सुरक्षित हैं। किन्तु संघ सरकार की शक्तियों पर इन सब प्रबन्धों के रहते हुए और शेष शक्तियां उपराज्यों को दिये जाने पर भी संघ सरकार की शक्ति धीरे- धीरे कई कारणों वश बढ़ती जा रही है। पहला कारण यह है कि न्यायाधीश मार्शल की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्थ-विहित शक्तियों का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और संविधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ लगाया कि केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। दूसरे अंतःराष्ट्रीय सम्बन्धों के बढ़ने और अन्तःराष्ट्रीय व्यापार की उन्नति होने से संघ सरकार के बिना उपराज्यों के अधिकारों के समर्थकों को अप्रसन्न किये अपनी शक्तियों को बहुत बढ़ा लिया है। तीसरे संविधान को व्यवहार में लाने से जो अनुभव हुआ उसके फलस्वरूप जो संशोधन किये गये उनसे संघ सरकार की शक्ति बढ़ गई। उदाहरण के लिए, प्रथम अनुच्छेद की नवीं धारा के पैरा ४ को लीजिये। इसके अनुसार संघ सरकार कुछ कड़ी शर्तों के पालन करने पर ही प्रत्यक्ष कर लगा सकती थी, किन्तु १६ वें संशोधन ने यह शर्तें हटा दीं और कांग्रेस को यह शक्ति दे दी कि वह किसी भी प्रकार से प्राप्त हुई आमदनी पर कर लगा सकती है और इस कर से प्राप्त धन को किसी भी कारण या संख्या का ध्यान रख उपराज्यों में न बांटा जायगा। अन्तिम कारण यह है कि संसार की परिस्थिति ही कुछ समय से ऐसी हो गई है जैसे, प्रशांत महासागर की समस्या, आर्थिक संकट और अन्तःराष्ट्रीय व्यापार, कि उसका प्रभाव सब राष्ट्रों पर पड़ा है और परिणाम-स्वरूप संघ सरकार ने प्रजा की अस्पष्ट सम्मति से अधिकाधिक शक्ति अपने हाथ में कर ली है।

संघ-विधानमण्डल

संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस संघ की विधायिनी शाखा है। इसमें दो सदन हैं, एक प्रतिनिधि-सदन और दूसरी सीनेट अर्थात राज्य-परिषद्। इन दोनों सदनों की शक्तियां रचना व पारस्परिक सम्बन्ध मूल-विधान (१७८७) के प्रथम अनुच्छेद और १९१३ के १७ वें संशोधन में दिये हुये हैं।

प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) काँग्रेस का निचला सदन है जिसके सदस्य जनता से सीधे निर्वाचित होते हैं। प्रारम्भ में यह आयोजन था कि प्रत्येक २०००० नागरिकों की संख्या एक प्रतिनिधि चुनेगी, किसी भी उपराज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य चुना जायेगा और यह कि प्रति १० वर्ष की गणना द्वारा प्रतिनिधियों की

संख्या कम या अधिक की जायगी हालाँकि निर्वाचकों व प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात सब उपराज्यों में एक समान ही होगा। तदनुसार प्रतिनिधियों की प्रारम्भिक संख्या जो ६५ थी प्रति दस वर्ष के बाद बढ़ती गई क्योंकि नये उपराज्य संघ में आते गये और पुरानों में जनसंख्या बढ़ती गई। १४ वें संशोधन से निर्वाचन-सम्बन्धी कुछ परिवर्तन किये गये क्योंकि आबादी इतनी तेजी से बढ़ी कि यदि २०००० निर्वाचक एक एक प्रतिनिधि चुनते तो प्रतिनिधि सदन में सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि उसको संभालना और कार्य संचालन करना कठिन हो जाता। आगार की वर्तमान संख्या ४३५ है जो सन् १९१० की जनगणना के आधार पर निश्चित की गई है। सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार प्रत्येक प्रतिनिधि ३०२, ६८९ मतधारकों का प्रतिनिधित्व करता है। यह ४३५ सदस्य विविध उपराज्यों से इन संख्याओं में निर्वाचित होकर आते हैं। अलबामा ९, ऐरीज़ोना २, अर्कनसास ७, कैलीफोर्निया २३, कौलोरैडो ४, कनैक्टीकट ६, डेलावेयर १, फ्लोरीडा ६, जौर्जिया ११, इदाहो २, ईलियोनिस २६, इंडियाना ११, आइओवा ८, कन्सास ६, कैन्टकी ९, लुइसियाना ८, मेन ३, मेरीलैंड ६, मैसाच्युसेट्स १४, मिचीगन १७, मिनेंसोटा ९, मिससिपी ७, मिस्सौरी १३, मौन्टाना २, नैब्रास्का ४, नैवादा १, न्यूहैम्पशायर २, न्यूजरसी १४, न्यूमैक्सिको २, न्यूयार्क ४५, नार्थकैरोलीना १२, नार्थडैकोटा २, ओहियो २३, आक्लहामा ८, ओरीगन ४, पैनसिलवेनिया ३३, रोड आइलड २, साउथ कैरोलीना ६, साउथ डैकोटा २, टैनीसी १०, टैक्सास २१, ऊटा २, वरमौन्ट १, विरजीनिया ९, वाशिंगटन ६, पश्चिमी विरजीनिया ६, विसकौंसिन १०, और व्यौमिंग १।

निर्वाचन क्षेत्र:—कांग्रेस प्रत्येक उपराज्य से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करती है किन्तु उन प्रतिनिधियों को चुनने के लिये निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन प्रत्येक उपराज्य अपने आप करता है। इस कार्य में उपराज्य का विधानमण्डल प्रायः किसी राजनीति पक्ष के लाभार्थ निर्वाचन क्षेत्रों में परिवर्तन कर दिया करती है। उदाहरण के लिये यदि परिसीमन विधेयक पर विचार करते समय विधानमण्डल में रिपब्लीकन (Republican) पक्ष का बहुमत है तो वे लोग डेमोक्रेटिक (Democratic) पक्ष के बहुमत वाले जिलों को मिला कर कम से कम निर्वाचन क्षेत्रों में इकट्ठा कर देंगे जिससे आने वाले निर्वाचन में अधिक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से रिपब्लिकन (Republican) प्रतिनिधि चुने जायें" *। जब डेमोक्रेट

* हैरिकन—-दी अमरीकन गवर्नमेन्ट, पृ० ३०५।

हैं। अन्तिम मद में ही प्रशान्त महासागर के तट से आने वाले प्रतिनिधि का भत्ता २५०० डालर हो जाता है। यह प्रतिनिधि सदन दुनियां में सब से अधिक व्यय-साध्य व्यवस्थापक संस्था है। प्रतिनिधियों को अपने पत्र आदि बिना डाक खर्च आदि भेजने का अधिकार है। सदन को जाते समय वहां से लौटते समय उनको किसी अपराध के लिए पकड़ा नहीं जा सकता। जब तक अपराध देशद्रोह, विद्रोह या हत्य की श्रेणी का न हो। उन्हें सदन में बोलने की स्वतन्त्रता रहती है परन्तु अभद्र वचनों के लिए किसी भी सदस्य को सदन के दो तिहाई सदस्यों की सम्मति से बाहर निकाला जा सकता है।

सदन अपनी कार्यपद्धति स्वयं निर्धारित करता है—सदन को अपनी कार्यपद्धति पर पूर्ण स्वत्व प्राप्त है। यह अपनी कार्यवाही का दैनिक लेख रखता है जिसे समय समय पर छाप कर प्रकाशित किया जाता है। कभी कभी जब कार्यवाही गुप्त रखने का निश्चय किया जाता है तो उसका विवरण प्रकाशित नहीं होने दिया जाता। वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार को प्रारम्भ होता है। सदन के निजी डाकघर, भोजनालय या कार्यालय होते है।

सदन के अधिकारी वर्ग—नया सदन निर्वाचन होने के पश्चात् ३ जनवरी को अपनी प्रथम बैठक करता है और सबसे पहला काम स्पीकर (सभापति) क्लर्क, चैपलेंन, पोस्टमास्टर, सार्जेन्ट-एट-आर्म्स व द्वारपाल को चुनना होता है। यह चुनाव पक्ष-प्रणाली पर ही होता है। प्रत्येक पक्ष अपने अपने उम्मेदवार खड़ा करता है और बहुमत वाले पक्ष की जीत होती है। निर्वाचित स्पीकर रीत्यानुसार सदन के सब से पुराने सदस्य से शपथ दिलाने की प्रार्थना करता है। बड़ी हर्ष ध्वनि के मध्य जब चारों ओर से अभिवादन सूचक रूमाल हिलते होते हैं और चित्रकारों के कैमरों की ध्वनि गूंजती है, वह क्लर्क से पदसूचक हथौड़ा लेता है। उसके पश्चात् कुछ थोड़े से शब्दों में सदस्यों को धन्यवाद देकर स्पीकर के कर्तव्य को सुचारु रूप से पूरा करने की शपथ लेता है। उसके पश्चात् वर्णक्रमानुसार सदस्यों के नाम पुकार कर उन्हें शपथ लेने को कहा जात है। जब सब शपथ ले चुकेते हैं तब कुछ दूसरे अफसर चुने जाते हैं। उसके पश्चात् सदन के संगठित हो चुकने की घोषणा कर दी जाती है।

पहले जब सदस्यों की संख्या कम थी प्रत्येक प्रतिनिधि के लिए एक कुर्सी व मेज मिलती थी जिस पर रखकर वह अपनी लिखा पढ़ी व दूसरा काम कर सकता था, किन्तु अब संख्या के बढ़ जाने से सदन में स्थान की कमी

हो गई और स्पीकर को सुनने में कठिनाई भी होने लगी । अतएव मेज अब सदन से हटा दी गई हैं । पूर्व समय में स्पीकर (Speaker) को कई काम करने का अधिकार था, यहां तक कि सदन की समितियां भी वही नियुक्त करता था । वह इतना शक्तिशाली था कि उसे 'जार' की पदवी दी जाने लगी थी। किन्तु कैनन (Cannon १८६६-१९११) के स्पीकर निर्वाचित होने के बाद सदन ने इस निरंकुशलता को समाप्त करने का संकल्प किया । श्री कैनन कहा करते थे कि "स्पीकर सदन की ही कठपुतली है और सदन जब चाहे तब उसके महत्व को गिरा सकता है ।"

सदन की समितियाँ—सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण समिति पद्धति द्वारा काम करने की रीति अपनाई जाती है । ऐसी समितियों की संख्या १९ है जिनमें बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक दोनों पक्षों के सदस्य होते हैं । ये समितियाँ स्थायी समितियां कहलाती हैं । किन्तु इनमें से कुछ ६ या ७ समितियाँ ही उल्लेखनीय हैं । सबसे प्रभावपूर्ण नियोजन विनियोग समिति (Appropriation Committee) ओर आगम समिति (Ways & Means Committee) ही है । छोटी समितियों की बैठकें मुश्किल से हुआ करती हैं । समितियों का महत्व सदन में विचाराधीन विधेयक या प्रस्ताव पर निर्भर रहता है, जब जैसा विधेयक या प्रस्ताव विचाराधीन होता है उस समय उस विषय से सम्बन्धित समिति महत्वपूर्ण बन जाती है ।

व्यवस्थापन कार्य प्रणाली—प्रत्येक विधेयक प्रथम वाचन के पश्चात् रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए उससे सम्बन्धित समिति के सुपुर्द हो जाता है । समिति उसकी परीक्षा व सुधार करना आरम्भ करती है । समिति से लौटने पर पाँच सूचियों में से एक में इसका नाम रख दिया जाता है । इनमें पहली सूचि जिसका नाम संघ सूचि (Union Calendar) है सारे सदन की समिति से सम्बन्ध रखती है । यह समिति उन विधेयकों पर विचार करती है जो आय-व्यय से सम्बन्ध रखते हैं और जिन पर स्थायी समिति की अनुकूल रिपोर्ट होती है । दूसरी सूची सदन सूची (House Calendar) कहलाती है । इसमें वे सार्वजनिक विधेयक होते हैं जिनको संघ सूची में स्थान नहीं मिलता, तीसरी सूची (Calendar of the Committee of the Whole House) होती है जिसमें सब प्राइवेट (Private) विधेयक रखे जाते हैं । चौथी सूची में वे योजनायें होती हैं जो सर्वसम्मति से प्रस्तुत की जाती हैं और पांचवीं सूची में समितियों को दिये हुए आदेश मिलते हैं । इस प्रकार किसी भी सूची में रखे जाने के बाद विधेयक का

दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सदस्य संशोधन के प्रस्ताव सामने रखते हैं और उन पर अपने विचार प्रकट करते हैं। किसी एक योजना पर कोई सदस्य एक बार बोल सकता है और वह भी एक घंटे से अधिक नहीं। जब कांग्रेस के सत्र (Session) की समाप्ति का समय आता है उस समय काँग्रेस की कार्यवाही का एक मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। प्रायः इस समाप्ति से पहले ही काम की बड़ी अधिकता रहती है। पर विरोधी पक्ष भी उस समय अपनी विलम्बकारी चालें चलता है। आखिरी रात को इन चालों का मज़ा देखने में आता है। सारी रात की बैठक बड़ी असुविधाजनक होती है और प्रायः गणपूरक नहीं रहता। उस समय सदस्य आकर, धूम्रपान कर, आपस में ठिठोली कर या झगड़ कर जगने का प्रयत्न करते हैं पर व्यवस्थापन कार्य नहीं होने देते। तीसरे वाचन के पश्चात् स्पीकर योजना पर मत लेना आरम्भ करता है। मत देने की तीन रीतियाँ हैं।

(१) मुखोच्चारण के स्वर से, यदि दूसरे दो ढंग अपनाने की माँग न की जाय तो प्रायः उसी से निर्णय किया जाता है।

(२) सदस्यों को, स्पीकर द्वारा नियुक्त गिनने वाले व्यक्तियों के सामने चलाने से (गण पूरक के पाँचवे भाग के बराबर संख्या में सदस्यों से इसकी मांग हो सकती है) और

(३) सब सदस्यों का नाम पुकार कर और उनसे 'हां' या 'ना' कहलवाकर। इसमें बड़ी देर लगती है। विरोधी पक्ष इस ढंग को अड़ंगा लगाने के लिए प्रयोग कराने का प्रयत्न करता है। उपस्थित सदस्यों के पाँचवे भाग से मांग किये जाने पर यह ढंग काम में लाया जाता है।

दोनों सदनों का पारस्परिक विरोध—जब सदन से कोई योजना स्वीकृत हो जाती है, तब वह सीनेट को भेज दी जाती है। यदि सीनेट इसे अस्वीकार कर देती है तो वह वहीं समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि सीनेट उसमें सुधार कर सकती है तो यह वापिस प्रतिनिधि सदन के विचारार्थ लौटा दी जाती हैं। यदि लोक सभा (Houe of Representatives) अर्थात् प्रतिनिधि सदन इन संशोधनों को अस्वीकार करता है तो इसकी सूचना सीनेट को दे दी जाती है। सीनेट इस सूचना के मिलने पर चाहे तो बराबर संख्या में दोनों सदनों के सदस्यों की कान्फ्रेंस बुलाने की मांग कर सकती है। इन सदस्यों को 'मैनेजर' कहते हैं। इस कांफ्रेंस में किसी समझौते पर पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार जब योजना अन्तिमतः स्वीकार हो जाती है तब

उस योजना के विधेयक स्पीकर और सीनेट के सभापति के हस्ताक्षर होने के लिये प्रस्तुत किया जाता है। हस्ताक्षर होने पर यह प्रेसीडेंट के पास भेज दिया जाता है। यदि प्रेसीडेंट उससे सहमत होता है तो वह उस पर सम्मति सूचक हस्ताक्षर कर देता है और वह विधेयक अधिनियम (Law) बन जाता है। किन्तु यदि प्रेसीडेंट उससे सहमत नहीं होता तो वह विरुद्ध युक्तियाँ देकर उसे उसी सदन को लौटा देता है जिसमें वह विधेयक प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार लौटाये जाने पर यदि पृथक पृथक दोनों सदन दो तिहाई मताधिक्य से उसे पास कर दें तो वह विधेयक प्रेसीडेंट की असम्मति होने के बावजूद अधिनियम बन जाता है। यदि प्रेसीडेंट किसी विधेयक पर दस दिन के भीतर हस्ताक्षर नहीं करता या प्रतिवाद करके नहीं लौटाता तो वह विधेयक अपने आप अधिनियम बन जाता है किन्तु काँग्रेस के सत्र के अन्तिम दस दिनों में जो विधेयक प्रेसीडेंट के पास पहुंचते हैं वे तभी अधिनियम बन सकते हैं जब प्रेसीडेंट उन पर अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार इन विधेयकों को प्रेसीडेंट हस्ताक्षर न कर अपनी जेब में रख कर चुपचाप रहने से ही रद्द कर सकता है। अधिनियम बन जाने के बाद प्रत्येक विधेयक सेक्रेटरी आफ स्टेट के दफ्तर में जमा हो जाता है।

सब मुद्रा-विधेयक प्रतिनिधि सदन में प्रारम्भ होते हैं। सीनेट को उसमें संशोधन करने का अधिकार अवश्य है। प्रेसीडेंट के चुनाव के अन्तिम दिन तक यदि किसी उम्मेदवार को आवश्यक मताधिक्य प्राप्त नहीं होता तो प्रतिनिधि सदन ही किसी व्यक्ति को प्रेसीडेंट चुनता है।

दूसरा सदन—अमेरिकन संघ-विधानमण्डल का दूसरा सदन सीनेट कहलाता है। यह उपराज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। उपराज्यों की समानता इसे मान्य है क्योंकि प्रत्येक उपराज्य को इसमें दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। विधान की रचना होते समय उन लोगों ने जो उपराज्यों के अधिकारों के समर्थक थे यह जोर दिया कि सब उपराज्यों को इकाई रूप में समान समझा जाय। उसकी यह मांग पारस्परिक मेल और प्रेम भाव बनाये रखने के हेतु स्वीकार कर ली गई थी। 'दी फैडरलिस्ट' नामक ग्रन्थ के रचयिता का यह कहना ठीक ही है कि प्रत्येक उपराज्य को एक वोट (मत) देना उनकी अवशिष्ट संज्ञा को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है और साथ साथ उस अवशिष्ट सत्ता की रक्षा करने के हेतु वह एक अस्त्र भी है।"[१] आगे चलकर वे फिर कहते हैं कि अनुचित अधिनियमों के बनने में यह एक और रुकावट डाली

१ फैडरलिस्ट, अध्याय ५२।

गई है हालांकि वे यह मानते हैं कि ऐसी पेचदार रुकावट हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है और लाभदायक भी। प्रारम्भ में यह निर्णय हुआ था कि सीनेट के सदस्यों को उपराज्यों की विधानमंडल पृथक्-पृथक् चुना करेंगी किन्तु १७ वें संशोधन से इसमें कुछ परिवर्तन हो गया है और अब इन सदस्यों का चुनाव उपराज्यों की जनता स्वयं करती है। जब अस्थायी रूप से किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है तो उपराज्यों की सरकार निर्वाचन होते समय तक के लिये उस स्थान को अपने मनोनीत व्यक्ति से भर सकती है।

सीनेट के सदस्यों की योग्यताएँ—सीनेट के उम्मेदवार को ३० वर्ष की आयु का होना चाहिये। वह संयुक्त-राज्य का ९ वर्ष नागरिक रह चुका हो और निर्वाचन के समय उस राज्य में रहता हो जहाँ से वह निर्वाचित हुआ है। विधान मण्डल के अधिक संख्या वाले सदन के निर्वाचन में जो लोग मत देने के अधिकारी होते हैं वे ही इन सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

सीनेट के सदस्यों को प्राप्त सुविधायें—प्रारम्भ में जब संघ में केवल १३ ही उपराज्य थे सीनेट के सदस्यों की संख्या २६ थी किन्तु उपराज्य की संख्या के बढ़ने से सीनेट के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती गई और इस समय ४९ उपराज्यों से ९८ सीनेट के सदस्य चुने जाते हैं। सीनेट के सदस्य ६ वर्ष तक सदस्य बने रहते हैं, प्रति दो वर्ष बाद एक-तिहाई सदस्य हट जाते हैं। अतएव सीनेट सर्वदा जीवित रहती है। सीनेट के सदस्यों को प्रतिनिधियों के समान ही १२५०० डालर का पारिश्रमिक मिलता है। उनको प्रतिनिधियों के समान ही बोलने की स्वतन्त्रता और पकड़े जाने से मुक्ति मिलती रहती है। "वे धन कमाने के लिये किसी सरकारी विभाग (Executive Department) में वकालत नहीं कर सकते जिसका वेतन उस समय बढ़ाया गया हो जब वे सीनेट के सदस्य थे।* यदि कोई सीनेटर (सीनेट का सदस्य) ऐसे किसी सरकारी पद को स्वींकार कर लेता है तो उसे घटे हुऐ वेतन पर काम करना पड़ता है।

सभापति—संयुक्त राज्य का उप-राष्ट्रपति (Vice-President) अर्थात् उपाध्यक्ष जिसको सीधे उनता चुनती है सीनेट का सभापति होता है। किन्तु निर्णायक मत (Casting Vote) देने के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार या शक्ति उसे नहीं होती। उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में सभापति

* दी अमरीकन गवर्नमेन्ट, पृ० ३२१।

का आसन ग्रहण करने के लिये सीनेट आपस में से ही किसी सदस्य को अनुपस्थिति भर के समय के लिए सभापति चुन लेती है । यह अस्थायी सभापति (President Pro Tempore) उपाध्यक्ष के बराबर ही वेतन पाता है। क्योंकि एक बार में किसी उपराज्य से दो में से केवल एक सीनेटर ही नया चुना जा सकता है, शपथ लेते समय पूर्व सीनेटर नये सीनेटर को उपाध्यक्ष की मेज के पास ले जाता है। कभी कभी पूर्व सीनेटर और नये सीनेटर में बड़ा वैर भाव रहता है, वैयक्तिक और राजनीति भी, जिससे वे आपस में एक दूसरे का अभिवादन भी नहीं करते ।

सीनेट की शक्तियाँ—सीनेट की शक्तियाँ बड़ी विस्तृत हैं। यह प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली है। सीनेट विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक तीनों प्रकार की सत्ता का उपभोग करती है। विधायक सदन की स्थिति में यह प्रतिनिधि-सदन के बराबर ही शक्तिशाली है। अन्तर केवल इतना ही है कि मुद्रा-विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही प्रारम्भ होता है, सीनेट में नहीं हो सकता। कार्यकारी क्षेत्र में प्रेसीडेंट जिन समझौतों व संधियों को करता है वे सीनेट के दो-तिहाई मताधिक्य से स्वीकृत होनी चाहिये। सीनेट ने जो सबसे महत्वपूर्ण संधियाँ अनुसमर्थित (Ratified) की और जिनसे संसार का ध्यान आकर्षित हुआ वे थीं जो अस्त्र-परिसीमन कांफ्रेंस के परिणामस्वरूप हुईं। चतुर्शक्ति संधि (Four Power Pact) भी ऐसी ही संधि थी जिसका सीनेट ने अनुसमर्थन किया। सीनेट ने प्रेसीडेंट विलसन के उस प्रस्ताव को रद्द कर दिया था कि अमरीका राष्ट्र-संघ (League of Nations) की सदस्यता स्वीकार करले और उस विशेष अवसर पर सीनेट अपनी कार्यकारिणी सत्ता का प्रेसीडेंट के विरुद्ध प्रदर्शन किया। जिन संघ-सरकार के आफसरों को प्रेसीडेंट नियुक्त करता है। उनकी नियुक्ती में सीनेट की सम्मति लेना आवश्यक है। इन कार्यकारी शक्तियों को सीनेट में विहित करने को ठीक ठहराते हुये ब्राइस ने कहा है "वैदेशिक नीति का परिचालन व नियुक्ति करने का अधिकार ऐसे प्रेसीडेंट के सुपुर्द करना खतरे से खाली न होगा जो चार वर्ष तक अपने पद से हटाया नहीं जा सकता, जिसके मंत्री विधानमंडल में नहीं बैठते और उसको उत्तरादायी नहीं होते। न ये शक्तियाँ ऐसी अल्पजीवी और बहुसंख्यक संस्था को सुपुर्द की जा सकती थीं जैसा कि प्रतिनिधि-सदन है जो राष्ट्र को पर्याप्त रूप में उत्तरदायी नहीं बन सकता और जो अपनी कड़ी कार्य नियमावलि के कारण विधेयकों पर व दूसरी

समस्याओं पर इतनी अच्छी तरह वाद-विवाद नहीं कर सकता जिससे जनता व देश को उनका स्पष्ट ज्ञान हो जाय।" × न्यायिक सत्ताधारी होने के नाते सीनेट न्यायालय के रूप में संघ सरकार के अफसरों पर लगाये हुये अभियोगों की जाँच करती है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश पर व अन्य न्यायाधीशों पर लगाये गये अभियोग की जाँच भी सीनेट ही करती है। अब तक सीनेट ने ऐसे नौ अभियोगों की जांच की है जिसमें प्रेसीडेंट एन्ड्रू जौन्सन और न्यायाधीश सैमूअल चेज के अभियोग भी शामिल हैं। ये दोनों जांच के पश्चात् मुक्त कर दिये गये। जार्ज वाशिंगटन ने एक बार सीनेट को वह तश्तरी बताया था जिसमें प्रतिनिधि सदन में पकाई हुई चाय ठंडी होती है।

सीनेट सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन है—कुछ लोग अमेरिकन सीनेट को दुनिया का सबसे शक्तिशाली ऊपरी सदन बताते हैं क्योंकि सीनेट को उन बहुत सी बातों के करने का अधिकार है जो न हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) कर सकता है न फ्रांस की सीनेट या स्विस-सीनेट कर सकती है। अमेरिका की सीनेट की शक्ति और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जाता है "कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें प्रेसीडेंट और सीनेट बिना प्रतिनिधि-सदन की सम्मति से कर सकते हैं या प्रतिनिधि-सदन व सीनेट प्रेसीडेंट की सम्मति के बिना कर सकते हैं किन्तु वह बातें अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी हैं जिन्हें प्रेसीडेंट और प्रतिनिधि-सदन बिना सीनेट की सम्मति के कर सकते हैं।" ❀ सीनेट की उपयोगिता का वर्णन करते हुये राजनीतिज्ञ ब्राइस ने लिखा है : "यह प्रतिनिधि सदन से अधिक परिवर्तन-विरोधी नहीं है, इसमें २० वर्ष पहिले की अपेक्षा धनी व्यक्तियों की संख्या कम है और अब इसे धनी वर्ग से सहानुभूति नहीं रह गई है। इसके सदस्यों की संख्या कम होने के कारण जहाँ योग्य व्यक्तियों को इसमें आकर अपनी सामर्थ्य व योग्यता दिखाने व ख्याति प्राप्त करने का अधिक अवसर मिलता है, वहां यह सरकार के शासन-यंत्र के परिचालन में स्थिरता भी लाती है। क्योंकि इसके अधिकतर सदस्य चार या छः वर्ष तक अपने स्थानों पर सुरक्षित रहने से लोक-आवेगों से जल्दी ही चंचल नहीं होते। इसमें चाहे कुछ भी दोष हो किन्तु इसका अस्तित्व अपरिहार्य है।" [1]

× मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पुस्तक २, पृ० ६६।

❀ दी अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ३१७।

[1] मौडर्न डेमोक्रेसीज़, पुस्तक २ पृ० ६६।

यह बात निस्सन्देह है कि सीनेट ने कई राष्ट्रचेताओं को जन्म दिया है। संयुक्त-राज्य अमेरिका के कई व्यक्ति प्रेसीडेंट होने से पूर्व सीनेट में सदस्य रह चुके थे। इनमें मुनरो, जैकसन, हैरीसन पीअर्स, हार्डिंग के नाम उल्लेखनीय हैं।

सीनेट अपनी कार्यप्रणाली स्वयं निर्धारित करती है—अपना कार्य करने के लिए सीनेट ने स्वयं अपने नियम बना रखे हैं। विभिन्न प्रस्तावों व विधेयकों पर विचार करने के लिये सीनेट की स्थायी समितियां हैं जिनकी संख्या १५ है। प्रत्येक समिति में बहुसंख्यक पक्ष के ही लोग अधिक संख्या में रहते हैं। कौन व्यक्ति सदस्य बनाये जायेंगे यह प्रत्येक पक्ष की गुप्त समिति (Caucus) निश्चित करती हैं। सीनेट का सदस्य जितनी देर चाहे सीनेट में बोल सकता है। संयुक्तराज्य अमेरिका की सीनेट ही दुनिया में ऐसी विधान-मंडल है, जहाँ वाक्स्वतन्त्रता पर कुछ भी रोक नहीं है। सीनेटर जब एक बार बोलने को खड़ा हो जाता है तो वह जब तक बोलना चाहे बोल सकता है। वह दूसरे सीनेटर को अपनी वक्तृता में हाथ बटाने को कह सकता है और उसकी वक्तृता समाप्त होने के पश्चात् वह फिर अपनी वक्तृता जारी रख सकता है। कभी कभी चमड़े जैसे मजबूत फेफड़े वाले सीनेटरों ने इस अधिकार का ऐसा उपयोग किया है कि सत्र की समाप्ति के समय जिस योजना पर बोलना आरम्भ किया उस पर इतनी देर तक बोले कि सत्रा-वसान होने से वह योजना वहीं समाप्त हो गई। × जब कोई सीनेटर किसी योजना के विरुद्ध होता है तो वह इसी अधिकार का प्रयोग कर उसे समाप्त कर देता है। अल्प-संख्यक पक्ष प्रायः यही तरीका काम में लाता है। इसको फिलीबस्टर (Filibuster) कहते हैं। एक समय सीनेटर स्मूर जो ऊटा उपराज्य (Utah) का प्रतिनिधि था, बिना अपनी मेज से हटे ही सारी रात बोलता रहा। एक दूसरे अवसर पर टैक्साज़ का सीनेटर शैफर्ड राष्ट्र-संघ (League of Nations) के कार्य का निरीक्षण करते हुये ६ घंटे और ५० मिनट तक बोलता रहा और "इतने समय तक वह न बैठा न आराम किया, यहां तक कि पानी तक न पिया।"[1] सन् १९०८ में विसकोंसिन के सीनेटर ला फौलिटि और दूसरे सीनेटरों ने एल्डरिच मुद्रा सम्बन्धी विधेयक (Currency Bill) का ऐसा विरोध किया कि सीनेट की बैठक २९ मई की दोपहर को आरम्भ होने के पश्चात् ३० घंटे तक चलती रही। वाक्-स्वा-तंत्र्य के इस दुरुपयोग के होते हुये भी (यदि हम इसे दुरुपयोग कहें) सीनेट ने

× फार्म एण्ड फंकशन्स आफ अमेरीकन गवर्नमेंट, पृ० २६४-२३५।

[1] दी अमेरिकन गवर्नमेंट, पृ० ३२४।

इस नियम को अभी तक बदलने का प्रयत्न नहीं किया है और इस अधिकार को अक्षुण्ण रखा है। साधारणतया सीनेट की बैठकों में दर्शकों के लिये कोई बाधा नहीं होती। किन्तु प्रायः महत्वपूर्ण शासन कार्य होने पर गुप्त बैठकें भी होती हैं जिनमें सामान्य जनता को जाने की आज्ञा नहीं होती।

सीनेट में बीते हुए दिनों के स्मृति चिन्ह अभी तक रहते आ रहे हैं। बहुत दिनों पहिले सीनेटरों ने जो मेज़ें काम में लाईं थीं उन्हें कुछ सीनेटर अब भी गर्व के साथ प्रयोग में लाते हैं। उन दिनों सभापति की मेज पर सूँघनी की डिबिया रखी जाया करती थी। वह डिबिया अब भी वैसे ही रखी जाती है हालांकि उसे अब कोई काम में नहीं लाता। इसी तरह पहले स्याही सुखानेवाले कागज का आविष्कार न होने से रेत की डिबिया सीनेटरों की मजों पर रखी जाती थी। ये अब भी उसी तरह वहां मिलेंगी। यद्यपि वे अब प्रयोग में नहीं लाई जातीं।

सीनेट में एक और अद्भुत प्रथा प्रचलित है वह यह है कि सीनेटर को आज्ञा मांगने का अधिकार है कि उसकी लिखी हुई वक्तृता जिसका एक शब्द भी सीनेट मे न पढ़ा गया हो। कांग्रेस के आलेखों में इस रूप में शामिल करदी जाय मानों वह सीनेट में पढ़ी गई हो। कुछ सीनेटर तो इस लिखित पर न बोली हुई वक्तृता में प्रशंसा सूचक क्षेपकों तक को उस जगह लिख देते हैं जहां वे समझते हैं कि श्रोता यदि वक्तृता को सुनते तो करतल-ध्वनि आदि में प्रशंसा करते, जिससे वह वक्तृता वास्तव में बोली हुई प्रतीत होने लगती है। दुनिया में किसी और देश के विधानमंडल में ऐसी प्रथा प्रचलित नहीं मिलेगी। ऐसी लिखित वक्तृता यदि लेख के रूप में किसी समा-चार-पत्र या पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी होती है तो वह सीनेट के आलेख में शामिल नहीं की जा सकती है। सन् १९२६ के फरवरी मास में सीनेटर मकैलर (Mckeller) ने यह चाहा कि विश्व-युद्ध ऋण समझौते पर लिखा उसका लेख आलेख में शामिल कर लिया जाय। सभापति ने इस पर आपत्ति की और प्रश्न किया कि क्या सीनेटर ने स्वयं उस लेख को लिखा है। सीनेटर ने उत्तर में कहा कि यह सही है कि लेख उसने ही लिखा है इस पर सभापति ने कहा कि "अतएव सीनेट के नियमों के अनुसार सभापति की समझ में यह आता है कि सीनेटर के बिना पढ़े हुए इसे छापा नहीं जा सकता।" *

कांग्रेस का प्रभाव—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कांग्रेस के महत्व के बारे में

* दी अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ३२०।

यह संक्षिप्त वर्णन दिया है। "यह वह उपद्रवकारी व जल्दबाज संस्था सिद्ध नहीं हुई जिसका संविधान निर्माताओं को भय बना हुआ था। इसमें आवेगों की आंधी बहुत कम उठती है। उपद्रव आदि के दृश्य तो देखने में ही नहीं आये। राजनीतिक पक्षों का अनुशासन कठोर रहता है। मित्रता का वातावरण सदा बना रहता है, कार्य प्रणाली की अवज्ञा नहीं की जाती और इने गिने व्यक्तियों के हाथ में शक्ति रहती है। यह असाधारण रूप से निर्वाचकों और विशेष कर विभिन्न राजनीतिक पक्षों की इच्छाओं को जानने व उन्हें पूरी करने को उत्सुक रहती है।" १ इस कथन के होते हुए भी यह सच है कि प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति कांग्रेस में निर्वाचित होने को उत्सुक नहीं रहते। इसका एक विशेष कारण यह है कि अमरीका में ऐसे व्यक्तियों के लिये दूसरे अधिक आकर्षक कार्यक्षेत्र खुले हैं जहां वे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकते हैं। लोक यात्रा के जितने विभिन्न मार्ग अमरीका में हैं, स्यात् और किसी देश में न मिलेंगे जिनमें महत्वाकांक्षी सामर्थ्यवान व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकते हैं। प्रचुर धन राशि लाने वाले औद्योगिक व्यवसाय, अच्छी फीस देने वाला वकीलों का कार्य व विश्व-विद्यालयों के ऊंचे पद जहां युवकों को मार्ग दिखलाने में ही अपने जीवन का श्रेय समझने वाले व्यक्तियों को ख्याति प्राप्त होती है, जीवनयापन के ये कतिपय साधन प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिये प्रचुरमात्रा में उपलब्ध है।

संघ कार्यपालिका

संविधान में यह लिखा हुआ है कि "कार्यपालिका शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के प्रेसीडेन्ट में विहित रहेगी। वह चार वर्ष तक अपने पद पर स्थित रहेगा।" दिन प्रतिदिन के व्यवहार में शासन विभागों के अध्यक्ष ही शासन कार्य करते हैं। कांग्रेस इन शासन विभागों को जन्म देती है और उन पर अपना नियन्त्रण रखती है।

प्रेसीडेन्ट पद के लिये योग्यतायें—प्रेसीडेंट पद के उम्मीदार में कुछ योग्यतायें होना आवश्यक है। ये संविधान के अनुच्छेद की धारा के ५ वें पैरा में दी हुई हैं। जिसमें लिखा है कि "कोई भी व्यक्ति जो इस विधान के अंगीकार होने के समय संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक नहीं है प्रेसीडेंट के पद के योग्य न समझा जायगा। न वह व्यक्ति इसके योग्य समझा जायगा जो ३५ वर्ष की आयु का न हो और १४ वर्ष तक संयुक्त राज्य अमरीका का

१ मौर्डन डैमौक्रेसीज, पु० २, पृष्ठ ६७।

निवासी रह चुका हो।" इन योग्यताओं के अतिरिक्त इस पद के उम्मेदवार देखते समय राजनीतिक पक्ष ऐसे व्यक्ति को ही छाँटते हैं जो अधिक से अधिक मतदाताओं को अपने पक्ष में करने में सफल हो सकता हो। इसलिये यह उम्मेद-वार ऐसा होना चाहिए जो सामाजिक जीवन के किसी क्षेत्र में सफल कार्य सिद्ध हुआ हो, चाहे काँग्रेस में, किसी उपराज्य के गवर्नर के पद पर, किसी बड़े नगर के मेयर के पद पर, मंत्रिपद पर, स्यात् राजदूत या न्यायाधीश के पद पर या वह एक असाधारण ख्याति प्राप्त पत्रकार रहा हो।"०

प्रेसीडेण्ट के पद की अवधि—एक प्रेसीडेंट का कार्यकाल ४ वर्ष है। संविधान में एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। किंतु संयुक्त-राज्य के प्रथम प्रेसीडेंट जार्ज वाशिंगटन तथा टौमस जैफरसन ने यह प्रथा चला दी थी कि एक ही व्यक्ति का प्रेसीडेंट के पद के लिये एक बार ही पुनर्निर्वाचन हो सकता है। सन् १९४० तक कोई भी व्यक्ति लगातार दो बार प्रेसीडेंट न चुना गया था। सन् १८७५ में जनरल ग्राँट तीसरी बार चुने जाने के लिये कुछ कुछ इच्छुक था परन्तु प्रतिनिधि-सदन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास करके उस इच्छा की जड़ ही खोद दी : "इस सभा की समझ में प्रेसीडेंट वाशिंगटन व अन्य संयुक्त-राज्य के प्रेसीडेंटों ने प्रेसीडेंट के पद से दूसरे कार्यकाल से पश्चात् अवकाश लेने का जो उदाहरण रखा था वह सर्वमान्य होकर हमारी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का ऐसा अंग बन चुका है कि इस चिरकाल सम्मानित प्रथा के प्रतिकूल चलना अविवेकपूर्ण, देशप्रेम के विरुद्ध और हमारी स्वतंत्र संस्थाओं के लिये भयपूर्ण होगा।" थियोडोर रूज़-वैल्ट (Theodore Roosevelt) लगातार तीसरी बार निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ किन्तु उसके प्रतिद्वन्दी उम्मेदवार ने उसको निर्वाचन में सफल न होने दिया। किन्तु सन् १९४० में फ्रैंकलिन रूज़वैल्ट (Franklin D.Roosevelt) जिसका कार्यकाल सन् १९४१ में समाप्त हो रहा था, यूरोपियन युद्ध-जनित विपत्ति-पूर्ण अन्तःराष्ट्रीय स्थिति के कारण तीसरी बार प्रेसीडेंट निर्वाचित हो गया और सन् १९४४ में वह चौथी बार निर्वाचित हुआ क्योंकि दूसरा महासमर समाप्त नहीं हुआ था और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गंभीर और जटिल थी। अब सन् १९५१ के विधान संशोधन से यह निश्चित कर दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति दो बार से अधिक नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रचलित प्रथा पर आघात लगा, प्रेसीडेंट का कार्यकाल ३६६ दिन वाले वर्ष के पश्चात् आने वाले वर्ष की

० मौडर्न डैमौक्रेसीज, पुस्तक पृष्ठ ७३।

२० जनवरी की दोपहर को समाप्त होता है। यह दिनांक शासन-विधान के १८ वें संशोधन से निश्चित हुई थी।

निर्वाचन कैसे होता है—प्रेसीडेंट का निर्वाचन सीधे जनता नहीं करती किन्तु प्रेसीडेंट-निर्वाचक करते हैं। इन प्रेसीडेंट-निर्वाचकों को ३६६ दिन वाले वर्ष के दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन जनता स्वयं चुनती है। किन्तु प्रेसीडेंट के चुनाव की लड़ाई पांच या छः मास पूर्व मई या जून से ही आरम्भ हो जाती है। दुनिया में यह सब से बड़ी राजनीतिक लड़ाई समझी जाती है। फिर भी "अमरीकन राजकीय जीवन की यह विशेषता है कि पूर्व शासक के आसन छोड़ने और नये शासक के आसनारूढ़ होने से अशान्ति की एक लहर भी नहीं उठती।" इसका कारण यह है कि अमरीकन जनता शलाका की सन्दूक (Ballot Box) की विजय को शान्ति पूर्वक शिरोधार्य कर लेती है।

प्रेसीडेण्ट निर्वाचकों का चुनाव—प्रेसीडेंट-निर्वाचकों के चुनाव की तिथि से कुछ मास पूर्व राजनैतिक पक्ष सारे देश में अपना प्रचार आरम्भ कर देते हैं। वे गत ग्रीष्म-ऋतु में प्रेसीडेंट व उप-प्रेसीडेंट के पदों के लिये अपने अपने उम्मेदवार निश्चित कर चुके होते हैं। नवम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन सब मतधारक व्यक्ति अपने अपने उपराज्य में एकत्रित होकर इन निर्वाचकों के चुनाव के लिए अपना मत देते हैं। इस निर्वाचन में उम्मीदवारों की योग्यता पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता केवल उनका किस पक्ष से सम्बन्ध है इसी का ध्यान रखा जाता है। मतधारक अपने अपने झुकाव के अनुकूल रिपब्लिकन (Republican) या डेमोक्रेट (Democrat) पक्ष के उम्मेदवारों को निर्वाचक बनाने के लिये अपना मत देते हैं। किसी उपराज्य से चुने जाने वाले प्रेसीडेंट-निर्वाचकों की संख्या उस उपराज्य के प्रतिनिधि-सदन में बैठने वाले निवासी व सीनेट में भेजे हुये प्रतिनिधियों (सीनेटरों) की संख्या के योग के बराबर होती है।

प्रेसीडेण्ट और उप-प्रेसीडेण्ट का निर्वाचन—ये प्रेसीडेंट-निर्वाचक दिसम्बर मास के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले सोमवार के दिन अपने अपने उपराज्य की राजधानी में एकत्रित होकर प्रेसीडेंट व उप-प्रेसीडेंट चुनने के लिए अपना मत देते हैं। इसलिये निर्वाचन के परिणाम के सम्बन्ध में तीन प्रमाण-पत्र तैयार किये जाते हैं, एक जिले के न्यायालय में रख दिया जाता है, दूसरा सीनेट के प्रेसीडेंट को डाक से भेज दिया जाता है और तीसरा उसी को पत्रवाहक के द्वारा भेजा जाता है। इसके बाद ६ जनवरी को सीनेट

व प्रतिनिधि-सदन की संयुक्त बैठक में काँग्रेस का अधिवेशन होता है। सीनेट का सभापति उन प्रमाणपत्रों को खोलता है। तब दोनों सदनों से दो दो व्यक्ति इन्हें गिनने के लिये नियुक्त किये जाते हैं। जो उम्मेदवार सब प्रेसीडेंट निर्वाचकों का मताधिक्य प्राप्त करते हैं वे प्रेसीडेंट और उप-प्रेसीडेंट घोषित कर दिये जाते हैं। इन निर्वाचकों की संख्या ५३१ है इसलिये जिस प्रेसीडेंट पद के उम्मेदवार को या उप-प्रेसीडेंट के उम्मेदवार को २६६ या अधिक मत मिल जाते हैं, वह प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है। किन्तु यदि इतने मत पाने वाला कोई उम्मेदवार न हो तो प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उम्मेदवार में से प्रतिनिधि-सदन एक को प्रेसीडेंट चुन लेता है। इसी प्रकार सीनेट उप-प्रेसीडेंट को चुनती है। इस चुनाव में उपराज्य के सब प्रतिनिधियों को एकही मत देने का अधिकार होता है और जो उम्मेदवार बहुसंख्यक उपराज्यों के मत प्राप्त करता है वह प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है। यदि प्रतिनिधि-सदन ४ मार्च तक किसी को प्रेसीडेंट नहीं चुन पाता तो पूर्व उप-प्रेसीडेंट अपने आप प्रेसीडेंट बन जाता है और जो उप-प्रेसीडेंट के पद का उम्मेदवार इस पद के चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त करे वह सीनेट द्वारा उप-प्रेसीडेंट घोषित कर दिया जाता है।

इस प्रणाली से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट (अथवा अध्यक्ष या उपाध्यक्ष) के चुनाव के लिए प्रेसीडेंट-निर्वाचकों का मताधिक्य ही आवश्यक है, प्रजा के प्राथमिक मतदाताओं का मताधिक्य होना आवश्यक नहीं है। सन् १८७६ में हेज (Hayes) और सन् १८८८ में हरिसन (Harrison) प्रेसीडेंट-निर्वाचकों के बहुमत से चुने गए थे किन्तु उनके विरोधी टिल्डैन और क्लीविलैंड को प्रजा का बहुमत प्राप्त था। प्राथमिक मतदाताओं ने अधिक संख्या में इनको चुनना चाहा था किन्तु प्रेसीडेंट-निर्वाचकों की अधिक संख्या ने हेज और हैरीसन को पसन्द किया। प्रेसीडेंट की मृत्यु होने पर, उसके पदत्याग करने पर या हटाये जाने पर उप-प्रेसीडेंट (उपाध्यक्ष) अपने आप प्रेसीडेंट बन जाता है। यदि ऐसे अवसर पर उप-प्रेसीडेंट भी इस योग्य न हो कि प्रेसीडेंट बना दिया जाय, उसके पद-त्याग करने से, मृत्यु होने से, अस्वस्थ या हटाये जाने से, तो सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) अन्तरिम प्रेसीडेंट बन जाता है। यदि वह यह कार्यभार नहीं ले सकता तो युद्ध-सेक्रेटरी प्रेसीडेंट का पद ग्रहण करता है। इसी क्रम से एटौरनी जनरल (Attorney General) अर्थात् महा न्यायवादी, पोस्टमास्टर जनरल, नौसेना-सेक्रेटरी, गृह सेक्रेटरी आवश्यकता पड़ने पर पद के लिए नियुक्त होते हैं" [१]।

१ स्टेट—पैरा १३३३ (१६०० का संस्करण)।

शपथ—निर्वाचन समाप्त होने के पश्चात् अभिषेक के लिए प्रेसीडेंट को एक जलूस के साथ ले जाया जाता है। उसे यह शपथ लेनी पड़ती है "मैं यह शपथ लेता हूं (या प्रतिज्ञा करता हूं) कि मैं प्रेसीडेंट के कार्य को निष्ठा-पूर्वक करूँगा और अपनी सारी योग्यता से संयुक्त-राज्य के संविधान को बनाये रखूंगा, उसकी रक्षा करूंगा और उसकी रक्षा के लिए प्रयत्न करूंगा।"

प्रेसीडेंट का वेतन—प्रेसीडेंट को एक लाख डौलर का वार्षिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष यात्रा खर्च के लिए ५०,००० डौलर, ३६००० डौलर लेखन सामग्री, तार टेलीफोन आदि के लिए और ३००० डौलर छपाई आदि के लिए दिया जाता है। प्रेसीडेंट के रहने के ह्वाइट हाउस (White House) नाम का एक सुन्दर भवन मिला हुआ है जो १७ एकड़ भूमि घेरे हुए है और जिस पर प्रतिवर्ष १२४००० डौलर खर्च किया जाता है। एक विशेष पुलिस का जत्था, जिसमें तीन अफसर व ३० सिपाही रहते हैं, ७५००० डौलर के खर्च पर रक्षा के लिए रखा जाता है। तिस पर भी उसके उच्चपद के कारण प्रेसीडेंट का व्यक्तिगत खर्च इतना अधिक है कि जब वह ह्वाइट हाउस को छोड़ता है तो उसमें प्रवेश करने के समय की अपेक्षा अधिक निर्धन होकर जाता है।

प्रेसीडेंट अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति होता है—साधारण प्रेसीडेंट राज्य का सबसे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति होता है। दुनिया में जितने चित्र उसके लिये जाते हैं उतने किसी दूसरे व्यक्ति के नहीं लिये जाते। कई बार वह चलित चित्रों में भी दिखाई देता है। यह कहा जाता है कि वाशिंगटन नगर के एक दुकानदार के पास प्रेसीडेंट विलसन के चित्र की १५००० प्रतिलिपियाँ थीं। प्रेसीडेंट की डाक का थैला दुनिया के किसी भी शासनाध्यक्ष की डाक की अपेक्षा अधिक भारी होता है। प्रतिदिन पत्रों व तारों की संख्या ३००० से ४००० तक होती है जिनमें से केवल २०० ही प्रेसीडेंट तक पहुंचते हैं शेष उसका सेक्रेटरी देखता है। "स्यात् दुनिया में ऐसा कोई दूसरा अफसर न होगा जिसके पास उतने प्रार्थना-पत्र आते हों जितने अमरीका के प्रेसीडेंट के पास आते हैं। प्रायः इनमें मनचले लेखकों की हास्यपूर्ण चुटकियां भी रहती हैं। सामान्यतः प्रेसीडेंटों को अनेकों वस्तुएँ भेंटस्वरूप प्राप्त होती हैं। प्रेसीडेंट हार्डिंज़ की मृत्यु के पश्चात् ह्वाइट हाउस के तीन कमरों में भरी हुई ऐसी उपहार-वस्तुओं को बांधने में और भेजने में दो सप्ताह का समय लगा। प्रेसीडेंट से मिलने वालों की संख्या बहुत अधिक होती है। प्रेसडेंट हार्डिज़ के समय में १५०,००० व्यक्ति प्रेसीडेंट से मिलने आए। "यदि प्रेसीडेंट यह

चालाकी न सीखे कि मिलने वाले व्यक्ति को अवसर न देकर स्वयं उसका हाथ पहले पकड़ ले तो निश्चय ही हस्तमर्दन करते करते उसकी बाँह सूज जाय" * ।

सब से शक्तिशाली शासनाध्यक्ष—"अमरीका के प्रेसीडेंट पर जितनी जिम्मेदारियाँ हैं और उसकी जितनी शक्ति है उतनी इस देश में या दुनिया के किसी देश में किसी व्यक्ति को नहीं हैं। यह दुनिया के शासकों में सबसे प्रथम है" ।[१] प्रेसीडेंट की शक्ति का उपर्युक्त वर्णन बिलकुल सत्य है, इसमें यदि कोई अपवाद है तो वे कम्पनियों के डाइरेक्टर हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों से अपने हाथ में बहुत शक्ति केन्द्रित कर रखी है। प्रेसीडेंट की शक्ति में विशेषता इस बात की है कि उसका वैधानिक महत्व बहुत है और उसे लोक समर्थन प्राप्त रहता है। एक समय जो यह भय हुआ था कि प्रेसीडेंट स्यात् निरंकुश शासन बन जाय, वह निर्मूल सिद्ध हुआ है "........राष्ट्र के मन में अमेरिकन शासन के सिद्धान्तों की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि उनको उल्लंघन करने की थोड़ी सी भी प्रवृत्ति से विरोध की आंधी चलने लगेगी" ० । ब्रिटिश सम्राट अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है। उसका कोई भी कार्य तब तक वैध नहीं होता जब तक उसका समर्थन मंत्रियों में से कोई न करे। वह राज्य करता है पर शासन नहीं करता। उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह कोई अपराध नहीं कर सकता। इस कथन में बहुत सच्चाई है क्योंकि शासन के मामले में वह स्वयं कोई आज्ञा नहीं देता। सब शासन शक्ति मंत्रि-मंडल के पास रहती है। इस मंत्रिमंडल का अध्यक्ष प्रधान मंत्री होता है और वही प्रमुख शासक रहता है। सम्राट का व्याख्यान भी मंत्रिमंडल तैयार करता है जिसमें इसकी शासन नीति रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेंट भी अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है, वहां भी सारी शासन शक्ति मंत्रिपरिषद् के हाथ में रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेंट न राज्य करता है न शासन करता है। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमरीका के प्रेसीडेंट के पास कई शक्तियां हैं और वह वास्तव में शासन करता है।

विधायिनी शक्तियां (Legislative Powers)—प्रेसीडेंट अपने संदेशों द्वारा कांग्रेस के सम्मुख अधिनियम सम्बन्धी प्रस्ताव रखता है। पहले प्रेसीडेंट प्रतिनिधि सदन और सीनेट की संयुक्त बैठक में स्वयं जाकर कांग्रेस

---

* हैसकिन--दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ५६-५७।

[१] उसी पुस्तक में पृ० ५१।

० मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पु० २, पृ० ७६।

को अपना संदेश दिया करता था। बाद में यह प्रथा छोड़ दी गई और केवल यह संदेश उसकी ओर से पढ़कर सुना दिया जाने लगा। किन्तु प्रेसीडेंट विलसन ने स्वयं जाकर अपने संदेश देने की प्रथा को फिर चालू किया। यह संयुक्त अधिवेशन प्रतिनिधि-सदन के भवन में होता है। "कभी कभी प्रेसीडेंट का संदेश किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन कर देता है कि वह मौलिकतत्व के रूप में मान्य हो जाता है और इस प्रकार वह सिद्धान्त या नियम देश के संविधान का वैसा ही भाग बन जाता है मानों संविधान में विधि पूर्वक उसे शामिल कर लिया हो।"[1] जो सिद्धान्त मुनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) के नाम से प्रसिद्ध है उसकी सृष्टि प्रेसीडेंट मुनरो के द्वारा इसी प्रकार हुई थी। प्रेसीडेंट मुनरो ने यह घोषणा की कि "संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी गोलार्द्ध में यूरोपियन राज्यों के आधिपत्य और प्रभाव का बढ़ना सहन नहीं करेगा" प्रेसीडेंट के ये संदेश काँग्रेस के विधायक कार्य पर बड़ा प्रभाव डालते हैं, विशेषकर उस समय जब प्रेसीडेंट के ही पक्ष का काँग्रेस में बहुमत होता है।

प्रेसीडेण्ट का प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power)—प्रेसीडेंट काँग्रेस के बनाए हुए विधेयकों को रद्द भी कर सकता है। जो विधेयक दोनों सदनों से स्वीकार हो चुका हो, उसे प्रेसीडेंट अपनी विरुद्ध युक्तियों सहित दस दिनों के भीतर लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाया हुआ विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक कि दोनों सदनों में दो तिहाई मत से वह फिर जैसे का तैसा पास न हो जाय। यदि दो तिहाई मत से वह पास न हो तो वह रद्द समझा जाता है। प्रेसीडेंट काँग्रेस का अतिरिक्त अधिवेशन कर सकता है।

प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power) का महत्व—उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंट की विधायिनी शक्ति ७१ प्रतिनिधियों और १५ सीनेटरों के बराबर है (प्रतिनिधियों की संख्या ४३५ और सीनेट की ९८ है)। ऐसी शक्ति न ब्रिटिश सम्राट के पास में है न फ्रांस के प्रेसीडेंट के पास। अमरीका के प्रेसीडेंट ने सन् १७८९ व १९२५ के बीच में ६०० बार इस शक्ति का प्रयोग किया। राजशास्त्री हरमन फाइनर ने प्रतिषेधात्मक शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है: "यह ऐसी शक्ति है जिसमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता और जिसके प्रयोग करने में सफलता की आशा तो रहती है, दण्ड का भय नहीं रहता। देश में विधानमंडल में लड़ी हुई व्यवस्था सम्बन्धी लड़ाई को कांग्रेस का

---

१ दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ६५।

कोई भी पक्ष केवल इतने समय में हार सकता है जितनी देर में प्रेसीडेंट 'नहीं' व कुछ दूसरे व्याख्यात्मक शब्द लिखने में लगावे। इस 'नहीं' का उल्लंघन पुनर्विचार और दो तिहाई मत से ही हो सकता है जो कांग्रेस की बहुलता और दोनों सदनों में पक्षों की विभिन्नता के कारण सम्भव नहीं है।" × असल में प्रेसीडेंट ने विधायक कार्य का बहुत कुछ नेतृत्व अपने हाथ में कर लिया है।

कार्यकारिणी शक्तियाँ—शासन-क्षेत्रों में प्रेसीडेंट की शक्तियां बड़ी विस्तृत हैं। वह राष्ट्र का प्रमुख मजिस्ट्रेट अर्थात् शासक है। वह सेना का मुख्य सेनापति है। विदेशी राजदूतों को वह ही स्वीकार करता है तथा अपने राजदूतों की नियुक्ति भी वह ही करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की भी नियुक्ति करता है। उसका यह प्रमुख काम रहता है कि वह यह देखे कि संयुक्त-राज्य अमरीका के कानूनों का भली भांति पालन हो रहा है। सीनेट की अन्तिम स्वीकृति से वह संधि कर सकता है। पर-राष्ट्र विभाग का वह अकेला कर्त्ता-धर्ता है। इस नियंत्रित शक्ति का वह इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जिससे काँग्रेस को सिवाय प्रेसीडेंट की नीति का समर्थन करने के और कोई चारा ही न रह जाय। शासन-सम्बन्धी नियुक्तियों में उसे सीनेट से सलाह लेनी पड़ती है। व्यवहार में वह जिस उपराज्य में नियुक्ति करनी होती है उसी के सीनेटरों से सलाह लिया करता है। किन्तु जब सीनेट की बैठक न हो रही हो, उस समय अस्थायी रूप से रिक्त पदों के भरने का उसे पूरा अधिकार है। ऐसी नियुक्तियां वह ऐसे ढंग से कर सकता है कि सीनेट की इच्छा के विरुद्ध भी वह नियुक्ति पक्की बनी रहे। रिक्त पदों पर वह अपने मित्रों व राजनैतिक पक्ष के साथियों को नियुक्त कर अपने पक्षानुराग का खुले तौर पर परिचय देता है। पदाधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति का प्रायः ऐसा उपयोग किया गया है कि घरेलू व वैदेशिक मामलों में प्रेसीडेंट की ही मन चाही बात होती है। छोटे पदाधिकारियों को प्रेसीडेंट बिना सीनेट से पूछे ही नियुक्त कर सकता है। क्षमादान करने की शक्ति प्रेसीडेंट को ही दी हुई है और प्रेसीडेंट ही छुट्टियां घोषित करता है।

स्वविवेकी शक्तियाँ (Discretionary Powers):—प्रेसीडेंट को कुछ ऐसी शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका उपयोग वह अपने विवेक से ही करता है। इन शक्तियों के बल पर प्रेसीडेंट किन्हीं व्यक्ति या व्यक्ति समूहों को किसी

× थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मार्डन गवर्नमेंट, पु० II, पृ० १०३३।

काम के करने से रोक सकता है या किसी काम को करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में न्यायालय भी रुकावट नहीं डालते। असल में न्याय-सत्ता और प्रेसीडेंट में मुश्किल से कभी टक्कर होती है। प्रेसीडेंट की शक्ति इतनी अधिक है कि एक अवसर पर जब प्रधान न्यायाधीश मार्शल ने प्रेसीडेंट जैकसन की इच्छा के प्रतिकूल एक निर्णय दिया तो प्रेसीडेंट जैकसन ने कहा "मार्शल ने अपना निर्णय दे तो दिया पर वह उसको कार्यान्वित भी करे।" इससे दिखला दिया कि न्यायालय भी अपने निर्णय को कार्यान्वित कराने में प्रेसीडेंट पर ही निर्भर है।

प्रेसीडेंट पर अभियोग—प्रेसीडेंट पर दुर्व्यवहार व महापराध का अभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि-सदन में अभियोग लगाने का निर्णय पहले होता है। तब सीनेट में यह अभियोग लगाया जा सकता है और उसकी जांच की जाती है। प्रेसीडेंट को अपराधी ठहराने और दण्ड देने के लिये सीनेट का निर्णय दो तिहाई बहुमत से होना चाहिये।

प्रेसीडेण्ट की मंत्रिपरिषद्—प्रेसीडेंट की मंत्रिपरिषद् में शासन विभागों के अध्यक्ष होते हैं जिनको प्रेसीडेंट सीनेट की सम्मति से नियुक्त करता है। "ये लोग प्रेसीडेंट के ऐसे निकटस्थ सहायक होते हैं कि यदि सीनेट प्रेसीडेंट से चुने हुये व्यक्तियों को नियुक्त करने से इन्कार करे तो यह केवल खेदजनक भद्दी बात ही न हो वरन् यदि ऐसे विरोधों की संख्या अधिक हो तो शासन सत्ता ही छिन्न-भिन्न हो जाय।" × प्रेसीडेंट की मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों को वैसी ही शक्तियां प्राप्त नहीं हैं जैसी ब्रिटिश या फ्रांस की पार्लियामेंटरी या अन्य मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को मिली हुई रहती हैं। इसका कारण यह है कि अमरीकन कार्यपालिका शक्ति केवल प्रेसीडेंट में ही विहित है। यह एकात्मक कार्यपालिका (Unitary Executive) है और इसीलिये फ्रांस व इंगलैंड की अनेकात्मक कार्यपालिका से भिन्न है। अमेरिका की कार्यपालिका का स्थायी (चार वर्ष के समय तक) अध्यक्षात्मक (Presidential) कार्यपालिका है जो विधानमण्डल को उत्तरदायी नहीं है जैसी कि संसदात्मक कार्यपालिका (Parliamentary Executive) होती है। अमरीका के प्रेसीडेंट को यह अधिकार है कि वह अपने मन्त्रियों की राय को पलट सकता है। वह प्राय: ऐसा करता भी है क्योंकि उनकी सलाह सिफारिश के रूप में होती है। इसका स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा किया जा सकता है। एक बार अब्राहम लिंकन ने अपना एक प्रस्ताव अपने सात मंत्रियों की परिषद् के सामने रखा

× थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट पृ० १०४४।

और उन सब ने उसका विरोध किया। परन्तु स्वयं उसने उसका समर्थन किया। उसने चुपचाप यह निर्णय दिया : "इस निर्णय के पक्ष में हाँ कहने वाला १ और विपक्ष में न कहने वाले ७ मत हैं इसलिये हाँ की जीत हुई।"

सचिव प्रेसीडेण्ट के मातहत हैं—प्रेसीडेंट के मंत्री जो सेक्रेटरी कहलाते हैं दोनों सदनों में से किसी में भी उपस्थित नहीं हो सकते। वे वहाँ जाकर अपनी नीति पर लगाये हुये दोषारोपण का प्रतिवाद भी नहीं कर सकते। वे प्रेसीडेंट के ही आश्रित रहते हैं और यदि वे किसी बात में प्रेसीडेंट से सहमत नहीं होते तो अधिक से अधिक यही कर सकते हैं कि अपना पद त्याग कर दें। प्रेसीडेंट रूज़वैल्ट के समय में ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। युद्ध के समय प्रेसीडेंट की शक्ति अधिनायक (Dictator) जैसी हो जाती है। उस समय उसे सैक्रेटरियों से परामर्श लेने की आवश्यकता भी नहीं रहती। किन्तु बहुत कुछ प्रेसीडेंट के व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। यदि वह सुदृढ़ व्यक्ति नहीं है तो वह कुछ नहीं कर पाता, और यदि वह दृढ़ इच्छा वाला होता है तो अपने देश में सर्वशक्तिमान् बना रहता है।

ये सेक्रेटरी विभिन्न शासन विभागों के अध्यक्ष बना दिये जाते हैं। इस समय इन विभागों की संख्या १० है। मन्त्रिपरिषद् में इन देशों के उपाध्यक्ष १० सेक्रेटरी हैं। स्टेट डिपार्टमेंट, अर्थात् परराष्ट्र विभाग, अर्थ विभाग, युद्ध-विभाग, न्याय-विभाग, डाक-विभाग, नौसेना-विभाग, गृह-विभाग, कृषि-विभाग, व्यापार विभाग और श्रम-विभाग, ये दस विभाग हैं। इन शासन विभागों के बारे में शासन-विधान में कुछ भी नहीं कहा गया है किन्तु ये कॉंग्रेस के एक्टों से स्थापित हुये हैं।

संघ-न्यायपालिका

सर्वोच्च न्यायालय—संयुक्त-राज्य अमेरिका के शासन विधान की तीसरी धारा से न्याय शक्ति "सर्वोच्च न्यायालय या उन अन्य न्यायालयों में जो काँग्रेस समय समय पर स्थापित करे" विहित है। संघ न्यायपालिका की चोटी पर जो सर्वोच्च न्यायालय है उसकी शक्ति व अधिकार संविधान से ही उसे प्राप्त हैं। इसलिये वह विधानमण्डल या कार्यपालिका सत्ता के आधीन नहीं है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—इसमें सन्देह नहीं कि इन सर्वोच्च न्यायाधीशों को प्रेसीडेंट ही नियुक्त करता है, किन्तु इनको चुनने में प्रेसीडेंट दलबन्दी की नीति का अनुकरण नहीं करता। "इनकी नियुक्ति में राजनीति

का बहुत थोड़ा पुट रहता है। अपने पक्ष का ध्यान न रखते हुये प्रेसीडेंट रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिये सबसे योग्य व्यक्ति को ही नियुक्त करता है।"* सर्वोच्च न्यायालय के आधीन संघ विचरण शील (Circuit Courts) न्यायालयों व जिले के न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्रेसीडेंट महा न्यायवादी (Attorney Genaral) की सिफारिश पर नियुक्त करता है। महा-प्राभिकर्त्ता स्वयं सम्बन्धित उपराज्य के सीनेटरों से सलाह लेता है। इससे स्पष्ट है कि संघ-न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में यह ध्यान रखा जाता है कि वे विधि-निर्बन्ध के सम्बन्ध में अनुपम योग्यता रखते हों। "अयोग्य व्यक्तियों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करने से नियुक्त करने वाली सत्ता को जितना दोष मिलता है उतना किसी और शासन की गलती से नहीं मिलता"[1]। शासन विधान में यह भी कहा गया है कि "न्यायाधीश, चाहे वे सर्वोच्च न्यायालय के हों अथवा छोटे न्यायालयों के, जब तक सदाचारी रहेंगे अपने पदों पर काम करते रहेंगे और निश्चित समय पर अपनी सेवाओं के लिये जो पारिश्रमिक पावेंगे वह उसके सेवा-काल में कम नहीं किया जा सकता।" अतएव इन परि-स्थितियों में संयुक्त-राज्य का सर्वोच्च न्यायालय, प्रेसीडेंट, कांग्रेस और उपराज्यों के कार्यों को वैध अवैध ठहराने की अपनी शक्ति के कारण और उस स्थायित्व के कारण जिसके होने से उसे बदलते हुये लोकमत का मुँह नहीं देखना पड़ता, संयुक्त-राज्य की शासन प्रणाली की बहुत सी बातों में एक बहुत प्रभावशाली हेतु बना हुआ है और दुनिया का सब से बड़ा न्यायसंगठन है।[2]

सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र—संघ न्यायसंगठन के अधि-कार-क्षेत्र के सम्बन्ध में शासन-विधान का लेख यह है: "इस शासन-विधान के सम्बन्ध में या संयुक्त-राज्य अमेरिका के कानून और इनके आधीन जो संधियाँ हुई हों या भविष्य में हों इनके अन्तर्गत कानूनों के प्रावधानों के सम्बन्ध में या प्राकृतिक न्याय के बारे में उठने वाले प्रश्नों में, राजदूतों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों में, सामुद्रिक व नौसेना के अधिकार-क्षेत्र में उठने वाले प्रश्नों में, उन झगड़ों में जहाँ संयुक्त-राज्य वादी या प्रतिवादी हो, दो या दो से अधिक उपराज्यों के बीच झगड़ों में, एक उपराज्य और दूसरे उपराज्य के नागरिकों के झगड़े में, विभिन्न उपराज्यों के नागरिकों के झगड़े में, एक ही उपराज्य के दो नागरिकों को विभिन्न उपराज्यों से मिले अनुदान सम्बन्धी

* दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २६५।

१ फौर्म एण्ड फंकशन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८३।

२ दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८५।

झगड़ों में और एक उपराज्य व उसके नागरिकों तथा दूसरे किसी बिदेशी राज्य व उसके नागरिकों में जो झगड़ा हो, इन सब बातों में संघ-न्यायपालिका को निर्णय करने का अधिकार प्राप्त रहेगा।" विधान ने सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक व पुनर्विचारक अधिकार क्षेत्र की सीमा भी इस प्रकार निश्चित कर दी है: "राजदूतों व किसी उपराज्य से सम्बन्धित मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होंगे। अन्य उपर्युक्त मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय में कानून की व्याख्या व वास्तविकता के प्रश्न पर केवल पुनर्विचार हो सकता है उन अपवादों को छोड़ कर और उन नियमों के अनुसार जिन्हें कांग्रेस निश्चित कर दे।"

प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र—जैसे उन मुकदमों में जहां किसी संघ या उपराज्य के कानून के वैध-अवैध होने का प्रश्न ही सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है वैसे ही जिन मुकदमों में संघ सरकार या कोई उपराज्य सरकार एक पक्ष में हो सर्वोच्च न्यायालय में ही वे प्रारम्भ होते हैं। संयुक्त-राज्य का सबसे बड़ा पुनर्विचारक न्यायालय होने के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय की वास्तविकता, महत्ता और अनुपमता इस बात में है कि वह शासन-विधान की व्याख्या करता है और उसकी मान्यता को सुरक्षित रखता है। किन्तु अपनी इस शक्ति के प्रयोग का सूत्रपात वह न्यायालय स्वयं नहीं करता। इसका प्रयोग तभी होता है जब उसके सामने कोई एक ऐसा निश्चित उदाहरण उपस्थित किया जाता है जिसमें संघ सरकार या उपराज्य-सरकार के किसी कानून की वैधानिकता पर आपत्ति की गई हो। ऐसे मुकदमे का निर्णय देने में यह न्यायालय शासन-विधान को सर्वोपरि मान कर उसकी कसौटी पर दूसरे कानूनों को वैध-अवैध ठहराता है। प्रेसीडेण्ट या कांग्रेस का कोई भी कार्य तभी वैध समझा जाता है जब उस कार्य का सम्बन्ध लिखित शासनविधान के किसी वाक्य या शब्द से हो। प्रेसीडेण्ट विलसन ने अपनी पब्लिक पेपर्स (Public Papers) में सच कहा है कि "हमारे न्यायालय हमारी विधान प्रणाली के आधीन हैं, वे हमारे राजकीय विकास के साधन हैं, हमारा राज्य संगठन कुछ ऐसा विशेष रूप से वैधानिक प्रकृति का है कि हमारी राजनीति वकीलों पर निर्भर रहती है। अतएव प्रत्येक मुकदमे में निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय को पहले यह निश्चय करना पड़ता है कि जिस शक्ति को कांग्रेस अपनी कहती है वह विधान के किसी प्रावधान से जोड़ खाती है या नहीं और उसके बाद यह देखा जाता है कि उस प्रावधान का कितना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है।

संविधान की व्याख्या—संविधान ने कांग्रेस की शक्तियों को पूरी तरह से निर्धारित कर दिया है किन्तु अनुच्छेद १ की ८ वीं धारा के १८ वें पैरा (Para) से न्यायाधीशों को व्याख्या करने के हेतु विस्तृत क्षेत्र छोड़ दिया गया है जिसके द्वारा उनको यह निर्णय करने की स्वतंत्रता मिली हुई है कि क्या कांग्रेस से अध्यर्थित शक्ति "पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक है"। इन शब्दों की व्याख्या करने में ही न्यायाधीशों ने निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस निहित शक्तियों के सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) के आधार पर अमेरिका में संघ सरकार की शक्तियों को बहुत बढ़ा दिया गया है। न्यायाधीश टैनी (Taney) ने सर्वोच्च न्यायालय के सम्बन्ध में कहा था "यदि हम इस न्यायालय में संविधान के शब्दों को नवीन अर्थ देने में स्वतंत्र है तो ऐसी व्याख्या से किसी भी शक्ति को संघ सरकार के सुपुर्द किया जा सकता है और उसे उपराज्यों से छीना जा सकता है।"

निहित-शक्तियों के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर संघ सरकार को शक्तिशाली बनाने का श्रेय सब से अधिक न्यायाधीश मार्शल को दिया जाता है जो बहुत समय तक न्यायाधीश के पद पर बना रहा और जो "उसी युग की उत्पत्ति था जिस में शासन विधान का निर्माण हुआ और संविधान निर्माताओं के अभिप्राय से भली भांति परिचित था। जब किसी प्रश्न पर कहीं भी बचत न दिखाई दी थी तो वह यह बतला सकता था कि देश के हित में किस प्रकार बाल की खाल निकाली जा सकती है और उसने उसके समकालीनों की राय में अपने निर्णयों मे संविधान के स्पष्ट शब्दों की भी खूब खींचा-तानी की।" * अब भी अमरीका के वकील उन निर्णयों को उतना ही पुनीत समझते हैं जितना संविधान की धाराओं को क्योंकि दोनों का ही तात्पर्य एक है। वह तात्पर्य यह है कि राष्ट्र को चिरंजीवी और सुदृढ़ बनाया जाय।" *

राजशास्त्री हरमन फाइनर ने अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के बारे में एक बार कहा था कि ऐसे कर्तव्यों वाला ऐसा न्यायालय राजनीति शास्त्र अमेरिका की अपनी निराली देन है जो इसके विरोध में पाई जाती है। इसमें बढ़कर, यह वह सीनेट है जिससे संघराज्य का भवन सुदृढ़ बना रहता है।"

---

* दी अमेरिकन गवर्नमेंट, पृ० २८७।

१ थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० १, पृ० ३०९।

एक दूसरे लेखक हैस्किन (F. J Haskin) ने भी न्यायालय के बारे मे कहा है "कि यह न्यायालय राज्य सगठन यत्र की चाल को ठीक रखने वाला चक्र है। जब लोकमत के झकोरो से सरकार के दूसरे विभाग इधर उधर झटके खाते है यह अपनी न्याय-सतुलन बनाये रखता है सब समय और सब परिस्थितियों मे इसका कर्तव्य सविधान की सर्वोच्चता की रक्षा करना है। इस कर्तव्य का निबाहना लोकहित के लिये अत्यन्त आवश्यक है। ×

सर्वोच्च न्यायालय की बनावट—सर्वोच्च न्यायालय मे एक प्रमुख न्यायाधीश जिसका वार्षिक वेतन २५,५०० डालर है और ८ उप-न्यायाधीश जिनमें से प्रत्येक को २५,००० वार्षिक वेतन दिया जाता है, होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में काम करने के अतिरिक्त ये ९ न्यायाधीश उन ९ भ्रमणशील न्यायालयो के काम को देखभाल करते है जो काग्रेम ने स्थापित किये है। सयुक्त-राज्य का सारा भूमि प्रदेश ९ क्षेत्रो मे बॉट कर इन ९ भ्रमणशील न्यायालयो के अधिकारक्षेत्र मे कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश यदि चाहे तो ७० वर्ष की आयु मे अवकाश प्राप्त कर सकते है, यदि उस समय तक वे दस साल तक अपने पद पर काम कर चुके हो। मुकदमो को सुनने के लिये सब न्यायाधीश मिलकर बैठते हे। सबके बीच मे प्रमुख न्यायाधीश बैठता है। मगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार के दिन मुकदमो की सुनवाई होती है। शनिवार का दिन न्यायाधीशो के परामर्श के लिये निश्चित है जब वे आपस मे मिलकर सब मुकदमो पर विचार व बहस करते हे और विचार करने के पश्चात् पृथक होकर अपने अपने सुपुर्द किये हुये मुकदमे का निर्णय लिखते हे। निर्णय पहले ही विचार करने के फलस्वरूप बहुमत से या सर्वसम्मति से ही निश्चित रहता है। अगले सोमवार के दिन न्यायालय भवन में सबके सामने ये निर्णय सुना दिये जाते है।

न्यायालय की साधारणतया अक्टूबर से लेकर जून तक बैठक हुआ करती है। दुनिया मे ऐसी कोई सस्था नही है जो इतने प्रभावपूर्ण ढग से अपना कार्य करती हो जितना अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय करता है। इसकी बैठको मे समय-निष्ठा और अनुपम शान्ति देखने योग्य है।

भ्रमणशील न्यायालय (Circuit Courts)—काग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय के आधीन निम्नकोटि की सघ अदालते भी स्थापित की है। इस समय ऐसे न्यायालय १० है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो मे से प्रत्येक

× अमरीकन गवर्नमेंट, पृ २९६।

एक भ्रमणशील न्यायालय के प्रबन्ध की देख भाल करता है। प्रत्येक भ्रमण-शील न्यायालय में दो न्यायाधीश होते हैं जिनको १०,००० डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। ये दौरा करने वाले न्यायाधीश कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जिस जिले में न्यायालय की बैठक होती है वहाँ एक जिला न्यायाधीश भी होता है जो भ्रमणशील न्यायालयों की बैठकों में भाग लेता है यदि उसके निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील सुनी जा रही हो। ऐसा होते समय वह दौरा करने वाले न्यायाधीशों के साथ बैठकर अपील नहीं सुनता।

जिला-न्यायालय—न्यायमण्डल की तह में ८८ जिला-न्यायालय हैं जिनमें एक या अधिक जिला न्यायाधीश होते हैं। इनका वेतन ७,००० डालर होता है। हर एक उपराज्य में कम से कम एक जिला न्यायालय अवश्य होता है। किन्हीं में एक से अधिक भी न्यायालय होते हैं किन्तु एक ही जिले में दो या अधिक उपराज्यों का प्रदेश शामिल नहीं किया जाता। कुछ इने गिने मामलों को छोड़कर जिनमें सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है सब मामले जिले के न्यायालयों में ही पहले आरम्भ होते हैं। इनके निर्णय के विरुद्ध अपील भ्रमणशील न्यायालयों और अन्त में सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है। किन्तु अपराध के मुकदमों में जिनमें फांसी का दण्ड दिया जा सकता है जिले के न्यायालय से सीधी सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

अन्य न्यायालय—उपर्युक्त न्यायालय के अतिरिक्त दो प्रकार के न्यायालय और भी होते हैं, एक अभ्यर्थन-न्यायालय (Court of Claims) और दूसरे निराक्रम्य करके पुनर्विचारक न्यायालय (Court of Customs Appeals)। पहले में सरकार के प्रति व्यक्तियों के दावे के मुकदमे सुने जाते हैं और दूसरे में निराक्रम्य कर सम्बन्धी कानून के अन्तर्गत मुकदमें निबटाये जाते हैं। ये न्यायालय साधारण मुकदमों से कोई सरोकार नहीं रखते।

सन् १९११ से पूर्व न्यायमण्डल की कार्य-प्रणाली व कार्यवाही से संबंधित कानून में ६००० धारायें थीं किन्तु उसी साल इनकी फिर से छान बीन की गई और उनमें से असंगत धाराओं को निकाल कर उन्हें एक संक्षिप्त पर स्पष्ट रूप दे दिया गया।

शासन-विधान का संशोधन—शासन-विधान के संशोधन में दो अवस्थायें होती हैं, एक प्रस्ताव और दूसरा उसका अनुसमर्थन।

संविधान के ५ वें अनुच्छेद के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव निम्नलिखित दो प्रकार से किया जा सकता है :—

(१) कांग्रेस स्वयं ही शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव कर सकती है यदि दोनों सदनों में पृथक पृथक दो तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

(२) उपराज्यों की दो तिहाई संख्या की विधान-मंडल कांग्रेस से संशोधन की प्रार्थना कर सकती है। ऐसा किया जाने पर कांग्रेस को इन संशोधनों का प्रस्ताव करने के लिये एक सम्मेलन बुलाना पड़ता है।

किन्तु दोनों अवस्थाओं में संशोधन तभी वैध और लागू समझा जाता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यों की विधान-मंडलों द्वारा वह अनुसमर्थित अर्थात् स्वीकृत हो जाता है या तीन चौथाई संख्या के उपराज्यों में इस कार्य के लिये बुलाये हुये सम्मेलनों में वह स्वीकार हो जाता है।

उपर्युक्त संशोधन की रीति से स्पष्ट है कि संघ-सरकार और उपराज्य दोनों ही का विधान-संशोधन में हाथ रहता है। यह संशोधन रीति सहज-साध्य नहीं है। अतएव सन् १७८९ व १९५१ के बीच यद्यपि १९०० से अधिक संशोधन-प्रस्ताव रखे गये किन्तु उनमें से केवल २२ संशोधन ही स्वीकृत हुये शेष निरर्थक होने से रद्द कर दिये गये।* इन २२ संशोधनों को तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। पहली श्रेणी में नागरिकों के अधिकार-सम्बन्धी संशोधन हैं (मूलसंविधान में ये अधिकार न रखे गये थे)। ये सन् १७९१ में किये गये प्रथम १० संशोधन हैं और १७९८ व १८०४ में किये गये ११ वें व १२ वें संशोधन हैं। दूसरी श्रेणी में, १३ वां (१८६५) संशोधन जिससे दास प्रथा का निषेध किया गया, १४ वां (१८६८) और १५ वां (१८७०) जिससे सब उपराज्यों में समान नागरिक अधिकार दिये गये। इसके द्वारा गृह युद्ध (Civil war) के वैधानिक परिणामों को लिखित रूप दिया गया। तीसरी श्रेणी में बचे हुए ६ संशोधन हैं जिनमें से सन् १९१३ का संशोधन कांग्रेस को प्रत्यक्ष कर लगाने व वसूल करने की शक्ति देता है, सन् १९१३ के दूसरे संशोधन ने सीनेटरों के निर्वाचन को प्रत्यक्ष लोकमत से होने वाला बना दिया, सन् १९१९ के संशोधन से मद्य बनाना, बेचना व संयुक्त राज्य की सीमा के भीतर बाहर से मद्य मंगाने का निषेध किया गया, सन् १९२९ के संशोधन से स्त्रियों को मताधिकार दिया गया, सन् १९३३ के संशोधन से १९१९ के मद्य निषेध करने वाले संशोधनों को समाप्त कर दिया और उसी साल के दूसरे संशोधन से प्रेसीडेंट व प्रतिनिधियों की अवधि-समाप्ति के दिनांक निश्चित कर

* थ्यौरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेन्ट, पुस्तक १, पृ० १९५।

दिये गये। सन् १९५१ के संशोधन के अनुसार कोई व्यक्ति अब दो बार से अधिक संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति नहीं हो सकता।

संयुक्त राज्य के शासन-विधान में संशोधन करने की प्रणाली ऐसी है कि एक व्यक्ति भी संशोधन के कार्यान्वित होने में रुकावट डाल सकता है। उदाहरण के लिये यदि सीनेट में ९६ सदस्यों में से ८५ उपस्थित हों जिनमें से ५६ संशोधन के पक्ष में मत दें और २९ उसके विरुद्ध मत प्रकट करें तो वह संशोधन सीनेट में दो-तिहाई संख्या पक्ष में न होने से स्वीकार नहीं समझा जा सकता चाहे प्रतिनिधि-सदन में दो-तिहाई मत से पास हो चुका हो।

संयुक्त-राज्य में राजनीतिक पक्ष

संयुक्त-राज्य के राजनैतिक पक्षों की रचना, रूप व उद्देश्य इंगलैंड व अन्य देशों के पक्षों के उद्देश्य से भिन्न हैं। इस भिन्नता को समझने के लिये इन पक्षों का संक्षिप्त इतिहास जानना सुविधाजनक होगा।

प्रारम्भ में संयुक्त-राज्य अमेरिका में एक पक्ष था जिसमें धनी मानी व्यक्ति थे जो राजा के प्रति निष्ठा रखने का दावा करने थे। दूसरा पक्ष उन लोगों का था जो संख्या में बहुत अधिक थे किन्तु निर्धन व साधन-हीन थे और जो राजभक्ति के प्रतिकूल देश-भक्ति को उच्चतर मानते थे। इस दलवन्दी का स्वतन्त्रता-युद्ध के पश्चात् अन्त हो गया। सन् १७८७ में जब शासन-विधान बना तो दो शक्तिशाली पक्ष बने, एक फैडरलिस्ट्स जो धनी मानी वर्ग में से थे और केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे और दूसरे डेमोक्रेट्स, जो उपराज्यों की सर्वाधिकार सत्ता व उसके अधिकारों की प्रमुखता के समर्थक थे। ये लोग स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का प्रचार करते थे। टौमन जैफरसन इस पक्ष का नेता था। थोड़े ही समय के पश्चात् हेमिल्टन के नेतृत्व में फ़ैडरलिस्ट्स पक्ष जार्ज वाशिंगटन का सहयोग प्राप्त होने से अधिक शक्तिशाली हो गया।

कुछ समय के पश्चात् दलवन्दी के आधार का रूप कुछ बदल गया। सन् १८५६ में फैडरलिस्ट्स, जो उस समय रिपवलिकन नाम से कहलाने लगे, और डेमोक्रेट्स में बहुत ही उग्र विरोध हो गया। यह जानकर आश्चर्य होगा कि डेमोक्रेट्स दास प्रथा के समर्थक बने, उन्होंने अपने स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृभाव के सिद्धान्त को केवल गौरवर्ण जनता तक ही सीमित माना। इस पक्ष में अधिकतर वे लोग थे जो दाक्षणी उपराज्यों में कपास आदि की कृषि करते थे। रिपब्लिक पक्ष की अधिक संख्या उत्तरी उपराज्यों में थी। डैमोक्रेट्स ने कलहाउन के उस सिद्धान्त का समर्थन किया जिससे यह

माना जाता था कि किसी संघ शासन के उपराज्यों को स्वेच्छानुसार पृथक होने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। उन्होंने अब्राहम लिंकन की दास प्रथा-निवारण नीति का विरोध किया। गृह-युद्ध के सन् १८६१ में अन्त हो जाने से और उसके परिणाम स्वरूप विधान में संशोधन हो जाने से दास प्रथा का प्रश्न सर्वदा के लिये हल हो गया और इन दोनों पक्षों की विभिन्न नीति का यह आधार समाप्त हो गया।

इस समय रिपब्लिकन और डैमोक्रेट दो राजनैतिक पक्ष हैं जिनमें से पहला दल एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के बनाने के पक्ष में है। यहाँ यह बतलाना उचित होगा कि अमेरिका में विभिन्न राजनैतिक पक्ष बनने के लिये पर्याप्त मसाला नहीं है। पहली बात तो यह है कि शासन विधान की भाषा इतनी स्पष्ट व उपराज्यों व केन्द्रीय सरकार में शक्ति-विभाजन के बारे में उसका मन्तव्य समझने में इतना सरल है कि राजनैतिक पक्षों के लिये कार्य-क्रम का कुछ मसाला बचता ही नहीं। विधान संशोधन पेचीदा और कठोर होने से उसके आधार पर किसी राजनैतिक पक्ष का संगठन सम्भव नहीं। दूसरे अभी संयुक्त-राज्य की आर्थिक, सांस्कृतिक व भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि कोई महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्न नहीं उठते। वहाँ मुश्किल से कोई निर्धन भूखा वर्ग मिलेगा क्योंकि कृषि, उद्योग व व्यापार की पूंजी अधिकतर जन-संख्या में बंटी हुई है। राष्ट्र की अधिकतर जनता मध्यवर्ग की है। संसार की दूसरी राष्ट्र-शक्तियाँ, यूरोपियन, जापान आदि, संयुक्त-राज्य से इतनी दूर हैं कि अमेरिका को इनसे डरने की कोई सम्भावना नहीं है, इसलिये वैदेशिक नीति के आधार पर दलबन्दी नहीं हो सकती। उद्योग व व्यापार के लिये अब भी बड़ा विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है और अधिकतर लोग इससे लाभ उठाने में व्यस्त हैं। अधिकतर लोग नौन-कनफौरमिस्ट्स (Non-Conformists) हैं इसलिये सांस्कृतिक विभिन्नता भी अधिक प्रखर नहीं हैं। सबसे अन्त में यह बात है कि शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त से राजनैतिक मतभेद का क्षेत्र बहुत संकुचित रह गया है।

इसलिये यह कथन चाहे कितना ही विपरीत क्यों न प्रतीत होता हो पर है यह सत्य कि अमेरिकन राजनैतिक पक्षों के उद्देश्यों की विभिन्नता के हेतु संख्या में इतने कम हैं कि "अमेरिका में एक ही राजनैतिक पक्ष है जिसे रिपब्लिकन व डैमोक्रेटिक पक्ष का संयुक्त दल कहा जा सकता है जो स्वभाव से व अधिकार संघर्ष से दो समान भागों में बटा हुआ है, एक भाग रिपब्लिकन कहलाता है और दूसरा डैमोक्रेट।" * संयुक्त राज्य के इतिहास में अधिकतर

* थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस औफ मोडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५३८।

रिपब्लिकन पक्ष ने निर्वाचनो मे जीत पाई है और प्रेसीडेट के पद पर उसी दल का प्रतिनिधि नियुक्त हुआ है। डैमोक्रेट पक्ष का प्रभुत्व बहुत कम रहा है। राजनीतिज्ञ हरमन फाइनर ने उन पक्षो के कार्य व इनमे असमानता न होने के सम्बन्ध मे कहा है "यह ध्यान देने योग्य बात है कि अमरीकन राजनैतिक पक्षो के बारे मे जितना साहित्य है वह उनका महत्व दिखलाते समय यही कहता है कि ये दल मतधारको को संगठित करते है और अपने उम्मेदवार खडे करते है। कार्य-क्रम के मापदण्ड को और आदर्श के पालन को गौण मान कर इनका केवल साधारण सा वर्णन ही कर दिया जाता है। कुछ समय से अब आर्थिक संकट व समाजवाद के जाग्रत होने से राजनैतिक पक्षो मे कुछ आर्थिक उग्र भेद उत्पन्न हो गये है जिसके फलस्वरूप समाजवादी पक्ष का संगठन हो गया है। किन्तु यह अभी अधिक प्रभाव पूर्ण नही हुआ है। हालाकि यह समाजवादी पक्ष या और छोटे मोटे पक्ष बने रहे परन्तु अमरीकन राजनैतिक व निर्वाचनो पर इनका अधिक प्रभाव नही रहेगा। अतएव यह प्रतीत होता है कि दो पक्ष-प्रणाली (रिपब्लिकन व डैमोक्रेट) ही भविष्य मे बहुत दिनो तक अमेरिका मे प्रभुत्व जमाये रहेगी।

पाठ्य पुस्तकें

Brogan, D W.—The American Political System (London 1933)

Bryce, Viscount—Modern Democracies. Vol II, pp. 3-140

,, ,, American Commnwealth 2 Vol. (Macmillan 1907).

Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government, Vol. I chs. VII, XI & XV, Vol II chs. XXIII

Hamilton, Jay & Madison—The Federalist (Especially Nos. I—XIV)

Haskin F J —The American Government, ch I & XXII—XXVI

Hughes, C E —The Supreme Court of the United States (N. Y 1938)

Munro, W B.—The Government of the United States (Macmillan 1937).

Newton, A P —Federal & Unified Constitutions, pp 66-94

Reed, T H —Form & Functions of American Government, chs. I-IV III. XI-XIII & XIX-XXIII.

Sharma, B. M.—Federal Polity, ch.II, pp. 72-90 and Appendix A

Smellie, K —The American Federal System, chs. I & III-IV.

Wilson, Woodrow—The State .(Chapters on Government of the United States)

अध्याय १७

संयुक्त-राज्य अमेरिका में उपराज्यों की सरकारें

"अमेरिका के राजनैतिक इतिहास में उपराज्यों के शासन-विधान सब से प्राचीन हैं क्योंकि वे उन्हीं राजकीय उपनिवेश-चार्टरों के संशोधित व परिवर्तित रूप हैं जिनसे अमेरिका में सब से प्रथम अगरेज़ी बस्तियां स्थापित की गई थीं और जिनके द्वारा उनकी स्थानीय सरकारों का संगठन किया गया था जिनके ऊपर ब्रिटिश सम्राट् और अन्तिमतः पार्लियामेंट का आधिपत्य था।" (जेम्स ब्राइस)

उपराज्यों की उत्पत्ति व विकास—सन् १७८७ ई० में संयुक्त-राज्य अमेरिका में १३ उपराज्य थे। ये वही उपनिवेश थे जिन्होंने ब्रिटिश सम्रा के आधिपत्य को मानने से इन्कार कर दिया और स्वतन्त्रता-युद्ध में विजय प्राप्त की। धीरे धीरे इसके पश्चात् पश्चिम की ओर नई बस्तियाँ स्थापति हुईं जिससे नये उपराज्य बने जो सन् १७८७ के शासन-विधान के तीसरे अनुच्छेद के पैरा १ की तीसरी धारा के अनुसार संघ-राज्य में शामिल कर लिये गये। इस धारा से नये उपराज्यों के बनने का प्रावधान कर दिया गया था, शर्त केवल यह थी कि तत्कालीन स्थित किसी उपराज्य की प्रदेशभूमि के विस्तार आदि में बिना कांग्रेस या उस उपराज्य की विधान-मंडल की सम्मति के कोई परिवर्तन न किया जायेगा। इस समय संयुक्त-राज्य अमेरिका के संघ-राज्य में ४९ उपराज्य हैं। उनका शासन उनके निजी पृथक पृथक शासन-विधानों द्वारा स्थापित राज्य संगठनों के आधीन होता है। ये शासन-विधान लिखित हैं और इनका अस्तितव राष्ट्रीय संघ-शासन-विधान पर निर्भर नहीं है किन्तु इनके आधारभूत सिद्धांत एक समान हैं जो इंगलैंड से बसने वाले अपने साथ लाये थे।

उपराज्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख बातें—भूमि के विस्तार, जन-संख्या, भौगोलिक स्थित और आर्थिक अवस्था में उपराज्यों में पारस्परिक विभिन्नता है। नीचे लिखी सारिणी में प्रत्येक उपराज्य (हवाई द्वीप के ४९ वें

उपराज्य को छोड़ कर) का क्षेत्रफल, जनसंख्या व संघ में शामिल होने के समय के बारे में सूचना मिल सकती है :—

उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्ष		वर्ग मीलों में क्षेत्रफल	सन् १६४८ की जनसंख्या
अलाबामा	(१८१९)	५१,२७९	२८४८,०००
ऐरीजोना	(१९१२)	११३,८१०	६६४,०००
अर्कनसास	(१८३६)	५२,५२५	१,९२५,०००
कैलीफोर्निया	(१८५०)	१५५,६५२	१०,०३१,०००
कौलैरैडो	(१८७६)	१०३,६५८	१,१६५,०००
कनैक्टीकट	(१७८८)	४,८२०	२,०११,०००
डैलावेयर	(१७८७)	१,९६५	२९७,०००
फ्लोरीडा	(१८४५)	५४,८६१	२,३६५,०००
ज्योर्जिया	(१७८८)	५८,७२५	३,१२८,०००
इदाहो	(१८९०)	८३,३५४	५३०,०००
इल्योनिस	(१८१८)	५६,०४३	८,६७०,०००
इन्डियाना	(१८१६)	३६,२०५	३,९०९,०००
आइओवा	(१८४६)	५६,५८६	२,६२५,०००
कनसास	(१८६१)	८१,७७४	१,९६८,०००
कैंचुकी	(१७९२)	४०,१८१	२,८१९,०००
लुईसियाना	(१८१२)	४५,४०९	२,५७६,०००
मेन	(१८२०)	२९,८९५	९००,०००
मेरीलैंड	(१७८८)	९,९४१	२,१४८,०००
मैसाच्यूटैस	(१७८८)	८,०३९	४,७१८,०००
मिचीगन	(१८३७)	५७,४८०	६,१९५,०००
मिनैसोटा	(१८५८)	८०,८५८	२,९४०,०००
मिसिसिपी	(१८१७)	४६,३६२	२,१२१,०००
मिस्सौरी	(१८२१)	६८,७२७	३,९४७,०००
मौन्टाना	(१८८९)	१४६,१३१	५११,०००
नैब्रास्का	(१८६७)	१६,८०८	१,३०१,०००
नैवैदा	(१८६४)	१०९,८२१	१४२,०००
न्यू हैम्पशायर	(१७८८)	९,०३१	५४८,०००

उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्ष		वर्ग मीलों में क्षेत्रफल	सन् १९४८ की जनसंख्या
न्यूजर्सी	(१७८७)	७,५१४	४,७२९,०००
न्यूमैक्सिको	(१९१२)	१२२,५०३	५७१,०००
न्यूयार्क	(१७८८)	४७,६५४	१४,३८६,०००
नार्थ कैरोलीना	(१७८९)	४८,७४०	३,७१५,०००
नार्थ डैकोटा	(१८८९)	७०,१८३	५६०,०००
ओहियो	(१८०३)	४०,७४०	७,९९९,०००
ओक्लाहामा	(१९०७)	६९,४१४	२,३६२,०००
ओरागन	(१८५९)	९५,६०७	१,६२६,०००
पसिल्वेनिया	(१८८७)	४४,८३२	१०,६८९,०००
रोड आइलैंड	(१७९०)	१,०६७	७४८,०००
साउथ कैरिलीना	(१७८८)	३०,४५९	१,९९१,०००
साउथ डैकोटा	(१८८९)	७६,८६८	६२३,०००
टैनैसी	(१७९६)	४१,६८७	३,१४९,०००
टैक्सास	(१८४५)	२६२,३९८	७,२३०,०००
टाऊ	(१८९६)	८२,१८४	६६५,०००
वरमोन्ट	(१७९१)	९,१२४	३७४,०००
विरजीनिया	(१७८८)	४०,२६२	३,०२९,०००
वाशिंगटन	(१८८९)	६३,८३६	२,४८७,०००
वर्जीनिया	(१८६३)	२,०१२	१,९१५,०००
विसकौन्सिन	(१८४८)	५५,२५६	३,३०९,०००
व्यौमिंग	(१८९०)	९७,५४८	२७५,०००

उपराज्य शासन-विधान—संयुक्त राज्य के संघ शासन-विधान में केन्द्रीय राज्य संगठन की रचना व शक्तियों का वर्णन है। उसमें उपराज्यों के शासन-विधान के सिद्धान्त नहीं दिये हुये हैं। इस संघ-शासन-विधान का निर्माण उन १३ मूल-उपराज्यों के शासन-विधानों के प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर हुआ था जो १७८७ के संगठन के सदस्य बने थे। अतएव उप-राज्यों के शासन-विधान संघ-शासन-विधान से बिल्कुल पृथक हैं। उनकी शक्ति का स्रोत पृथक पृथक उपराज्यों की जनता है। आस्ट्रेलिया व

स्विटज़रलैंड में भी सदस्य-राज्यों के शासन-विधान संघ-शासन-विधान में शामिल नहीं हैं और इसलिये उनका वैसा ही महत्व और स्वतंत्र अस्तित्व है जैसा अमेरिकन उपराज्यों के शासन-विधानों का। इसके विपरीत, कनाडा, दक्षिणी अफ़्रीका व रूस में संघ-शासन-विधान और उपराज्यों के शासन-विधान सब मिलकर एक शासन-विधान के रूप में हैं। भारतवर्ष के नये शासन-विधान में भी केन्द्रीय सरकार के संघात्मक राज्यसंगठन व प्रांतों के राज्यसंगठन की रूप रेखा एक ही वैधानिक आलेख से निश्चित हुई है। अमेरिकन उपराज्यों के शासन-विधान संघ-शासन संविधान से पुराने हैं, इसलिये उसके आधार पर ही संघ-शासन-विधान की रचना भी हुई।

४६ उपराज्य शासन-विधान—संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक पृथक शासन-विधान है इसलिये ४९ विभिन्न उपराज्य शासन-विधान हैं जिन्हें अध्ययन करने के पश्चात् उपराज्यों के शासन-प्रवन्ध का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु उन सब में इतनी अधिक समानता है कि इन राज्यों के शासन-प्रबन्ध को समझने के लिये केवल उनकी सामान्य विशेषताओं को जानने से ही काम चल जाता है। इसका कारण जैसा राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कहा है, यह है "कि ये सब प्राचीन अंग्रेजी संस्थाओं की कुछ अधिक व कुछ मिलती हुई प्रतिलिपियां हैं। अर्थात् ये वे चार्टर प्राप्त स्वायत्त-शासन करने वाली कम्पनियां हैं जो अंग्रेजी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर और अंगरेजी पार्लियामेंट-प्रणाली के उदाहरण को सामने रख कर ऐसे राज्य संगठनों में विकसित हो गई जो अठारवीं शताब्दी के इंगलैंड के राज्य संगठनों से मिलते जुलते थे।" जब ये राज्यसंगठन स्वतन्त्र राज्य बन गये तब भी इन्होंने अपने मूल शासन विधानों की प्रमुख विशेषताओं का ज्यों का त्यों सुरक्षित रखा। उसमें केवल वही परिवर्तन किया जो उनकी नई कानूनी, वैधानिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के लिये आवश्यक था। जब संघ में नये उपराज्य बनकर शामिल हुये, प्रत्येक ने मूल १३ उपनिवेशों के शासन-विधानों के ढांचे को ही अपना लिया। "ऐसा करने के लिये उनका अधिक झुकाव इसलिये भी था क्योंकि प्राचीन शासन-विधानों में उन्हें कार्यपालिका, विधायिनी व न्यायिक सत्ता का वह पृथकत्व देखने को मिला जो उस समय के राजनीतिक शास्त्र की दृष्टि से स्वतन्त्र सरकार के लिये आवश्यक समझा जाता था। इस पृथकत्व सिद्धांत से ही उन्होंने आगे बढ़ाने का निश्चय किया"।[1]

उपराज्यों के शासन-विधानों की सामान्य विशेषतायें—शक्ति विभा-

जन के सिद्धांत के अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें हैं जो इन सब शासन-विधानों में मिलती हैं। प्रत्येक उपराज्य में शासन-विधान जनता की देन है जिन्होंने कार्य-पालिका के अध्यक्ष को निर्वाचन करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है। यह अध्यक्ष गवर्नर कहलाता है। शासन-विधान का संशोधन, लोक निर्णय (Referendum), निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative); और प्रत्याहरण (Recall), ये सब भी जनमत के आधीन हैं। प्रत्येक उपराज्य में एक निर्वाचित गवर्नर व कुछ प्रशासन-अधिकारी, द्विगृही विधान मण्डल, स्वतन्त्र न्याय-पालिका और स्थानीय शासन संस्थायें हैं जैसे काउन्टी, नगर, ग्राम, जिनके कारण संयुक्त राज्य अमेरिका को जनतन्त्रात्मक राज्यों की गिनती में बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त है।

उपराज्य विधान-मण्डल

उपराज्य के राज्यसंगठन से विधान मण्डल सब से महत्वपूर्ण संस्था है। लगभग सब उपराज्यों में द्विगुणी विधान मण्डल हैं जिसके निचले सदन को प्रतिनिधि सदन और ऊपरले सदन को सीनेट कहते हैं। केवल नैब्रास्का में एक वैधानिक संशोधन द्वारा यह निश्चय हुआ कि विधानमण्डल में ही एक सदन हो जिसके सदस्यों की संख्या ४३ हो, असल में द्विगृही विधान मण्डल की प्रणाली को उपराज्यों ने संघ शासन की नकल करके ही अपनाया। ऊपरले सदन के पक्ष में विधान-कार्य में जलदबाजी के दोष को दूर रखने की जो दलील सामने उपस्थित की जाया करती थी वह अब अधिक महत्व नहीं रखती क्योंकि इस दोष को दूर रखने के लिये समाचार-पत्रों का प्रभाव, किसी भी अधिनियम का तीन बार वाचन कर विचार करने की पद्धति, गवर्नर की अस्वीकार करने की शक्ति और लोकनिर्णय की पद्धति, ये सब पर्याप्त समझे जाते हैं।

विधानमंडल का निर्वाचन—दोनों सदन लोक-निर्वाचित संस्थायें होती हैं। इस निर्वाचन में सब नागरिक भाग ले सकते हैं। दूसरे प्रतिनिधित्व का दोष दूर रखने के लिए और दोनों सदनों के अस्तित्व की आवश्यकता दिखलाने के हेतु दोनों सदनों के निर्वाचन क्षेत्रों को भिन्न प्रकार से संगठित किया जाता है। सीनेट में काउन्टियों (Counties) से निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। चाहे उनकी जनसंख्या कितनी ही हो; किन्तु प्रत्येक काउण्टी के प्रतिनिधियों की संख्या एक समान होती है। निचले सदन के प्रतिनिधियों का

[1] ब्राइस: अमेरिकन कामनवेल्थ, पुस्तक १, पृ० ४७८।

निर्वाचन जनसंख्या के आधार पर विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से होता है। इसलिए इस कथन में कुछ सत्य है कि सीनेट का भौगोलिक निर्वाचन होता है और प्रतिनिधि सदन का जनसंख्यात्मक। निचले सदन में अधिकतर ग्रामनिवासी प्रतिनिधि हैं और नगरों की जनसंख्या बढ़ने से सीनेट में नगरवासी अधिक संख्या में हैं। निचला सदन सीनेट की अपेक्षा बड़ा होता है इसलिए वह सीनेट की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहता है।

विधानमंडल की अवधि—यह अवधि भिन्न भिन्न उपराज्यों में अलग अलग है। प्रायः सीनेट की अवधि निचले सदन से अधिक लम्बी होती है। सीनेट के कुछ सदस्यों के स्थान पर निश्चित काल के पश्चात् नये सदस्य आ जाते हैं किन्तु निचले सदन के सब प्रतिनिधि निश्चित समय के बाद फिर से नये चुने जाते हैं। बहुत से उपराज्यों में सीनेट के उम्मेदवारों को प्रतिनिधि-सदन के उम्मेदवारों की अपेक्षा अधिक आयु का होना पड़ता है।

विधानमंडल का कार्य—सब उपराज्यों में विधान मंडल के सदस्यों को एकसा ही वेतन मिलता है। कुछ उपराज्यों में विधान मंडल की साल में दो बैठकें होती हैं, किन्हीं में साल में एक ही होती हैं। सदस्यों को सामान्य मुक्तियाँ, सुविधायें व अधिकार मिले हुए रहते हैं। प्रत्येक सदन का अपना अपना सभापति होता है और अन्य पदाधिकारी होते हैं जिनको सदन चुनता है। कोई विधेयक किसी भी सदन में आरम्भ किया जा सकता है किन्तु मुद्रा-विधेयक निचले सदन में ही आरम्भ हो सकता है। सीनेट मुद्रा-विधेयक में संशोधन कर सकती है। कोई योजना तभी सदन से स्वीकृत समझी जाती है जब उसके सदन में तीन वाचन हो जाते हैं। तब यह दूसरे सदन को भेज दी जाती है। यदि वह वहां स्वीकृत हो जाती है तो गवर्नर के हस्ताक्षर से कानून बन जाती है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाता है तो वह योजना अस्वीकृत समझी जाती है। दोनों सदनों में स्वीकृति योजना को गवर्नर अपनी आपत्तियों के साथ लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाये जाने पर वह योजना तभी कानून बन सकती है जब वह दोनों सदनों में फिर से निश्चित मताधिक्य से पास हो जाय।

संविधान संशोधन—संघ संविधान के समान उपराज्यों के सब शासन शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर ही बने है। विधानमंडल संविधान में संशोधन भी कर सकती हैं केवल इन संशोधनों के लिए सामान्य मताधिक्य से कुछ अधिक मत पक्ष में होनी चाहिएँ। किसी उपराज्य में गणपूरक के $\frac{3}{5}$

मताधिक्य से और कहीं सदन के कुल सदस्यों की दो-तिहाई संख्या से संविधान में संशोधन हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विधान-संशोधन का प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नहीं समझा जाता जब तक लोक-निर्णय से वह पास न हो। कोई भी उपराज्य अपने शासन-विधान में ऐसा संशोधन नहीं कर सकता जो राष्ट्रीय संघ-शासन संविधान के प्रतिकूल हो।

उपराज्यों के विधानमंडल की शक्तियां—यह पहले बतलाया जा चुका है कि संघ सरकार की शक्तियां सीमित हैं और संघ-शासन-विधान उपराज्यों की शक्तियों की व्याख्या नहीं करता, इसमें केवल इतना ही कहा गया है कि जो शक्ति निश्चितरूप से संघ सरकार को न दी गई हो, न स्पष्टतया उपराज्यों को उससे वंचित रखा गया हो वह उपराज्यों के सुपुर्द है। अतएव उपराज्यों को सब शेषाधिकार मिले हुए हैं। किन्तु कुछ समय से यह देखने में आ रहा है कि बढ़ती हुइ अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यापारिक सम्बन्धों की पेचीदगी और कुछ राष्ट्रों की शक्ति लोलुपता के कारण उपराज्य केन्द्रीय सरकार पर अधिकाधिक परावलम्बी होते जा रहे हैं। इसलिये वे धीरे धीरे उस स्वतन्त्रता और उन अधिकारों को खोते जा रहे हैं जिनकी उन्होंने बड़े यत्न से संघ के प्रारम्भिक काल में रक्षा की थी।

उपराज्यों की कार्यपालिका

अमेरिकन उपराज्य छोटे छोटे गणराज्य हैं। इनके शासन विधान के इस गुण को बदला नहीं जा सकता। प्रत्येक उपराज्य में प्रमुख कार्यपालिका सत्ता एक लोक निर्वाचित गवर्नर में निहित रहती है। कार्यकारी विभाग विधान मण्डल से पृथक स्वतन्त्र रहता है। इसमें गवर्नर के अतिरिक्त एक लैफ्टिनैन्ट गवर्नर, एक सेक्रेटरी आफ स्टेट, एक कोषाध्यक्ष, महान्यायवादी (Attorney-General) लेखापरीक्षक (Auditor) शिक्षा प्रबन्धक और कुछ दूसरे छोटे अफसर होते हैं।

गवर्नर—उपराज्य की सरकार का अध्यक्ष गवर्नर होता है। गवर्नर का पद बड़ा पुराना है। अमेरिकन उपनिवेशों के प्रारम्भिक काल से ही लगभग ३०० साल से यह परम्परा के आधार पर चलता चला आ रहा है। गवर्नर जनता द्वारा चुना जाता है। इस पद के लिये उपराज्य के नागरिक ही योग्य समझे जाते हैं। गवर्नर के पद के उम्मेदवारों को राजनैतिक पक्षों के सम्मेलन में चुनकर मनोनीति किया जाता है। इस सम्मेलन में उस पक्ष के सब काउन्टियों से प्रतिनिधि एकत्र होते हैं। निर्वाचन गुप्त शलाका द्वारा होता है और सामान्य मताधिक्य से उम्मेदवार चुन लिया जाता है। उम्मेद-

वार उस उपराज्य का ५ वर्ष तक निवासी रह चुका हो और निर्वाचन के समय उसकी आयु ३० वर्ष से कम न होनी चाहिये। गवर्नर के पद की अवधि भिन्न-भिन्न उपराज्यों में भिन्न हैं किन्तु या तो यह दो या चार वर्ष है। गवर्नर पुनर्निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता है। तीन हजार से लेकर २५,००० डालर तक का वेतन भिन्न-भिन्न उपराज्यों में दिया जाता है। गवर्नर पर अभियोग लगाकर उसके पद से उसे हटाया जा सकता है। यदि ऐसी न्यायाधिकरण (Tribunal) जिसमें उपराज्य की सीनेट के सदस्य व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हों, दो-तिहाई मत से गवर्नर को अपराधी सिद्ध कर दें तो गवर्नर उसके पद से हटाया जा सकता है। लगभग एक दर्जन उपराज्यों में सरकार से प्रार्थना कर गवर्नर का प्रत्याहरण (Recall) किया जा सकता है अर्थात् उसे पद से हटाया जा सकता हैं। ऐसा प्रत्याहरण करने के लिये निश्चित रूप से कारण देने पड़ते हैं। किन्तु अभी तक केवल एक ही गवर्नर (नौर्थ डैकौटा के गवर्नर फ्रेजियर) को ही इस प्रकार हटाया गया है (१९२१)।

गवर्नर की शक्तियाँ—गवर्नर को कई प्रकार की शक्तियाँ दी जाती हैं। विधान-कार्य में प्रत्येक कानून के घोषित होने से पूर्व उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। वह विधान-मण्डल से पास किये हुए किसी भी विधेयक पर आपत्ति कर सकता है और पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है। वह विधान-मण्डल का विशेष अधिवेशन बुला सकता है जिसमें विशेष योजनाओं पर ही विचार हो सकता है। विधान-मण्डल के साधारण अधिवेशनों में भी गवर्नर नये कानून बनाने के लिये सुझाव देता है और अपने उच्च पद के प्रभाव से दोनों सदनों में उन्हें स्वीकृत करा लेता है। थियोडोर रूजवैल्ट ने जो कभी उपराज्य का गवर्नर रह चुका था यह कहा था, कि "आधे से अधिक मेरा गवर्नर का काम आवश्यक और महत्व-पूर्ण कानूनों का पास कराना था।" गवर्नर दलबन्दी में पूरी तरह भाग लेता है। अपने पक्ष के व्यवस्थापकों की सहायता से वह विधान-मण्डल पर अपना प्रभुत्व रखता है हालांकि वह विधान-मण्डल का सदस्य नहीं होता। कुछ मात्रा में वह विधेयकों को जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कानून बनने से रोक सकता है। विधान-मण्डल के मन्तव्य व निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये गवर्नर अध्यादेश (Ordinances) निकालता है। वह छोटे पदों पर नियुक्तियां कर सकता है, और उन पदों पर आसीन व्यक्तियों को हटा सकता है। वह सामान्य शासन-प्रबन्ध की देख-भाल रखता है और यह भी देखता है कि आर्थिक कार्य, सैनिक कार्य, केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाले कार्य, सुचारु रूप से हो रहे हैं।

वह दण्डित अपराधियों को क्षमा प्रदान भी कर सकता है। उपराज्य के अधिकतर पदाधिकारियों की नियुक्ति गवर्नर ही करता है किन्तु इन नियुक्तियों में सीनेट की सम्मति होना आवश्यक है। यह सिविल सर्विस के अफसरों को तरक्की आदि दे सकता है। बजट उसके ही आदेशों के अनुसार बनाया जाता है। वह बाह्यरूप से प्रधान सेनापति भी होता है।

दूसरे पदाधिकारी—जिन अफसरों की गवर्नर स्वयं नियुक्ति नहीं करता वे अधिकतर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। उनका अवधिकाल निश्चित रहता है। इसलिये वे अफसर गवर्नर के मातहत न होकर सहकारी होते हैं। अतएव केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की अपेक्षा गवर्नर के मन्त्री अधिक स्वतन्त्र हैं क्योंकि केन्द्रीय मन्त्री प्रेसीडेंट द्वारा ही बनाये जाते हैं, और वह स्वेच्छा से ही उनको नियुक्त करता व हटा सकता है। उपराज्य का गवर्नर अपने मंत्रियों को न नियुक्त करता है न हटा सकता है। ये लोग अभियोग लगा कर अवश्य हटाये जा सकते हैं किन्तु गवर्नर के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया जा सकता है। इस प्रकार हटाने के लिये प्रतिनिधि-सदन उन पर पहले अपराधों का अभियोग लगाता है। सीनेट इन अपराधों की जांच करती है और अपराधी सिद्ध होने पर उन्हें उनके पद से हटा सकती है। सामान्य नागरिकों के समान ही उन्हें न्यायालयों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। जिस अवधि के लिये गवर्नर चुना जाता है उसी अवधि के लिये ही उन अफसरों का चुनाव होता है। "सब राज्यपदाधिकारी एक दूसरे की सेवा नहीं करते, वे जनता की सेवा करते हैं जिसके द्वारा वे चुने जाते हैं। वे जनता पर ही निर्भर रहते हैं न कि एक दूसरे पर।"

उपराज्य—न्यायपालिका

प्रत्येक उपराज्य में अपने अपने शासन विधान के अन्तर्गत न्याय-पालिका स्थापित है। उपराज्य के न्यायालय संघ-न्यायालयों के आधीन नहीं होते किन्तु वे एक पृथक न्यायपालिका के अंग होते हैं जिनको अपने अधिकार क्षेत्र में पूरी स्वतन्त्रता व शक्ति रहती है। सामान्य संगठन में ये न्यायालय संघ-न्यायालयों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। दोनों न्यायप्रणालियों में छोटे बड़े कई न्यायालय होते हैं जिनके कर्तव्य व शक्तियां एक दूसरे से भिन्न, कम या अधिक होती हैं। प्रत्येक राज्य में न्यायालयों की तीन श्रेणियाँ होती हैं, किसी में चार भी होती हैं। पहली श्रेणी में जस्टिसेज आफ दी पीस (Justices of the Peace) हैं जो मामूली रुपये पैसे या बहुत छोटे अपराधों की जांच

कर दण्ड देते हैं। इनके ऊपर काउन्टी या म्युनिसिपल न्यायालय होते हैं जिन में कुछ बड़े मुकद्दमों की प्रारम्भिक सुनवाई होती है और निचली अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध पुनर्विचार की अपील की जाती है। इनके ऊपर उच्च न्यायालय होते हैं जो काउन्टी न्यायालयों के निर्णय पर, प्रार्थना किये जाने पर पुनर्विचार करते हैं और कुछ अधिक भारी मुकद्दमों में प्रारम्भिक विचार भी करते हैं। इन सब के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय होता है जिनमें सब प्रकार के मुकद्दमों पर प्रार्थना करने पर पुनर्विचार होता है। इस न्यायायलय के निर्णयों पर पुनर्विचार करने के लिये संघ-सर्वोच्च न्यायालय (Federal Supreme Court) से प्रार्थना नहीं की जा सकती।

उपराज्यों के न्यायालय दो बड़ी बातों में संघ-न्यायालयों से भिन्न हैं। पहला भेद तो यह है कि उपराज्य के न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं किन्तु संघ-न्यायालय के न्यायाधीशों को कार्यपालिका नियुक्त करती है। केवल १० उपराज्य ऐसे हैं जिनके न्यायाधीश निर्वाचित न होकर कार्य-पालिका द्वारा नियुक्त होते हैं। दूसरा भेद यह है कि प्रत्येक उपराज्य में न्यायपद्धति भिन्न भिन्न है जिससे सब उपराज्यों में न्याय-व्यवहार में समानता नहीं हो पाती।

उपराज्यों के न्यायाधीशों पर प्रतिनिधि-सदन अभियोग लगा सकता है और सीनेट अभीयोग की जाँच कर उन्हें दण्डनीय ठहरा कर उनके पद से उन्हें हटा सकती है। बारह उपराज्यों में यह प्रथा प्रचलित है कि विधान मंडल में तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पास होने से ही किसी न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। नौ उपराज्यों में गवर्नर विधान मंडल की प्रार्थना पर न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है। कुछ उपराज्यों में जनता न्यायाधीशों का प्रत्याहरण कर सकती हैं। इसके लिये पदच्युत करने की प्रार्थना पर जनता का प्रत्यक्ष मत लिया जाता है। इन उपराज्यों में न्यायालयों के कुछ निर्णयों को भी जनमत से वापिस किया जा सकता है। इन सब बातों को प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली की दृष्टि से उचित ठहराया जाता है। जनमत के इस प्रकार के हस्तक्षेप से न्यायकार्य में भ्रष्टाचार की मात्रा बढ़ती है, यह निश्चय है। यही नहीं किन्तु इससे अन्याय बढ़ता है, और न्यायप्रणाली की स्थिरता जाती रहती है।

स्थानीय शासन

विभिन्न स्थानीय संस्थायें—संयुक्त राज्य अमेरीका एक बहुत ही जनतन्त्रात्मक राज्य है इसलिये सब उपराज्यों में "स्थानीय-शासन का काम

जनता से प्रत्यक्ष रीति से चुनी हुई स्थानीय शासन संस्थाओं को सुपुर्द है। स्थानीय-शासन के अन्तर्गत पुलिस, सफाई, निर्धनों की देखभाल, शिक्षालयों का भरण-पोषण व प्रबन्ध, सड़कों वा पुलों का बनवाना और उनको अच्छी अवस्था में बनाये रखना, व्यापार व उद्योग के लाइसेंस देना, कर लगाना और इकट्ठा करना, छोटे-छोटे न्यायालय व कारागृह स्थापित करना और वे अन्य सब कार्य आते हैं जो राज्य की विभिन्न जातियों व वर्गों के सुख शान्ति व स्थानीय शासन प्रबन्ध के लिये आवश्यक हैं। टाउनशिप (Township), काउन्टी (County), शिक्षालय जिला (The School District) कस्वा (Town) व नगर (City) ये विभिन्न प्रकार की और विभिन्न क्षेत्राअधिकार वाली स्थानीय शासन संस्थायें पाई जाती हैं। इनके निजी कर्मचारी होते हैं। इन संस्थाओं की शक्तियां उपराज्य की सरकार से प्राप्त रहती हैं वे बहुत ही सीमित मात्रा में कर लगा सकती हैं। अधिकतर संस्थाओं में एक कार्यकारी बोर्ड और कर्मचारी होते हैं। जिनमें नियम बनाने वाली सभायें भी होती हैं, वहां ये सभायें अपना काम बहुत कुछ उसी पद्धति पर करती हैं जिस पर उपराज्य को विधान मण्डल करती है। जैसा भारतवर्ष में प्रांतीय सरकारों के स्वयत्त शासन विभाग हैं वैसा उपराज्यों में कोई विभाग नहीं है जो इन स्थानीय संस्थाओं पर स्वेच्छाचारी नियंत्रण रखता हो। अमरीका में स्थानीय-शासन उस देश की शासन प्रणाली का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

अधिनियम उपक्रम (Initiative)—अमरीका में प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) केवल उपराज्यों में ही पाया जाता है, संघ शासन में नहीं, किन्तु स्विटजरलैंड में यह दोनों जगह पाया जाता है। अमेरिकन प्रजातंत्र के प्रारम्भिक समय से ही शासन विधान के संशोधन कार्य में जनता के भाग लेने की प्रथा प्रचलित थी। किन्तु लोक निर्णय की इस प्रथा के अतिरिक्त बहुत से अमेरिकन उपराज्यों ने अधिनियम-उपक्रम की प्रथा भी अपनाई है। इस प्रथा में व्यक्तियों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वे किसी विधेयक या शासन-विधान के संशोधन को तैयार कर धारा सभा की मध्यस्थता के बिना ही लोक-निर्णय के लिए रख सकते हैं।

लोक निर्णय—लोक निर्णय के अधिकार के होने से व्यक्तियों की निश्चित संख्या यह मांग कर सकती है कि विधान मंडल से पास किया हुआ कोई अधिनियम जनता की स्वीकृति या अस्वीकृति के निर्णय के लिए उपस्थित

किया जाय। पांच से पन्द्रह प्रति सैकड़ा नागरिक प्रायः अधिनियम उपक्रम का प्रस्ताव कर सकते हैं और पाँच से दस प्रति सैकड़ा नागरिक लोक-निर्णय की माँग कर सकते हैं। यह संख्या उपराज्यों में एक समान नहीं है।

इस प्रत्यक्ष लोक-व्यवस्थापना कार्य की मांग क्यों की गई, इसके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कुछ कारण बतलाये हैं जो ये हैं:—

(१) उपराज्य का विधानमंडल पर यह अविश्वास कि यह लोकमत का सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करती और जनता की इच्छानुसार कानून नहीं बनाती, (२) धनी व्यक्तियों व कम्पनियों की ओर से यह शंका कि ये व्यवस्थापकों व अफसरों पर अपना अनुचित प्रभाव डालते हैं और ऐसा कानून बनवा लेते हैं जो पूँजीवर्ग के ही अनुकूल होता है (३) जनता के हाथ में ऐसी शक्ति रखने की इच्छा जिससे ऐसी अधिनियम योजनायें पास की जा सकें जो विधानमंडल की अपेक्षा लोकनिर्णय से सुगमता से पास की जा सकती हैं (४) अल्पसंख्यक समुदाय के विवेक की अपेक्षा, सारी जनता के विवेक, नीतिमत्ता व पुनीतता में विश्वास।

अधिनियम प्रकरण व लोकनिर्णय (Initiative and Referendum) प्रत्यक्ष लोकव्यवस्थापन के ये दोनों साधन साधारण अधिनियम बनाने व विधान-संशोधन दोनों में ही प्रयोग किये जाते हैं।

इस प्रणाली के दोष—ऊपर से देखने में यह प्रणाली कितनी ही आकर्षक प्रतीत होती हो किन्तु व्यवहार में यह बिलकुल दोषरहित सिद्ध नहीं हुई है। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां ऐसे कानून बनाये गये जो दोषपूर्ण थे और ऐसे कानून रद्द कर दिये गये जो बड़े लाभदायक सिद्ध हो रहे थे। इसके कारण व्यवस्थापक अपने उत्तरदायित्व की ओर इतने सतर्क नहीं रहते जितना वे अन्यथा रह सकते हैं। जनता ने भी प्रत्यक्ष व्यवस्थापन (Direct Legislation) में उतनी बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया जितना उन्होंने अपने प्रतिनिधियों के चुनने में दिखलाई। इसके अतिरिक्त यह सत्य भी है कि एक साधारण मतधारक दो उम्मेदवारों की अच्छाई-बुराई का अन्तर जितना अधिक भली-भांति मालूम कर सकता है उतनी अच्छी तरह से वह यह निश्चय नहीं कर सकता कि कौन-सी योजना लोक हितकारी होगी और कौनसी नहीं क्योंकि कानूनों की पेचीदगी उसके लिये दुरूह होती है, वह आसानी से उनके सब पहलुओं को नहीं देख सकता न उनके अन्तिम परिणामों का उसे भान हो सकता है।

प्रत्याहरण (Recall)—देश के शासन कार्य में जनता स्वयं भाग

ले सके, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अमेरिका में एक तीसरी प्रथा भी प्रचलित है। इसको प्रत्याहरण (Recall) कहते हैं जिसका यह अर्थ है कि किसी भी प्रतिनिधि या राजपदाधिकारी को जो जनमत के अनुकूल नहीं है प्रत्यक्ष लोकमत लेकर वापिस बुला लेना। जहां तक यह प्रथा प्रतिनिधियों व राजपदाधिकारियों तक ही लागू है, इससे बहुत लाभ भी हुआ है। इसका कारण यह है कि इससे ये लोग सतर्क व कर्तव्यपरायण बने रहते हैं। पदाधिकारी अपने कार्य को कुशलता से व सतर्कता से सम्पादित करते हैं। और प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों की इच्छा का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु कुछ उपराज्यों में न्यायाधीशों को भी जनता मत लेकर उनके पद से हटा देती है। इस प्रत्याहरण-प्रणाली के कुछ समर्थकों का तो यहां तक कहना है कि संघ-न्यायालयों पर भी यह प्रणाली लागू होनी चाहिये। उनका यह प्रयत्न अभी सफलीभूत नहीं हो पाया है, प्रत्याहरण भय से न्यायसंगठन निर्बल हो जाता है, कहीं-कहीं इसके भय से न्यायाधीश कर्तव्य-विमुख भी हो सकते हैं। जब तक न्यायाधीशों को यह विश्वास न हो कि वे साधारणतया अपने पद से हटाये नहीं जा सकते और उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता, कोई भी न्यायपालिका अपने कर्तव्य को निरपेक्षभाव से व सच्चाई से पूरा नहीं कर सकती यदि अधिनियम उपक्रम (Initiative) और लोकनिर्णय (Referendum) प्रतिनिधिक शासन प्रणाली पर कुठाराघात करते हैं तो प्रत्याहरण की प्रणाली शासन को निर्बल बनाती है किन्तु अमेरिका में जहां न्यायाधीश व उच्च पदाधिकारी भी जनता से निर्वाचित होकर नियुक्त होते हैं, प्रत्याहरण प्रथा का होना यह सिद्ध करता है कि सामान्य नागरिक इन पदाधिकारियों को चुनने की भी योग्यता नहीं रखते।

पाठ्य पुस्तकें

पूर्व अध्याय के अन्त में जो पुस्तकों की सूची दी हुई है उनमें ही उपराज्यों की शासन प्रणाली के अध्ययन करने के लिये पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उपराज्य के लिये स्टैट्समैन ईयर बुक (Statesman Year book) का सबसे नवीन संस्करण भी प्रयोग किया जा सकता है।

———

अध्याय १८

स्विट्ज़रलैंड की सरकार

शासन-विधान का इतिहास

परिचय—स्विट्ज़रलैंड एक पहाड़ी देश है जो दक्षिणी पश्चिमी यूरोप के मध्य में बसा हुआ है। इसके उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली और पश्चिम में फ्रांस है। पूर्व से पश्चिम तक इसकी अधिक से अधिक लम्बाई कुल २२६$\frac{3}{4}$ मील है, उत्तर से दक्षिण तक अधिक से अधिक चौड़ाई १३७ मील है। कुल क्षेत्रफल १५,९४४ वर्ग मील है। इसके विभिन्न भाग समुद्र तट से ६८६--१५००० फीट की ऊँचाई पर हैं। इस देश की जनसंख्या ४,२६५,७०३ है। यह देश २२ जिलों या केन्टनों में बँटा हुआ है, यहां के निवासियों की जीविका का साधन प्रमुखतया खेती है। (यहाँ ३००,००० जमीन की पट्टियां हैं जिनसे २० लाख व्यक्ति अपना भरण-पोषण करते हैं, अर्थात् कुल जनसंख्या का ५३·५ प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर है)। कृषि के अतिरिक्त पशुपालन और उद्योग व कारोबार हैं जिनसे शेष निवासी अपनी जीविका उपार्जन करते हैं।

निवासी—स्विट्जरलैंड के निवासी एक जाति-समूह के नहीं हैं। उसमें विभिन्न जाति, धर्म व भाषा बोलने वाले वर्ग हैं। कुछ जर्मन हैं, फ्रेंच हैं और इटैलियन हैं। कुल जनसंख्या का ६९ प्रतिशत भाग जर्मन भाषा बोलता है जो अधिकतर उत्तर के १९ कैंटनों में रहता है। फ्रेंच भाषा के बोलने वाले २१·१ प्रतिशत व्यक्ति हैं जो पश्चिम के ५ कैंटनों में रहते हैं और ८ प्रतिशत इटैलियन भाषा बोलते हैं। धर्म की दृष्टि से यहां के निवासी इस प्रकार विभाजित हैं, प्रोटैस्टेंट ५६·७ प्रतिशत, रोमन कैथोलिक्स ४२·८ प्रतिशत और शेष अन्य धर्मावलम्बी हैं[1]। ऐतिहासिक व भौगोलिक कारणों से यहां के निवासी धर्म के मामले में बड़े अद्भुत ढंग पर बँटे हुये हैं। यह विभाजन तीन प्रमुख भाषा-क्षेत्रों का भी अनुकरण नहीं करता। स्विट्जरलैंड

[1] ब्रूक्स—गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड।

में ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो विदेशों से भाग कर यहाँ बस गये हैं क्योंकि सैनिक-सेवा या राजनीतिक अपराधों से बचने के लिये उन्हें यह देश सब से अधिक सुरक्षित प्रतीत हुआ।

देश की भौगोलिक भिन्नता, भाषा, धर्म, जाति व रीतिरिवाजों के भेद के कारण और कृषिजीवी होने से यहाँ के निवासियों में लोकतंत्र की भावना बहुत मात्रा में पाई जाती है। इन्हीं कारणों से देश में वास्तविक संघात्मक संस्थाओं का विकास भी हुआ है। प्राचीन व अर्वाचीन सच्चे लोकतंत्रों का उदाहरण देते समय एथेन्स (Athens) और स्विट्जरलैंड का नाम लिया जाता है। स्विट्जरलैंड एक बहुत छोटा देश है इसलिये यहाँ के निवासी अपने अपने केन्टन के शासन में सुगमता से सक्रिय भाग ले सकते हैं। वे अपने जीवन से संतुष्ट हैं। वहाँ की सरकार लोकहितकारी, दूरदर्शी, कुशल, मितव्ययी और अपनी नीति में दृढ़ है। सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार का नाम नहीं सुना जाता और राज्यपदाधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है न कि किसी राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से। उनके सामने जो समस्या है वह यह है कि संतोषी, मितव्ययी और स्थिर-प्रकृति वाले व्यक्तियों में स्थानीय शासन किस प्रकार चलाया जाय। इस समस्या को सुलझाना यहां अधिक सुगम है बनिस्बत ऐसे बड़े देश में जहां के निवासी धनी और महत्वाकांक्षी हैं। इसलिये यह भी ठीक है कि स्विट्जरलैंड में जिन उपायों से इस समस्या को सुलझाया गया है उनसे दूसरे देशों की भिन्न परिस्थितियों में वैसा ही संतोषजनक परिणाम नहीं हो सकता।

वैधानिक इतिहास के पांच युग—स्विट्जरलैंड के राजनैतिक इतिहास को प्रायः पांच हिस्सों में बांटा जाता है (१) प्राचीन संघ, सन् १२९१ से १७९८ तक, (२) हेल्वेटिक प्रजातन्त्र, (३) सन् १७९८ से १८०३ तक, (४) नैपोलियन काल, सन् १८०३ से १८१५ तक। सन् १८१५ से १८४१ तक का संघ-राज्य और (५) सन् १८४८ से अब तक का वर्तमान संघ-शासन।

(१) प्राचीन संघ—सन् १२९१ में उरी, स्वीज़ और उन्टरवाल्डन नाम के तीन केन्टनों ने अपने आप को एक स्थायी संगठन मे अपने अधिकारों की रक्षा के लिये संघीभूत किया। ये केन्टन लूज़र्न झील के सबसे पृथक एक किनारे पर बसे हुये थे, किन्तु इनका राजनैतिक दर्जा एक समान न था। वह समय सामन्तशाही की अराजकता का था। इस संगठन के बनने पर

आस्ट्रिया के राजा लियोपोल्ड को बुरा लगा और वह सेना लेकर इन उद्दण्ड केन्टनों को दण्ड देने के लिये आगे बढ़ा। किन्तु इस युद्ध में केन्टनों की विजय हुई। अतएव यह संघ फलने फूलने लगा। सन् १३५३ तक इसमें ३० सदस्य हो गये। "इसके पश्चात् ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसे राजनीतिज्ञ ब्रुक्स ने 'सैनिक शक्ति का युग' कहा है। इस युग में केन्टनों ने पड़ौसी विदेश राज्यों से भूमि छीन छीन कर अपने प्रदेश का विस्तार बढ़ाया"।* उस समय स्विस लोग स्वदेश में ही लोकतन्त्र के समर्थक थे, बाहर न थे, सन् १४४२ से १४५० तक व एक बार फिर सन् १५३१ और १७२१ में धार्मिक व जातिगत विभेदों के कारण गृह-युद्ध हुये। किन्तु इन सब आपत्तियों के रहते हुये भी यह आश्चर्य की बात है कि संघ ने विदेशियों के आक्रमणों का डट कर सामना किया और विजय पाई जिससे आपसी फूट से छिन्न-भिन्न स्विट्जरलैंड उस युग की डांवा-डोल अवस्था में भी अपने राजनैतिक व्यक्तित्व की रक्षा कर सका।

(२) हेल्वेटिक प्रजातन्त्र--स्विस राजनैतिक इतिहास का दूसरा युग जिसे हेल्वेटिक प्रजा-तंत्र के नाम से पुकारा जाता है सन् १७९८ से आरम्भ होकर १८०३ में समाप्त होता है। स्विट्जरलैंड की सेना फ्रांस की डाइरेक्टरी (Directory) के सैन्य-बल से हार गई, जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस ने अपने यहाँ के तत्कालीन शासन-विधान के ढांचे के समान ही स्विट्जरलैंड को शासन-विधान बनानें पर बाध्य किया। देश को २२ डिपार्टमेंट (Departments) अर्थात् प्राँतों में बांट दिया गया। प्रत्येक डिपार्टमेंट का अपना स्थानीय विधानमंडल था जो स्थानीय मामलों में स्वाधीन था। सारे देश के शासन के लिये सीनेट और ग्रांड कौंसिल (Grand Council) नाम के दो सदनों का विधानमंडल बनाया गया। बाहरी रूप से स्विट्जरलैंड में प्रजातन्त्र स्थापित करने का प्रयत्न करते हुए फ्रांस की राज्यसत्ता इस देश पर अपने अधिकार के वास्तविक मन्तव्य को छिपा न सकी। उन्होंने बर्न नगर में स्थित राजकीय कोण को जब्त कर लिया और केन्टनों से बहुत सा धन और अनेकों सैनिक दूसरे देशों से लड़ने के लिये एकत्रित कर अपने आधीन किये। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्टनों में विद्रोह खड़ा हो गया जिसकी प्रतिक्रिया में फ्रांसीसियों ने स्विट्जरलैंड के निवासियों की निर्दयतापूर्वक हत्या की। जब फ्रांस और आस्ट्रिया में युद्ध आरम्भ हुआ तो स्विट्जरलैंड तुरन्त ही इस संघर्ष की युद्धभूमि बन गया।

* फैडरल पौलिटी, पृष्ठ ५३।

(३) **नेपोलियन काल**–नेपोलियन ने तुरन्त ही अपने कुशल जनरल ने (Ney) को सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए भेजा। स्विट्जरलैंड के प्रतिनिधि पेरिस में इकट्ठे हुए और वहां उन्होंने एक्ट आफ मिडियेशन (Act of Mediation) पास किया जिससे स्विट्जरलैंड के इतिहास का तीसरा युग आरम्भ हुआ। किन्तु इस एक्ट से भी स्विट्जरलैंड को फ्रांस के प्रभाव से छुटकारा न मिला। सन् १८१३ में जब नैपोलियन की हार हुई तब इस युग की समाप्ति हुई।

(४) **सन् १८१५-१८४८ का संशोधन**—वियना कांग्रेस (Vienna Congress) ने यूरोप के नकशे को बिलकुल बदल दिया था, यह सभी जानते हैं। यद्यपि स्विट्जरलैंड को अपनी खोई हुई भूमि न मिली किन्तु एक सुन्दर शासन-विधान अवश्य मिल गया जो १८१५ की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इस संविधान में सब केन्टनों को समान राजनैतिक दर्जे का मान लिया गया और प्रत्येक को इसी आधार पर राष्ट्रीय परिषद् में एक मताधिकार दिया गया। स्थानीय मामलों में उन्हें पूरी स्वाधीनता दे दी गई। सन् १८३० के जुलाई मास में इस संविधान में कई महत्वपूर्ण सुधार किये गये।

(५) **आधुनिक काल**—सन् १८४५ ई० में स्विट्जरलैंड में भयंकर गृहयुद्ध हुआ जिसमें सात केन्टनों ने अपना पृथक संघ बनाया, जिसका नाम उन्होंने वैवाफनैटर सोंदरबन्द (Bewaffneter Sonderbund) रखा और यह धमकी दी थी कि वे संघ-शासन से पृथक हो जायेंगे। संघ-संसद ने जनरल ड्यूफोर की अध्यक्षता में अपनी १ लाख सेना भेजी जिसने विद्रोही कैन्टनों की ५५,००० सेना को दस दिन के युद्ध के पश्चात हरा दिया। इस प्रकार संघ से पृथक होने के कार्य को सफल होने से रोका। सन् १८४८ में कैथोलिक कैंटनों की कुछ मांग को पूरा करने के लिए शासन विधान को दुहराया गया। इस नये संविधान से जिसमें सन् १८७४ में फिर संशोधन हुआ स्विट्जरलैंड के पांचवें युग का आरम्भ होता है। वर्तमान समय में यही संविधान चल रहा है।

सन् १८७४ का शासन-विधान

सन् १८४८ के शासन-विधान में नये विचारों की प्रतिच्छाया के साथ-साथ प्राचीन व्यवहार को सुरक्षित रखने का प्रयत्न दिखाई पड़ता था। इन दोनों का मेल उसमें स्पष्ट रूप में किया गया था। संघ-सरकार को जो शक्तियाँ सुपुर्द की गई थीं वे बहुत सीमित थीं। "ये शक्तियाँ सेना सम्बन्धी व कटनीति सम्बन्धी मामलों में प्राप्त थीं। डाक, आयात-निर्यात कर, माप,

तोल इन आर्थिक विषयों में भी, जिनमें मिली जुली कार्यवाही के बिना प्रजा की एकता की रक्षा नहीं हो सकती, संघ-सरकार को अधिकार दिया गया था"। * इस संविधान को जब व्यवहार में लाया गया तो यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाया जाय। इस उद्देश्य से जो आन्दोलन चला उसमें यह कहा गया कि कैंटनों की पृथक न्याय प्रणालियाँ मिटा दी जाँय, कानून को संचीभूत कर क्रमबद्ध किया जाय और एक स्थायी न्यायालय स्थापित किया जाय। यह भी कहा गया कि रेलों का राष्ट्रीयकरण किया जाय और वे संघ सरकार के आधीन रखी जायँ। और यह भी माँग की गई कि प्रत्येक कानून सम्पूर्ण जनता की स्वीकृति के लिए रखा जाय। इस सम्बन्ध में जनता शब्द से कैंटनों की पृथक पृथक जनता न समझी जाय। किंतु सारे संघ की जनता का अन्तिम निर्णय करने वाला न्यायालय समझा जाय।[1]

सन् १८७४ के शासन-विधान का रूप—उपर्युक्त परिवर्तन के सुझावों को सन् १८७४ के संशोधित शासन-विधान में स्वीकार कर लिया गया। इस संशोधित संविधान को प्रथम विधानमंडल ने पास किया फिर लोक निर्णय से यह स्वीकार हुआ। यह संविधान-विस्तार में संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन-विधान का आधा है। "यह संविधान संघ सरकार और कैंटनों की सरकारों की शासन सम्बन्धी व कानून सम्बन्धी शक्तियों की सीमा निर्धारित करता है।" इसने कैंटनों के अधिकार व संघ सरकार के अधिकार के समर्थकों के विचार का सामंजस्य कर उन्हें लोक हितकारक सजीव रूप देने का प्रयत्न किया है। इसीलिए इसका इतना लम्बा विस्तार है जिससे पढ़ने वाला ऊबता जाता है। किन्तु इसमें आन्तरिक मतभेद और सम्भवतः संघर्ष के कारणों को दृष्टि में रख कर उनके दोष को दूर रखने या उन्हें उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न किया गया है जिससे राजनीति सम्बन्धी सद्गुणों की दृष्टि से बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है।" स्विट्जरलैंड के विधान-निर्माता मौंटसक्यू (Montesquieu) के सिद्धान्त में श्रद्धा न रखते थे इसलिए उन्होंने राज्य संगठन के विभिन्न अंगों में शक्ति का विभाजन या पृथकीकरण नहीं किया और न उनके साथ पारस्परिक संतुलन या विरोध का आयोजन किया"। इस दृष्टि से संयुक्त राज्य अमेरिका व स्विट्जरलैंड के सविधान

* सेलक्ट कन्स्टीट्यूशन आफ दी वर्ल्ड, पृ० ४२७।

[1] सेलेक्ट कंस्टीट्यूशन आफ दी वर्ल्ड, पृ० ४२८।

में अद्भुत असमानता है। स्विट्जरलैंड में २२ कैन्टनों या यों कहिये कि १६ पूर्ण और ६ अर्ध-कैन्टनों का संघ-शासन स्थापित किया गया है। इनके नाम शासन विधान की प्रस्तावना में दिए हुये हैं। नये उपराज्यों अर्थात् घटकों या इकाइयों को संघ में शामिल करने का आयोजन इस संविधान में नहीं है। यदि ऐसा करने की आवश्यकता पड़ जाय तो संविधान में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमेरिका के शासन विधान में इससे सम्बन्धित स्पष्ट प्रावधान है।

संविधान की प्रमुख विशेषतायें—स्विट्जरलैंड के निवासियों को सन् १८४८ के गृहयुद्ध का कटु अनुभव हो चुका था इसलिये इस नये संविधान में पृथकीकरण की सम्भावना को दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिये यह निश्चित प्रावधान कर दिया गया है कि कैन्टनों में आपस में राजनैतिक सन्धियाँ नहीं हो सकतीं। संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन विधान में कहा गया है कि संघ-सरकार के अधिनियम को संघ सरकार के अफसर कार्यान्वित करेंगे और उपराज्यों के अधिनियम को उपराज्यों के अफसर। किन्तु स्विट्जरलैंड में इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। इस संविधान में स्विस नागरिकता की विधिपूर्वक परिभाषा नहीं की गई है किन्तु केवल यही कह दिया गया है कैन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है। संविधान में मूलधिकारों का वर्णन नहीं मिलता किन्तु वैयक्तिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। निर्बन्धन्याय में विधि के समक्ष सब व्यक्तियों की समानता, आत्मस्वातंत्र्य, धर्म-विश्वास आराधना सम्बन्धी स्वतन्त्रता और समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई है। किन्तु संविधान के ५२ वें अनुच्छेद से नये मठों या सम्प्रदायों को पुनर्जीवित करना मना है। नागरिकों का यह अधिकार भी सुरक्षित कर दिया है कि वे प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं और समुदाय बना सकते हैं। प्रतिबन्ध केवल इतना है कि ये समुदाय राज्य में हानिकारक या किसी अवैध उपायों को काम में नहीं ला सकते। भारतवर्ष के समान स्विट्जरलैंड के विधान-निर्माताओं के सामने भी विभिन्न भाषा, धर्म और जातियों की समस्या थी। अतएव भारतवर्ष के निवासियों को स्विट्जरलैण्ड के संविधान व उसके इतिहास का अध्ययन बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

शक्ति-विभाजन—संविधान के प्रथम अध्याय में सामान्य प्रावधान दिये हुए हैं जिनमें उन शक्तियों का वर्णन भी किया गया है जो केन्द्रीय

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ४६।

सरकार (Federal Government) द्वारा भोगी जाती है। दूसरे अनुच्छेद में संघ के उद्देश्य की परिभाषा से संघ-सरकार की शक्तियों का मूल भाव जाना जा सकता है। इसके अनुसार संघ का उद्देश्य विदेशियों से देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना, देश के भीतर शांति व सुव्यवस्था रखना, सदस्य-राज्यों की स्वतंत्रता व अधिकारों की रक्षा करना और उन सबकी समृद्धि को बढ़ाना है। इसलिये संघ-सरकार को बहुत ही सीमित और स्पष्टतया निश्चित अधिकार प्राप्त हैं। तीसरे अनुच्छेद में इसको स्पष्ट कर दिया गया है: "जहाँ तक संघ शासन से कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता मर्यादित नहीं हुई है, कैन्टन सम्पूर्ण सत्ताधारी है, अतएव वे उन सब शक्तियों को काम में ला सकते हैं जो संघ सरकार को नहीं सौंपी गई है"। संघ ने कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता, उनकी भूमि व उनके नागरिकों के अधिकार की रक्षा करने का वचन दिया है। कैन्टनों के शासन-विधानों में संघ सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती, पर उसमें संघ शासन-विधान के विरुद्ध कोई बात न होनी चाहिये, उनसे प्रतिनिधिक प्रजातंत्री गणराज्य की रक्षा होती रहनी चाहिये और कैन्टनों की बहुसंख्यक जनता उन संविधानों को मान्य समझती हो। कैन्टन आपस में राजनैतिक मित्रता नहीं कर सकते हालांकि वे दूसरे कामों में एक दूसरे से सहयोग कर सकते हैं। अद्भुत बात तो यह है कि कैन्टनों को यह अधिकार अब भी मिला हुआ है कि वे पुलिस, अर्थ-सम्बन्धी और सीमा सम्बन्धों के बारे में विदेशी राज्यों से संधि कर सकते हैं। पर इन समझौतों में कोई ऐसी बात न होगी जो संघ के या दूसरे कैन्टनों के हितों के प्रतिकूल हो। इसके साथ साथ यह भी प्रतिबंध है कि विदेशी राज्यों से जो कुछ विचार विनिमय होगा वह संघ कौंसिल की मध्यस्थता से होगा। कोई भी पूर्ण कैन्टन या अर्ध-कैन्टन ३०० सैनिकों से अधिक स्थायी सैन्य शक्ति न रख सकेगा। यह ऐसा प्रावधान है जो प्रायः बहुत से अन्य संघ-शासन विधानों में नहीं मिलता क्योंकि सुरक्षा व उससे सम्बन्धित सब संस्थायें संघ सरकार के आधीन ही होती हैं। कैन्टनों की सेना का अनुशासन संघकानून से निश्चित व नियमित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर संघ-सरकार संघ-सेना के अतिरिक्त कैन्टनों की सारी सैन्यशक्ति पर अनन्यरूप से तुरंत अपना नियंत्रण रख सकती है। इससे यह संभावना नहीं रहती कि कोई कैन्टन संघ के विरुद्ध शक्तिशाली बन गृह-युद्ध के लिये खड़ा हो जाय। यदि दो कैन्टनों में कोई झगड़ा हो जाता है या किसी कैन्टन में विद्रोह खड़ा हो जाता है तो संघ-कौंसिल उसके निबटाने का प्रवन्ध करती है और यदि परिस्थिति गंभीर हो तो अधिनायक जैसी शक्ति अपने हाथ में कर उसका प्रयोग करती है। सब बातों पर विचार करने के

पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सघ मे रहकर भी कैन्टनो को बहुत विस्तृत अधिकार मिले हुये है ।

केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ—केन्द्रीय सरकार सेना-सम्बन्धी कानून बना सकती है । सेना का सगठन, युद्ध-घोषणा, सधि करना, सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्धी इन सबकी व्यवस्था सघ-अधिनियमो से होती है । जल-विद्युत शक्ति, डाक व तार, सघ की सडके और पुल, नौपरिवहन (Aerial Navigation), विदेशी मुद्रा की कीमत, मुद्रा का बनाना, माप व तोल, बारूद का बनाना और बेचना, विवाह-निर्बन्ध और प्रत्यर्पण (Extradition) आदि पर सघ सरकार का अनन्य स्वामित्व व नियन्त्रण है । व्यवहार सम्बन्धी मामलो मे, व्यापार के कानूनी प्रश्नो के बारे मे, चलसम्पत्ति के हस्तान्तरण, साहित्यिक व कलात्मक प्रतिलिप्याधिकार (Copy Right), औद्योगिक अन्वेषण, ऋण चुकाने के अभियोग और दिवालियापन आदि के सम्बन्ध मे सघ सरकार को अधिनियम बनाने का अधिकार है । न्यायसगठन, न्याय-कार्य-प्रणाली, अपराध सम्बन्धी कानून, खाद्य व अन्य घरेलू वस्तुओ के व्यापार और सामान्य आयात-निर्यात-कर, इन सब के लिये भी सघसरकार आवश्यक व्यवस्था कर सकती है । संघ सरकार कैन्टनो से नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिये आयोजन की आशा रखती है ।

संघ सरकार की आय—आय के सम्बन्ध मे सविधान के ४१ वे अनुच्छेदन से सघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह हुडियो, बीमे की रसीदो, अधिकार-पत्रो व अन्य सामान पर्चो पर मुद्राक शुल्क (Stamp Duty) लगा सकती है। किन्तु इस कर से जो धन एकत्रित हो, व्यय घटा कर उसका पाँचवाँ भाग कैटनो को लौटाना पडता है । ४२ वें अनुच्छेदन मे कुछ और आगम स्रोतो का वर्णन है जैसे, सघसम्पत्ति की आय, सीमा पर उघाया हुआ सघ-कर, डाक व तार से प्राप्य आय या बारूद बनाने के एकाधिकार मे प्राप्त धन, कैटनो मे सैनिक-सेवा से मुक्त किये गये व्यक्तियो से प्राप्त कर का आधा भाग (स्विट्जरलैड मे सैनिक-सेवा अनिवार्य है, जो व्यक्ति इससे मुक्त होना चाहते है उनसे कुछ कर वसूल किया जाता है), मुद्राक शुल्क, कैटनों से प्राप्त धन ।

अन्य शक्तिया जो निश्चित रूप से सघ सरकार को नही दी गई है सविधान ने कैटनो को सुरक्षित कर दी है ।

संघ विधान-मंडल

द्विगृही विधान-मंडल—यह विधान-मडल फेडरल असेम्बली अर्थात्

सघ परिषद् के नाम से पुकारा जाता है। इसमे दो आगार है, एक को नेशनल कौसिल और दूसरे को कौसिल आफ स्टेट कहते है।

निचला सदन—नेशनल कौसिल विधान-मडल का निचला सदन है। इसके सदस्यो को सब पौढ नागरिक अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनते है। प्रति २२००० नागरिको का एक प्रतिनिधि चुना जाता है। यदि ११००० या इससे अधिक सख्या के मतधारको की होती है तो उन्हे एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। कैंटनो के जिले निर्वाचन-क्षेत्र रहते है। कैंटनो की जनसख्या मे बहुत अन्तर है अतएव छोटे कैंटनो मे कुछ एक ही प्रतिनिधि चुनकर भेजते है। ऊरी का कैंटन अपने २३००० नागरिको का एक प्रतिनिधि चुनता है किन्तु बर्न के ३३ और ज्यूरिच के ३२ प्रतिनिधि नेशनल कौसिल के सदस्य है। नेशनल कौसिल की कुल सख्या सन् १९५१ के निर्वाचन के पश्चात् १९६ थी। सन् १९३० के निर्बन्ध से इसका कार्यकाल तीन वर्ष से बढा कर चार वर्ष कर दिया गया है। इतने समय से पहले सदन का विधान नही होता क्योकि कार्यपालिका नेशनल कौसिल को उत्तरदायी नही है। यह कार्यपालिका पार्लियामेटरी (ससदात्मक) ढग की नही है।

सदस्यों की योग्यता—राज्य का प्रत्येक नागरिक जिसने २१वे वर्ष मे प्रवेश किया हो मत देने का अधिकारी है और पादरियो को छोड कर कोई भी मतधारक प्रतिनिधि चुना जा सकता है। किन्तु एक ही व्यक्ति दोनो सदनो का सदस्य एक समय मे नही रह सकता। प्रत्येक प्रतिनिधि को आने जाने के खर्च के अतिरिक्त सदन मे उपस्थित रहने के प्रतिदिन के लिये २५ फ्रैंक के हिसाब से भत्ता मिलता है। वर्ष मे चार बैठके होती है। सदन स्वय ही अपने सभापति व उपसभापति को चुनता है। हर एक सत्र के लिये नये सभापति व उपसभापति चुने जाते है। पूर्व सभापति या उपसभापति को लगातार दूसरे सत्र मे, अर्थात् दूसरे वर्ष मे, फिर से सभापति या उपसभापति नही चुना जा सकता। एक वर्ष मे जितनी बैठके होती है उन सब की एक सत्र मे गिनती होती है।

सदन का सभापति—समान मत होने पर सभापति को निर्णायिक मत देने का अधिकार है। अतएव साधारण प्रश्नो पर वह दो मत दे सकता है। किन्तु समितियो के सदस्यो के निर्वाचन मे वह दूसरे सदस्यो के समान ही मतदान करता है। इस सभापति का प्रभाव व शक्ति वैसी नही है जैसी अमेरिकन प्रतिनिधि-सदन के सभापति को प्राप्त है। फिर भी इस

पद की आकांक्षा बड़े बड़े राजनैतिक नेता करते हैं और जो सौभाग्य से इस पद का पा जाते हैं उनका अपने साथियों में बड़ा विशेष आदर होता है । यही बात कौंसिल आफ स्टेट के सभापति के बारे में भी ठीक है" । ×

दूसरा सदन—फेडरल असेम्बली का दूसरा सदन कौंसिल आफ स्टेट्स कहलाता है । अमेरिका व आस्ट्रेलिया की सीनेट की तरह कैंटनों के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं । प्रत्येक कैंटन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है । इस प्रकार २२ कैंटनों के ४८ प्रतिनिधि होते हैं । अर्ध-कटन एक प्रतिनिधि भेजता है । "यह अनोखी बात है कि संविधान में इन प्रतिनिधियों के चुनाव के ढंग के बारे में कोई प्रावधान नहीं है । न इसकी योग्यता ही निर्धारित की गई है। ये सब बातें कैंटनों पर छोड़ दी गई हैं संविधान में यह भी नहीं कहा गया है कि पादरी लोग इसके सदस्य नहीं हो सकते" । * संविधान में केवल यह निर्धारित है कि कैंटन अपने प्रतिनिधियों को स्वयं वेतन देंगे । फिर भी कैंटनों में यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि इस सम्बन्ध में वे सब एक ही प्रणाली का अनुकरण करें । यह बात इससे स्पष्ट है कि अधिकतर कैंटनों में कौंसिल आफ स्टेट्स के प्रतिनिधि सीधे प्रजा द्वारा चुने जाते हैं । कुछ कैंटनों में वहाँ की विधानमण्डल इन प्रतिनिधियों को चुनती है ।

सदस्यों की अवधि—तीन वर्ष की अवधि ही एक सामान्य नियम सा हो गया है किन्तु किन्हीं कैंटनों में १ वर्ष और दूसरों में चार वर्ष की अवधि भी रखी जाती है । कैंटन अपने प्रतिनिधियों को वापस बुला सकते हैं और उनके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधियों को भेज सकने में स्वतंत्र हैं । किन्तु ४१वें अनुच्छेद से एक प्रावधान है जो इसके प्रतिकूल प्रतीत होता है । इस अनुच्छेद में लिखा है कि "कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्यों को कौंसिल में अपना मत देने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जा सकता ।"

सदस्यों का वेतन—कैंटन अपने प्रतिनिधियों को वेतन व आने जाने का खर्चा उसी दर से देते हैं जो संघ सरकार नेशनल कौंसिल के सदस्यों के लिये निश्चित करती है । यदि कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्य किन्ही विधायिनी-समितियों में सदस्य बनने पर कार्य करते हैं तो संघ सरकार उन्हें भत्ता देती है ।

सभापति—कौंसिल आफ स्टेट्स स्वयं ही अपना सभापति व उप-

× गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ७६-८० ।

* " " " , " " ८३ ।

सभापति चुनती है। किन्तु एक ही कैन्टन के निवासी एक सत्र में दोनों पदों के लिये नहीं चुने जा सकते। न एक ही कैन्टन के प्रतिनिधियों में से लगातार दो सत्रों में सभापति या उपसभापति चुने जा सकते हैं (अनुच्छेद ८२) प्रचलित प्रथानुसार उपसभापति दूसरे सत्र में सभापति बना दिया जाता है। वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं वे सब एक सत्र का भाग समझी जाती हैं। मत बराबर रहने पर सभापती को निर्णायक मत देने का अधिकार है।

संघ विधान मण्डल की शक्तियाँ—संघ विधान मण्डल, जैसा पहले बतला चुके हैं, फेडरल असेम्बली (Federal Assembly) के नाम से पुकारा जाता है जिसमें कौंसिल आफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल नाम के दो सदन हैं। मंत्रिपरिषद् जो फेडरल कौंसिल (Federal Council) के नाम से प्रसिद्ध है सब अधिनियम योजनाओं को तैयार करता है, चाहे वह याचना विधेयक के रूप में हो या रिजोल्यूशन अर्थात् प्रस्ताव के रूप में। विधानमण्डल के सदस्य या दूसरे सामान्य व्यक्ति (उस दशा में जब वे स्वयं किसी योजना का प्रस्ताव रखते हैं) किसी योजना के प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं और फेडरल कौंसिल तब इस प्रस्ताव का मसविदा तैयार करती है। कभी कभी प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति स्वयं ही अपना मसविदा कौंसिल के पास भेज देते हैं। जब सत्र आरम्भ होने जा रहा हो उस समय फ़ेडरल कौंसिल उस सत्र में विचारार्थ रखे जाने वाले विधेयकों और प्रस्तावों की पूरी सूची कौंसिल औफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल के सभापतियों के सम्मुख रख देती है। ये दोनों आपस में विचार करके यह निर्णय कर लेते हैं कि कौन से प्रस्तावों पर दोनों सदनों में पहले विचार किया जाय। यहां यह बतलाना आवश्यक है कि जब एक सदन में कोई योजना स्थापित हो जाती है तो यह फेडरल असेम्बली में स्थापित हुई समझी जाती है इसलिये यदि एक सदन में वह योजना अस्वीकृत हो जाय फिर भी दूसरे सदन में वह विचाराधीन समझी जाती है। दोनों सदनों को समान अधिकार हैं। उन दोनों में मतभेद होने पर प्रत्येक एक समिति नियुक्ति करता है। ये दोनों समितियाँ आपस में सलाह करती है और प्रायः किसी न किसी समझौते पर पहुँच जाती हैं। यदि समझौता न हो तो योजना या प्रस्ताव गिर जाता है। स्विट्जरलैंड में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब इस प्रकार के मतभेद से कोई वैधानिक संकट खड़ा हो गया हो। दूसरे विधानों की प्रथा के विपरीत स्विस संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे दोनों सदनों के मतभेद होने पर किसी प्रश्न पर निर्णय हो

सके। किन्तु इन मतभेदों की संख्या अधिक नहीं होती न ये बहुत गम्भीर होते हैं क्योंकि अपनी रचना के कारण कौंसिल आफ स्टेट्स नेशनल कौंसिल अर्थात् लोक सभा से अधिक उन्नति-विरोधी नहीं होती। अधिनियम निर्माण में सारी प्रजा के अन्तिम नियंत्रण का अधिकार होने से संविधान में इस कमी का कोई महत्व भी नहीं रह जाता है।

असेम्बली को संघ-अधिकार क्षेत्र के सब विषयों में व्यवस्था करने का अधिकार है। सदनों के इन अधिकारों या शक्तियों को संक्षेप में नीचे दिया गया है।

(१) विदेशी राज्यों से व्यवहार करने में, युद्ध या संधि करने में, संघ-सेना के लिये अधिनियम बनाने में, स्विट्जरलैंड की बाहरी सुरक्षा व तटस्थता बनाये रखने के लिये सब प्रकार का प्रबंध करने में ये सदन संघ की सर्वाधिकारी सत्ता का उपभोग करते हैं।

(२) कैंटनों व संघ के बीच वे संघ के अधिकार की रक्षा करते हैं। इसके साथ साथ वे यह भी ध्यान रखते हैं कि कैंटनों के संविधानों की सुरक्षा-सम्बन्धी-संघ द्वारा दी हुई प्रत्याभूति के पालन के हेतु आवश्यक अधिनियम भी बनते रहें। और फेडरल कौंसिल से प्रार्थना किये जाने पर वे कैंटनों में आपस में किये हुये या किसी कैंटन और विदेशी राज्य के बीच किये हुये समझौते या संधि के वैध-अवैध होने का निर्णय भी करते हैं।

(३) वे संघ की सामान्य अधिनियम शक्ति को कार्यान्वित करते हैं और इस बात का विशेष प्रयत्न करते हैं कि शासन-विधान कार्यान्वित हो और संघ के कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन हो।

(४) वे संघ के आय-व्यय के लेखे को पास करते हैं और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियंत्रण रखते हैं।

(५) वे संघ के पदाधिकारियों व कर्मचारियों का प्रबन्ध करते हैं। आवश्यक शासन विभागों की रचना कर उनके अफसरों के वेतन आदि का उचित प्रबन्ध भी उन्हीं के द्वारा होता है।

(६) वे संघ सरकार की व संघ न्यायपालिका की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखते हैं। शासन सम्बन्धी मुकद्दमों में फेडरल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध वे शिकायतें सुन उन पर अपना निर्णय देते हैं।

(७) जनता की सम्मति से वे संघ-शासन-विधान में संशोधन भी करते हैं। ❀

मौडर्न डेमोक्रेसीज़ पुस्तक, पृ० ५३६।

❀ दी स्टेट, पैरा ६९६ (सन् १९२६ की प्रति)।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि फेडरल असेम्बली को विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं और वह उनका प्रयोग भी करती है। स्विट्जरलैंड में मौंटेसक्यू के शक्ति विभाजन के सिद्धांत का अनुकरण नहीं किया गया है। वहां की कार्यपालिका विधानमंडल अर्थात् फेडरल असेम्बली को अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी नहीं होती बल्कि असेम्बली की इच्छाओं को व्यवहाररूप देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान यहाँ की न्यायपालिका सर्वोच्च न्याय सत्ता नहीं है।

सम्मिलित बैठकें—असेम्बली के दोनों सदन फेडरल कौंसिल (कार्यपालिका) का निर्वाचन करने के लिये संयुक्त अधिवेशन में सम्मिलित होते हैं। ऐसी संयुक्त बैठकों में ही फेडरल कौंसिल के सभापति व उप-सभापति का चुनाव किया जाता है। फेडरल चांसलर व अन्य प्रमुख संघ-अधिकारी भी इसी संयुक्त बैठक में चुने जाते हैं।

विधान-मंडल के उल्लेख-पत्र—असेम्बली की कार्यवाही का उल्लेख जर्मन, फ्रेंच व इटैलियन तीनों भाषाओं में रखा जाता है और सदस्यों को किसी भी भाषा में वक्तृता देने का अधिकार है। दोनों सदनों में कार्यवाही बड़े शिष्टाचार से और गौरवपूर्ण ढंग पर होती है। जब कोई सदस्य वक्तृता देता होता है उस समय सब लोग बिल्कुल शाँत रहते हैं। सब सदस्य अपने कार्य से परिचित रहते हैं और उनकी संख्या कम होने से सब मामलों पर पूर्ण विचार होता है। सैनिक मामलों की खूब अच्छी तरह से छानबीन होती है क्योंकि सैनिक सेवा हर स्विट्जरलैंड के निवासी के लिये अनिवार्य होने के कारण सब सदस्य उसमें वैयक्तिक अनुभव के आधार पर विचार प्रकट करते हैं और अपनी अभिरुचि का परिचय देते हैं।

सदस्यों की योग्यता—दोनों सदनों के सदस्य खूब पढ़े लिखे व्यक्ति होते हैं। नेशनल कौंसिल के ३१५ सदस्य और कौंसिल आफ स्टेट के तीन चौथाई सदस्य विश्वविद्यालय में शिक्षित व्यक्ति होते हैं। * कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो विदेशी विद्यालयों में शिक्षा पाये हुए होते हैं। जैसी दलबन्दी संयुक्त-राज्य की कांग्रेस में देखने को मिलती है वैसी स्विस विधानमंडल में नहीं है। यहां का साधारण व्यवस्थापक "ठोस, चतुर, उद्वेगहीन या कम से कम अपने उद्वेगों को सहज ही व्यक्त करने वाला होता है। किसी समस्या

* गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ९८।

पर विचार करने पर वह व्यावहारिक बुद्धि से मनन करता है और उसका दृष्टिकोण मध्यवर्गीय व्यवहारी व्यक्तियों का सा रहता है। जर्मन व्यक्ति की तरह उसकी प्रवृत्ति सैद्धांतिक बातों पर बार २ लौटने की नहीं होती न फ्रांस के निवासी के समान वह चकित करने वाले वाक्यों से प्रभावित होता है।" × सदस्य सदनों में ठीक समय पर नियमानुसार उपस्थित होते हैं। व्यवस्थापकों के इन गुणों के कारण स्विट्जरलैंड के विधानमंडल को विशेषतया आदरणीय और गौरवपूर्ण समझा जाता है। संसार में इसके समान दत्तचित्त होकर अपना काम करने वाली दूसरी कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसमें क्रमबद्ध वाद-विवाद कम होता है और उससे भी कम क्रमबद्ध व्याख्यान होते हैं। यहाँ प्रभावपूर्ण भाषा की कला का कोई प्रदर्शन नहीं होता। वक्ताओं को न कोई बीच में रोकने का प्रयत्न करता है न प्रशंसा के उद्गार ही प्रकट करते हैं। नेशनल कौंसिल में सदस्य खड़े होकर वक्तृता देते हैं, किन्तु कौंसिल आफ स्टेट में अपने स्थान से ही वे अपने विचार प्रकट करते हैं।

संघ-कार्यपालिका

स्विट्ज़रलैंड की कार्यपालिका जिसको फेडरल कौंसिल का नाम दिया हुआ है, एक अनोखे प्रकार की है। राजशास्त्री ब्राइस ने इसकी अनुपमता का इस प्रकार वर्णन किया है "किसी दूसरे प्रजातन्त्र राज्य में ऐसी प्रथा नहीं कि कार्यकारी सत्ता एक व्यक्ति को न देकर एक समिति के हाथ में रखी गई हो और ऐसा कोई दूसरा देश न होगा जहां कार्यकारी सत्ता दलबन्दी से इतनी अप्रभावित हो। यह कौंसिल मन्त्रिपरिषद् नहीं है जैसा कि ब्रिटेन में है या उन देशों में है जिन्होंने ब्रिटेन की परिषद्-प्रणाली का अनुकरण किया है क्योंकि यह विधान मंडल का नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा हटाई भी नहीं जा सकती। संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यपालिका के समान यह विधान-मण्डल के तन्त्र के बाहर भी नहीं है। यद्यपि इसमें परिषद्-प्रणाली और अध्यक्षात्मक प्रणाली (Cabinet System and Presidential System) दोनों के कुछ कुछ गुण पाये जाते हैं। यह दलबन्दी से परे रहने के कारण दोनों से भिन्न है। यह पक्ष के बाहर स्थित रहती है। इसका निर्वाचन किसी राजनैतिक पक्ष-विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता।

× मौडर्न डैमोक्रेसीज, पुस्तक १, पृष्ठ ३७८।

"यह किसी पक्ष की नीति निर्धारित नहीं करती किन्तु फिर भी पक्ष के रंग से कुछ न कुछ रंगी अवश्य होती है।"*

फेडरल कौंसिल की बनावट—फेडरल कौंसिल में सात सदस्य होते हैं जिनको फेडरल असेम्बली संयुक्त बैठक में चार वर्ष के लिए चुनती है। असेम्बली ही आकस्मिक रिक्त स्थानों को जाने वाले सदस्य के समय के लिए सदस्यों की नियुक्ति कर भरती है। कोई भी स्विस नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य बनने के योग्य हो फेडरल कौंसिल में चुना जा सकता है किन्तु एक ही कैन्टन के दो निवासी फेडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते। निर्वाचन की पद्धति पर कानून से एक रोक और भी लगा दी गई है। एक से अधिक ऐसे व्यक्ति एक ही समय फेडरल कौंसिल के सदस्य नहीं बन सकते जो विवाह से या जन्म से किसी भी पीढ़ी तक सीधी लाइन में और चार पीढ़ी तक पार्श्ववती लाइन में सम्बन्धित हों। जो व्यक्ति गोद लेने से सम्बन्धी हो गये हों उनको भी यह प्रतिबन्ध लागू होगा। जो कोई विवाह से इस प्रकार के सम्बन्ध में बँधेगा वह फेडरल कौंसिल की सदस्यता त्याग देगा।[1] प्रचलित प्रथा के अनुसार सबसे बड़े ज्यूरिच व बर्न कैन्टनों का एक निवासी कौंसिल का सदस्य अवश्य होता है, बचे हुए पाँच स्थानों को दूसरे कैन्टनों में बाँट दिया जाता है। प्रायः एक या दो स्थान उन कैन्टनों के निवासियों से भरे जाते हैं जहाँ फ्रेंच या इटैलियन भाषा अधिकतर बोली जाती है। जो सदस्य पुनर्निर्वाचन के लिए खड़े होते हैं उनका पुनर्निर्वाचन साधारणतया हो ही जाता है। सन् १८४८ से अब तक इस सम्बन्ध में केवल दो व्यक्तियों का ऐसा पुनर्निर्वाचन नहीं हुआ। इसलिए कौंसिल के सदस्य बड़े अनुभवी व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का उदाहरण मौजूद है जो २५-३० वर्ष तक कौंसिल के सदस्य रहे। संविधान में यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है फिर भी प्रायः ये कौंसिल के सदस्य नेशनल कौंसिल या कौंसिल आफ स्टेट के सदस्यों में से ही छांट कर नियुक्त किये जाते हैं। किन्तु फेडरल कौंसिल के सदस्य बन जाने पर वे विधान-मंडल के सदस्य नहीं रह सकते। इससे विधान-मंडल और कार्यपालिका दोनों बिलकुल पृथक रहे जाते हैं।

प्रतिवर्ष फेडरल कौंसिल के सदस्यों में से असेम्बली एक को प्रेसीडेंट

---

* माडर्न डैमोक्रेसीज, पुस्तक १, पृ० ३९३-३९४।

[1] गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड नामक पुस्तक में दिये हुए कथनानुसार पृ० १०४-१०५।

निर्वाचित करती है। एक उप-प्रेसीडेंट भी निर्वाचित होता है। पिछले वर्ष का उप-प्रेसीडेंट प्राय: अगले वर्ष के लिये प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है । कोई भी व्यक्ति लगातार दो वर्षों तक प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट नहीं रह सकता। प्रेसीडेंट केवल फेडरल कौंसिल का सभापति ही रहता है । वह उत्सवों में संघ का प्रतिनिधित्व करता है, कौंसिल का कार्य संचालन करता है, सामान्य रूप से उसके काम की देखभाल करता है और अत्यावश्यक मामलों में कौंसिल की ओर से कार्यवाही भी करता है । कौंसिल में निर्णय लेते समय यदि दो पक्षों के मत बराबर हों तो वह निर्णायक मत दे सकता है ।

बिना शक्ति का अध्यक्ष—किन्तु स्विस प्रेसीडेंट को विधानमंडल के कानूनों के प्रतिषेध करने का अधिकार नहीं है और वह अन्य सदस्यों के समान ही किसी एक शासन-विभाग का अध्यक्ष रहता है । उसके कोई विशेष अधिकार नहीं हैं और दूसरी बातों में भी वह नाम मात्र का अध्यक्ष समझा जाता है, उसको "बिना किसी महत्व का प्रेसीडेंट" कह कर उसका वर्णन किया जाता है । इस कथन में कुछ तथ्य भी है क्योंकि उसका कार्यकाल बहुत थोड़ा है और फ्रेंच प्रेसीडेंट या अमरीका के प्रेसीडेंट में जो शक्तियां विहित हैं वैसी किसी शक्ति का वह उपभोग भी नहीं करता । फिर भी इस पद का बड़ा गौरव है और राजनैतिक क्षेत्र में महत्वाकांक्षियों के लिये सब से अधिक ऐश्वर्य का पद है जिस पर पहुँचने का वे प्रयत्न करते हैं ।

हर एक फेडरल कौंसिल के सदस्य को प्रतिवर्ष ४८,००० फ्रैंक वेतन मिलता है । प्रेसीडेंट को केवल ३,००० फ्रैंक और अधिक मिलते हैं ।

फेडरल कौंसिल की कार्यवाही—संविधान के १०२ वें अनुच्छेद से प्रदान की हुई शक्तियों के आधीन, फैडरल कौंसिल संघ के आदेशों के अनुसार सब संघ का काम करती है। संघ-विधान के पालन और संघ के कानूनों, आदेशों व समझौतों के अनुकरण को यह निरापद करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करती है, कैन्टनों के शासन-विधानों के पालन की सुरक्षा करती है; फेडरल असेम्बली के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने वाले अधिनियमों व आदेशों का मसविदा तैयार करती है, और कैन्टनों वा अन्य कौंसिलों द्वारा भेजे हुए प्रस्तावों पर अपनी रिपोर्ट देती है ।* फेडरल कौंसिल संघ अधिनियमों को, संघ न्यायालय के निर्णयों को व कैंटनों के बीच हुए समझौतों को कार्यरूप देती है । यह उन शासन-पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति करती है जो असेम्बली द्वारा नहीं भरे गए हों । यह विदेशी राज्यों से की हुई संधियों को और

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ११० ।

कैंटनों के बीच की हुई सन्धियों की परीक्षा कर अपनी सहमति देती है, राष्ट्र के सब वैदेशिक व्यवहार को चलाती और आवश्यकता पड़ने पर स्विट्जरलैंड की घरेलू व बाहरी सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। यह शान्ति व सुव्यवस्था की रक्षा के लिये सेना बुलाती है और सेना पर आधिपत्य रखती है। यह संघ की आय-व्यय का प्रबन्ध करती है, अपने कार्य का विवरण असेम्बली के सम्मुख रखती और अपने कार्य के सम्बन्ध में उन विशेष रिपोर्टों को प्रस्तुत करती है जो असेम्बली द्वारा मांगी जाती है।

प्रशासन-विभाग—उपर्युक्त विभिन्न कार्यकलापों का संचालन करने के लिए फेडरल कौंसिल ने सात प्रशासन-विभागों का निर्माण किया है। परराष्ट्र विभाग, न्याय व पुलिस विभाग, गृह विभाग, युद्ध विभाग, अर्थ-विभाग, उद्योग व कृषि विभाग और डाक व रेल विभाग, ये सात प्रशासन-विभाग असेम्बली के आदेशों को कार्यरूप देते हैं। कुछ समय पहले प्रेसीडेंट परराष्ट्र-विभाग को अपने हाथ में रखता था किन्तु हाल ही में यह प्रथा टूट गई है। अब प्रतिवर्ष शासन-विभागों का राजमंत्रियों में नये ढंग से वितरण किया जाता है। प्रत्येक प्रशासन-विभाग के लिये मुख्य अध्यक्ष के अतिरिक्त एक दूसरा अध्यक्ष निश्चित कर दिया जाता है जो स्वयं किसी दूसरे विभाग का मुख्य अध्यक्ष होता है। अतएव फेडरल कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासन-विभाग का मुख्य अध्यक्ष और किसी अन्य प्रशासन विभाग का "एवजी अध्यक्ष' होता है। इस युक्ति से शासन के कार्य का सुसंचालन पक्का हो जाता है क्योंकि बारी बारी से सब प्रशासन-विभागों के कार्य की पेचीदगी का अनुभव सदस्यों को हो जाता है।

फेडरल कौंसिल का कार्य-संचालन—फैडरल कौंसिल की बैठक सप्ताह में दो बार बर्न नगर में होती है। गणपूरक चार सदस्यों की उपस्थिति होती है। मताधिक्य से सब निर्णय होते हैं। "कौलिजियेट" ढंग की कार्य-पालिका होने के कारण कौंसिल के सदस्य अपने साथी सदस्यों से प्रस्तुत की हुई योजनाओं के विरुद्ध प्रकट रूप से असेम्बली में बोल सकते हैं। यह इस-लिये सम्भव है कि प्रत्येक सदस्य अपने कार्यों के ही लिये उत्तरदायी है, कौंसिल सामुदायिक रूप से विधानमण्डल को उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् पार्लियामेण्ट को उत्तरदायी है। ऐसी योजना भी जो फेडरल कौंसिल की सर्वसम्मति से असेम्बली के सम्मुख रखी गई हो यदि असेम्बली द्वारा अस्वीकार हो जाय तो "राजमंत्रियों को अपने त्यागपत्र देने या पद से हटाये जाने, इन दोनों बातों में एक को पसन्द करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती,

वे उस निर्णय को शिरोधार्य करते और उसके अनुसार कार्यारम्भ कर देते हैं"। वे अपने पदों पर बराबर रहे आते हैं, पदत्याग नहीं करते। इस प्रथा के कारण कौंसिल दूसरे देशों की सिविल सर्विस से मिलती जुलती है, केवल अन्तर यह है कि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रति चार वर्ष बाद होता है। केवल फेडरल कौंसिल के सदस्य विधानमण्डल के किसी भी सदन में उपस्थित हो सकते हैं और बोल सकते हैं। वे वाद-विवाद में बिना किसी प्रतिबन्ध के भाग ले सकते हैं। उन्हें वहां प्रश्नों का उत्तर भी देना पड़ता है। किन्तु असेम्बली के सदस्य न होने के कारण वे वहां वोट नहीं दे सकते। वे स्विस राजनीति में अन्तिम अधिकार रखने वाली असेम्बली की इच्छा को कार्यान्वित करते हैं।

विधानमंडल को अनुत्तरदायी—फेडरल कौंसिल की शक्ति-संविधान प्रदत्त है। "वह राष्ट्र की किसी अन्य कार्यकारी सत्ता की ओर से काम नहीं करती है" इसकी रचना बहुसंख्यक पक्ष से बनाई जाने वाली मन्त्रिपरिषद् के ढंग पर नहीं होती। इसमें कोई प्रधानमन्त्री नहीं होता जो सब मंत्रियों को अपने ही पक्ष के व्यक्तियों में से चुनता हो। इसके "सदस्य विभिन्न राजनैतिक पक्षों से ही नहीं वरन् विरोधी पक्षों से भी चुने जाते हैं। तिस पर भी वे लोग कौंसिल के प्रति सद्भावना व अपने इस संगठन के ऊपर अभिमान दिखाते हैं। अपनी नीति के लिये यह असेम्बली पर निर्भर रहती। यह विधानमण्डल का विघटन नहीं करा सकती और उसके द्वारा अपने पक्ष में निर्णय करने को जनता से अपील नहीं कर सकती है। असेम्बली भी कौंसिल के सदस्यों को बरखास्त नहीं कर सकती"। इन अनुपम बातों के रहते हुये भी कौंसिल अपना काम बड़ी कुशलता से, मिलकर व उत्तम ढंग पर करती है। इसका कारण यह है कि यह छोटी संस्था है जिसके सदस्यों को लम्बे समय का अनुभव रहता है और ये लोग अपने अपने पक्षों के व्यक्तियों की सहायता से असेम्बली में अपना बड़ा प्रभाव रखते हैं। नियुक्तियाँ करने की शक्ति होने से भी उनका बड़ा दबदबा रहता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में असेम्बली ने फेडरल कौंसिल को असीमित अधिकार दे दिये थे जिनकी सहायता से वह स्विट्जरलैंड की सुरक्षा, पूर्णता व तटस्थता की रक्षा के लिये सब प्रकार का प्रबन्ध कर सके और स्वीट्जरलैंड की आर्थिक स्थिति व विश्वास की रक्षा कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कौंसिल को खर्च करने और कर्ज लेने की असीमित शक्ति दे दी गई थी। केवल प्रतिबन्ध

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ११२-११३।

इतना था कि उसे असेम्बली की आगे होने वाली बैठक में पूर्व बैठक के बाद से इन असीमित शक्तियों के प्रयोग का पूरा विवरण देना पड़ता था। उस समय कौंसिल को जो शक्तियां दी गईं उनसे कौंसिल का प्रभाव सदा के लिये बढ़ गया है।

कौंसिल के प्रभाव के बारे में ब्राइस का मत—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने स्विस कार्यपालिका की प्रशंसा इस प्रकार की है : इस प्रणाली से ऐसी संस्था की स्थापना होती है जो जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कम किये बिना शासक असेम्बली को प्रभावित कर केवल परामर्श ही नहीं दे सकती किन्तु दल-बन्दी से दूर रहने के कारण यह आवश्यकता पड़ने पर दो लड़ने वाले पक्षों में मध्यस्थ का काम भी कर सकती है और कठिनाइयों को कम कर मित्र भावना के सहारे समझौते करा सकती है। इसके द्वारा सिद्ध-बुद्धि प्रशासक राष्ट्र की सेवा में लगे रहते हैं चाहे उनके वे राजनैतिक विचार कुछ भी हों जिनके कारण तत्कालीन राजनैतिक पक्षों में विभेद हो। इसके द्वारा परम्परा की रक्षा होती है और नीति की अविच्छिन्नता बनी रहती है।

फेडरल कौंसिल की सफलता—फैडरल कौंसिल की बहुत कुछ आलोचना व इसके सुधार के लिये अनेकों सुझावों के होते हुए भी यह दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि "स्विस कार्यपालिका ने अपनी शक्तियों व अवसरों की सीमा के भीतर उच्च श्रेणी की दक्षता प्राप्त कर ली है और इस छोटे देश में रहने वाली तीनों जातियों का संतुलन करने में यह कृतकार्य हुई है।

चांसलर—स्विस कार्यपालिका का वर्णन समाप्त करने से पूर्व चांसलर, जो संघ का एक उच्च पदाधिकारी होता है, का वर्णन भी कर देना आवश्यक है। इस पदाधिकारी का नाम संविधान की १०५ वीं धारा में पाया जाता है, इसको प्रति चार वर्ष पश्चात् फेडरल असेम्बली चुनती है। वह फेडरल असेम्बली व कौंसिल के जनरल सेक्रेटरी के समान कार्य करता है और उसी के कार्यकाल तक अपने पद पर काम करता है। विशेष रूप से वह फेडरल कौंसिल के आधीन रहता है। चांसलर के कर्तव्यों में उल्लेख पत्रों का रखना, प्रलेखों की रक्षा, निर्वाचनों, लोकनिर्णयों (Referendum) निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) आदि का विधिवत् प्रबन्ध करना, ये सब काम गिने जाते हैं। संघ के सब निर्बन्धों पर उसके हस्ताक्षर होना आवश्यक है, उसको वैध करने के लिये नहीं किन्तु उसके सही होने को प्रमाणित करने के लिये। अतएव वह एक

'उच्च हैड क्लर्क' के समान है और उसके नाम से किसी को जर्मन चांसलर का भ्रम न होना चाहिये जो जर्मन में एक बड़ी शक्तिशाली विभूति के रूप में हुआ करता था।

संघ न्यायपालिका

इसकी बनावट—संविधान द्वारा एक संघ-ट्रिब्युनल अर्थात् न्यायालय की स्थापना की गई है। जिसमें संघ-सम्बन्धी मामलों में न्याय का निर्णय किया जाता है। इस समय इसमें २६-२८ सदस्य हैं और ११ से १३ तक अतिरिक्त न्यायाधीश हैं। ये सब ६ वर्ष के लिये फेडरल असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं और इस अवधि के समाप्त होने पर फिर चुने जा सकते हैं। इनमें से एक प्रेसीडेंट और एक उप-प्रेसीडेंट नियुक्त किया जाता है। दोनों दो वर्ष के लिये नियुक्त होते हैं और लगातार दो बार वे निर्वाचित होकर नियुक्त नहीं किये जा सकते। प्रेसीडेंट का वेतन ३२,००० फ्रैंक प्रति वर्ष है। दूसरे न्यायधीशों में प्रत्येक को ३०,००० फ्रैंक मिलता है। स्विट्जरलैंड का कोई नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य होने योग्य है, वह न्यायालय का सदस्य चुना जा सकता है चाहे उसकी विधि-निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी और योग्यता कुछ भी हो। पर प्रतिबन्ध यह है कि वह न्यायालय का सदस्य रहने के साथ साथ विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता न किसी और पद पर काम कर सकता है। यह एक विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि, कम से कम सिद्धांततः, विधान न्यायाधीशों के लिये कोई विधि-निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी की योग्यता निश्चित नहीं करता हालांकि व्यवहार में ऐसी जानकारी रखने वाले व्यक्ति ही न्यायधीश चुने जाते हैं।

इसका अधिकार क्षेत्र—संघ और कैन्टनों के बीच व्यवहार सम्बन्धी सब मुकदमे, ऐसे मुकद्दमे जो संघ व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच में हों, आपस में कैन्टनों के मुकद्दमे, या कैन्टनों व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच के मुकद्दमे निबटाना संघ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है। यह न्यायालय संघ के प्रति देश द्रोह के अपराध या शासन-विधान के विरुद्ध विद्रोह सम्बन्धी अपराधों की जांच करने का भी अधिकारी है। राष्ट्रों के मध्य मान्य निर्बन्ध के विरुद्ध अपराधों या ऐसे अपराधों और राजनैतिक अवज्ञाओं की परीक्षा जिसमें संघ सेना के हस्तपक्षेप की आवश्यकता हो जाय, यह न्यायालय कर सकता है। संघ पदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को भी यही न्यायालय सुनकर अपना निर्णय देता है। "क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यदि

संघ और कैन्टनों के अधिकारियों में झगड़ा हो जाय, या लोक निर्बन्ध के बारे में यदि कैन्टनों में मतभेद हो, नागरिकों के वैधानिक अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत हो, या समझौतों अथवा संधियों के तोड़ने की व्यक्तियों द्वारा शिकायत की जाय तो इन सब मामलों की जांच करने का संघ-न्यायालय को अधिकार है"।* मजे की बात यह है कि विधानमंडल द्वारा पास किये हुये अधिनियमों को वैध-अवैध निश्चित करने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है जिससे यह अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान प्रभावशाली व गौरवपूर्ण न्यायालय नहीं रह जाता। अमरीका में सर्वोच्च-न्यायालय विधानमंडल या कार्यपालिका के तन्त्र से परे है। किन्तु इस न्यायालय के "सीमित अधिकारों के कारण, न्यायाधीशों की निर्वाचन-पद्धति होने से और विधानमण्डल का न्याय-पालिका पर नियन्त्रण होने से स्विट्जरलैण्ड के निवासी एक शक्तिशाली संघ-न्यायपालिका बनाने में असफल रहे हैं। यह कमी इस बात से और भी अधिक खटकती है कि उन्होंने संयुक्त-राज्य अमरीका की बहुत सी बातों में नकल की है"।[1] यद्यपि यह सच है कि इस न्याय-पालिका का अधिकार क्षेत्र बराबर विस्तृत होता जा रहा है फिर भी यह निश्चय है कि वह संयुक्त-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के वैधानिक महत्व को नहीं पा सकता। विशेषकर विधान-मंडल के बनाये हुए अधिनियमों को वह अवैध घोषित नहीं कर सकता। ऐसा करना स्विट्जरलैण्ड को ही नहीं वरन् यूरोपीय परम्परा के भी विरुद्ध होगा। इसका कारण स्पष्ट है और वह यह कि स्विट्जरलैण्ड में शक्ति-विभाजन को अंगीकार नहीं किया है। विधानमण्डल ही राज्य-संगठन का सब से शक्तिशाली अंग है और वह भी प्रजा की सतर्क देख-रेख में सदा बनी रहती है क्योंकि जनता लोक-निर्णय (Referendum) निर्बन्ध उपक्रम (Initiative) और प्रत्याहरण (Recall) द्वारा लोक व्यवस्था पर अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण रखती है।

न्यायपलिका की कार्य प्रणाली—न्यायाधीशों को इस ढंग से चुना जाता है कि वे तीनों राष्ट्र-भाषाओं का प्रतिनिधित्व करें। न्यायालय की बैठक लूसेन नगर में होती है जो फ्रेंच भाषा-भाषियों के कैन्टन वौड (Vaud) में स्थित है। बर्न नगर के राजनैतिक वातावरण से न्यायालय को दूर रखने के लिये ऐसा किया गया था। न्यायालय तीन विभागों में विभक्त है, प्रत्येक

---

* विधान की ११३ वीं धारा।

[1] फेडरल पौलिटी, पृ० १८६-१८७।

विभाग में ८ न्यायधीश व्यवहार-सम्बन्धी व कानून-सम्बन्धी (Civil) मुकदमों को सुनकर निर्णय करते हैं। अपराध-सम्बन्धी (Criminal) मुकदमों का निवटारा करने में पंच (Jury) सहायता करते हैं। ये संख्या में १२ होते हैं और ५४ नामों की सूची से १४ चुने हुए व्यक्तियों में से लाटरी द्वारा छांट लिए जाते हैं। मुकदमे में प्रत्येक पक्ष को सूची के २० नामों के विरुद्ध आपत्ति करने का अधिकार होता है। इन पंचों को प्रतिदिन के काम के लिये २० फ्रैंक पारिश्रमिक मिलता है।

राजनैतिक पक्ष

दलबन्दी की भावना का अभाव—फ्रांस और इंगलैण्ड के राजनैतिक पक्षों की अपेक्षा यहाँ राजनैतिक पक्ष निम्न-श्रेणी का कार्य करते हैं क्योंकि कार्यकारी क्षेत्र में सदन मंत्रियों को स्थान च्युत नहीं करा सकते और व्यवस्थापन क्षेत्र में आगारों का निर्णय अंतिम निर्णय नहीं होता। यह अन्तिम-निर्णय जनता का होता है"।* इनके अतिरिक्त उत्कट दलबन्दी की भावना के इस अभाव के पीछे और भी कई कारण हैं। विधानमंडल के सत्र बहुत कम समय के होते हैं जिससे दलबन्दी को सुदृढ़ करने के लिये समय ही नहीं रहता। विधानमंडल के सदस्य जिलों के अनुसार समूह बनाकर बैठते हैं न कि पक्ष-समूहों में कि केन्द्रीय सरकार के हाथ में अपने समर्थकों को देने के लिये कोई अधिक संख्या में पुरस्कार भी नहीं होते क्योंकि कैन्टनों की सरकारों को ही अधिक विस्तृत अधिकार मिले हुए हैं। संघ-सरकारी पदों पर राजनीति के आधार पर न होकर योग्यता के कारण ही नियुक्तियां होती हैं। इन पदाधिकारियों के वेतन इतने कम हैं कि कृपाकांक्षी व्यक्ति उससे आकर्षित नहीं होते। फेडरल कौंसिल के मंत्रियों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है। जिससे गुटबन्दी को प्रोत्साहन नहीं मिलता। लोक-निर्णय और प्रत्याहरण से स्विट्जरलैण्ड जैसे छोटे देश में दलबन्दी नहीं होने पाती क्योंकि मतदाता अपने पड़ोसियों को ही मत देने के अधिक इच्छुक होते हैं। योजना के दोष-गुण पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि व्यक्ति विशेष पर। अतएव पड़ोसी से न कि पक्ष के उम्मेदवारों से यह अधिक आशा की जाती है कि वह प्रिय योजनाओं का समर्थन करेगा। अन्तिमतः स्विस निवासी स्वभाव से व्यावहारिक बुद्धि के होते हैं, उनमें वह गुण नहीं पाया जाता है जो प्रायः राजनैतिक दलबन्दी के लिए आवश्यक है। वे निर्वाचन के समय किसी प्रकार का प्रदर्शन पसन्द नहीं करते।

---

* मौडर्न डैमोक्रेसीज, पुस्तक १, पृ० ३६०।

पुराने पक्ष—प्रारम्भ में उपराज्यों के अधिकार के प्रश्न पर पक्षों का संगठन हुआ था। कैथौलिक सम्प्रदाय के अनुयायी जो परम्परा के समर्थक थे अपने आपको फेडरलिस्ट (Federalist) कहते थे किंतु कैन्टनों के अधिकारों को सुरक्षित किये जाने पर जोर देते थे। इसी नाम का अमेरिका में एक राजनैतिक दल है जो मिल्टन और वशिंगटन के नेतृत्व में उपराज्यों के स्थान पर केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में था। स्विट्जरलैंड में दूसरा पक्ष अपने आप को सैन्ट्रलिस्ट (Centralist) के नाम से पुकारता था और केन्द्रीय सरकार की शक्ति को बढ़ाने का समर्थन करता था। सौंदर-बन्द के युद्ध में कैथोलिक पक्ष की हार हुई किन्तु मेल और सुदृढ़ संघठन के कारण उनका अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। विजयी सैन्ट्रलिस्ट कुछ समय के पश्चात् दो शाखाओं में बंट गये, एक रैडीकल पक्ष (Radicals) और दूसरा राइट-विंगर्स (Right Wingers)। रैडीकल पक्ष की संख्या बढ़ती गई क्योंकि उन्होंने संघक्षेत्र में लोक निर्णय और निर्बन्ध-उपक्रम लागू करने का जो प्रश्न उठाया उसका प्रजा ने बड़ा समर्थन किया। सन् १८७४ में संविधान में जो संशोधन हुआ वह रैडीकल पक्ष की विजय का द्योतक था। उसके पश्चात् इस दल ने स्विस राजनीति पर अपना सिक्का जमा लिया। राइट विंगर्स (Right Wingers) जल्दी ही राजनैतिक क्षेत्र से लुप्त हो गये। रैडीकल पक्ष से समाजवादी पक्ष का आविर्भाव हुआ जिसने सन् १८६० के निर्वाचन में नेशनल कौंसिल के ६ स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। किन्तु इस पक्ष की अधिक उन्नति न हुई। "इसका एक कारण यह है कि स्विट्जरलैंड में पहले से ही राज्यसंगठन के ऊपर अन्य देशों की अपेक्षा अधिक मात्रा में जनता का नियंत्रण हो चुका था और बड़े-बड़े उद्योगों का समष्टिकरण भी हो गया था इसलिये इस बात में संदेह नहीं कि इन कारणों से व अचल सम्पत्ति के छोटे छोटे टुकड़ों के अधिक व्यक्तियों में बंटे रहने से स्विट्जरलैंड में समाजवाद का वैसा जोर नहीं हुआ जैसा जर्मनी और फ्रांस में रहा है। *

वर्तमान राजनैतिक पक्ष—उपर्युक्त वर्णन से यह मालूम हो गया कि स्विट्जरलैंड में कैथौलिक अनुदार-पक्ष और इन्डिपेंडेंट डैमोक्रेटिक रैडीकल (Independent Democratic Radical) पक्ष ये दो बड़े राजनैतिक पक्ष हैं। ऊपरी सदन में कैथोलिकों की पर्याप्त संख्या है और उनका एक शक्तिशाली अल्पसंख्यक दल है। किन्तु लोक सभा अर्थात् निचले सदन में उन

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड पृ० २६६।

की संख्या अधिक है । इसका विशेष कारण यह है कि निचला सदन जनसंख्या के आधार पर चुने हुए प्रतिनिधियों से संगठित होता है और इस पक्ष के समर्थकों की संख्या, घनी आबादी वाले और अधिक संख्या में प्रतिनिधि चुनने वाले कैंटनों में ही अधिक है ।

शासन-विधान का संशोधन

दो प्रकार का परिवर्तन—किसी समय भी पूरे संविधान का या उसके किसी भाग का संशोधन हो सकता है ऐसा आयोजन स्वयं शासन विधान में कर दिया गया है। फेडरल असेम्बली का कोई सदन जब संविधान को पूरी तरह से संशोधित करने का प्रस्ताव पास कर दे और उस प्रस्ताव को दूसरा सदन स्वीकार नहीं करे तो संशोधन का यह प्रश्न प्रजा के निर्णय के लिए रखा जाता है। ऐसे लोक निर्णय के लिए उस प्रस्ताव को भी प्रस्तुत किया जाता है जो पूरे शासन विधान के संशोधन के लिए ५०,००० मतधारकों द्वारा भेजा गया हो । दोनों अवस्थाओं में यदि मत देने वालों की अधिक संख्या संशोधन के लिए मत देती है तो दोनों कौंसिलों के लिए नया निर्वाचन किया जाता है और नये सदन संशोधन कार्य को अपने हाथ में लेते हैं ।

आंशिक संशोधन—आंशिक संशोधन दो प्रकार से हो सकता है (१) जब ५०,००० मतधारक आंशिक संशोधन का प्रस्ताव, केवल इच्छा प्रकट करके या संशोधन का पूरा मसविदा तैयार करके उपस्थित करें। इस संशोधन की माँग को जब फेडरल असेम्बली सामान्य ढंग से स्वीकार कर लेती है तो फेडरल कौंसिल उस संशोधन का मसविदा तैयार करना आरम्भ कर देती है । यदि फेडरल असेम्बली इस माँग को अस्वीकार कर देती है तो संशोधन हो या न हो, यह प्रश्न लोक निर्णय के लिए रखा जाता है । यदि ५०,००० मतधारक संशोधन का पूरा मसविदा प्रस्तुत करते हैं, उस दशा में असेम्बली अपना मसविदा भी प्रस्तुत कर सकती है और दोनों मसविदे लोक-निर्णय के लिए रखे जाते हैं । (२) असेम्बली के एक या दोनों सदन संघ-विधेयकों के ढंग पर विधान के संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि विधान मंडल और जनता दोनों संशोधनों का प्रस्ताव रख सकते हैं।

विधान-संशोधन के लिये लोकनिर्णय अनिवार्य—उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में लोक-निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है । बहुसंख्यक कैंटनों में जब मताधिक्य से संशोधन स्वीकार हो जाता है तो यह पास समझा जाता है । बहुसंख्यक कैंटनों की गिनती करने से पूरे कैंटन का एक मत और अर्ध-कैंटन का आधा मत गिना जाता है । पास होने के लिए सब कैंटनों के मतदाताओं

की अधिक संख्या उसके पक्ष में होनी चाहिये। अथवा यों कहा जा सकता है कि ११½ कैंटनों की जनता से उसे स्वीकृत होना चाहिए। जुलाई १९५२ तक १०३ संशोधन लोक निर्णय के लिए प्रस्तुत किये गये जिनमें से ४३ को छोड़कर सब पास हो गये। इनमें से केवल १५ का प्रस्ताव जनता द्वारा किया गया था। एक का प्रस्ताव ११७, ४६४ मतों से किया गया था। यह प्रस्ताव जुआ-घरों के सम्बन्ध में था और इसका पूरा मसविदा तैयार करके मतधारकों ने संशोधन का प्रस्ताव किया था। असेम्बली ने अपना निजी वैकल्पिक मसविदा तैयार किया। दोनों मसविदे जनमत के लिए रखे गये। इस जनमत का परिणाम निम्नलिखित था :—

	पक्ष में मत	विरोध में मत	पक्ष में कैंटनों की संख्या	विरोध में कैंटनों की संख्या
उपक्रम किया हुआ मसविदा	२६९,७४०	३२१,९९६	१३½	८½
असेम्बली का मसविदा	१०७,२३०	३४४,९१४	½	२१½

कैंटनों की सरकारें

घटक-राज्य या कैंटनों के विस्तार में बड़ी विभिन्नता है। ग्रौबुन्डन और बर्न का क्रमानुसार जहां २७४६ वर्ग मील और २६५८ वर्ग मील क्षेत्रफल है वहां जुग (Zug) का ९३ वर्गमील क्षेत्रफल है। बर्न कैंटन की जनसंख्या सब से अधिक है। इसमें ८०१,९४३ व्यक्ति रहते हैं। एपैन्जल इन्टिरिअर (Appenzell Interior) जो अर्ध कैंटन है उसमें सब से कम, अर्थात् १३,४२७ मनुष्य ही रहते हैं। सन् १२९१ से लेकर सन् १८१५ तक विभिन्न समयों पर ये कैंटन संघ में शामिल किये गये थे। संघ में शामिल होने से पूर्व अधिकतर कैंटन स्वतन्त्र और सम्पूर्ण सत्ताधारी थे। उनके निजी शासन विधान और संस्थायें थीं। संघ में आने पर उन्होंने निश्चित शक्तियों को ही संघ के सुपुर्द किया, शेष बातों में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सत्ता ज्यों की त्यों सुरक्षित रखी। इसीलिये संघ का नाम कनफेडरेशन (Confederation) है न कि फेडरेशन (Federation), जो अन्य देशों में पाया जाता है।

निम्न सारिणी में स्विस संघ के २२ कैंटनों का क्षेत्रफल जनसंख्या और लोकसभा (Lower House) में उनके प्रतिनिधियों की संख्या दी हुई है।

कैंटनों के नाम और संघ में आने का वर्ष	क्षेत्रफल	१९५० की जनसंख्या	नेशनल कौंसिल में प्रतिनिधियों की संख्या .
ज्यूरिच (१३५१)	६६८	७७७,००२	३२
बर्न (१३५३)	२६५८	८०१.९४३	३३
लूज़र्न (१३३२)	५७६	२२३,२४९	९
ऊरी (१२०१)	४१५	२८,५५६	१
स्वीज (१२९१)	३५१	७१,०८२	३
ओबवाल्डन (१२९१)	१९०	२२,१२५	१
निडवाल्डन (१२९१)	१०६	१९,३८९	१
ग्लैरस (१३५२)	२६४	३७,६६३	२
जुग (१३५२)	९३	४२,२३९	२
फ्रीवर्ग (१४८१)	६१५	१५८,६९५	७
सोलोथर्न (१४८१)	३०६	१७०,५०८	७
बेसिल-सिटी (१५०१)	१४	१९६,४९८	८
बैसिल-लैंड (१५०१)	१६५	१०७,५४९	४
शैफेसान (१५०१)	११५	५७,५१५	२
एपैन्ज़ल ए (१५१३)	९४	४७,९६८	२
एपैन्जल आई (१५१३)	६७	१३,४२७	१
सेंट गैलेन (१८०३)	७७७	३०९,१०६	१३
ग्रीज़ोन्स (१८१३)	२७४६	१३७,१००	६
आरगोवी (१८०३)	३८३	३००,७८२	१३
थुरगाड (१८०३)	३८८	१४९,७३८	६
टिसीनो (१८०३)	१०८६	१७५,०५५	७
वौड (१८०३)	१२३९	३७७,५८५	१६
वैलैज (१८१५)	२०२१	१५९,१७८	७
नौचटैल (१८१५)	३०९	१२८,१५२	५
जैनीवा (१८१५)	१०९	२०२,९१८	८
	कुल १५,९४४	४,२६५,७०३	१९६

कैंटनों में प्रत्यक्ष जनतंत्र—जिन बातों में शासन-विधान कैंटनों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता उनमें वे सम्पूर्ण सत्ताधारी हैं। कुछ छोटे कैंटनों में प्रत्यक्ष जनतंत्र है, अर्थात् सब नागरिक मिल कर विधायनी सत्ता का कार्य करते हैं। वे ही सब अफसरों को चुनते हैं। अन्य बहुत से कैंटनों में कहीं अपरिहार्य और कहीं वैकल्पिक लोक निर्णय की प्रथा प्रचलित है; फ्रीवर्ग कैंटन में ही किसी रूप में लोक निर्णय नहीं लिया जाता। स्विट्जरलैंड के कैंटनों में यह ही एक ऐसा कैंटन है जहां प्रतिनिधिक राज्य संस्थायें हैं।

कैंटनों के विधान-मंडल—प्रत्यक्ष जनतन्त्र प्रणाली वाले छः कैन्टनों को छोड़ कर सब में सरकार का संगठन एक ही ढंग का पाया जाता है। प्रत्येक में गृही विधानमण्डल है जो ३ या ४ वर्ष के लिये लोक निर्वाचन द्वारा संगठित किया जाता है। दस कैंटनों में अनुपाती प्रतिनिधित्व द्वारा व्यवस्थापक चुने जाते हैं। प्रति ३००-५०० निवासी १ प्रतिनिधि को चुनते हैं। विधानमण्डल प्रायः ग्रांड कौंसिल (Grand Council) के नाम से पुकारा जाता है।

शासन-विधान का संशोधन—सब कैण्टनों में शासन-विधान का अनुसमर्थन और उसका संशोधन जनमत से होता है। कई कैण्टनों में सब अधिनियम अन्तिम स्वीकृति के हेतु जनमत के प्रकाशन के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं। बहुत से मुद्रा-विधेयक भी इसी भाँति अपरिहार्य लोक निर्णय के लिये रखे जाते हैं। कैंटनों के संविधान में संशोधन का प्रस्ताव जनता द्वारा व विधानमंडल द्वारा किया जा सकता है।

कैण्टनों की कार्यपालिका—प्रत्येक कैण्टन में कार्यकारी सत्ता ५ या ७ सदस्यों के एक बोर्ड में विहित होती है। यह बोर्ड या कमीशन एडमिनिस्ट्रेटिव कौंसिल (Administrative Council), स्मौल कौंसिल (Small Council) या कौंसिल आफ स्टेट (Cuoncil of State) के नाम से विख्यात रहते हैं। जुग और टिसीनों में यह कमीशन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली पर चुना जाता है। अन्य कैंटनों में साधारण पद्धति से निर्वाचित होता है। केवल फ्रीवर्ग और वैलेस में ही यह कार्यकारी कमीशन विधानमंडल द्वारा चुना जाता है। कमीशन का एक प्रेसीडेंट और एक उप प्रेसीडेंट होता है, "फेडरल कौंसिल की तरह कैंटन को कार्य-पालिका बड़े बड़े मामलों में सामुदायिक रूप से कार्य करती है"। जो सम्बन्ध फेडरल कौंसिल और फेडरल असेम्बली में है वही सम्बन्ध इन कमीशनों का कैंटनों की विधानमंडलों से

होता है अर्थात् कौंसिल विधानमंडलों की अनुचर रहती है और उसके आदेशों को कार्यान्वित करती रहती है ।

कैंटनों की न्यायपालिका—प्रत्येक कैंटनों का अपना निजी न्याय-संगठन है किन्तु ब्यौरे की बातें छोड़कर इस संगठन के सामान्य सिद्धाँत व उसका रूप सब कैंटनों में एकसा है । व्यवहार-सम्बन्धी व अपराध-सम्बन्धी मामलों को दो भिन्न न्यायालय सुनकर निर्णय देते हैं ।

कैंटनों में स्थानीय शासन—स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई स्विस कम्यून (Swiss Commune) है । इनकी जनसंख्या में बड़ा भेद है । किसी में केवल ५० मनुष्य रहते हैं दूसरे में २००,००० मनुष्यों के नगर शामिल हैं । सारे देश में ३१६४ कम्यून (Commune) हैं । जहाँ प्राकृतिक स्थिति चाहती है उन बड़े कम्यूनों में क्वार्टर कम्यून यर्थात् उप-कम्यून भी होते हैं । कम्यून में प्रबन्ध करने वाली एक कम्यून कौंसिल होती है जिसमें ५ या कहीं ६ सदस्य होते हैं जिनको कम्यून के निवासी स्वयं चुनते हैं । इन कौंसिलों में एक सभापति और एक उप सभापति भी होता है ।

कैंटनों में शिक्षा—सब कैंटनों में ऐसा शिक्षा-संगठन है जो अपनी व्यावहारिकता और दृष्टि की व्यापकता के लिए विख्यात है । इनमें नागरिक शास्त्र की शिक्षा अनिवार्य है इसीलिए यहाँ के निवासी अच्छे नागरिक हैं । अधिकतर कैंटनों में कृषि शिक्षालय हैं । उनमें माध्यमिक शिक्षालय और विभिन्न व्यवसायों की शिक्षण संस्थायें हैं जो संघ सरकार के डाक, तार, टैलीफोन और चुंगी आदि कार्यों के लिये युवा स्त्री पुरुषों को शिक्षा देकर तैयार करते हैं । सैनिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है । शिक्षा के सम्बन्धों में कैंटनों को अधिक मात्रा में स्वाधीनता मिली हुई है हालांकि संघ सरकार शिक्षा के व्यय मे कैंटनों को सहायता देती है और यह आशा किया करती है कि शिक्षा का स्तर ऊँचे से ऊँचा हो ।

प्रत्यक्ष जनतन्त्र

(Direct Democracy)

स्विट्जरलैंड प्रत्यक्ष जनतन्त्र का घर है—संसार के सब देशों में स्विट्जरलैंड ही ऐसा देश है जहाँ सबसे अधिक मात्रा में प्रत्यक्ष जनतंत्र प्रचलित है । 'जनतंत्र के विद्यार्थी के लिये स्विट्जरलैण्ड की प्रणाली में इससे अधिक शिक्षा देने वाली कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष जनतंत्र से मानव-समुदाय की आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है । उनके विचार व

भावनाओं का जितना वास्तविक ज्ञान प्रकट रूप से इससे हो सकता है उतना प्रतिनिधिक संस्थाओं के माध्यम से विवर्त हुये ज्ञान से नहीं हो सकता।"* कई कारणों से यह प्रत्यक्ष जनतंत्र यहाँ सम्भव भी है। देश पहाड़ी है जिसमें छोटी छोटी घाटियाँ हैं जो एक दूसरे से पृथक होने से निवासियों में विभिन्नता उत्पन्न करती हैं। कैण्टनों का विस्तार छोटा है, बड़े से बड़े में भी ५ लाख से कुछ अधिक निवासी हैं। औसतन कैण्टन का क्षेत्रफल ६४० वर्गमील से अधिक नहीं है। "अतएव ऐसे प्रदेश के निवासी राजकार्य के बीच में ही सदा रहते होते हैं और लोक कार्य के गुण दोष को जाँचने के लिए सब समय सुगमता से एकत्र हो सकते हैं। उनके विचारों व भावनाओं में एकसापन भी होता है और उन्हें अपनी शक्तियों को प्रतिनिधियों को सौंपने की आवश्यकता नहीं रहती"।[1] अमरीका में भी प्रत्यक्ष जनतंत्र की संस्थायें हैं किन्तु स्विट्जरलैण्ड में उनकी अधिक आवश्यकता है क्योंकि यहां विधानमंडल बहुत कम संख्या में कानून पास करती है इसलिए जनता ही उसकी कमी को पूरा करती है।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष जनतंत्र के दो प्रसिद्ध साधन लोक-निर्णय (Referendum) और निर्वन्ध-उपक्रम (Initiative) हैं। पहिला प्रतिनिधियों द्वारा संपादित कार्य के दोषों को दूर कराने में प्रयोग किया जाता है और दूसरा उनकी भूल के दोषों के निवारण करने में काम में लाया जाता है।

संघ में लोक-निर्णय—स्विट्जरलैंड में सब विधान-संशोधनों के लिये लोक-निर्णय अपरिहार्य्य हैं। जैसा हम पहले ही कह चुके हैं। दूसरे अधिनियमों के लिये यह इच्छा पर छोड़ दिया गया है। वैकल्पिक अर्थात् इच्छा पर निर्भर लोक-निर्णय पूर्णरूप से स्विट्जरलैण्ड की ही कृति है। १८२०-१८३० की क्रांति के फलस्वरूप इसकी उत्पत्ति हुई। सन् १७८४ में ही संघ-शासन में इनको अंगीकार किया गया यद्यपि कुछ कैण्टनों में उन्नीसवीं शताव्दी के पहले से ही इसका प्रयोग होता आ रहा था। सार्वजनिक प्रस्तावों व अधिनियमों के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। "व्यवहार में, संधियों, वार्षिक आय-व्यय (वजट), स्थानीय सुधारों के हेतु आर्थिक अनुदान और विधानमण्डल के सामने प्रस्तुत निश्चित प्रश्नों पर दिये गये निर्णय, जैसे क्षेत्राधिकार के झगड़े कैण्टनों के विधानों की स्वीकृति इत्यादि

* मौडर्न डैमोक्रेसीज़, पु, १, पृ० ४१५।
१ दी स्टेट (१६०० का संस्करण पृ० ३०६।)

ये सब लोक-निर्णय के लिये नहीं रखे जाते।"* तीस हजार नागरिक लिखित प्रार्थनापत्र के द्वारा लोक-निर्णय की मांग कर सकते हैं। आठ कैण्टन भी मिलकर लोक-निर्णय की मांग कर सकते हैं किन्तु कैण्टनों ने ऐसी मांग कभी भी नहीं की है। अधिनियम पास होने के ६० दिन के भीतर ही यह मांग होनी चाहिये। असल में फेडरल असेम्बली के पास हुए अधिनियमों में से ७ प्रतिशत लोक-निर्णय से रद्द किये जा चुके हैं, जिससे स्पष्ट है कि जनता वास्तव में इनमें रुचि रखती है।

कैण्टनों में लोक-निर्णय—कैण्टनों के शासन-विधानों का संशोधन लोक-निर्णय से ही पास हो सकता है। आठ कैण्टनों में सब अधिनियमों व प्रस्तावों के पास होने के लिये लोक-निर्णय से लोक सम्मति प्राप्त करना आवश्यक है। सात कैण्टनों में वैकल्पिक लोक-निर्णय प्रचलित है जिसकी मांग नागरिकों की निश्चित संख्या कर सकती है। यह संख्या भिन्न भिन्न है। तीन कैण्टनों में अपरिहार्य लोक-निर्णय का रूप वैकल्पिक निर्णय से भिन्न है। केवल एक कैण्टन में ही सामान्य अधिनियमों के लिये लोक-निर्णय की आवश्यकता बिलकुल नहीं है।

लोक-निर्णय की गुण-दोष परीक्षा—यद्यपि लोक-निर्णय की प्रथा से कुछ लाभ हुआ है किन्तु निम्नलिखित हानियाँ भी इससे हुई बताई जाती हैं।

(१) पहली बात तो यह है कि योजना के विरोधी ही अधिक संख्या में मत देने जाते हैं, समर्थक प्रायः प्रयत्नशील न होने के कारण घर पर ही बैठे रहते हैं। अतएव मतधारकों की बहुत थोड़ी संख्या ही इसमें भाग लेती हैं यह लोक-निर्णय का दोष है। इसमें भाग लेने वालों की संख्या योजना के महत्व पर निर्भर रहती है। प्रायः धार्मिक योजनाओं में सब से अधिक संख्या भाग लेती है उसके बाद क्रम से रेल, स्कूल, आर्थिक योजनाओं आदि के सम्बन्ध में जो योजनायें होती हैं उनको महत्व दिया जाता है।

(२) **मतदाताओं की अयोग्यता**—अधिनियम विशेष कर पेचीदा योजनाओं के बारे में साधारण मतदाता ठीक निश्चय करने में अयोग्य रहता है। मतधारकों को योजना की छपी हुई प्रतियां मिलती हैं जिसमें बड़ा व्यय होता है।

(३) लोक-निर्णय की प्रथा से प्रतिनिधियों के उत्तरदायित्व की भावना

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० १५३।

निर्बल हो जाती है दलबन्दी के प्रभाव के कारण विधानमण्डल में वे प्राय: किसी योजना के पक्ष में अपना मत दे देते ह यद्यपि वे समझते हैं कि योजना हानिकारक है और यह आशा करते रहते हैं कि लोक-निर्णय में जनता स्वयं ही उसे अस्वीकार कर देगी।

(४) यद्यपि कुछ लोग इसको बहुत ही उत्तम साधन बतलाते हैं, एम ड्रोज का कहना है कि इसके द्वारा व्यवसायी राजनैतिक नेताओं के बढ़ने का अवसर मिलता है जो निरर्थक असंतोष बढ़ाकर और निषेधात्मक नीति का अनुसरण कर अपने नेतृत्व की रक्षा किया करते हैं।

लोक-निर्णय से लाभ—यद्यपि लोक-निर्णय अन्य मानव संस्थाओं के समान अपूर्ण है तब भी वर्तमान स्थिति में इसने एक भारी कमी को पूरा किया है और दलबन्दी की भावना को दबा कर बड़ा लाभ पहुँचाया है। इसके ही कारण बहुत अधिक मात्रा में स्विट्जरलैंड अत्यन्त सुव्यवस्थित और शाँति पूर्ण राष्ट्र बनने में सफल हुआ है। जैसा किसी ने कहा है "लोक-निर्णय ने, जिन हितों को हम साधना चाहते थे उनमें बहुत कम रुकावटें डाली हैं किन्तु इसके अस्तित्व भर से ही बहुत से अहित होने से बच गये…प्रतिकूल, प्रगति की सम्भावना होते हुए भी इसने लोकतंत्र में रोड़ा नहीं अटकाया प्रत्युत इसने प्रगति को भी व्यवस्थित रूप दिया है।" *

संघ में अधिनियम-उपक्रम—अधिनियम-उपक्रम वह साधन है जिससे नागरिकों की कुछ संख्या किसी निर्बन्ध का प्रस्ताव कर सकती है और यह माँग कर सकती है कि उस पर लोकमत लिया जाय चाहे विधान-मण्डल उस अधिनियम का विरोध ही क्यों न करे जैसा पहले कहा जा चुका है संघ में यह अधिनियम-उपक्रम का साधन शासन-विधान में परिवर्तन करने के लिये काम में लाया जा सकता है। इसके द्वारा जो १० संशोधनों की मांग की गई, उनमें से तीन ही पास हो सके। इसके विपरीत विधान-मण्डल के बीस प्रस्तावों में से १७ संशोधन पास हुये। इससे यह स्पष्ट है कि विधान-मंडल के संशोधनों के प्रस्तावों की अपेक्षा उपक्रम किये हुये संशोधनों की नश्वरता अधिक है"। "तिस पर भी वैधानिक उपक्रम एक स्थायी वस्तु बनी रहेगी, यह निश्चय है। यही नहीं किन्तु इसके समर्थन में इतना जोर है कि साधारण अधिनियमों के लिये भी इसका प्रयोग बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है"। किन्तु अभी तक "इस माँग को स्वीकार नहीं किया गया है क्योंकि जनता को

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० १६१।

अधिनियम उपक्रम करने का अधिकार देने से व्यवस्था के संघात्मक रूप के स्थान पर एकात्मक रूप हो जायगा।" ×

कैंटनों में अधिनियम-उपक्रम—कैंटनों में नागरिकों की निश्चित संख्या (जो भिन्न भिन्न कैण्टनों में भिन्न भिन्न है) सारे संविधान के परिवर्तन की या कुछ संशोधनों की मांग कर सकती है। पहली अवस्था में कैंटनों के अधिकारी या तो उस मांग के अनुसार मसविदा तैयार कर लोक-निर्णय के लिये प्रस्तुत करते हैं या यह प्रश्न ही लोक निर्णय के लिये रख दिया जाता है कि संशोधन हो या न हो सामान्य अधिनियम के लिये भी बहुत से कैंटनों में साधारण नागरिक स्वयं प्रस्ताव कर सकते हैं।

जनतंत्र के संबंध में स्विस-दृष्टिकोण—स्विट्जरलैंड के रहने वालों का कहना है कि जब तक नागरिकों को स्वयं अधिनियम बनाने का अधिकार न हो, जनतंत्र अधूरा है। इस कमी को पूरा करने का साधन अधिनियम उपक्रम की प्रणाली है। प्रार्थना और उपक्रम में भेद है क्योंकि उपक्रम विधान-मण्डल के ऊपर अनिवार्य बन्धन स्वरूप हो जाता है। प्रार्थना (Petition) के सम्बन्ध में यह बात ठीक नहीं है। यद्यपि अधिनियम उपक्रम लोक-निर्णय की कमी पूरा करता है किन्तु ये दोनों साथ साथ ही उत्पन्न नहीं हुये हैं। पहले पहल इसका प्रयोग जनमत की उपेक्षा करने वाले अधिनियमों को रोकने में नहीं किया गया था।

अधिनियम-उपक्रम के दोष—अधिनियम-उपक्रम के कई श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों ने बुराई की है। इनमें एम ड्रोज और हरमन फाइनर का नाम उल्लेखनीय है। पहले राजनैतिज्ञ का कहना है कि जनतंत्र की नींव पक्की करने की बजाय इस अधिनियम उपक्रम की प्रणाली से राज्य-संगठन के आधारभूत संविधान को बात बात में भय उत्पन्न हो जाता है। उसका कहना है कि इसके द्वारा नेता युग का प्रारम्भ होता है जिसमें स्वनिर्मित समितियों का उतना ही महत्व हो जाता है जितना व्यवस्थित सरकार का। अतएव देश की समृद्धि व शान्ति को इससे हमेशा भय बना रहेगा। इसका अन्तिम परिणाम यही होगा कि बनी-बनाई व्यवस्था विशृंखलित होकर नष्ट हो जाएगी। इस कथन में अत्युक्ति है किन्तु यह भी ठीक नहीं कि दो या तीन ऐसी सफलीभूत मांगों में जनमत का परिचय प्राप्त हो सकता है। अधिनियम-उपक्रम के कारण व्यवस्थापकों के उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ जाती है। साधारण जनता बहुत सी अधिनियम योजनाओं पर ठीक ठीक

× फाइनर-थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट के पृ० ६२८ पर दी हुई पाद टीका से।

मत निश्चय करने में अयोग्य रहती है। लोक-मतदाता का परिणाम जनता की इच्छा का सच्चा व दोषरहित प्रदर्शन नहीं कहा जा सकता क्योंकि लोक-बुद्धि असंगत बातों के चक्कर में पड़ भ्रमित हो जाती है या विधेयक के अनेक प्रावधानों से घबरा कर किसी एक प्रावधान से असंतुष्ट होने के कारण ही सारे विधेयक को भी रद्द कर देती है चाहे सारे विधेयक के सार से वह सहमत क्यों न हो। अधिनियम उपक्रम की माँग में संशोधन भी सम्भव नहीं होता। इससे मतधारक पर उत्तरदायित्व का अत्यन्त भारी बोझ पड़ जाता है जिसे वह भली प्रकार संभाल सकने में असमर्थ होता है।

अधिनियम-उपक्रम के समर्थकों की विचार धारा—उपर्युक्त दोषों के रहते हुए भी इस प्रणाली के समर्थक इससे बड़ी आशा रखते हैं। उनका विचार है कि इसके द्वारा जनता की प्रभुसत्ता (Sovereignity) की रक्षा होती है। इसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियों के प्रति अपना असंतोष प्रकट करने में समर्थ होती है, यदि वे अपना कर्तव्य अच्छी तरह नहीं निबाहते। इससे देशभक्ति जाग्रत होती है और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि होती है क्यों कि स्वनिर्मित निर्बन्ध के अनुसार आचरण करने के लिये मतधारक का सुझाव अधिक होता है। इससे सर्वसाधारण को राजनीति की शिक्षा मिलती है, दलबन्दी का जोर कम हो जाता है, जहाँ कार्यपालिका को विधायिनी सत्ता पर नियंत्रण रखने की शक्ति नहीं होती वहां इसके द्वारा जनता का नियंत्रण रखा जा सकता है और अन्त में, उस जनमत की शक्ति का इससे प्रकाशन होता है जो ऐसा निर्णय करने में समर्थ है जिसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं हो सकती।

प्रत्यक्ष जनतंत्र के संचालन के सम्बन्ध में ब्रुक्स का यह कथन है कि "इसमें सन्देह नहीं कि स्विट्जरलैंड में लोक निर्णय और अधिनियम-उपक्रम से राज्यसंगठन तितर-बितर नहीं हुआ है। इनसे अल्पसंख्यक पक्षों का प्रभाव अवश्य बढ़ गया है। स्विस राज्यसंगठन की यह प्रणाली एक आवश्यक अंग बन गई है जिससे इसके प्रति अब विरोध होना भी बहुत समय से समाप्त हो गया है।

पाठ्य पुस्तकें

Brooks.—Government and Politics of Switzerland.
Bryce. Viscount—Modern Democracies Vol. I chs. XXVII—XXXII.

अध्याय १९

सोवियट रूस की सरकार

"पूंजीवादी देशों में जहाँ विरोधी वर्ग हों प्रजातन्त्र का अर्थ यही होता है कि वहाँ अल्पसंख्यक पूंजी वर्ग का तन्त्र या शक्तिवान का तन्त्र है। इसके विपरीत सोवियट रूस में प्रजातंत्र का अर्थ श्रमिकों का तन्त्र अथवा सब लोगों का तंत्र है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रजातंत्र की नींव पर आघात करने वाला रूस का नया संविधान नहीं है किन्तु दूसरे पूँजीवादी शासन विधान हैं। इसीलिए मैं समझता हूँ कि सोवियट रूस का शासन-विधान पूर्ण रूप से जनतन्त्रात्मक संविधान है" (जोसेफ स्टैलिन)

समाजवादी सोवियट प्रजातन्त्रों के संघ (Union of the Socialist Soviet Republics) का क्षेत्रफल ८,०९५,७२४ वर्गमील है और जनसंख्या १९१,८८८,४४५ है[1]। यहाँ पिछले ३० वर्षों में एक नवीन राज्य शासन प्रणाली का वृहत-प्रयोग किया जा रहा है जिसके प्रशंसकों और आलोचकों ने विभिन्न रूपों में इसकी व्याख्या की है। कुछ लोगों ने सोवियट रूस के शासन-विधान को वास्तविक रूप में प्रजातंत्रात्मक कह कर प्रशंसा की है, दूसरे लोगों ने लाखों मूक-व्यक्तियों पर अत्याचार करने वाला कठोर शासन कह कर इसकी प्रतारणा की है।

शासन-विधान का इतिहास

रूस की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह संस्कृति, हितों और संस्थाओं की दृष्टि से अर्ध-यूरोपियन और अर्ध-एशियाई समझा जाता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पूर्व रूस संसार के सब से कठोर शासित देशों में गिना जाता था। ज़ार राज्य का ऐकैवाधिकारी स्वामी माना जाता था, उसकी शक्ति असीमित और उसका वचन ही कानून था। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ज़ार अलैक्ज़ेंडर प्रथम (Czar Alexandar I) ने शासन-

---

[1] वह आंकड़े सितम्बर सन् १९३९ के पहिले के हैं।

प्रणाली में कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किन्तु इस कार्य में सन् १८१२ में किये हुये नैपोलियन के आक्रमण ने बाधा डाल दी। उसका उत्तराधिकारी ज़ार अलैक्ज़ेंडर द्वितीय उदार विचारों का व्यक्ति था। अपने पड़ौसी राज्य आस्ट्रिया के उदाहरण से (जहां सन् १७८१ में कृषि-श्रमजीवियों की स्थिति में सुधार हो चुका था) प्रेरित होकर उसने यह इच्छा प्रकट की कि सामन्त लोगों को इन कृषि श्रमजीवियों को स्वतंत्र करने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए। तीन मार्च सन् १८६१ में एक राजाज्ञा से वैयक्तिक भूसम्पत्तियों के श्रमजीवी दासों को स्वतन्त्र कर दिया गया। उनके साथ साथ गृह कार्य करने वाले दासों को स्वतन्त्रता दे दी गई है। कृषकों की भूमि उनकी सम्पत्ति बना दी गई और उनसे अपने जमींदारों को एक उचित नियत लगान देने के लिये कह दिया गया। तीन वर्ष बाद उसने पोलैंड (Poland) के दासों को भी स्वतन्त्र कर दिया। "न्याय, प्रकाश और स्वतंत्रता" यही उसका निर्देशक सिद्धान्त था, तब भी शून्यवादी रूसी क्रान्तिकारियों (Nihilits) ने उसका विरोध किया। इन लोगों ने गुप्त संस्थायें खोलना आरम्भ किया, हिंसा का प्रचार किया और अंत में ज़ार पर बम फेंका (१३ मार्च सन् १८८१) जिससे उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गये।

ड्यूमा को बुलाने का प्रथम प्रयत्न—इस घटना के बाद सन् १९०५ के रूसी-जापानी युद्ध तक शासन को जनतन्त्रात्मक बनाने का कोई दूसरा प्रयत्न नहीं किया गया। इस युद्ध में रूस की पराजय हुई और उससे ज़ार के ऐश्वर्य का भवन खण्डहर हो गया। उसकी उच्चता की चमक-दमक फीकी पड़ गई और उसके पैतृक अधिकार में अविश्वास होने लगा। ज़ार ने एक लोक निर्वाचित असेम्बली (जिसे ड्यूमा कहा गया) का संगठन कर लोकमत जानने का प्रयत्न किया। इसी समय जनता ने विद्रोह खड़ा कर दिया। मताधिकार को बढ़ाकर जनता को प्रसन्न करने के सब प्रयत्न विफल हुये और उसे बाध्य होकर एक मैनीफैस्टो (अर्थात् घोषणापत्र) निकालना पड़ा जिससे "व्यक्ति के शरीर की, आत्मा की, वाणी की, समुदाय व मुक्तव्यवहार की वास्तविक अलंध्यता के आधार" पर जनता को नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करनी पड़ी। यह अपरिवर्तनशील नियम भी स्थिर करना पड़ा कि ड्यूमा (Duma) की सम्मति के बिना कोई कानून लागू न होगा, और जनता के प्रतिनिधियों को यह अधिकार दिया गया कि राज्याधिकारियों के कार्यों को वैध-अवैध ठहरा सकें। सन् १९०६ में जो प्रथम ड्यूमा एकत्रित हुई उसमें प्रत्यक्ष प्रौढ़ मताधिकार, पार्लियामेंटरी (संसदात्मक) शासन-प्रणाली, जमींदारी

उन्मूलन आदि की माँग की गई। इस ड्यूमा का जुलाई में विघटन हो गया। द्वितीय ड्यूमा मार्च १९०७ में एकत्रित हुई और वह भी विफल-कार्य सिद्ध हुई।

ज़ार की सत्ता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ—मई सन् १९०६ के मौलिक-अधिनियमों के चौथे अनुच्छेद से यह घोषणा कर दी गई थी कि "रूस के सम्राट की शक्ति सर्वोच्च निरंकुश शक्ति है। उसके प्रभुत्व को शिरोधार्य करना चाहिये, केवल भय से ही नहीं किन्तु आत्मा की रक्षा के लिये भी, यही परमेश्वर की आज्ञा है"। ऐसे वातावरण में सन् १९०७ के नवम्बर मास में बुलाई गई ड्यूमा भी कोई कार्य न कर सकी। ज़ार की इच्छा से ही अन्तिमतः सब व्यवस्था होती थी। यदि ड्यूमा सरकार के आर्थिक प्रस्तावों को अस्वीकार कर देती थी तो ज़ार के मन्त्री पूर्व वर्ष के बजट के अनुसार शासन चलाते रहते थे। कार्यपालिका पूर्णतया ज़ार को उत्तरदायी थी न कि ड्यूमा (Duma) को।

इसलिये प्रथम महायुद्ध के समय रूस की जनता उस युद्ध से उत्पन्न कष्टों से घबरा कर विद्रोह कर उठी और निकोलस को राजत्याग करने पर बाध्य कर दिया (मार्च १२ सन् १९१७)।

सन् १९१७ की क्रान्ति—प्रथम महायुद्ध में रूस योरप की केन्द्रीय शासन सत्ताओं के विरुद्ध मित्र-राष्ट्रों का साथी था। किन्तु वह अपने यहां के निरंकुश शासन के कारण अधिक समय तक युद्ध न. कर सका। शासन को प्रजातन्त्रात्मक बनाने की मांगों को ज़ार लगातर कुचलता रहा जिससे प्रगतिशील व्यक्तियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। ज़ार ने समझदारी से काम न लेकर अनुचित-आज्ञायें दीं कि ड्यूमा के सदस्य घर वापिस चले जायं, पिट्रोग्राड के श्रमिकों को हड़ताल बन्द करने की आज्ञा दी और काम आरम्भ करने को कहा, जिससे विद्रोह सजीव हो उठा। इस विद्रोह के दूरवर्ती कारणों में, रूस के किसानों की भूख से मृतप्राय अवस्था, योरप में प्रजातन्त्र का जोर, रूसी-जापानी युद्ध से उत्पन्न कष्ट और रूसी युवकों की अधीरता, ये सब कारण थे। ड्यूमा ने राजाज्ञा का विरोध किया। एक सप्ताह भीतर ज़ार ने राजसिंहासन छोड़ दिया और उसको कुटुम्ब सहित बन्दी बना दिया गया। ड्यूमा ने जो अस्थाई सरकार स्थापित की उसने आज्ञा देकर समाचार-पत्रों पर लगाये हुये बन्धनों को हटा दिया, राजनैतिक व धार्मिक बन्दियों को छोड़ दिया, श्रमिकों के संगठन बनाने और हड़ताल करने के अधिकार को मान्य कर दिया और स्थल व जल सेना के अनुशासन को अधिक मानुषिक रूप दिया। यह सरकार थोड़े ही समय तक कायम रह सकी

क्योंकि पीट्रोग्रेड की सोवियट ने स्थल सेना व जलपोतों के वेड़े को यह आदेश दे दिया कि इस अस्थायी सरकार की उन आज्ञाओं का पालन न किया जाय जो सोवियट के आदेशों के विरुद्ध हों। इसका परिणाम यह हुआ कि सैनिकों ने व नाविकों ने स्थानीय क्रांतिकारी समितियाँ स्थापित कीं। इस समय भी व्यक्ति पूर्व शासकों के पक्ष में थे और दूसरे लोगों ने युद्ध करने से विल्कुल मना कर दिया।

सन् १६१७ के अक्टूबर मास में बौल्शैविकों ने अपने पक्ष की वैठक में बलपूर्वक राज्यशक्ति को अपने हाथ में करने का निर्णय किया। नवम्बर मास की ६ तारीख को उन्होंने पीट्रोग्रेड नगर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया और सरकार के मन्त्रियों को बन्दी कर लिया। सोवियट की अखिल रूसी कांग्रेस ने ७ नवम्बर को एक कार्यपालिका समिति बनाई और एक प्रशासन बोर्ड स्थापित किया जिसके लैनिन सभापति, ट्रौट्स्की परराष्ट्र मन्त्री और स्टैलिन विभिन्न जातियों का मन्त्री (Commissar of Nationalities) बनाये गये। सन् १६१७ के नवम्बर मास की क्रांति की प्रमुख प्रेरक शक्ति लेनिन और उसके अत्यन्त योग्य सहकारी ट्रौट्स्की की थी। मन्त्रिमण्डल ने एक कार्यक्रम तैयार किया जिसमें निम्नलिखित बातें थीं :

(i) केन्द्रीय सत्ताओं (Central Powers) से तुरन्त सन्धि करना।

(ii) स्थानीय विद्रोह का दमन करना और पृथकीकरण की भावनाओं को मिटाना।

(iii) पूर्ण कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना के लिए श्रमिकों की अधिनायक सत्ता स्थापित करना और इस अधिनायक सत्ता की स्थापना के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संगठन को पूरी तरह से बदल देना, और

(iv) सारे संसार में श्रमजीवियों के विद्रोह को फैलाना।

सोवियटों की कांग्रेस ने जिसका संचालन बौलशैविक समाजवादी पक्ष करता था, जल्दी २ अपने कई अधिवेशन किये। सन् १६१८ की १० मार्च को जो पांचवाँ अधिवेशन हुआ उसमें रूस के समाजवादी संघात्मक सोवियट गणराज्य (Russian Socialist Federal Soviet Republic) के लिए एक शासन विधान तैयार किया। इस गणराज्य या प्रजातंत्र में जार के नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य के उत्तरी व सुदूरपूर्वी अधिकतर भाग शामिल थे। सन् १६१८ से १६२३ तक इस संविधान में कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। विशेषकर ये संशोधन नये प्रदेशों को संघ में शामिल करने के बारे में थे।

सन् १९२३ से इस संघ का नाम समाजवादी सोवियट प्रजातंत्रों का संघ (U. S. S. R. or Union of Socialist Soviet Rapublics) रखा गया।

यह विधान बहुत ही अद्वितीय था और इसमें संसार के अन्य शासन-विधानों से बिल्कुल भिन्न शासन-प्रणाली अपनाई गई थी। इसकी उत्पत्ति सन् १९१७ की जनक्रांति से हुई थी इसलिए यह ज़ार की अत्याचारी सत्ता की प्रतिक्रिया-स्वरूप निर्मित हुआ था। इसके द्वारा प्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप दिया गया जिसके अनुसार प्रत्येक समस्या राजनैतिक समस्या है और प्रत्येक श्रमिक राज्य का नौकर है। इसका उद्देश्य पूंजीवाद को पूर्णतया कुचल देना था इसलिए इस शासन विधान में रूस को "सोवियट श्रमिकों, सैनिकों और कृषकों के प्रतिनिधियों का प्रजातंत्र" कहकर पुकारा गया था। बाह्यरूप में यह संगठन अत्यन्त दृढ़ संघ (Close Federation) के रूप में था अर्थात् संघ शक्ति या केन्द्रीय शक्ति को विस्तृत अधिकार दिए गये और जनता के राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले प्रमुख मामलों को संघ सरकार के हाथ में कर दिया था। संघ के सात घटक पजातन्त्र राज्यों को स्थानीय व सांस्कृतिक स्वाधीनता मिली हुई थी। इसका अन्तिम उद्देश्य सारे संसार का एक सोवियट संघ बनाना था इसलिए इस संघ को एक राष्ट्रीय इकाई न कहा जाता था। इसको समान समाजवादी सिद्धांतों पर स्थित समान समाजवादी संस्थाओं वाला संघ समझा जाता था। कम से कम कागज पर इसमें घटक राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार दिया गया था जो संघ के सर्वमान्य सिद्धांतों के बिल्कुल प्रतिकूल बात थी।

श्रमिकों का शासन—संविधान ने श्रमिकों के शासन की स्थापना की थी इसलिए मताधिकार सबके लिए समान था चाहे वे स्त्री हों या पुरुष। जो लोग लाभकारी उद्योगों में मजदूरों से मजदूरी देकर काम कराते थे, या अन-उपार्जित आय से जीविका चलाते थे, पादरी, संन्यासी, मूढ़ व्यक्ति और ज़ार के पूर्व कर्मचारी, ये लोग मताधिकार से वंचित कर दिये गये थे। संविधान की एक नवीनता यह थी कि इसमें जिले की सोवियट, सरकार की सोवियट और केन्द्रीय कार्यपालिका समिति, इन सबको अध्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली द्वारा संगठित करने की योजना थी। प्रत्यक्ष-निर्वाचन द्वारा गाँव या फैक्टरी की सोवियट (परिषद्) ही बनाई जाती थी जिसका अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित

था। "इस प्रकार का संगठन किसी राजनैतिक पक्ष के लिए तो नई वस्तु न थी किन्तु राज्य-संगठन में इसका होना एक अद्वितीय बात थी।"*

स्थानीय व प्रांतीय-सरकार—रूस के शासन का रूप पिरैमिड जैसा था जिसके आधार में फैक्टरी और ग्राम सोवियटों की बड़ी संख्या थी और चोटी पर केन्द्रीय कार्यपालिका समिति (Central Executive Committee) और प्रैसीडियम (Presidium) थीं। अपनी सीमा के भीतर ग्राम सोवियट को संविधान ने शासन सत्ता का सर्वोच्च अङ्ग माना था।

सोवियट राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुसार मताधिकार वास्तव में कोई अधिकार नहीं है केवल एक सामाजिक कर्तव्य है और इससे मजदूरों के अधिकारों की रक्षा होती है। रूस में रहने वाले विदेशी मजदूरों को भी मताधिकार मिला हुआ था। सन् १६३१ में १६०,००६,००० लोगों में से ८४,०००,००० लोगों को मताधिकार मिला हुआ था। सूचीबद्ध मतधारकों में से ७१-८ प्रति सैकड़ा ने मतदान किया था। सोवियट शासन में मतदान करना मजदूरों की राजनैतिक शिक्षा का साधन समझा जाता था। और मतधारकों को बराबर इस कर्तव्य में चूक न करने का आदेश दिया जाता था।

निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का आधार—शासन की जिस इकाई का निर्वाचन होना होता था उसकी कार्यपालिका द्वारा नियुक्त कमीशन निर्वाचन की सब बातें, जैसे निर्वाचन-स्थान, समय, ढंग आदि निश्चय करता था। निर्वाचन क्षेत्र प्रादेशिक न थे किन्तु व्यवसायिक थे, प्रत्येक फैक्टरी या सामूहिक कृषि फार्म स्वयं एक निर्वाचन-क्षेत्र होता था। गुप्त शलाका की प्रथा न थी, मतधारक निर्वाचन-पदाधिकारी के सम्मुख उपस्थित होकर अपना मत बता देता था। ग्राम व फैक्टरी सोवियटों में हाथ उठा कर मत लिये जाते थे। जो उम्मेदवार मतों की अधिक संख्या पाते थे वे निर्वाचित हो जाते थे। नगरों, यद्यपि सोवियट शासन-विधान श्रमिकों की अधिसत्ता पर आधारित था किन्तु कारखानों और गाँव के रहने वालों के नागरिक अधिकारों में बहुत विभिन्नता थी (यदि वोट इस नागरिकता के मूल्य का माप हो)। नगरों में या कारखानों में काम करने वाले २५००० व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था किन्तु गांव में कृषि करने वाले १२५००० व्यक्ति एक प्रतिनिधि चुन सकते थे। इस भेद का कारण यह बतलाया जाता था कि पूँजीवाद से समष्टिवाद के परिवर्तन काल में राजनीति में शिक्षित व वर्ग भेद को समझने

---

* कौल-ए गाइड टु माडर्न पौलिटिक्स, पृ० २३।

वाले मजदूरों के हाथ में नेतृत्व होना चाहिये। यह कहा जाता था कि जब कृषक लोग भी जाग्रत हो जायेंगे तब यह भेद मिटा दिया जायेगा।

ग्राम्य और फैक्टरी सोवियट—शासन की प्राथमिक इकाई ग्राम या फैक्टरी थी और प्रत्येक की अपनी निजी सोवियट (परिषद् समिति) होती थी जिसको सब स्थानीय मामलों के प्रबन्ध का काम सौंपा गया था। तीन सौ निवासियों वाले ग्राम या तो अपना शासन स्वयं करते थे या दूसरे गांवों के साथ मिलकर संयुक्त शासन-प्रबन्ध करते थे। इसी प्रकार छोटे कारखाने जिनमें १०० से कम मजदूर काम करते थे वे दूसरों से मिलकर अपनी एक सोवियट स्थापित कर लेते थे। फैक्टरी समिति काम करने वालों के सामाजिक जीवन, पाठशाला, क्लब, निवास-स्थान (यदि इसका आयोजन कारखाने के पास ही होता था) और काम करने वालों की शिक्षा की देख भाल करती थी। *

डिस्ट्रिक्ट सोवियट—ग्राम व फैक्टरी सोवियट से ऊपर जिले की सोवियट होती थी जिसमें जिले की ग्राम व फैक्टरी सोवियटों के प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियों को ग्राम के किसान या फैक्टरी के काम करने वाले न चुनते थे किन्तु ग्राम व फैक्टरी सोवियट चुना करती थी। यहीं से अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election) जो रूस की शासन प्रणाली की विशेषता है आरम्भ होता था। डिस्ट्रिक्ट सोवियट जिले के भीतर स्थानीय हित की बातों का प्रबन्ध करती थी और साथ साथ ऊपर से मिले आदेशों का भी पालन करती थी।

प्रादेशिक सोवियट (Regional Soviet)—अगली ऊँची प्रशासन-इकाई प्रादेशिक सोवियट थी जिसके आधीन अनेक डिस्ट्रिक्ट सोवियट होती थीं। प्रादेशिक सोवियट जिसको कांग्रेस भी कहते थे, में प्रतिनिधियों को कुछ संख्या में डिस्ट्रिक्ट सोवियट चुनती थीं और कुछ प्रतिनिधि फैक्टरी सोवियटों द्वारा चुने जाते थे जिससे ग्राम सोवियटों की अपेक्षा फैक्टरी सोवियटों का अधिक महत्व था क्योंकि ग्राम सोवियटें प्रादेशिक कांग्रेस में प्रत्यक्षरूप से अपना प्रतिनिधि चुनकर न भेजती थी। इन प्रादेशिक कांग्रेसों के कर्तव्य जिले की सोवियटों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के होते थे। रूसी संघ के सात प्रजातंत्र इकाई-राज्यों में से प्रत्येक में कई प्रदेश (Regions) होते थे जो स्थानीय शासन की इकाई होते थें। प्रत्येक प्रादेशिक कांग्रेस उपराज्य की कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजती थी। इसलिये प्रादेशिक कांग्रेस के ऊपर उपराज्य

* ए गाइड टु मार्डन पौलिटिक्स, पृ० २२६।

की कांग्रेस होती थी।

स्वाधीन उपराज्य—रूसी सोवियट संघ में स्वयं अपना शासन करने वाले सात उपराज्य थे। इनमें से बहुत से उपराज्य स्वयं छोटे स्वतन्त्र गण-राज्यों के संघ थे जिनका सोवियट ढंग पर शासन प्रबन्ध होता था। उपराज्यों को शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाचार-पत्रों आदि में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। प्रत्येक इकाई राज्य की अपनी कांग्रेस थी जिसमें प्रादेशिक (Regional) कांग्रेसों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। सदस्यों की संख्या बहुत होती थी। इसकी साल में दो बैठकें होती थीं। यह अपने सदस्यों में से कुछ व्यक्तियों को चुन कर केन्द्रीय कार्यपालिका समिति बनाती थी जिसको सामान्यतया कुछ अधिनियम सम्बन्धी व प्रकाशन सम्बन्धी अधिकार मिले होते थे। इस समिति में भी सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती थी। इसकी माह में तीन बैठकें होती थीं यह अपनी एक छोटी समिति चुनती थी जो इसकी ओर से कार्य करती थी जब केन्द्रीय समिति की बैठकें न होती थीं। इस छोटी समिति को प्रैसीडियम (Presidium) कहा जाता था। प्रैसीडियम के अतिरिक्त एक लोक-प्रबन्धक परिषद् (Council of Peoples Commissaries) भी संगठित की जाती थी जिसमें उपराज्य के शासन-विभागाध्यक्ष (Heads of Departments) होते थे। यह परिषद् मन्त्रिपरिषद् के समान थी किन्तु इसे प्रैसीडियम के आदेशों को कार्यान्वित करना पड़ता था।

सातों उपराज्यों में एक सा ही प्रशासन होता था क्योंकि इनकी कांग्रेसों में अधिकतर सदस्य कम्यूनिस्ट पक्ष के ही लोग होते थे जिनकी नीति सारे पक्ष के लिये निश्चित की हुई नीति होती थी। हर एक उपराज्य में रूस के सर्वोच्च न्यायालय की एक शाखा होती थी जिसके नीचे अन्य छोटे न्यायालय थे। इन सबसे मिलकर उपराज्य की न्यायपालिका थी।

रूस की केन्द्रीय सरकार—सोवियट सरकार संगठन के पिरैमिड की चोटी पर सोवियट रूस की संघ या केन्द्रीय सरकार थी। केन्द्रीय प्रशासन की सबसे बड़ी संस्था सोशलिस्ट उपराज्यों के संघ की सोवियट-कांग्रेस थी। इसमें नगर या फैक्टरी सोवियटों के चुने हुये प्रतिनिधि सदस्य थे जो २५००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि के हिसाब से चुने जाते थे। इनके अतिरिक्त प्रादेशिक सोवियटें (Regional Soviets) भी प्रति १,२५,००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि चुनकर इस कांग्रेस में भेजती थीं। यह कांग्रेस रूसी संघ में सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था थी। इसमें लगभग ४००० सदस्य बैठते थे।

इसकी बैठक साल में एक बार हुआ करती थी। यह संघ की कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन कर उसका संगठन करती जिससे यह कौंसिल विधान मंडल का कार्य करती थी। इस कौंसिल में ४७२ सदस्य सातों उपराज्यों के अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने हुये होते थे। कांग्रेस एक कौंसिल आफ नेशनलिटीज़ (Council of Nationalities) या उपराष्ट्र परिषद् भी चुन कर संगठित करती थी। इस कौंसिल के सदस्यों की संख्या १३८ थी जो इस हिसाब से निर्वाचित होते थे कि प्रत्येक स्वतंत्र उपराज्य के लिये ५ सदस्य और प्रत्येक स्वाधीन प्रदेश (Region) के लिये १ सदस्य हो। ये दोनों कौंसिलें मिलकर संघ की सैन्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी (Central Executive Committee) अर्थात् केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति कहलाती थी। जब कांग्रेस की बैठक नहीं होती थी तब सोवियट रूस की यह ही सर्वाधिकारी निर्वन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी सत्ताधारी संस्था थी। इसकी बैठकें तीन मास में एक बार होतीं थीं। बैठक न होने के समय प्रैसीडियम (Presidium) इसके कार्यों का संचालन करती थी। प्रैसीडियम में २१ सदस्य थे। जिन शक्तियों को केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति प्रयोग कर सकती थी वे सब प्रैसीडियम को भी मिली हुई थीं। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति एक लोक प्रवन्धक-परिषद् का संगठन भी करती थी जिसमें शासन विभागों के १७ अध्यक्ष होते थे। यह लोक-प्रबन्धक-परिषद् (Council of People's Commissaries) ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् जैसी संस्था थी। इसमें जो शासनाध्यक्ष होते थे उनको दो सहायक और मिले होते थे। परराष्ट्र विभाग, युद्ध, ग्रह, विदेशी व्यापार, कृषि, स्थल-यातायात, जल-यातायात डाक व तार, मजदूर व कृपकों का निरीक्षण, काष्ठ-उद्योग, सरकारी फार्म, अर्थ-विभाग इन सब के अध्यक्ष इस परिषद् में सदस्य होते थे। राजकीय योजना कमीशन (State Planning Commission) का प्रेसीडेंट भी इसका सदस्य था। परिषद् में एक पेसीडेंट और एक उप-प्रेसीडेंट था। स्टैलिन इसी परिषद् का सदस्य था।

अतएव अप्रत्यक्ष चुनाव के टेढे-मेढे ढंग से चुनी हुई प्रैसीडियम व प्रवन्धक परिषद् (People's Commissaries) ये दो संस्थायें थीं जो रूस के प्रशासन का संचालन करती थीं। संघ सरकार के कर्तव्यों में विदेशी व्यापार, परराष्ट्र सम्बन्ध, सुरक्षा, राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निश्चय करना, घरेलू व्यापार, कर लगाना, मजदूरी और उसके सम्बन्ध में कानून और सरकार की सामान्य देखभाल ये सब शामिल थे[1]।

---

१ ए गाइड टु मार्डन पौलिटिक्स, पृ० २२८।

सोवियट न्यायमण्डल

सोवियट रूस के सातों उपराज्यों में न्यायमण्डल की एकरूपता थी। इसके संगठन का उद्देश्य इसको लोक बुद्धि-गम्य और ऐसा बनाना था जिससे सब उस तक पहुँच कर उसका उपयोग कर सकें। हर उपराज्य (Republic) में उपराज्य की कांग्रेस के द्वारा किये हुये कुछ परिवर्तनों के साथ एक सा ही न्यायसंगठन था। इस संगठन में एक सर्वोच्च न्यायालय और अनेक प्रादेशिक (Regional Courts) और लोक-न्यायलय (Peoples' Court) होते थे।

छोटे न्यायालय—"न्यायालय की सबसे प्राथमिक इकाई लोक-न्यायालय (Peoples' Courts) थी इसमें एक न्यायाधीश और उसके दो सहायक होते थे। इन सबको समान अधिकार मिले हुये थे। सहायक न्यायाधीश का चुनाव ग्राम और फैक्टरी सोवियट द्वारा चुने हुये व्यक्तियों की सूची में से प्रदेश (Region) की कार्यपालिका समिति करती थी। वह किसी वर्ष में लगातार छः दिन से अधिक न कार्य करता था। न्यायाधीश की नियुक्ति प्रादेशिक कार्यपालिका समिति एक वर्ष के लिये करती थी।

प्रादेशिक न्यायालय—हर प्रादेशिक न्यायालय में प्रादेशिक कार्य-कारिणी समिति से नियुक्त कई न्यायाधीश होते थे। यह प्रादेशिक न्यायालय लोक-न्यायालयों के काम की देखभाल करता था और उन निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था। बड़े मुकदमों में इसे प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त था।

सर्वोच्च न्यायालय—प्रादेशिक न्यायालय के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय था जिसके न्यायधीश उपराज्य (Republic) की कार्यपालिका समिति द्वारा नियुक्त होते थे। उपराज्य में (Republic) सर्वोच्च न्यायालय ही उपराज्य का अन्तिम न्यायालय था। यह उन मुकदमों को सुनकर निबटाता था जो प्रादेशिक न्यायालय इसके पास भेजते थे। जिन मुकदमों को उपराज्य की कार्यपालिका समिति, या उपराज्य का अभियोक्ता (Prosecutor) विशेष महत्वपूर्ण होने के कारण इस न्यायालय में भेजता था उनमें इस न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार था। (Republican) सरकार के सदस्यों के अपराधों वाले मुकदमे भी इसी सर्वोच्च न्यायालय में प्रारम्भ होते थे।

सोवियट कानून में केवल सामान्य आदेश होते हैं जिनके अनुसार न्याय का निर्णय करना पड़ता है। कानून के प्रत्येक शब्द का पालन नहीं

करना पड़ता । सोवियट सरकार के विरुद्ध किये गये अपराधों का दण्ड बड़ा कठिन दिया जाता था । काम से बचने या आर्थिक कानूनों को तोड़ने के साधारण अपराधों के लिये दल का दण्ड दिया जाता था । ऐसे अपराधों के लिये एक से दस वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया जाता था । राज-विद्रोह के लिये मृत्यु सब से ऊंचा दण्ड था । 'सोवियट न्याय प्रणाली का उद्देश्य अपराधी को सुधारना और अपराध करने से रोकना है न कि निरुद्देश्य सताना ।"

संघ का सर्वोच्च न्यायालय—केन्द्रीय कार्यपालिका समिति से लगा हुआ केन्द्रीय सर्वोच्च न्यायालय था । यह अन्य संघ-शासनों के समान स्वतन्त्र न्यायालय न होता था । इसमें एक सभापति, एक उपसभापति और ३० न्यायाधीश होते थे जो सब प्रैसीडीयम द्वारा नियुक्त होते थे । यह न्यायालय तीन विभागों में विभक्त था । दीवानी विभाग (Civil), अपराध-विभाग (Criminal) और सेना विभाग (Military) संघ-सरकार के सदस्यों के अपराधों की यह न्यायालय परीक्षा करता था । घटक उपराज्यों के बीच झगड़ों की परीक्षा कर संघ की कार्यपालिका समिति से उनके विरुद्ध यह प्रार्थना कर सकता था कि वे उपराज्य संघ के सामान्य-निर्बन्धों के विरुद्ध आचरण करते हैं या दूसरे उपराज्य को हानि पहुँचाते हैं । संघ और उपराज्यों की सरकारों के आदेशों के वैध-अवैध होने के सम्बन्ध में पूछे जाने पर यह न्यायालय केन्द्रीय कार्यपालिका समिति को अपनी राय भी देता था । इन न्यायालयों के अतिरिक्त विशेष प्रश्नों के लिये अन्य न्यायालय भी सोवियट संघ में बने हुए थे ।

सोवियट शासन विधान का पुनर्निर्माण

मार्क्स के सिद्धान्तों के इस व्यवहारिक प्रयोग से यह मालूम हो गया कि इस समाजवाद की आदर्श-विचारधारा को व्यावहारिकता में लाना बड़ा कठिन है । अतएव शासन-विधान में कई संशोधन किये गये जिनमें से मुख्य ये हैं :

सुदूर पूर्वीय प्रदेशों को जो बड़े निर्धन थे कर से मुक्त कर दिया गया । (१९३३)

मजदूरी उत्पादन के परिमाण व गुण, दोनों के आधार पर निश्चित की जाने लगी । (१९३४)

बालकों को नागरिक शिक्षा व उनके राजनीतिक शिक्षण के सम्बन्ध में जो नियम थे उनमें संशोधन कर दिया गया । (१९३४)

राशन प्रणाली तोड़ दी गई। (१९३४)

सामूहिक कृषि का कानून बदल दिया गया और वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार विस्तृत कर दिया गया। (१९३४)

शिक्षा प्रणाली का पुनर्संगठन करने और शिक्षालयों में अनुशासन की मात्रा बढ़ाने के लिए कानून बनाये गये।

एक नये शासन-विधान के विकास का प्रयत्न—उपर्युक्त परिवर्तनों से जिस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है उसकी प्रेरणा से सन् १९३५ में एक समिति बनाई गई जिसका स्टैलिन सभापति था। अन्य प्रमुख सदस्यों में लिट्वीनौव, रैडक, वाईसिस्की, वौरोशिलौव, मौलोटोव, बुखारिन, अकौजोव आदि थे। इस समिति को शासन-विधान बनाने का काम सौंपा गया। एक वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक मसविदा तैयार हुआ जो केन्द्रीय कार्यपालिका समिति से स्वीकार होकर जनमत के जानने के लिये १२ जून सन् १९३६ को प्रकाशित किया गया। अखिल सोवियट कांग्रेस ने फिर इस पर विचार किया और ५ दिसम्बर सन् १९३६ को इसे पास किया। यह शासन-विधान सन् १९३७ में लागू किया गया।

काँग्रेस के विचारार्थ इस संविधान के मसविदे को उपस्थित करते हुये स्टैलिन ने कहा कि इसकी उत्पत्ति पूंजी पद्धति की समाप्ति और सोवियट रूस में समाजवादी पद्धति की विजय के फलस्वरूप हुई है। नये संविधान का प्रमुख आधार समाजवाद के सिद्धान्त हैं जिसके प्रधान-अवलम्बों को प्राप्त किया जा चुका है, जैसे—भूमि, वन, कारखानों, मशीनों व अन्य उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व, प्रपीड़कों और उत्पीड़कों का विनाश, बहुसंख्यकों की निर्धनता व अल्पसंख्यकों की विलासिता का निवारण, बेकारी का दूर करना, प्रत्येक स्वस्थ शरीर वाले के लिये काम को एक कर्तव्य व सम्मान का स्थान देना"। स्टैलिन ने कहा कि उस मसविदे जो में मार्ग चला जा चुका है और जो सफलता प्राप्त की जा चुकी है उसका कुल योग व सारांश इसमें दिया हुआ है। अर्थात् जो व्यवहार में सत्य है उसे अधिनियम का रूप दिया जा रहा है।

सन् १९३६ का नया शासन-विधान

शासन-विधान के प्रारम्भ में समाज का संगठन दिया हुआ है और कहा गया है कि सोवियट रूस किसानों और मजदूरों का समाजवादी राज्य है जिसका राजनैतिक आधार श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सोवियटें (समितियाँ)

है। "सोवियट रूस में सारी शक्ति नगरों और ग्रामों के श्रमिकों की है......।" सामाजिक स्वामित्व की व्याख्या में कहा गया है कि यह दो प्रकार का है या तो राज्य का स्वामित्व या सामूहिक फार्मों का स्वामित्व। सारी भूमि, खनिज पदार्थ, वन, कारखाने, रेलें, स्थल और जल यातायात के साधन व इनके अतिरिक्त सब उद्योग व संस्थायें राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिये गये। राज्य की सम्पत्ति का अर्थ सारे राष्ट्र की सम्पत्ति से है।

कुछ वैयक्तिक सम्पत्ति मान्य की गई—सामूहिक कृषि-भूमि उनकी संस्थाओं के लिये बिना कुछ मूल्य दिये हुये दे दी गई। सामूहिक-कृषि संस्था (Collective Farm) के प्रत्येक गृहस्थी को अपने प्रयोग के लिये घर से लगी हुई जमीन का टुकड़ा और अन्य आवश्यक वस्तुयें जैसे रहने का मकान, पशु, मुर्गियाँ, व अन्य खेती करने का सामान दे दिया गया। उन किसानों व कारीगरों की आय व वैयक्तिक सम्पत्ति उनके लिये कानून से सुरक्षित कर दी गयी जो केवल अपने परिश्रम से कमाई गई हो और दूसरों की मेहनत से प्राप्त न की गई हो। नागरिकों की आय, उनकी बचत, रहने का मकान व अन्य वस्तुयें, घर की चीजें, दिन प्रतिदिन के जीवन यापन की आवश्यक वस्तुयें आदि को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति मानकर रखने का अधिकार कानून से दे दिया गया है। इस वैयक्तिक सम्पत्ति का पिता से प्राप्त करने का अधिकार भी कानून से मान्य कर दिया गया है।

नागरिकों के मौलिक अधिकार—नये शासन-विधान की एक विशेषता यह है कि इसके दसवें अध्याय में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर दी गई। मौलिक अधिकार ये हैं:—(१) काम पाने का अधिकार जिसका आवश्यक प्रवन्ध राष्ट्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था, सोवियट समाज के बढ़ते हुये उत्पादन, आर्थिक संकटों के अभाव और बेकारी के निवारण द्वारा किया गया है; (२) विश्राम का अधिकार जिसके लिये अधिकतर काम करने वालों के काम के घण्टे घटा कर सात घण्टे कर दिये गये हैं। कर्मचारियों व मजदूरों को सवेतन वार्षिक छुट्टी दी जाती है, और स्वास्थ्य गृहों, विश्राम गृहों और चिकित्सालयों का प्रवन्ध है; (६) वृद्धा-वस्था, रोगावस्था या काम करने की सामर्थहीनता की अवस्था में जीवन यापन की उचित व्यवस्था। इसके लिये श्रमिकों का राज्य की ओर से बीमा की व्यवस्था है जिसका व्यय सरकार अपने ऊपर लेती है, निःशुल्क चिकित्सा की जाती है और अनेक स्वास्थ्य सुधारने के स्थानों का प्रबन्ध है; (४) शिक्षा का अधिकार। इसके लिए निःशुल्क सार्वजनिक प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा, राज्य

की ओर से माध्यमिक शिक्षालयों के बहु-संख्यक विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियाँ, निःशुल्क उच्च शिक्षा, शिक्षालयों में मातृभाषा में शिक्षण, निःशुल्क व्यवसायी शिक्षा और फैक्टरियों, फार्मों, ट्रैक्टर स्टेशनों पर काम करने वालों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा, इन सबका प्रबन्ध किया जाता है।

अधिकारों के उपभोग में स्त्री और पुरुष में भेद नहीं किया जाता। पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी काम करने, विश्राम, शिक्षा, आदि का अधिकार है। मां व बच्चे की आवश्यक देख भाल, गर्भावस्था में सवेतन छुट्टी, अनेक जच्चा-घरों का प्रबन्ध व छोटे बालकों के लिए रहने, खेलने व पढ़ने का आयोजन ये सब होता है।

जातीयता या राष्ट्रीयता के आधार पर, आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक, व सामाजिक क्षेत्र में व नागरिक अधिकारों के उपभोग में अन्तर नहीं किया जाता है।

आत्मिक स्वतंत्रता सुरक्षित कर दी गई है। अतएव रूस में धर्ममठ (Church) राज्य से पृथक है और शिक्षालय भी धर्ममठ से पृथक हैं।

नागरिकों को वक्तृता देने, एकत्र होने, संस्था बनाने, सड़कों पर जलूस निकालने और प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। इसके साथ साथ समाचार छपवाकर प्रकाशित करने की भी स्वतंत्रता है। इन सब के लिये मजदूरों और उनकी संस्थाओं को छापने की मशीनें, कागज, मकान, सड़कें, बातचीत करने के साधन और अन्य सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं।

किसी भी व्यक्ति के शरीर को व्यर्थ ही कष्ट नहीं पहुँचाया जा सकता। अभियोक्ता की आज्ञा से या किसी न्यायालय के निर्णयानुसार ही कोई भी व्यक्ति पकड़ कर बन्दी बनाया जा सकता है अन्यथा नहीं। कानून से व्यक्तियों के रहने का स्थान सुरक्षित स्थान माना गया है जहाँ हर कोई बिना मकान के स्वामी की इच्छा के नहीं जा सकता। व्यक्तियों का पत्रव्यवहार भी इसी प्रकार सुरक्षित रहता है। पत्रों को खोल कर उनका भेद खोलना अवैध है।

सोवियट नागरिक को (१) संविधान के अनुसार कार्य करना पड़ता है। निर्बन्धों का पालन, काम करने के सम्बन्ध में अनुशासन मानना अपने सामाजिक कर्तव्यों को सच्चे मन से पूरा करना और समाजवादी जनसंगठन के नियमों का पालन करना, ये सब नागरिक को करने पड़ते हैं। (२) उसे सार्वजनिक धन, सम्पत्ति की रक्षा समाजवादी प्रणाली का पुनीत अलंघ्य

आधार मान कर और श्रमिकों के पूर्ण सांस्कृतिक जीवन का स्रोत समझ कर करनी पड़ती है।

सैनिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है क्योंकि देश की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है। देश के प्रति विद्रोह, शपथ का उल्लंघन, शत्रु से जाकर मिल जाना, राज्य की सैन्य शक्ति को हानि पहुँचाना, विदेशी राज्य के लिए गुप्तचर का कार्य करना, इन सब के लिए कड़े से कड़े दण्ड का विधान है।

संघ का संगठन

संविधान के दूसरे अध्याय में राज्य का संगठन (Organisation of the State) दिया हुआ है।

केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ—ग्यारह सोवियट समाजवादी प्रजातन्त्र राज्यों के मिलाने से संघ का निर्माण हुआ है। इन सब राज्यों को एक समान अधिकार प्राप्त हैं। राज्यचिन्ह में हँसिया और हथौड़े का चित्र है। राज्य की राजधानी मास्को है। संविधान में १४ वें अनुच्छेद के अनुसार निम्नलिखित शक्तियां संघ को दी गई हैं :—

(क) अन्तःराष्ट्रीय मामलों में संघ का प्रतिनिधित्व करना, पर-राष्ट्रों से सन्धि करना और उनको पूरा करना और संघ, उपराज्यों व विदेशी राज्यों के बीच सम्बन्धों के बारे में सामान्य प्रणाली निश्चित करना।

(ख) युद्ध और शान्ति सम्बन्धी प्रश्न।

(ग) सोवियट रूस में नये प्रजातंत्रात्मक उपराज्यों को शामिल करना।

(घ) संघ के शासन-विधान के पालन की देखभाल करना जिससे उसके अनुसार ही सब कार्य हों।

(ङ) उपराज्यों की सीमाओं को परिवर्तन करने की स्वीकृति देना।

(च) उपराज्यों में नये स्वाधीन प्रदेशों, प्रान्तों व प्रजातंत्रों (Republics) के बनने की स्वीकृति देना।

(छ) सोवियट रूस की सुरक्षा का प्रबंध, उसकी सैन्य शक्ति का संचालन और उपराज्यों में सैन्य शक्ति का संगठन करने के लिये निर्देशक सिद्धांतों का स्थिर करना।

(ज) राज्य के एकाधिकार के आधार पर वैदेशिक व्यापार।

(झ) राज्य की सुरक्षा का बचाव।

(ञ) सोवियट रूस की आर्थिक योजनाओं को कार्यान्वित करना।

(ट) सारे संघ का एक बजट (आय-व्यय का लेख) बनाकर स्वीकार करना। उपराज्यों व स्थानीय संगठनों के बजट में करों व आय के साधनों की स्वीकृति देना।

(ठ) उद्योगों, कृषि-सम्बन्धी संस्थाओं, बैंकों और सारे सोवियट रूस के लिये महत्वपूर्ण व्यापार-योजनाओं का प्रबन्ध।

(ड) यातायात के साधन, डाक व तार आदि का प्रबन्ध।

(ढ) मुद्रा व उधार-प्रणाली का संचालन।

(ण) राजकीय बीमा का प्रबन्ध।

(त) ऋण लेना या देना।

(थ) भूमि, जंगल, खान, जल आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में मूल सिद्धांतों को स्थिर करना।

(द) शिक्षा के सम्बन्ध में व सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मूल सिद्धांतों को स्थिर करना।

(ध) देश के लिये हिसाब किताब रखने की एक ही प्रणाली का आयोजन करना।

(न) श्रम के सम्बन्ध में कानून के आधारभूत सिद्धांतों को निश्चित करना।

(प) न्याय-संगठन व न्याय-प्रणाली के सम्बन्ध में कानून बनाना।

(फ) नागरिकता और विदेशियों के सम्बन्ध में कानून बनाना।

(ब) सारे संघ के बन्दियों को मुक्त करने का आदेश देना।

१४ वें अनुच्छेद में वर्णित शक्तियों को छोड़कर शेष शक्तियां संघ के उपराज्यों की हैं। संघ उनमें उपराज्यों की सत्ता की रक्षा करता है। प्रत्येक उपराज्य का शासन-विधान पृथक पृथक है क्योंकि वह अपनी निजी विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया है किन्तु उसका रूप संघ शासन विधान के रूप के समान ही है। सिद्धांततः प्रत्येक उपराज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार है। किसी भी उपराज्य के प्रदेश में उसकी सम्मति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

संघ के सारे निवासी संघ के नागरिक हैं। संघ के अधिनियम सब उपराज्यों में लागू रहते हैं और संघ अधिनियम में टक्कर होने पर संघ अधिनियम ही मान्य होता है।

संघ सरकार की बनावट

सुप्रीम कौंसिल—सोवियट रूस में राज्य शक्ति की सब से बड़ी संस्था सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) है जो ६४वें अनुच्छेद में दी हुई सारी शक्तियों के सम्बन्ध में अधिनियम बना सकती है किन्तु ऐसा करने में वह प्रेसीडियम (Presidium) कौंसिल ऑफ पीपल्स कमीसार्स (Council of Peoples' Commissars) या लोक प्रबन्धक परिषद् और पीपल्स कमीसरियट्स (Peoples' Commissariats) अर्थात् शासन विभागों की शक्तियों में हस्त क्षेप नहीं कर सकती। यह सुप्रीम कौंसिल द्विगृही है, एक सदन का नाम संघ सोवियट या कौंसिल है और दूसरे सदन का नाम नेशनलिटीज सोवियट है।

विधान मण्डल

प्रथम सदन या लोकसभा—संघ सोवियट या संघ-कौंसिल निचला सदन है जिसमें प्रजा द्वारा प्रत्यक्ष प्रणाली से चुने हुये व्यक्ति सदस्य होते हैं। इन प्रतिनिधियों को नागरिक स्वयं चुनते हैं। प्रति ३००,००० जनसंख्या के लिये एक प्रतिनिधि चुना जाता है चुनाव के लिये सारा देश निर्वाचनक्षेत्र में बंटा हुआ है।

सोवियट रूस के सब नागरिक जिनकी आयु १८ वर्ष की हो प्रतिनिधियों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं और स्वयं प्रतिनिधि निर्वाचित होने के लिये खड़े हो सकते हैं। मताधिकार के लिये किसी विशेष जाती, धर्म या राष्ट्र निष्ठा, शिक्षा का स्तर, सम्पत्ति, स्वामित्व आदि का ध्यान नहीं रखा जाता सब को मत देने का अधिकार रहता है चाहे कोई विदेशी ही क्यों न हो। केवल जन्माद रोग से पीड़ित व्यक्ति या वे जिनको किसी न्यायालय ने मताधिकार से वंचित कर दिया है, मत नहीं दे सकते। स्त्रियों को भी मत देने का अधिकार है, वे प्रतिनिधि भी चुनी जा सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार होता है। सैनिक भी मत दे सकते हैं। और प्रतिनिधि बन सकते हैं। गुप्त शलाका द्वारा मत लिया जाता है। निर्वाचन-क्षेत्रों में उम्मेदवारों को श्रमिकों की संस्थायें, कम्यूनिस्ट पार्टी के संगठन, व्यवसायी संघ, सहकारी समितियां, युवक संघ और सांस्कृतिक संस्थायें मनोनीति करती है। कौंसिल चार वर्ष के लिये चुनी जाती है चुने हुये प्रतिनिधि को अपने काम के बारे में अपने निर्वाचकों को संतुष्ट करना पड़ता है। अधिनियम के अनुसार स्थिर किये हुए तरीके पर निर्वाचकों के बहुमत से किसी भी प्रतिनिधि को

वापस बुलाया जा सकता है। नये संविधान के अन्तर्गत कौंसिल का निर्वाचन १२ दिसम्बर सन् १९३७ को हुआ। उस समय ९१,११३, १३५ व्यक्तियों ने मतदान में भाग लिया। चुने हुए प्रतिनिधियों में सोवियट संघ के प्रत्येक प्रदेश के कुछ निवासी अवश्य थे। एक ओर उत्तरी प्रदेश के एस्कीमो थे तो दूसरी ओर दक्षिण के कौकेशिया निवासी भी थे। ये प्रतिनिधि लगभग १०० भाषाओं के बोलने वाले और रहन सहन, संस्कृति आदि में एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। इस भिन्नता का कारण सोवियट रूस के विशाल देश की विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां ही हैं।

द्वितीय सदन—नैशनलीटीज सोवियट (या कौंसिल) अर्थात् उपराष्ट्र-परिषद् कहलाता है। इसके सदस्य भी सीधे नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक संघ प्रजातंत्र (Union Republic) अर्थात् उपराज्य को २५, स्वाधीन प्रदेश को ११, स्वाधीन जिले को ५ और राष्ट्रीय जिले को १ प्रतिनिधि चुन कर भेजने का अधिकार है। संघ-सोवियट के साथ-साथ ही यह उपराष्ट्र-परिषद् भी चार वर्ष के लिए चुनी जाती है। निर्वाचन पद्धति भी प्रथम सदन की निर्वाचन पद्धति के समान है। यहां यह बतलाना आवश्यक है कि सोवियट रूस के कई उपराज्यों में अनेक स्वाधीन प्रजातंत्र, प्रांत, और प्रदेश (Autonomous Republics, Provinces and Regions) होते हैं। केवल चार उपराज्यों में ऐसी स्वाधीन इकाइयां नहीं हैं।

विधानमंडल की कार्यवाही—दोनों सदनों में से प्रत्येक अपनी कार्यपद्धति निश्चित कर उसके अनुसार अपना कार्य करता है। सदन में एक सभापति और दो उपसभापति होते हैं। प्रत्येक सदन अपने सदस्यों के प्रतिनिधि बनने के अधिकार की परीक्षा भी करता है। दोनों सदनों को अधिनियम बनाने का समान अधिकार है। किसी भी सदन में नई योजना पर विचार आरम्भ हो सकता है। जब दोनों सदन साधारण बहुमत से किसी विधेयक को स्वीकार कर लेते हैं तो वह स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार स्वीकृत हो जाने के पश्चात् वह अधिनियम सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) की प्रैसीडियम के अध्यक्ष व सेक्रेटरी के हस्ताक्षर सहित संघ की विभिन्न भाषाओं म छाप कर प्रकाशित कर दिया जाता है।

दोनों सदनों के मतभेदों को सुलझाना—यदि दोनों सदनों में मतभेद होने से कोई विधेयक दोनों में स्वीकार नहीं हो पाता तो वह एक समझौता-कमीशन के सुपुर्द कर दिया जाता है। यह कमीशन पक्ष प्रणाली के अनुसार ही संगठित होता है, अर्थात् प्रत्येक राजनैतिक पक्ष के प्रतिनिधि अपनी अपनी

संख्या के अनुपात से इसके सदस्य बनाये जाते हैं। यदि कमीशन (Commission) किसी समझौते पर पहुँचने में असफल रहे या यदि इसका निर्णय किसी सदन को अमान्य हो तो सदनों का पुनर्विचार करने के लिये एक बार फिर अवसर दिया जाता है। यदि फिर भी वे सहमत नहीं होते तो सुप्रीम कौंसिल का अर्थात् दोनों सदनों का विघटन कर दिया जाता है और नया निर्वाचन किया जाता है।

सुप्रीम कौंसिल की प्रेसीडियम और कौंसिल आफ पीपल्स कमिसार्स (लोक प्रवन्धक परिषद्) को चुनने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है। वर्ष में दो बार सदनों की साधारण बैठकें होती हैं किन्तु प्रेसीडियम स्वयं या संघ-उपराज्यों की प्रार्थना पर सुप्रीम कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुला सकती है। चार वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या विघटन होने पर दो मास के भीतर ही नये निर्वाचन का होना आवश्यक है और निर्वाचन होने से एक मास के भीतर ही नये सदनों की प्रथम बैठक होनी चाहिए।

कार्यपालिका

प्रेसीडियम—सुप्रीम कौंसिल की प्रेसीडियम में ३३ सदस्य हैं। प्रेसीडियम अपने सब कार्यों के लिए सुप्रीम कौंसिल को उत्तरदायी है। शासन-विधान के ४९ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रेसीडियम निम्नलिखित काम करती है:—(क) सोवियट रूस की सुप्रीम कौंसिल की बैठकें बुलाना; (ख) सोवियट रूस के अधिनियम की व्याख्या करना और आदेश देना, (ग) किसी उपराज्य की माँग पर या स्वेच्छा से लोक निर्णय (Referendum) का प्रबन्ध करना (घ) जब संघ की या उपराज्यों की कौंसिल आफ पीपल्स कमीसार्स के निर्णय या आज्ञायें अधिनियमों के विरुद्ध हों तो उनको रद्द करना, (ङ) सुप्रीम कौंसिल के दो सत्रों के बीच के समय में कौंसिल का कार्य करना, (च) पीपल्स कमीसार्स (Peoples' Commissars) के सभापति के सुझाव पर संघ के किसी पीपल्स कमीसार को अर्थात् लोक प्रबन्ध को नियुक्त करना जिसकी अन्तिम स्वीकृति सुप्रीम कौंसिल देती है, (छ) सम्मानसूचक नाम या पुरस्कार देना, (ज) क्षमादान देना, (झ) सेना के उच्चपदाधिकारियों को नियुक्त करना या पदच्युत करना, (ञ) जब सुप्रीम कौंसिल की बैठक न हो रही हो उस समय यदि संघ पर बाहरी आक्रमण हो या किसी दूसरे पर आक्रमण कर पारस्परिक रक्षा के हेतु की गई किसी अंतर्राष्ट्रीय संधि के अन्तर्गत कोई कार्यवाही करनी हो तो युद्ध की स्थिति की घोषणा करना (ट) सेना में भर्ती

के लिये घोषणा करना, (ठ) अन्तर्राष्ट्रीय संधियों का अनुसमर्थन करना, (ड) दूसरे देशों में रूस के राजदूतों की नियुक्ति करना या उन्हें वापिस बुलाना, और (ढ) विदेशी राजदूतों का स्वागत करना व उनको आवश्यकता पड़ने पर वापिस भेजने का प्रबन्ध करना आदि।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडियम की शक्तियाँ वे हैं जो दूसरे राज्यों में कुछ राज्याध्यक्ष को और कुछ मंत्रिपरिषद् को मिली होती हैं।

कौंसिल आफ कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक परिषद्—सोवियट रूस की सर्वोच्च प्रशासन-शक्ति कौंसिल (सोवियट) आफ पीपल्स कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक-परिषद् को मिली हुई है। यह परिषद् संघ की सुप्रीम कौंसिल के सामने अपनी कार्यवाही का ब्यौरा रखती है। जब कौंसिल की बैठक नहीं होती है उस समय यह प्रेसीडियम के आधीन रहती है। अधिनियमों के आधार पर व उनके प्रावधानों के अनुसार यह परिषद् अपने आदेश निकालती है जो सारे संघ में लागू होते हैं। इन आदेशों के पालन करने का भी प्रबन्ध यह परिषद् करती है। शासन-विधान के ६४ वें अनुच्छेद के अनुसार इस परिषद् के निम्नलिखित कर्तव्य हैं:—(१) सोवियट रूस के उपराज्यों के शासन विभागों (Peoples' Commissariats) अन्य आर्थिक या सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यों का संचालन करना व उनमें सामंजस्य लाना। (२) राष्ट्र की आर्थिक योजनाओं व आय-व्यय के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करना और मुद्रा-व्यवस्था को शक्तिपूर्ण बनाना, (३) लोक व्यवस्था ठीक रखना, राज्य के हितों की रक्षा करना और नागरिकों के स्वत्वों को बचाना, (४) सोवियट रूस के पर-राष्ट्रीय सम्बन्धों को निश्चित कर उनको व्यवहार रूप देना (५) संघ-सैन्य बल के सामान्य-संगठन की देखभाल व नागरिकों की सैन्यसेवा का वार्षिक परिमाण निश्चित करना और (६) आवश्यक होने पर, आर्थिक, सांस्कृतिक या सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिये विशेष समितियाँ बनाना।

यह परिषद् उपराज्यों की प्रबन्धक परिषदों के निर्णयों व आदेशों को स्थगित कर सकती है और उनके आर्डीनेंसों (अध्यादेशों) को रद्द कर सकती है, यदि वे प्रशासन व आर्थिक प्रबन्ध के उन विभागों से सम्बन्धित हों जो संघ के अधिकार क्षेत्र में आते हों।

इसकी बनावट—सुप्रीम कौंसिल इसका संघठन करती है। इसमें परिषद् का एक सभापति, व एक उप-सभापति होता है। इनके अतिरिक्त सोवियट रूस के प्लानिंग (योजना) कमीशन का सभापति, सोवियट कन्ट्रोल

कमीशन का सभापति, सोवियट के शासन प्रबन्धक (Commissars), भण्डारों की समिति का सभापति, कला-समिति का सभापति और उच्च-समिति का प्रधान, ये सब सदस्य होते हैं। इन सबकी कुल संख्या १६ जनवरी सन् १९३८ को २८ थी।

परिषद् कैसे कार्य करती है—सोवियट रूस की सरकार से दोनों सदनों में प्रश्न पूछे जा सकते हैं और इन प्रश्नों का तत्सम्बन्धी कमीसार उत्तर देता है। यह उत्तर लिखित हो या मौखिक और प्रश्न करने से तीन दिन के समय के भीतर मिलना चाहिए। कमीसार अर्थात् लोक प्रबन्धकर्ता अपने आधीन शासन विभाग का संचालन करते हैं। वे इन विभागों से सम्बन्धित आदेश निकालने और इन आदेशों को कार्यान्वित करने का आयोजन करते हैं। उनके ऊपर केवल राष्ट्र के अधिनियमों और लोक-प्रबन्धक परिषद् की आज्ञाओं का ही प्रतिबन्ध रहता है।

सोवियट रूस में आगे वर्णित आठ संघ-शासन विभाग हैं। (All Union Peoples' Commissariats) हैः सुरक्षा, वैदेशिक मामले, वैदेशिक व्यापार, रेल, जल मार्ग, तार आदि भारी उद्योग और सुरक्षा-उद्योग।

सोवियट रूस में न्यायपालिका

न्याय व्यवस्था सारे सोवियट रूस में एक सी है। सर्वोच्च न्यायालय सोवियट रूस की सुप्रीम कोर्ट है। इसके आधीन उपराज्यों की सुप्रीम कोर्ट, प्रान्तीय और प्रादेशिक न्यायालय, स्वाधीन प्रजातंत्रों व स्वाधीन प्रदेशों के न्यायालय, जिला अदालतें, विशेष अदालतें, (जिनको सोवियट रूस की सुप्रीम कौंसिल स्थापित करती है) और लोक-न्यायालय (Peoples' Courts) हैं।

सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) सुप्रीम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय संघ व उपराज्यों के सारी न्यायपालिका के कार्य की देखभाल करता है इसके व विशेष न्यायालयों के न्यायाधीशों को सुप्रीम कौंसिल पांच वर्ष के लिये चुनती है। इसी प्रकार उपराज्यों की सुप्रीम कौंसिल वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के न्यायाधीशों को पाँच वर्ष के लिये चुनती है। स्वाधीन प्रजातंत्र (Autonomouse Republic)[1] इकाइयों में भी एक

[1] यह Union Republic से भिन्न होती है।

अपना सर्वोच्च न्यायालय होता है। जिसके न्यायधीश वहाँ की सुप्रीम कौंसिल द्वारा पांच वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं।

प्राँतीय और प्रादेशिक सोवियट या स्वाधीन प्रादेशिक श्रमिक प्रतिनिधियों की सोवियट प्रान्तीय या प्रादेशिक न्यायालयों, स्वाधीन प्रदेशों के व जिले के न्यायालयों का निर्वाचन करती हैं। लोक-न्यायालय के न्यायाधीशों को रेग्रोन (Rayon) के निवासी स्वयं तीन वर्ष के लिये चुनते हैं। निर्वाचकों में सब को समान अधिकार होते हैं और मतदान गुप्त रीति से होता है।

न्यायालयों की कार्यवही उस प्रदेश की भाषा में होती है जिसमें वह न्यायालय स्थित है। यदि कोई व्यक्ति उस भाषा से परिचित नहीं होता तो उसे एक अनुवादक की सहायता दी जाती है। वह स्वयं अपनी भाषा में ही न्यायालय से अपनी राय कह सकता है। सब न्यायालयों की कार्यवाही खुले ढंग पर होती है। अपराध लगाये हुये व्यक्ति को अपना बचाव करने का पूर्ण अधिकार रहता है। कानून से निश्चित कुछ मामलों में छोड़ कर सब मुकदमों में पंचों की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश अधिनियमों के आधीन रहते हुये सब प्रकार से तंत्र रहित हैं।

प्रत्येक (उपराज्य संघ, प्रदेश आदि की) सुप्रीम कौंसिल एक न्यायवादी (Attorney) नियुक्त करती है जिसका प्रमुख कर्तव्य यह होता है कि शासन विभागों द्वारा कानूनों को कार्यान्वित किये जाने की देखभाल करे। सब न्यायवादी सोवियट रूस के महा-न्यायवादी (Attorney General) के नियंत्रण में अवश्य हैं किन्तु अन्यथा वे स्वतंत्र रूप से अपना कार्य करते हैं।

इकाई-राज्यों की सरकारें

सोवियट रूस के १६ इकाई या घटक-राज्यों के नाम, उनकी राजधानियाँ, क्षेत्रफल और जनसंख्या नीचे दी हुई सारिणी में मिलेगी।

घटक राज्य का नाम व उसकी राजधानी		वर्ग मीलों में क्षेत्रफल	जन संख्या जनवरी १७, १९३९
रूस का सोवियट संघात्मक समाजवादी प्रजा तंत्र			
(U. S. S. R.) ,,	(मौस्को)	६,३६८,७६८	१०९,२७९,५००
यूक्रेन, एस, एस, आर	(कीव)	१७०,९९८	३८,५००,०००
बाईलोरन्शियन ,,	(मिस्क)	४६०,२२	१०,४००,०००

एजरविजान	”	(बाकू)	३२,९५६	३,२०९,७२७
जार्जियन	”	(टिफलिस)	२६८२५	३,५४२,२८९
आर्मिनियम	”	(इरीधन)	११५८०	१,२८१,५९९
टुर्कमन	”	(अश्खाबाद)	१७१,३८४	१,२५३,९८५
उजबैक	”	(ताशकन्द)	६६,३९२	६,२८२,४४६
तदजैक	”	(स्टैलिनाबाद)	५५,७४०	१,४८५,०९१
कज़ख	”	(अल्मा-आटा)	१,०४७,७९७	६,१४५,९३७
किरघिज़	”	(फ्रुन्ज़)	७५,९२६	१,४५९,३०१
एसटोनियन	”		१८९	१,१२०,०००
लैटवियन	”		२५,०००	२,८७९,०७०
लिथुनियन	”		२१,५००	१,९५०,०००
करैलोफयूनिश	”		१८००९	९,०००,०००
मोल्डेविया	”	(किशीनेव)	३३,८००	२,२००,०००
कुल सोवियट रूस का योग			८,१७९,२२८,	१९१,८८८,४४३

सन् १९३६ के शासन-विभान में संगठन, शक्तियों व कर्तव्यों का वर्णन है। साथ साथ उसमें उपराज्यों (Union Republics) व स्वाधीन प्रजातंत्रों (Autonomous Republics) की शक्तियां भी वर्णित हैं। सात संघ प्रजातंत्र (Union Republics) जिनको हमने उपराज्य भी कहा है संघ के घटक राज्य या उपराज्य हैं। किन्तु उनमें से बहुतों में कई स्वाधीन प्रजातंत्र हैं और इसलिये वे स्वयं संघ-राज्य के भीतर संघ-राज्य हैं। इन सब इकाइयों की सरकारों का संघठन उन्हीं सिद्धान्तों पर किया गया है जिनके आधार पर सोवियट रूस की संघ सरकार का संगठन हुआ है।

इकाई राज्यों या उपराज्यों के विधान मंडल—प्रत्येक उपराज्य में एक निजी सुप्रीम कौंसिल (सोवियट) है जो चार वर्ष के लिये नागरिकों द्वारा निर्वाचित होती है। यह अकेली ही उपराज्य की विधानमंडल है। यह उपराज्य के शासन विधान को स्वीकार करती है और उसमें सोवियट रूस के शासन विधान की ३६ वीं धारा के अनुसार संशोधन कर सकती है। यह स्वाधीन प्रजातंत्रों के शासन विधानों में अपनी सम्मति देती है और उन प्रजा-तन्त्रों के क्षेत्राधिकार की सीमा निर्धारित करती है। यह आर्थिक योजना को स्वीकार करती और उपराज्य के बजट को पास करती है। यह उन अपराधियों को क्षमा देती है जो उस राज्य के न्यायालयों से दंडित हों।

उपराज्यों की कार्यपालिका सरकारें—उपराज्य की सर्वोच्च प्रशासन-शक्ति रखने वाली संस्था लोक-प्रबन्धक परिषद् (Council of People's Commissars) होती है। इसके आधीन ११ शासन विभाग (Commissariats) होते हैं जो इस प्रकार हैं—खाद्य उद्योग, छोटी वस्तुओं के उद्योग, काष्ट उद्योग, कृषि, अन्न और पशु, सरकारी फार्म, आय-व्यय, घरेलू व्यापार, घरेलू मामले, न्याय, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सैनिक संगठन और वैदेशिक मामले। यह परिषद् उपराज्य की सुप्रीम कौंसिल को उत्तरदायी रहती है। कौंसिल के अवकाश काल में उसका सब कार्य यह परिषद् स्वयं करती है और उसके प्रैसीडियम को उत्तरदायी रहती है।

इस परिषद् में एक सभापति, उपसभापति, राष्ट्रीय योजना कमीशन का सभापति, १५ शासन विभागों के प्रबन्धक, भण्डारों (Reserves) की समिति का प्रतिनिधि, कला-प्रशासन का अध्यक्ष और संघ के शासन-विभागों का एक प्रतिनिधि, इतने सदस्य होते हैं।

लोक-प्रबन्धक अपने आधीन प्रशासन-विभागों के कार्य का संचालन करते हैं। सोवियट संघ और उपराज्यों के अधिनियमों के आधार पर उन्हीं को कार्यान्वित करने के लिये वे आवश्यक आदेश जारी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संघ-लोक प्रबन्धक-परिषद् (People's Commissar of the U.S.S.R.) और उपराज्य-लोक-प्रबन्धक परिषद् के आदेशों का पालन करते हैं।

उपराज्य की लोक-प्रबन्धक-परिषद् स्वाधीन प्रजातंत्रों के प्रबन्धकों व प्रांतों और प्रदेशों की कार्यपालिका समितियों के निर्णयों को स्थगित और रद्द भी कर सकती है।

१ फरवरी सन् १९४४ को संविधान में एक संशोधन कर संघ की सुप्रीम सोवियट ने उपराज्यों को यह शक्ति दे दी है कि वे अपनी सुरक्षा के लिये निजी सेना रख सकते हैं और दूसरे राष्ट्रों से स्वयं सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं किन्तु इन विषयों में उन्हें संघ की सुप्रीम सोवियट द्वारा निर्णीत सिद्धांतों के अनुसार ही चलना पड़ता है।

स्वाधीन सोवियट प्रजातंत्र उपराज्यों की छोटी इकाइयाँ हैं। इसमें एक सुप्रीम कौंसिल होती है जो इन प्रजातंत्रों (Autonomous Soviet Socialist Republics) की प्रजा द्वारा चार वर्ष के लिये निर्वाचित होती है। प्रत्येक स्वाधीन प्रजातंत्र का निजी शासन-विधान है जो सोवियट

रूस के शासन-विधान के ढंग पर उस प्रदेश की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल निर्मित हुआ होता है। प्रजातन्त्र की सुप्रीम कौंसिल चुन कर एक प्रैसीडियम और एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् का संगठन करती है।

उपराज्यों में प्रान्त, प्रदेश, स्वाधीन प्रदेश (Autonomous Regions) स्वाधीन प्रजातंत्र (U.S.S.R) जिले, रेग्रौन, नगर, ग्राम-क्षेत्र आदि शासन की इकाइयाँ होती हैं जिनमें निजि सोवियट शासन प्रबन्ध करती है। इन सोवियटों का चुनाव दो वर्ष के लिये होता है। इनका काम यह है कि ये सुव्यवस्था रखने का प्रबन्ध करती हैं। अधिनियमों के पालन का आयोजन और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की देखभाल करती हैं। ये स्थानीय बजट तैयार करती है। ये अपने निर्वाचक श्रमिकों को ही नहीं वरन अपने ऊपर वाली सोवियट को भी उत्तरदायी रहती हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी

पीछे सोवियट शासन-प्रणाली का जो वर्णन किया गया है उसका संचालन कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथ में था फिर भी सरकार और कम्यूनिस्ट पार्टी एक नहीं हैं वे एक दूसरे से भिन्न और पृथक हैं।

कम्यूनिस्ट पार्टी का कोई भी व्यक्ति सदस्य हो सकता है क्योंकि कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों में राष्ट्रीयता, जाति आदि की संकीर्णता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। उसका उद्देश्य सारे संसार में श्रमिकों का शासन स्थापित करना है। यह अपनी मूल विचारधारा में राज्यसीमाओं का आदर नहीं करती। उसका तो प्रयत्न ही यह है विश्व-मजदूरों को संगठित किया जाय। इतनी व्यापक दृष्टि के होते हुए भी कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य होना बड़ा कठिन काम है। उम्मेदवार को निश्चित समय तक पार्टी की शिक्षा लेनी पड़ती है। इस शिक्षण के पूरे होने पर भी जानकार व प्रभावशील सदस्यों की सिफारिश से ही वह व्यक्ति सदस्य बनाया जा सकता है। इसके विपरीत पार्टी का छोड़ना बड़ा सरल है केवल अपनी इच्छा प्रकट करना ही पर्याप्त होता है। समय २ पर पार्टी में से उन व्यक्तियों को निकाल दिया जाता है जो निरुत्साही प्रतीत होते हैं क्योंकि या तो कम्यूनिज्म सिद्धान्तों व व्यवहार में उनका विश्वास नहीं रह गया या वे पार्टी के प्रति निष्ठा-रहित हो गये होते हैं।

सन् १९३८ के आरम्भ में पार्टी के कुल सदस्यों की संख्या ३० लाख थी। सदस्यों की भर्ती कौमसौमौल (Comsomol) से होती है। जिसमें १६ और २३ वर्ष की आयु वाले युवा स्त्री पुरुष होते हैं। दस से सोलह वर्ष की

आयु के भीतर वाले बालक पायनियर्स (Pioneers) कहलाते हैं। दस वर्ष की आयु से छोटे आठ वर्ष की आयु तक के ओक्ट्रीहारिस्ट्स (Octriharists) कहलाते हैं। इस प्रकार पार्टी की ये तीन श्रेणियां मिलकर स्काउट संगठन के समान प्रतीत होती हैं जिसमें एक के बाद एक श्रेणी को पार करना पूर्ण सदस्यता के लिये आवश्यक होता है। कम्यूनिस्ट पार्टी और उसकी उपसभाओं की कुल संख्या १२० लाख के ऊपर है।

पार्टी का अनुशासन—पार्टी का अनुशासन बड़ा कठोर है और उसका पालन करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक सदस्य या उम्मेदवार को पार्टी के हित के लिये अपने वैयक्तिक भावों का बलिदान करना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य अपने से उच्च व्यक्ति की इच्छा पर अपने आप को छोड़ देता है और उसकी आज्ञा का बिना हिचकिचाहट के पालन करता है। सदस्य को जहां भेजा जाय वहाँ जाना पड़ता है। अपना बचा हुआ समय वह कम्यूनिज्म के सिद्धांतों के प्रचार करने में लगाता है और यदि उनकी रक्षा करने में प्राण की भी बलि देनी पड़े तो उसे उसके लिये तैयार रहना पड़ता है। लगभग सदस्यों में १८ प्रतिशत स्त्रियाँ या बालिकायें हैं।

कम्यूनिज्म के उद्देश्य—कम्यूनिज्म मार्क्स के दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना चाहती है। वर्गभेद का मिटाना, व्यक्ति के परिश्रम के आधार पर राजनैतिक व सामाजिक अधिकारों को निश्चित करना, पूंजीवाद को मिटा कर उत्पादन व वितरण के सब साधनों पर राज्य का स्वामित्व स्थापित करना, यह कम्यूनिज्म के उद्देश्य हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी का जो सदस्य मदिरा आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग करता हुआ पाया जाता है या अपने से उच्च अधिकारी व्यक्ति की आज्ञा की अवहेलना करता है, या जो गिरजाघर में जाता है या जो पार्टी के सिद्धान्तों के प्रचार करने में उत्साह नहीं दिखाता या पूंजीवर्ग को सहायता पहुँचाता है वह पार्टी से निकाल दिया जाता है। दूसरी ओर जो सदस्य पार्टी की सेवा में अपने आप को विख्यात बना लेते हैं उनको विशेष पुरस्कार दिया जाता है। पार्टी के अफसरों को आने जाने का भत्ता, रहने का मकान और सवारी के लिये मोटर मिलता है। कम से कम सिद्धान्तः व्यवहार की समानता पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु सच तो यह है कि जो कारखानों और फर्मों के अफसर होते हैं उनको अतिरिक्त लाभ का भाग बांट कर अधिक सुविधाएं दी जाती हैं। सोवियट रूस की कम्यूनिज्म के व्यवहारिक रूप के बारे में जो विविध मत हैं वे एक दूसरे के बहुत विरोधी हैं क्योंकि वहां पर जाकर देखने

वालों व लेखकों की दृष्टि पक्षपात रहित नहीं होती। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि उससे यह आशा रखना कि वह आदर्श के व्यवहार में सच्चा अनुकरण करेगा व्यर्थ है। फिर भी यह लाभ अवश्य है कि पार्टी के दृढ़ संगठन से शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित है।

पार्टी का संगठन—पार्टी की सब से छोटी इकाई "सेल" (Cell) होती है जिसमें तीन सदस्य होते हैं। यह किसी गांव या कारखाने में बनाई जा सकती है। यह सेल पार्टी की नीति का प्रचार करके उसे कार्यान्वित करती है। सन् १९२८ में सेलों की कुल संख्या ३९,३२१ थी, जिसमें से २५.४ प्रतिशत कारखानों में, ५२.७ प्रतिशत गांवों में, १८.५ प्रतिशत अफसरों और उद्योगों में और १.८ प्रतिशत शिक्षालयों में थी। पार्टी की जो प्रादेशिक संस्था होती है उसके प्रतिनिधियों को ये सेल चुनती हैं। प्रान्तीय व प्रादेशिक संस्थायें अखिल संग की पार्टी कांग्रेस के लिये अपने प्रतिनिधि चुनती हैं। कांग्रेस साल में दो बार एकत्र होती है। बीच में कांग्रेस से चुनी हुई एक सैन्ट्रल एक्जीक्यूटिव काम चलाती है। सैन्ट्रल कमेटी का सब से प्रभावशाली व्यक्ति सैक्रेटरी-जनरल होता है (आजकल इस पद पर स्टैलिन है)। सन् १९३६ तक यह यह सैक्रेटरी-जनरल पार्टी पर ही नहीं किंतु सरकार पर भी अपना नियंत्रण रखता था। यद्यपि पार्टी और सरकार पृथक हैं फिर भी पार्टी सरकार को पूरी तरह से अपने हाथ में किये हुये थी। सन् १९३४ को कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि पार्टी और सरकार का भेद मिटा दिया जाय।

यद्यपि पार्टी के भीतर वाद-विवाद करने व विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है पर जब एक बार कोई निश्चय हो जाता है तो सब सदस्यों पर वह लागू हो जाता है। जो कोई भी पार्टी के आदेशों की अवहेलना करता है उसे पार्टी से निकाल दिया जाता है या अन्य दण्ड दिया जाता है। सारे देश में फैली हुई पार्टी की शाखायें सोवियटों के कार्य पर दृष्टि रखती हैं जिससे केन्द्र से निकले हुये आदेशों का पालन कराने में सहायता होती है। सन् १९३६ तक सरकार की प्रमुख संस्थायें पिरेमिड के ऊंचे स्तरों पर थीं इसलिये कम्यूनिस्ट अपने पक्ष के अधिक व्यक्तियों को उन संस्थाओं में ही रखने को अधिक उत्सुक रहते थे। गाँव और नगरों की सोवियटों में वे ऐसे ही व्यक्तियों से संतोष कर लेते थे जो पार्टी के सदस्य न हों परन्तु उसके कृपा-पात्र हों।

सरकार की वास्तविक नीति ऊपर से ही निश्चित होती थी और वहाँ कम्यूनिस्टों का पूर्ण आधिपत्य था जिससे कम्यूनिस्टों का सरकार पर पूरा

नियंत्रण रहता था। नये रूस में कम्यूनिस्ट पार्टी ही प्रेरक शक्ति है। जहां कम्यूनिस्ट स्वयं सर्वेसर्वा नहीं होते वहां उनका प्रभाव ही सब कार्य उनके अनुकूल ही करता है। प्रत्येक कारखाने में एक "लाल त्रिभुज" पाया जाता है जिससे कारखाने की नीति निश्चित करते समय मैनेजर और फैक्टरी समिति के प्रतिनिधि के साथ कम्यूनिस्ट पार्टी का एक प्रतिनिधि बैठता है।

राज्यशक्ति को अपने हाथ में करने के पश्चात् कम्यूनिस्ट पार्टी ने उन विभिन्न आर्थिक योजनाओं को अपने हाथ में लिया जो सोवियट रूस के शासन-विधान की आर्थिक व राजनैतिक प्रणाली का अङ्ग समझी जाती थीं। इनको कार्यरूप देने में स्टैलिन और ट्रोटस्की में विरोध उत्पन्न हुआ। लैनिन की मृत्यु के पश्चात् इन दोनों में से प्रत्येक लेनिनवाद के दृष्टिकोण का सच्चा प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था। अन्त में स्टैलिन की ही विजय हुई। ट्रोटस्की को पार्टी से निकाल दिया गया स्टैलिन के शासन-प्रबन्ध के विरुद्ध गुप्त षड्यंत्र रचे गये किन्तु स्टैलिन ने सब विरोधियों को कुचल दिया।

पाठ्य-पुस्तकें

Batsell, W.R.—Soviet Rule in Russia (1939)

Buell, R.L.—New Governments of Europe (Nelson 1934)

Cole. G. D. H. & M. I--A Guide to Modern Politics (Gollancz).

Makeev, & O' Hara--Russia (Modern World Series, Benn 1935)

Mc Cormick A. O.--Communist Russia (William & Norgate).

Select Constitutions of the World. pp. 211-236.

Statesman Year book (Latest Issue).

The Soviet Constitution (London 1945)

Freund, H. A,--Russia from A to Z (Melbourne 1945)

अध्याय २०
फ्रांस की सरकार

शासन विधान का इतिहास—इंगलैंड को छोड़ कर फ्रांस ही एक ऐसा बड़ा देश है जहाँ पार्लियामेण्टरी शासन-प्रणाली अपनाई गई है। इंगलैंड के समीप स्थित रहने से यहां अंगरेजी सिद्धान्तों व राजनैतिक संस्थाओं का प्रभाव भी अधिक रहा है। इस देश का क्षेत्रफल २१२,६५६ वर्ग मील और जनसंख्या सन् १६४६ की जनगणना के अनुसार ४०,५०२,५१३ है। यद्यपि यह प्रजातंत्र राष्ट्र है किन्तु इसके आधीन विशाल साम्राज्य है जिसका क्षेत्रफल ४,६१७,५७६ वर्ग मील और ६४,६४६,६७५ व्यक्ति इस साम्राज्य में रहते हैं।

फ्रांस को प्रायः राज्यप्रणालियों का प्रयोगशाला कहा गया है। अमेरिका के स्वतन्त्रता युद्ध के पश्चात् जब फ्रांस की सेना वहां से फ्रांस को लौट कर आई, तो फ्रांस में एक राजनैतिक हलचल मच गई। उस समय फ्रांस में कोई शासन विधान न था, राजा स्वयं ही राज्य संगठन का रचयिता और संचालक था, उसकी इच्छा ही न्याय थी। कुछ तो राजा के अत्याचारी शासन से और कुछ आर्थिक कष्ट से घबरा कर प्रजा ने विद्रोह कर दिया जिसका इतना विशाल रूप हो गया कि यह भाव था कि फ्रांस की क्रान्ति सारे यूरोप के राज्य संगठनों पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहेगी। फ्रांस की राजनैतिक समस्या को हल करने का प्रथम प्रयत्न ३ सितम्बर सन् १७६१ के शासन विधान द्वारा किया गया। इसमें राजा की स्वेच्छा पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये। यह संविधान थोड़े ही समय तक चल सका। जैकोबिन्स ने २४ जून सन् १७६३ को एक प्रजातंत्र शासन की स्थापना की किन्तु वह भी अधिक दिन तक न चल सका। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप २२ अगस्त सन् १७६५ को एक तीसरा संविधान बनाया गया जिससे विधायिनी सत्ता ५०० व्यक्तियों की कौंसिल और वृद्ध पुरुषों की कौंसिल में विहित की गई और कार्यकारी सत्ता पाँच सदस्यों की डाइरैक्टरी के सुपुर्द की गई। चार वर्ष बाद डाइरैक्टरी (Directory) ने

एक नये संविधान से निरंकुश शक्ति अपने हाथ में कर ली। नैपोलियन ने, जो डाइरेक्टरी का सदस्य था सारी शक्ति को अपने हाथ में कर लिया और उसको प्रथम कौंसिल (First Council) नियुक्त कर दिया गया। सन् १८०२ में उसे स्थायी रूप से उसके जीवन भर के लिये पूर्ण सत्ता सौंपकर कौंसल (Consul) बना दिया गया। दो वर्ष बाद कंसुलेट (Consulote) के स्थान पर साम्राज्य की स्थापना की गई जिसका नैपोलियन प्रथम सम्राट हुआ। सन् १८१४ में नैपोलियन की पराजय होने से फिर राजसत्ता स्थापित हुई और बोर्बन वंश का राजा १८ वाँ लुई राजा बनाया गया। पार्लियामेंटरी प्रणाली स्थापित की गई जिसमें फ्रांस ने और देशों के समान ही अँग्रेजी ढाँचे की नकल की। द्विगृही विधानमण्डल बनाया गया। द्वितीय सदन में मनोनीत व्यक्ति थे और प्रथम सदन में संकुचित मताधिकार से निर्वाचित सदस्य बनते थे। मंत्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धांत भी स्वीकार कर लिया गया।

द्वितीय प्रजातन्त्र की स्थापना—यह राजतंत्र अधिक समय तक न चल सका। चार्ल्स ने अपनी शक्ति को प्रजा के अधिकार कम करके बढ़ाने का विफल प्रयत्न किया। तीन दिन की क्रांति के फलस्वरूप चार्ल्स को सिंहासन छोड़ना पड़ा। बौर्बन वंश की सत्ता इस प्रकार समाप्त हुई। लुई फिलिप सिंहासन पर बैठा पर उसे भी सिंहासन छोड़ कर भागना पड़ा। विद्रोह और फूट से तंग आकर सब जनता शान्ति की इच्छा करने लगी। अन्त में १० दिसम्बर सन् १८४८ को प्रजातन्त्र शासन की स्थापना हुई जिसका नैपोलियन का भतीजा प्रथम अध्यक्ष चुना गया। प्रौढ़ मताधिकार से चुना हुआ एक गृही विधानमण्डल स्थापित करना निश्चय हुआ। इसके पश्चात् राज सत्ता को हथियाने का एक हिंसात्मक प्रयत्न किया गया। बहुत से राजनीतिज्ञ प्रजा प्रतिनिधि और सेनापति कारावास में डाल दिये गये। एक नया शासन विधान बनाया गया जिससे प्रेसीडेंट का कार्यकाल बढ़ा कर दस वर्ष कर दिया गया और उसको बहुत विस्तृत शक्तियाँ दे दी गई। सन् १८५२ में फिर एक नया शासन विधान बना जो लोक-निर्णय से दो सप्ताह के भीतर स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार नैपोलियन तृतीय सम्राट घोषित कर दिया गया।

साम्राज्य सत्ता अधिक दिन तक न चल सकी। पहले तो युद्ध में विजय होने से फ्रांस का यूरोप में सिक्का जम गया परन्तु अन्त में देश के भीतर नैपोलियन से प्रजा असंतुष्ट होने लगी। जर्मनी और फ्रांस के बीच होने

वाले सन् १८७० के युद्ध से फ्रांस के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। जर्मनों ने पैरिस पर अधिकार कर लिया होता यदि उन्हें फ्रांस से भारी रकम न मिली होती। तृतीय नैपोलियन की पराजय के पश्चात् एक नया शासन संविधान बनाया गया। राष्ट्र की रक्षा के लिये एक अस्थायी सरकार बनाई गई और सन् १८७१ की फरवरी में इसका स्थान नेशनल असेम्बली ने लिया।

इस प्रकार अस्सी वर्ष के समय में ११ शासन-विधानों के अंतर्गत फ्रांस का शासन हुआ। प्रजातंत्र और राजतंत्र के बीच फ्रांस झूलता रहा। यद्यपि कोई निश्चित शासन विधान अब भी न था पर पूर्व संविधानों की बची संस्थायें अब भी कार्य कर रही थीं। नेशनल असेम्बली का यह काम था कि इन बिखरे हुये टुकड़ों को पुनः एक सूत्र में बाँध कर व्यस्थित करती किन्तु यह निश्चित नहीं था कि असेम्बली को यह अधिकार भी है या नहीं।

तृतीय प्रजातन्त्र—राजसत्ता के गिरते हुये दिनों में प्रजातन्त्रवादियों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। उन्होंने प्रजातंत्र स्थापित करने का अब दृढ़ निश्चय किया। १८७१ की संधि के पश्चात् शान्ति स्थापित करने और नये शासन विधान बनाने का भारी प्रयत्न किया गया। असेम्बली ने ३१ अगस्त को एक प्रस्ताव पास किया जो राइवट लॉ (Rivet Law) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार एडोल्फ थियर्स प्रेसीडेंट बनाया गया और इसको यह शक्ति दी गई कि वह निर्वाचित असेम्बली को उत्तरदायी मंत्री नियुक्त कर सकता है। पर इस योजना से राजसत्तावादी (Monarchists) संतुष्ट न हुये। नेशनल असेम्बली को बाध्य होकर संवैधानिक प्रश्न फिर हाथ में लेना पड़ा। उसकी प्रार्थना पर तीस सदस्यों की एक समिति ने दो विधेयक (Bills) तैयार किये जिनमे दूसरे सदन की स्थापना का प्रस्ताव था और विधायिनी व कार्यकारी शक्तियों की व्याख्या की गई थी। परन्तु इन विधेयकों पर विचार न हो सका। सन् १८७३ के नवम्बर मास में एक नई समिति बनाई गई। इस समिति ने सार्वजनिक शक्तियों के संगठन का एक विधेयक तैयार किया जिसके आधार पर सन् १८७५ का कानून बना। सीनेट का संगठन एक दूसरे वैधानिक अधिनियम द्वारा स्थिर हुआ। सीनेट राजसत्तावादियों को संतुष्ट करने के लिये ही बनाई गई थी।

फरवरी २४ व २५, १८७५ के दोनों वैधानिक अधिनियमों को पास करने के पश्चात् दूसरे विषयों को असेम्बली ने अपने हाथ में लिया और जुलाई १६, १८७५ का तीसरा वैधानिक अधिनियम पास किया। इस प्रकार फ्रांस के

शासन विधान के आधारभूत तीन अधिनियम बने। इनके आधार पर दूसरे अधि-नियम बने जिनसे शासन विधान को कार्यान्वित करने की प्रणाली निश्चित की गई। सन् १८८० और १८८४ में दो और कानून पास हुये जिनमें से एक के द्वारा वार्साई की जगह पैरिस को राजधानी बनाया गया क्योंकि प्रजातंत्रवादी पैरिस को अधिक पसंद करते थे। सन् १८८४ में नेशनल असेम्बली के दोनों सदनों ने अपनी संयुक्त बैठक में वैधानिक अधिनियमों में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार किया और सन् १८८४ का परिवर्तन करने वाला अधिनियम (Revisory Law of 1884) पास किया। इससे शासन विधान पूरा हो गया। संविधान को कार्यान्वित करने वाले अधिनियम भी पास किये गये। ये अधिनियम साधारण अधिनियम और वैधानिक अधिनियमों के मध्य में हैं। ये साधारण निर्बन्धों से ऊँची और वैधानिक निर्बन्धों से नीची श्रेणी में हैं। इन का संशोधन सामान्य रीति से हो सकता है। ये शासन विधान के छोटे मोटे विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। इनको आर्गेनिक लाज़ (Organic Laws) के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि फ्रांस का शासन-विधान किसी एक अधिनियम में नहीं मिलता। इसके सिद्धांत समय समय पर पास किये हुए कई अधिनियमों में पाये जाते हैं। फिर भी अंग्रेजी शासन संविधान से यह इस बात में भिन्न है कि सब अधिनियमों को एकत्र करने से शासन विधान पूरा प्राप्त हो सकता है किन्तु अंग्रेजी शासन विधान के सिद्धांत पार्लियामेंट के अधिनियमों के अतिरिक्त जो कई शताब्दियों के समय में बने हैं, उन अलिखित पर सर्व-मान्य प्रथाओं में बिखरे हुये हैं जो किसी भी दशा में विधिवत् पास हुए अधि-नियमों से कम मान्य नहीं हैं। फ्रांस के वैधानिक इतिहास की अविच्छन्नता भी ध्यान देने योग्य है इसलिए यह शासन विधान एक शताब्दी में होने वाले वैधानिक विकास का परिणाम है। इसमें अपने पूर्ववर्ती संविधानों के प्रमुख सिद्धांत ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। फ्रांस के संविधान पर उस देश में हुई राजनैतिक क्रांतियों की छाप लगी हुई है। यह वह भवन नहीं जिसके प्रत्येक भाग को किसी पूर्व निश्चित ढाँचे पर बनाया गया हो किन्तु यह वह प्राचीन कौटुम्बिक गढ़ी है जिसमें आने वाली पीढ़ियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार कुछ यहां कुछ वहाँ सुधार या नवीनता लाई हो। यूरोप के राजनैतिक वाता-वरण में जो परिवर्तन हुए उनको इतने सहकर अपने आपको उनके अनुकूल बना लिया है। इस शासन-विधान से फ्रांस में पार्लियामेंटरी ढंग के प्रजातंत्र की स्थापना करने का उद्देश्य था। इसको ऐसी असेम्बली ने न बनाया था

जो संविधान निर्माण के लिए ही चुनी गई हो किन्तु फिर भी इसमें परिवर्तन करना कठिन है क्योंकि उसके लिए निश्चित रीति प्रयोग में लानी आवश्यक है। पहले दोनों सदन पृथक पृथक यह निर्णय करते थे कि संशोधन आवश्यक है या नहीं। अपेक्षाकृत बहुमत से दोनों में ऐसा निर्णय होने पर दोनों की संयुक्त बैठक में मतों के पूर्णाधिक्य से संशोधन हो सकता था। किन्तु किसी भी संशोधन से संविधान का प्रजातन्त्रात्मक रूप न बदला जा सकता था। यदि ऐसा प्रस्ताव कभी रखा भी जाता तो असेम्बली के सभापति को यह अधिकार था कि वह उसे अस्वीकार कर दे।

विधानमंडल

सन् १८७५ के शासन संविधान से दो सदनों के स्थापित होने का आयोजन था। एक प्रतिनिधि सदन (Chamber of Deputies) कहलाता था और दूसरा ऊपरी सदन (Upper House) या सीनेट। सीनेट में ३१४ सदस्य थे जिनमें से २४६ निर्वाचित होते थे। बचे हुये ७५ स्थान, सन् १८७५ के अधिनियम के अनुसार उन व्यक्तियों से भरे जाते थे जिनको दोनों सदन जीवन भर के लिये चुनें। किन्तु सन् १८८४ के संशोधन से जीवन-सदस्यों की मृत्यु होने पर सामान्य निर्वाचन से उनका स्थान भरा जा सकता था। सीनेट के सदस्यों को मतधारक-संघ निर्वाचन करते थे जैसे म्यूनिसिपल परिषदें, प्रांतों के प्रतिनिधि, प्रांतों के सामान्य कौंसिलर्स आदि इस प्रकार सीनेट के सदस्य अप्रत्यक्ष (Indirect election) रूप से प्रजा के प्रतिनिधि होते थे। इसकी अवधि नौ वर्ष थी परन्तु यह कभी समाप्त न होती थी। प्रति तीन वर्ष बाद एक तिहाई सदस्य नये चुने जाते थे। अधिनियम बनाने में सीनेट की वही शक्तियाँ थीं जो प्रतिनिधि सदन की थीं। मुद्रा-विधेयक निचले सदन में ही प्रारम्भ होते थे। सीनेट-मुद्रा विधेयकों में परिवर्तन कर सकती थी पर कर की मात्रा न बढ़ा सकती थी। दोनों सदनों के मतभेदों को मिटाने के लिए दो कमीशन नियुक्त होते थे जो मिलकर विचार कर सकते थे पर वे पृथक पृथक होकर निर्णय करते थे। यदि समझौता न होता था तो प्रस्ताव गिर जाता था। सीनेट की पूर्व स्वीकृति से ही निचले सदन का विघटन हो सकता था। प्रेसीडेंट और मन्त्रियों के अभियोगों को सुनने के लिए सीनेट सर्वोच्च न्यायालय के समान कार्य करती थी। राष्ट्र की सुरक्षा भंग करने वाले अपराधियों को भी न्यायालय के समान सीनेट दण्ड देती थी।

प्रतिनिधि-सदन (Chamber of Deputies)—यह प्रथम

सदन था । इसके सदस्य प्रौढ़ मताधिकार पद्धति से चुने जाते थे । कोई भी निर्वाचक जो २५ वर्ष का हो इस सदन की सदस्यता के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता था । राजवंशों के व्यक्ति प्रतिनिधि न चुने जा सकते थे । सन् १९२७ के बाद जो पद्धति प्रचलित थी उसके अनुसार ७५००० मतधारकों के लिए एक प्रतिनिधि चुना जाता था । देश एक प्रतिनिधिक क्षेत्रों (Single member Constituencies) में बांट दिया जाता था और एक मतधारक को एक मत देने का अधिकार था । सदन का सभापति अर्थात् स्पीकर हाउस आफ कामन्स के स्पीकर के समान निष्पक्ष व्यक्ति न होता था । वह अपने पद पर नियुक्त होने के बाद भी अपने पक्ष का सदस्य बना रहता था । और अपने पक्ष को अधिक सुविधायें देता था । स्पीकर एक शक्तिशाली व्यक्ति हो जाया करता था और प्रायः स्पीकर प्रधानमंत्री या प्रेसीडेंट के पद पर पहुँच जाता था। मुद्राविधेयक निचले सदन में ही प्रारम्भ होते थे । अन्य सब विषयों में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर थीं । वे दोनों मिल कर प्रेसीडेंट को चुनते थे और शासन-विधान में संशोधन कर सकते थे ।

कार्य-पालिका—यद्यपि सन् १८७५ के शासन-विधान के संसदात्मक (Parliamentary) कार्यपालिका अपनाई गई किन्तु राजा के स्थान पर अध्यक्ष या प्रेसीडेंट बनाने का निर्णय हुआ । नेशनल असेम्बली अर्थात् विधान-मण्डल के दोनों सदन मिल कर प्रेसीडेंट को चुनते थे । प्रेसीडेंट निश्चित समय तक अपने पद पर बना रहता था । प्रेसीडेंट संधियां करता और उनका अनु-समर्थक (Ratification) करता था किन्तु दोनों सदनों की पूर्व सम्मति के बिना युद्ध की घोषणा न कर सकता था । वह राष्ट्र का अध्यक्ष होता था और इस पद के नाते उसका बाहरी रूप से बड़ा आदर, प्रभाव तथा ऐश्वर्य था। किन्तु वास्तव में उसकी कार्यकारी शक्ति शून्य के बराबर थी ।

मन्त्रिपरिषद्—सन् १८७५ में ही फ्रांस में संसदात्मक कार्यपालिका प्रणाली अपनाई गई । मन्त्रियों के सम्बन्ध में शासन-विधान में निम्नलिखित सिद्धान्त दिये हुए थे ।

(१) प्रेसीडेंट के सब आदेश किसी एक मन्त्री के समर्थक-सूचक हस्ताक्षरों से कार्यान्वित हो जाते हैं ।

(२) मन्त्री सरकार की नीति के लिये सामुदायिक रूप से दोनों सदनों को उत्तरदायी होंगे और अपने शासन-विभाग की कार्यवाही के लिये वैयक्तिक रूप में उत्तरदायी होंगे ।

(३) प्रेसीडेंट केवल देशद्रोह का अपराधी हो सकता है ।

(४) प्रेसीडेंट अपने संदेश द्वारा ही विधान-मण्डल से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यह संदेश सदनों में किसी मंत्री द्वारा पढ़ कर सुनाया जा सकता है।

(५) मंत्री किसी भी सदन में बोल सकता है।

(६) विधान मंडल से पास होकर और किसी मंत्री द्वारा समर्थन-सूचक हस्ताक्षर हो जाने पर विधेयक प्रेसीडेंट द्वारा अधिनियम घोषित किया जा सकता है, यदि एक मास के भीतर प्रेसीडेंट उसे दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार करने के लिये वापिस न कर दे। व्यवहार में जब विधानमण्डल किसी मंत्री के कार्य की निन्दा करता है तो मंत्रिमण्डल पद त्याग कर देती है और नये मंत्रिमण्डल से पुराने मंत्रिमण्डल के उस मंत्री को बाहर कर दिया जाता है जिसके कारण मंत्रिमण्डल को पद त्याग करना था। इस प्रथा का कारण यह है कि कोई भी मंत्रिमण्डल इतना दृढ़ नहीं होता कि वह विधानमंडल के विघटन की प्रार्थना करे। विधानमण्डल इसीलिये अपने निश्चित काल, ४ वर्ष तक कार्य करती रहती है।

संसदात्मक शासन-प्रणाली की सफलता—फ्रांस ने ब्रिटिश प्रणाली को अपनाया तो सही पर उसके चलाने में उसे सफलता न हुई। फ्रांस में ब्रिटिश ढंग की मंत्रिपरिषद् की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थिति वर्तमान न थी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें भी थीं जिनके कारण वे रूढ़ियां और प्रथायें सर्वमान्य न हो सकीं जिनसे फ्रांस की मंत्रिपरिषद् प्रणाली में स्थिरता आती। फ्रांस की मंत्रिपरिषद् की अस्थिरता के कई कारण थे।

पहला—इंगलैंड की तरह फ्रांस में मंत्रि-मण्डल के पद त्याग से शासन-नीति में कोई अन्तर न पड़ता था। इंगलैण्ड में मंत्रि-परिषद् तभी पद-त्याग करती थी जब उसकी नीति का हाउस आफ कामन्स में विरोध हो या उसका विघटन किये जाने पर नये निर्वाचन में निर्वाचक जनता उसकी नीति से सहमत न होने के कारण उनके पक्ष के बहुसंख्यक प्रतिनिधि न चुने। ऐसा असमर्थन होने से नया मंत्रिमण्डल स्थान ग्रहण करता था और नये मंत्रि-मण्डल का बनना इस बात का स्पष्ट निर्देश था कि शासन-नीति में परिवर्तन हो गया। किन्तु फ्रांस में मंत्रि-परिषद् में इतना बल न था कि वह अपनी नीति की विवेक पूर्णता को दिखलाने के लिये सदन का विघटन करा कर जनता से समर्थन की प्रार्थना करे।

दूसरा—मंत्रि-परिषद् अपनी नीति को कार्यान्वित करने वाले कानूनों के बनाने में निचले सदन के कमीशन पर निर्भर रहती थी। मंत्रि-परिषद्

द्वारा जो विधेयक भी सदन में विचारार्थ प्रस्तुत होता था वह इस कमीशन की राय के लिये भेजा जाता था। इस कमीशन में प्राय: (सदन में कई राजनैतिक पक्षों के होने के कारण) मंत्रि-परिषद् के विरोधी ही होते थे, जो परिषद् की योजना में -इतना परिवर्तन करने का प्रयत्न करते थे कि परिषद् स्वयं ही उस योजना की अस्वीकृति चाहने लगती थी जिससे परिषद् पदत्याग कर दे और नई परिषद् बने।

तीसरा—मंत्रिपरिषद् आर्थिक नीति पर नियंत्रण करने की शक्ति न रखती थी। मंत्रिपरिषद् में इतनी शक्ति न थी कि वह सदन का विघटन करा सके। इसीलिये विरोधी पक्ष को सामान्य निर्वाचन होने पर अपनी सदस्यता खोने का डर न रहता था। वे आर्थिक प्रस्तावों में बिना किसी डर के संशोधन करते थे, जिससे परिषद् को ऐसी आर्थिक स्थिति में काम करना पड़ता था जो उसको सुविधाजनक या उसकी इच्छा के अनुकूल न होती थी। परिषद् इसलिए स्वयं भी पदत्याग कर अपने पुनर्संगठन का अवसर देखा करती थी जिससे विरोधी पक्ष के व्यक्तियों को नई परिषद् में शामिल कर विरोध कम किया जा सके।

चौथा—संसदात्मक प्रणाली में यह देखा गया है कि दो राजनैतिक पक्षों का होना ही उसे सफल बना सकता है। फ्रांस की लोकसभा में निर्वाचन पद्धति के कारण दो से अधिक राजनैतिक पक्ष बनाने का अवसर रहता था जो एक सुदृढ़ स्थायी मंत्रिपरिषद् बना सके। प्राय: विरोधी नीति और कार्यक्रम वाले पक्षों की मिली जुली सरकार बनती थी जो अधिक दिन तक न चल सकती थी।

पांचवा—इंगलैंड में पार्लियामेण्ट के सदस्यों को प्रश्नों द्वारा सूचना प्राप्त करने का अधिकार है परन्तु यह अधिकार केवल सूचना प्राप्त करने तक ही सीमित है। मंत्रिमंडल यदि चाहे तो किसी प्रश्न का उत्तर देने से मना कर सकता है। किन्तु फ्रांस में शुक्रवार के प्रश्न केवल सूचना ही प्राप्त करने के लिये न किये जाते थे किन्तु उनके द्वारा सरकार की नीति पर भी विचार करने का प्रयत्न किया जाता था। यदि सरकार का उत्तर संतोषजनक न समझा जाता था तो उस पर वाद-विवाद होता था, मत लिये जाते थे और यदि सदन सरकार उत्तर से इस मत-प्रकाशन द्वारा असंतोष प्रकट करता था तो परिषद् पद त्याग कर देती थी।

छठा—फ्रांस की मंत्रिपरिषद् में सामुदायिक उत्तरदायित्व न होता

था। विभिन्न राजनैतिक पक्षों में से लिये जाने के कारण मंत्रियों से यह आशा करना व्यर्थ था कि वे सदन में एक दूसरे का समर्थन करते। एक्य-भाव का अभाव इसलिये न था कि उनमें पारस्परिक द्वेष रहता था किन्तु बात यह थी कि ऐसी संस्था से दृष्टिकोण की एकता न हो सकती थी और उद्देश्य भी प्रत्येक मंत्री का एक न होता था। इसलिये यह स्वभाविक था कि मंत्रिमण्डल को फोड़ने का कोई न कोई बहाना सरलता से ही मिल जाता था।

उपर्युक्त कारणवश फ्रांस का मंत्रिमंडल अचिरंजीवी रहता था। सन् १८७५ के पश्चात् ४३ वर्ष के समय में ६४ मंत्रिमंडल बने अर्थात् मंत्रि-मण्डल की औसतन अवधि ९३⁄४ मास रही। सन् १९२६-१९३८ के बीच में अर्थात् १२ साल में २४ मंत्रिमंडल बने। इंगलैण्ड में उतने ही समय में केवल ५ मंत्रि-परिषदें बनीं।

फ्राँस के चतुर्थ प्रजातन्त्र का शासन-विधान—सन् १९४० में तृतीय प्रजातन्त्र की करारी हार हुई। अगले चार वर्षों में फ्रांस का शासन जर्मनी के अधिकार में रहा यद्यपि मार्शल पेंता की विची (Vichy) सर-कार को कार्य करने की थोड़ी सी स्वतन्त्रता अवश्य थी। जनरल डी गाले ने यह घोषणा की कि वे फ्राँस के बाहर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करेंगे। इस उद्देश्य से एलजिअर्स में फ़्रांस की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की एक समिति बनाई गई। सन् १९४३ में परामर्श देने वाली एक परिषद् बनाई गई जिसमें सब पूर्व राजनैतिक पक्षों के प्रतिनिधि सदस्य बनाये गये। यह फ्रांस की संकट-कालीन सरकार थी। सन् १९४४ में यह सरकार एलजिअर्स से पैरिस आ गई। परामर्शदात्री परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। सन् १९४५ के अक्टूबर मास की २५ तारीख को विधान परिषद् के सदस्यों का चुनाव हुआ। इस परिषद को एक नये संविधान के बनाने का काम सौंपा गया। साथ साथ परामर्शदात्री परिषद् की शक्ति की सीमा भी निर्धारित कर दी गई। संविधान परिषद् में समाजवादियों की संख्या अधिक थी। सन् १९४६ की १९ अप्रैल को २४९ विरोधी और ३०९ पक्षवाले मतों से नया संविधान स्वीकृत हो गया। किन्तु जब यह शासन विधान लोक निर्णय के लिये रखा गया तो उसके पक्ष में ८,९०,००००, और विरोध में १,००,००,००० मत आये जिससे यह संविधान अस्वीकृत हो गया। एक दूसरी विधान-परिषद् बुलाई गई और दूसरा संविधान बनाने का काम सौंपा गया। अक्टूबर १३ सन् १९४६ को इस द्वितीय विधान-परिषद् द्वारा तैयार किया हुआ शासन-विधान स्वीकृत हुआ। इस संविधान के पक्ष में ९०,००,०००, और विरोध में

७०,००,००० मत आये। इस संविधान के अन्तर्गत फ्रांस के चतुर्थ प्रजातन्त्र शासन का श्रीगणेश हुआ। अप्रैल व अक्टूबर के शासन विधान में जो विशेष ध्यान देने योग्य अन्तर है वह पार्लियामेंट के संगठन के सम्बन्ध में है। पहले संविधान में एक सदन की पार्लियामेंट थी, उस नये संविधान ने दो सदनों का आयोजन किया है। पहले मसविदे में विधान के सब संशोधनों पर लोक-निर्णय आवश्यक था किन्तु नये संविधान में बिना लोक-निर्णय के भी विधान-संशोधन सम्भव है। दोनों मसविदों में प्रेसीडेंट की शक्तियों के सम्बन्ध में भी भारी अन्तर है। नये संविधान में पूर्व संविधान में दिये हुये मूलाधिकारों को कम कर दिया गया है।

शासन-विधान के सिद्धान्त—सन् १९४६ का फ्रांस का शासन-विधान एक विचित्र ढंग का है। इसकी प्रस्तावना में ही उन सिद्धान्तों की जिन पर यह बनाया गया है घोषणा कर दी गई है और उसमें नागरिकों के रक्षित अधिकारों का भी उल्लेख कर दिया गया है। यह मनुष्य की व नागरिकों की स्वतन्त्रता की घोषणा करता है। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य के चाहे वह किसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का हो, कुछ पुनित अधिकार हैं जो दूसरे को सौंपे नहीं जा सकते। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह काम करे और यह अधिकार है कि उसे जीविका का साधन दिलाया जाय। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी मजदूर संघ का सदस्य होने के लिए स्वतन्त्र है और उस संघ द्वारा प्राप्त सुविधाओं व अधिकारों का भोग करने के लिए तन्त्रहीन हैं। मजदूरों को कानून की सीमा के अन्तर्गत हड़ताल करने का अधिकार है, वे सामुदायिक रूप से अपनी मजदूरी आदि का सौदा करने के लिए स्वतन्त्र हैं। अपाहिज व अनाथ व्यक्ति समाज से भरण-पोषण के साधन ले सकते हैं। सब बच्चों व युवा पुरुषों को व्यवसायिक शिक्षण व संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार है। संविधान सब को, विशेष कर बच्चों, माताओं और वृद्धों को, स्वास्थ्य, जीविका, विश्राम व अवकाश प्राप्त कराने का संकल्प करता है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार दे दिये गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शासन-विधान में यह कहा गया है कि पारस्परिकता के आधार पर फ्रांस शान्ति के लिये अपनी सर्वोच्च सत्ता पर अंकुश रखने को तैयार है।

संविधान में यह कहा गया है कि फ्रांस एक प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य है। "स्वतन्त्रता, समानता व मित्रता" यह इसका मूलमन्त्र है "जनता द्वारा

ज़नता के लिये जनता की सरकार" यह इसका सिद्धांत है। राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता फ्रांस की जनता में विहित है। इस सत्ता को वैधानिक मामलों में जनता अपने प्रतिनिधियों द्वारा या लोक निर्णय द्वारा कार्यान्वित करती है। दूसरे मामलों में जनसत्ता नेशनल असेम्बली में प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा (गुप्त शलाका से) चुने हुए प्रजा के प्रतिनिधियों से कार्यान्वित होगी। फ्रांस के सब नागरिक (स्त्री या पुरुष) जो प्रौढ़ावस्था में पहुंच चुके हों और नागरिक अधिकार से वंचित न हों, वे निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

विधानमण्डल

नये प्रजातंत्रात्मक शासन में पार्लियामेंट व्यवस्थापन कार्य करती है। इस पार्लियामेंट के दो सदन हैं, एक नेशनल असेम्बली और दूसरा प्रजातंत्र की कौंसिल कहलाता है। दोनों सदनों के प्रतिनिधि प्रादेशिक आधार पर चुने जाते हैं। नेशनल असेम्बली अर्थात् लोक सभा प्रौढ़ मतधिकार से चुनी जाती है, कौंसिल जो दूसरा या ऊपरी सदन है अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा प्रांतीय निर्वाचन संघों द्वारा चुनी जाती है।

असेम्बली का कार्यकाल, इसकी निर्वाचन-पद्धति और अन्य सम्बन्धित बातें अधिनियम द्वारा निश्चित होती हैं। कौंसिल के सदस्यों की अवधि छः साल है। आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और नये सदस्य चुने जाते हैं। नेशनल असेम्बली भी अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली से कौंसिल के कुछ सदस्यों के छटे भाग के बराबर सदस्यों को चुनती है। कौंसिल के सदस्यों की कुल संख्या नेशनल असेम्बली के कुल सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई से कम और आधे से अधिक नहीं हो सकती।

प्रत्येक सदन अपने सदस्यों के चुनाव के वैध अवैध होने के सम्बन्ध में और उनकी योग्यता के सम्बन्ध में पृथक पृथक निर्णय करता है।

५ अक्टूबर सन् १९४६ को संविधान परिषद् ने एक अधिनियम बनाया जिसके अनुसार नेशनल असेम्बली के सदस्यों की संख्या ६१९ निर्धारित की गई। (फ्रांस के ५४४, ऐलजियर्स के ३० और समुद्रपार के प्रदेशों के ४५ प्रतिनिधि निश्चित किये गये)। पहला निर्वाचन १० नवम्बर १९४८ को हुआ। प्रत्येक पक्ष को अपनी लिस्ट से वोटों के अनुपात से सदस्य मिले। कौंसिल के सदस्यों की कुल संख्या ३० निर्धारित की गई जिनमें फ्रांस को २५५, ऐलजियर्स को १४ और समुद्रपार प्रदेशों को ५१ सदस्य दिये गये।

कौंसिल का प्रथम निर्वाचन नवम्बर १९४८ में हुआ। दोनों सदनों की बैठकें साथ साथ होती हैं। नेशनल असेम्बली अपनी वार्षिक बैठक प्रति वर्ष जनवरी के दूसरे मंगलवार को आरम्भ करती है, बैठकों में जनता दर्शक की तरह जा सकती है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर गुप्त बैठकें भी हो सकती हैं। दोनों सदन संयुक्त बैठक में प्रेसीडेंट का चुनाव करते हैं।

सदस्यों के अधिकार और उनको प्राप्त विशेष सुविधायें—जैसे अन्य प्रजातंत्रों में वैसे ही फ्रांस में व्यवस्थापकों को कुछ अधिकार और विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। पार्लियामेंट के भीतर उन्हें बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता है। अपने भाषण में कही हुई किसी बात पर या अपने कर्तव्य का पालन करते हुये अपना मत प्रकट करने पर न उन्हें पकड़ा जा सकता है न उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है, न उन्हें दण्ड दिया जा सकता है। बिना सदन की अनुमति के उसके किसी सदस्य को पार्लियामेंट के सत्र में किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता पार्लियामेंट के सदस्यों को कानून से निश्चित भत्ता मिलता है। कोई भी व्यक्ति दोनों सदनों का एक ही समय में सदस्य नहीं हो सकता न पार्लियामेंट का कोई सदस्य एक ही समय पार्लियामेंट का और आर्थिक परिषद् या फ्रांस की असेम्बली का सदस्य रह सकता है।

सादनों का व्यावहारिक रूप—दोनों सदन वार्षिक बैठक के आरम्भ में ही अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली से सचिवों का चुनाव कर लेते हैं। सचिवों में विभिन्न राजनैतिक पक्षों के प्रतिनिधि पक्ष की संख्या के अनुसार आ जाते है। प्रेसीडेंट पार्लियामेंट को बुलाता है। प्रधानमंत्री या नेशनल असेम्बली के एक तिहाई सदस्य बैठक होने की माँग कर सकते हैं। नेशनल असेम्बली लोकप्रिय होने से कौंसिल से अधिक शक्तिशाली है। अधिनियमों का निर्णय नेशनल असेम्बली ही कर सकती है, यह अपनी इस शक्ति को दूसरे किसी संस्था को नहीं सौंप सकती। प्रधानमंत्री और पार्लियामेंट के सदस्य प्रस्तावों व योजनाओं को पार्लियामेंट के सम्मुख रख सकते हैं। कौंसिल अधिनियमों को दुहराने वाला सदन है यह केवल अधिनियमों के बनाने में देर लगा सकता है। कौंसिल के सदस्य भी कौंसिल में योजनाओं का प्रस्ताव कर सकते हैं। प्रस्ताव के होने के बाद ये योजनायें कौंसिल के सचिवालय में जमा हो जाती हैं। और फिर वहां से वे नेशनल असेम्बली के सचिवालय को भेज दी जाती हैं। जिन विधेयकों का प्रस्ताव असेम्बली के प्रतिनिधि करते हैं वे भी असेम्बली के सचिवालय में जमा हो जाते हैं।

इन जमा किये हुये या कौंसिल के सचिवालय से भेजे हुये प्रस्तावों पर असेम्बली से नियुक्त समितियां विचार करती हैं। जब कोई योजना असेम्बली में स्वीकार हो जाती है तब वह कौंसिल में भेज दी जाती है। कौंसिल को इस योजना पर अपनी राय दो मास के भीतर देनी पड़ती है। बजट के लिये दो मास का यह समय इतना घटाया जा सकता है कि वह उस समय से अधिक न हो जो असेम्बली ने बजट पर विचार करने और पार (पास) करने में लगाया हो। आवश्यकता पड़ने पर नेशनल असेम्बली किसी अन्य आवश्यक विषय में भी कौंसिल के विचारार्थ दो मास के समय को घटा सकती है। यदि निश्चित समय के भीतर कौंसिल अपनी राय नहीं दे पाती तो नेशनल असेम्बली से जिस रूप में विधेयक पास हो चुकता है उसी रूप में कानून घोषित कर दिया जाता है।

यदि कौंसिल योजना से सहमत नहीं होती और संशोधन का सुझाव पास करती है तो नेशनल असेम्बली योजना पर पुनर्विचार करती है और ऐसा करने में कौंसिल के संशोधन पर ध्यान रखती है। उसके पश्चात् उस योजना पर खुले तौर पर मत लिया जाता है और कुल सदस्यों के बहुमत से ही वह योजना पास हो सकती है।

राज्यकोष पर असेम्बली का पूरा अधिकार रहता है। असेम्बली में ही बजट के प्रस्ताव रखे जा सकते हैं। इन प्रस्तावों में आय व्यय के अतिरिक्त और कोई विषय नहीं रह सकता, नेशनल असेम्बली आय-व्यय के हिसाब पर हिसाबी न्यायालय (Account Courts) के द्वारा नियन्त्रण करती है। सामान्य क्षमादान पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुये कानून से ही दिया जा सकता है।

आर्थिक परिषद्—फ्रांस के शासन-विधान पर उन समाजवादी प्रवृत्तियों की छाप लगी हुई है जो पिछले बीस साल में फ़्रांस की राजनीति में प्रमुखतया दृष्टिगोचर होती रही है। शासन विधान में एक आर्थिक परिषद् के स्थापित करने का आयोजन है, इस परिषद् के वही कर्तव्य हैं जो जर्मनी में वीमार (Weimar) शासन-विधान के अन्तर्गत स्थापित राष्ट्रीय-आर्थिक-परिषद् (National Economic Council) के कर्तव्य थे। फ्रांस की आर्थिक परिषद् की क्या शक्ति होगी यह साधारण कानून से निश्चित हो सकता है। जर्मनी की परिषद् की शक्तियाँ संविधान द्वारा ही निश्चित थीं। फ्रांस की आर्थिक-परिषद् सरामर्श देने वाली संस्था है जो उसके क्षेत्र में पड़ने वाली अधिनियम योजनाओं की परीक्षा करती है और उनके पास होने के पूर्व उनके

बारे में अपनी राय देती है। कुछ योजनाओं पर विचार करने और पास करने के पूर्व असेम्बली उन्हें इस आर्थिक-परिषद् के पास उसकी राय के लिये भेजती है। फ्राँस की मन्त्रिपरिषद् भी आवश्यकता पड़ने पर इस परिषद् से सलाह ले सकती है। किन्तु सारी जनता को काम दिलाने वाली और राष्ट्र की द्रव्य सम्पत्ति का युक्तिसंगत उपयोग कराने वाली आर्थिक योजना अपनाने के लिये इस आर्थिक परिषद् की सलाह लेना अनिवार्य है। समाजवादी इस परिषद् से संतुष्ट होंगे या नहीं यह देखना है। भय यह है कि कहीं जर्मनी की परिषद् के समान यह भी असफल सिद्ध न हो।

चतुर्थ प्रजातन्त्र की कार्यपालिका

चतुर्थ प्रजातन्त्र की सरकार की कार्यपालिका का दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है, एक नाममात्र की कार्यपालिका जैसे प्रेसीडेंट और दूसरी वास्तविक कार्यपालिका जैसे मन्त्रिपरिषद्।

प्रेसीडेंट—राज्य का अध्यक्ष प्रेसीडेंट कहलाता है जिसको चुनने के लिए दोनों सदन अपनी संयुक्त बैठक करते हैं और किसी व्यक्ति को प्रेसीडेंट चुनते हैं, वह ७ वर्ष के लिये चुना जाता है। एक ही व्यक्ति दो बार लगातार प्रेसीडेंट निर्वाचित हो सकता है किन्तु तीसरी बार नहीं हो सकता। १६ जनवरी १९४७ को नेशनल असेम्बली और कौंसिल के संयुक्त सम्मेलन में पहले प्रेसीडेंट का निर्वाचन हुआ। उन राज्य घरानों के व्यक्ति जिन्होंने फ्राँस में राज्य किया है प्रेसीडेंट नहीं बनाये जा सकते। राज्य का अध्यक्ष होने से सब सरकारी उत्सवों में जिसका अगुआ समझे जाने के अतिरिक्त प्रेसीडेंट की कुछ निश्चित शक्तियां और कर्तव्य भी हैं। वह मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में सभापति रहता है और उन बैठकों की कार्यवाही की रिपोर्ट को अपने पास सुरक्षित रखता है। वह राष्ट्रीय सुरक्षा-समिति में भी सभापति का आसन ग्रहण करता है और सेनाध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता है। मजिस्ट्रेटों की उच्च समिति का भी वह सभापति होने से क्षमादान की शक्ति का उपभोग करता है।

नियुक्ति करने की शक्ति—नियुक्तियां करने की प्रेसीडेंट को भारी शक्ति है। वह प्रधान मन्त्री को नियुक्त करता है और प्रधान मन्त्री की सलाह से दूसरे मन्त्रियों को। इनके अतिरिक्त प्रेसीडेंट (१) ग्राँड चाँसलर आफ दी लीजन आफ औनर, (२) राजदूतों, (३) राष्ट्रीय सुरक्षा समिति व उच्चसमिति के सदस्यों, (४) विश्व विद्यालयों के कुलपतियों, (५) प्रान्तीय अधिकारियों,

(६) केन्द्रीय शासन के अध्यक्षों, (७) सामान्य अफसरों और, (८) विदेशों में सरकार के प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है।

प्रेसीडेंट और विधानमंडल—राज्य का अध्यक्ष होने से प्रेसीडेंट विधान-मंडल द्वारा पास किये हुये विधेयकों को घोषित कर कानून का रूप देता है, यह घोषणा असेम्बली से विधेयक के प्राप्त होने के दस दिन के भीतर करनी पड़ती है। यदि आवश्यक हो तो असेम्बली इस समय को घटा कर पांच दिन कर सकती है। प्रेसीडेंट यदि चाहे तो इस समय के भीतर असेम्बली से विधेयक पर पुर्नविचार करने के लिये कह सकता है। यदि प्रेसीडेंट न घोषणा करे और न पुर्नविचार के लिये विधेयक को वापस करे तो असेम्बली का सभापति इसकी घोषणा कर इसे कानून का रूप देता है। प्रेसीडेंट नेशनल असेम्बली को संदेश भेज कर उसे अपने विचारों से सूचित कर सकता है।

प्रेसीडेंट संविधानिक अध्यक्ष है—यह निस्संदेह ठीक है कि तृतीय प्रजा-तंत्र की अपेक्षा चतुर्थ प्रजातंत्र में प्रेसीडेंट की शक्तियां कहीं अधिक हैं परन्तु फिर भी ये अमेरिका के प्रेसीडेंट की शक्तियों से बहुत कम हैं क्योंकि प्रेसीडेंट का कोई भी आदेश वैध नहीं समझा जाता यदि उसपर प्रधानमंत्री या किसी मंत्री के हस्ताक्षर नहीं होते। इससे स्पष्ट है कि वह केवल एक वैधानिक अध्यक्ष है जो मंत्रिपरिषद् की सलाह से कार्य करता है।

मंत्रिपरिषद्—वास्तविक शासन शक्ति मंत्रिपरिषद् के पास रहती है जो विधानमंडल अर्थात् असेम्बली को उत्तरदायी है। परिषद् बनाने का ढंग यहां अन्य संसदात्मक राज्यों में सामान्य तथा अपनाये जाने वाले ढंग से भिन्न है। शासन विधान के ४५ वें अनुच्छेद में कहा गया है कि "प्रत्येक विधानमंडल के कार्यारम्भ होने पर रीत्यानुसार सलाह लेकर प्रेसीडेंट प्रधानमंत्री नियुक्त करेगा।" दृढ़ मंत्रिपरिषद् बनाने के उद्देश्य से परिषद् बनाने से पूर्व प्रधानमंत्री नेशनल असेम्बली का विश्वास एक निश्चित विश्वास प्रस्ताव द्वारा प्राप्त कर लेता है। यदि प्रतिनिधि पूर्ण मताधिक्य से प्रधानमंत्री में अपना विश्वास प्रकट करते हैं तो प्रधानमंत्री अपने मित्र मंत्रियों को चुनना आरम्भ करता है और उसके नाम प्रेसीडेंट के सामने प्रस्तुत करता है जो अपने आदेश से घोषित कर देता है।

प्रधान मंत्री की शक्तियाँ—प्रधानमंत्री कुछ विशेष शक्तियों का उपभोग करता है। विधान-मंडल से पास हुये सब अधिनियमों को कार्यान्वित करने का वह प्रबन्ध करता है। कुछ अफसरों को छोड़कर जिनकी नियुक्ति प्रेसीडेंट

करता है, बचे हुए सब अफसरों को (शासन के व सेना के) प्रधान मंत्री नियुक्त करता है। प्रधानमंत्री सेना के संचालन का प्रबन्ध करता है और सुरक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित कराने का आवश्यक प्रबन्ध करता है। किन्तु एक विचित्र बात यह है कि इन सब कार्यों के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री जो आदेश देता है उन पर किसी एक मंत्री के समर्थन सूचक हस्ताक्षर होना आवश्यक है। ऐसी प्रथा अन्य संसदात्मक राज्य संगठनों में प्रचलित नहीं है। वैधानिक दृष्टि से फ्रांस के प्रधान मंत्री का पद अन्य देशों के प्रधान मंत्री से ऊँचा है।

मंत्रिपरिषद् और विधानमंडल— मंत्रिपरिषद् और मंत्रियों के उत्तरदायित्व का रूप संविधान द्वारा निश्चित है। वे नेशनल असेम्बली को (कौंसिल को नहीं) परिषद् की सामान्य नीति के लिए सामुदायिक रूप से उत्तरदायी हैं और अपने वैयक्तिक कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी रहते हैं। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् की सलाह से कभी भी निश्चित प्रस्ताव द्वारा अपने प्रति नेशनल असेम्बली के विश्वास की परीक्षा कर सकता है। असेम्बली का अविश्वास पूर्णमताधिक्य (Absolute Majorty) से ही मान्य ठहराया जा सकता है। पूरे एक दिन तक अपने पास रखने के पश्चात् यदि नेशनल असेम्बली मंत्रिमंडल की निन्दा करने वाला प्रस्ताव पास कर दे तो मंत्रिमंडल पदत्याग कर देता है। नेशनल असेम्बली के सदस्यों का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधिक-प्रणाली से होता है जिससे प्रत्येक राजनैतिक पक्ष के कुछ न कुछ प्रतिनिधि निर्वाचित हो ही जाते हैं। इस प्रकार असेम्बली में कई राजनैतिक पक्ष या समूह रहते हैं। इन पक्षों की अनेकता के कारण ही तीसरे प्रजातंत्र में मंत्रिपरिषदें अस्थिर रहा करती थीं। किन्तु चतुर्थ प्रजातंत्र की परिषद् में स्थिरता लाने के लिए संविधान द्वारा यह आयोजन कर दिया गया है कि यदि १८ मास के भीतर दो बार मंत्रिपरिषद् पर संकट आवे तो परिषद् प्रेसीडेंट की सम्मिति से असेम्बली का विघटन करा सकती है। विघटन का निर्णय प्रेसीडेंट के आदेश से होता है। असेम्बली के विघटन हो जाने पर प्रधानमंत्री व गृहमंत्री को छोड़कर परिषद् के सब मंत्री सामान्य काम चलाने के लिए अपने पदों पर स्थित रहते हैं। इस अन्तरिम काल के लिए प्रेसीडेंट असेम्बली के सभापति को प्रधानमंत्री नियुक्त कर देता है। यह प्रधानमंत्री असेम्बली के सचिवालय (Secretariat) की सलाह से किसी मंत्री को गृहमंत्री बनाता है। विघटन हो जाने के पश्चात् कम से कम २० और अधिक से अधिक ३० दिन के भीतर नई असेम्बली निर्वाचित हो जाती है और सामान्य निर्वाचन के पश्चात् तीसरे मंगलवार को अपनी बैठक करती है।

मन्त्रियों के दोनों सदनों में उपस्थित रहने और बोलने का अधिकार रहता है। प्रधानमन्त्री अपनी शक्तियों को किसी अन्य मन्त्री के सुपुर्द कर सकता है। मृत्यु होने से प्रधानमन्त्री का स्थान रिक्त होने पर परिषद् अपने में से किसी को प्रधानमन्त्री नियुक्त कर देती है। यह व्यक्ति नये प्रेसीडेंट द्वारा प्रधानमन्त्री के नियुक्त होने तक प्रधानमन्त्री का काम करता रहता है।

प्रेसीडेंट और मन्त्री अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी रहते है। ४२ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रेसीडेंट पर देशद्रोह का अभियोग लगाया जा सकता है। इस अभियोग का प्रस्ताव नेशनल असेम्बली द्वारा पास होना चाहिये। उसके पश्चात् हाई कोर्ट उस अभियोग की परीक्षा करती है। यह हाई कोर्ट इस काम के लिए नये विधानमंडल की प्रथम बैठक में ही निर्वाचित कर दी जाती है। मन्त्री भी, अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जो अपराध कर बैठें उसके लिए दण्ड के भागी हो सकते हैं। असेम्बली ही गुप्त शलाका द्वारा और पूर्ण मताधिक्य से यह निश्चय करती है कि प्रेसीडेंट या मन्त्रियों पर देशद्रोह या अन्य किसी अपराध का अभियोग लगाकर उसकी जाँच की जाय या नहीं।

शासन-विधान का संशोधन

संविधान में उसके सुधार की रीति स्पष्टतया निश्चित कर दी गई है। संशोधन-कार्य में दो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। एक यह कि प्रजातन्त्रात्मक गण-राज्य का रूप संविधान-संशोधन से नहीं बदला जा सकता। दूसरा कौंसिल के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई भी संशोधन का प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नहीं हो सकता जब तक कि उस प्रस्ताव में कौंसिल सहमत न हो या जब तक उस पर लोक-निर्णय न लिया गया हो। जब तक फ़ांस की राष्ट्रीय भूमि पर विदेशी सेनायें रहें तब तक संविधान-संशोधन की कोई कार्यवाही न आरम्भ की जा सकती है न जारी रखी जा सकती है।

उपर्युक्त प्रतिबन्धों के अन्तर्गत शासन-विधान का संशोधन इस प्रकार हो सकता है। प्रथम नेशनल असेम्बली इस विषय का प्रस्ताव पास करती है जो पूर्णमताधिक्य से ही पास हो सकता है। इस प्रस्ताव में संशोधन के उद्देश्य का उल्लेख होता है। पास हो जाने के बाद वह प्रस्ताव कौंसिल को भेज दिया जाता है। यदि कौंसिल में भी वह प्रस्ताव पूर्णमताधिक्य से स्वीकृत हो जाता है या स्वीकार न होने पर असेम्बली पूर्वत् पुनः उसे पास कर देती है तो असेम्बली उस संशोधन का मसविदा तैयार करती है। विधान-संशोधन

के विधेयक (Bill) को पार्लियामेण्ट सामान्य विधेयकों के समान विचार करने के पश्चात् पास कर सकती है। पास हो जाने के बाद यह लोक-निर्णय के लिये रखा जाता है। यह संशोधन लोक-निर्णय के लिये नहीं रखा जाता है यदि (१) द्वितीय वाचन में असेम्बली उसे दो-तिहाई मताधिक्य से पास कर दे या (२) दोनों सदनों में ३/५ के मताधिक्य से वह स्वीकृत हुआ हो। इससे स्पष्ट है कि फ्रांस के संविधान का संशोधन एक विचित्र ढंग पर होता है जिससे इसका संशोधन कठिन साध्य है। इन दोनों अवस्थाओं को छोड़ कर संशोधन के लिये लोक-निर्णय आवश्यक होने से इस पर प्रजा का नियन्त्रण रहता है।

फ्रांस में एक वैधानिक समिति भी है जिसका सभापति प्रेसीडेंट होता है और प्रेसीडेंट के अतिरिक्त नेशनल असेम्बली का सभापति, कौंसिल का सभापति और १० अन्य व्यक्ति सदस्य होते हैं। इन दस में से सात को असेम्बली चुनती है और ३ सदस्यों को कौंसिल। ये दसों सदस्य पार्लियामेण्ट के सदस्य न होने चाहियें। इनका निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली से होता है। इस समिति का यह काम है कि किसी अधिनियम के पास होने पर यह निश्चय करे कि उस अधिनियम से शासन-विधान का संशोधन होता है या नहीं, यदि उस अधिनियम के बन जाने से विधान संशोधन होता हो तो विधिपूर्वक संशोधन होते समय तक उस अधिनिमय की घोषणा नहीं की जाती।

दूसरे राष्ट्रों से जो संधियाँ की जाती हैं वे अनुसमर्थित होकर प्रकाशित होने पर राष्ट्र के कानून के समान लागू होती हैं चाहे वे राष्ट्र के अन्य कानूनों के विरुद्ध हों। उनको लागू करने के लिये उन्हें स्वीकार करने के अतिरिक्त किसी और अधिनियम को बनाने की आवश्यकता नहीं होती। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वाली व युद्धांत वाली सन्धियाँ, व्यापारिक समझौते और वे सन्धियां जिनको कार्यान्वित करने में राज्यकोष से धन व्यय करना पड़े, या जिनका फ्रांस के नागरिकों के मान पर दूसरे राष्ट्रों में प्रभाव पड़ता हो, वे सन्धियाँ जिनका प्रभाव राष्ट्रीय कानूनों पर पड़ता हो या जिनसे राष्ट्र की भूमि दूसरों को दी जाती हो, या उसमें वृद्धि होती हो, ये सब तब तक लागू नहीं होतीं जब तक अधिनियम बनाकर ये स्वीकृत न कर ली गई हों। इस प्रकार स्वीकृत हो जाने पर इनमें न कोई संशोधन हो सकता है, न इन्हें स्थापित किया जा सकता है जब तक कि सामान्य कूटनैतिक रीति से उन्हें अमान्य न कर दिया गया हो।

न्यायपालिका

ब्रिटिश और फ्रेंच संविधान प्रणालियों में एक महत्वपूर्ण अन्तर इन दोनों देशों के कानून और न्यायालयों के विकास का है। इसका कारण यह है कि "बहुत पहले ही इङ्गलैंड में राजसत्ता और राष्ट्रीय भावना का विकास हो चुका था जिससे सामन्तशाही और उसकी शक्ति पर नियंत्रण रहा और देश में सब को एक सूत्र में बाँधने वाले अधिनियम की सृष्टि हुई और राजन्यायालयों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई थी।"[१] इसके विपरीत फ्रांस में सन् १७८८ की क्रांति के समय तक कोई सार्वजनिक अधिनियम प्रणाली न थी। राजा की आज्ञाओं, घोषणाओं व अध्यादेशों (Ordinances) के अनुसार न्यायकार्य चलता था। इसकी कमजोरी फ्रांस की क्रांति के नेताओं से छिपी न रह सकी। उन्होंने पुरानी न्यायपद्धति को तोड़ दिया और उसके स्थान पर सामान्य अधिनियम का निर्माण किया। नैपोलियन ने फ्रांस के अधिनियम को क्रमबद्ध करने का महत्वपूर्ण काम अपने हाथ में लिया। कोड नैपोलियन (Code Napoleon) उसकी ऐसी कृति थी जो बहुत समय तक जीवित रही। उससे फ्रांस में एक अधिनियम और एक न्याय-पद्धति की स्थापना हुई। बाद में जो कुछ प्रयत्न इस ओर हुआ वह उस कोड को अधिक विस्तृत करने या सुधारने के लिये किया गया, उसके मूल सिद्धांतों में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं हुई।

फ्रांस की न्यायपालिका के सिद्धांत—फ्रांस में प्रत्येक न्यायालय अपना निर्णय देने में स्वतन्त्र है, उसके ऊपर पूर्ववर्ती निर्णयों का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। एक न्यायालय में कोई एक न्यायाधीश ऐसा निर्णय दे सकता है जो उसी न्यायालय में दिये हुये किसी दूसरे पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा दिये हुये निर्णय के बिलकुल विरुद्ध हो। ऐसी बात इङ्गलैंड में संभव नहीं है। वहाँ पूर्ववर्ती निर्णयों का आदर किया जाता है। दूसरे, फ्रांस का शासन-विधान (जो लिखित और कठिन परिवर्तनशील है), देश का सर्वोच्च अधिनियम कानून है और सिद्धांततः न्यायालयों को यह अधिकार है कि वे अमरीकन न्यायपालिका के समान किसी ऐसे अधिनियम को अवैध घोषित कर सकते हैं जो उनकी राय में संविधान के अनुकूल न हो। यह अवश्य है कि फ्रांस के किसी न्यायालय ने इस अधिकार को कभी काम में नहीं लिया। इसका कारण यह है कि फ्रांस के न्यायालयों का निर्माण पार्लियामेंट करती है, इसलिये ज्योंही कोई न्यायालय किसी अधिनियम को अवैध घोषित करे,

[१] मुनरो: गवर्नमेंट्स आफ यूरोप, पृ० ५१५-१६

पार्लियामेंट कानून को अवैध घोषित करने की शक्ति उससे छीन सकती है। इससे विपरीत अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) की शक्ति संविधान से प्रदत्त है। कांग्रेस किसी न्यायालय को उस शक्ति व अधिकार से वंचित नहीं कर सकती। "फ्रांसिसियों की यह आदत नहीं है कि वे न्यायपालिका को सरकार का एक पृथक विभाग मानें जो कार्यकारी व विधायक विभाग से बिलकुल अलग हो। किन्तु वे न्यायालयों को वैसा ही प्रशासन कार्यालय समझते हैं जैसे डाकखाना।"* तीसरे, सब न्यायालयों का स्थानिक रूप होता है अर्थात् वे निश्चित स्थानों पर अपना कार्य करते हैं। स्थान-स्थान पर घूम कर न्यायनिर्णय कार्य नहीं करते। चौथे कुछ न्यायालयों को छोड़ कर प्रत्येक में एक से अधिक न्यायाधीश मुकदमे को सुनते हैं। और प्रत्येक निर्णय कम से कम तीन न्यायाधीशों की सम्मति से दिया जाना चाहिये इसके कारण बड़ी संख्या में न्यायाधीश नियुक्त करने पड़ते हैं। पांचवें, फ्रांस में दो प्रकार के न्यायालय हैं, एक तो वे जिनमें साधारण नागरिकों के अभियोगों की जाँच होती है और दूसरे वे प्रशासन न्यायालय (Administrative Courts) जहां सरकारी अफसरों द्वारा किये हुये उन अपराधों की परीक्षा होती है जिनको वे लोग अपने सरकारी काम करने में कर बैठते हैं। फ्रांस में रूल आफ लॉ (Rule of Law) नहीं है, वहां प्रशासन अधिनियम (Administrative Law) का ही विकास हुआ है।

प्रशासन अधिनियम का क्या अर्थ है—प्रशासन अधिनियम वह नियमावली है जिसको फ्रांस की कार्यपालिका ने राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को नियमित करने के लिये बनाया है। यह फ्रांस की अधिनियम-प्रणाली का अंग समझी जाती है। इससे राज्य के पदाधिकारियों की स्थिति व देयता (Liability) निश्चित की गई है, इन राज्य पदाधिकारियों के प्रति नागरिकों के कर्तव्य व अधिकार बता दिये गये हैं और इन कर्तव्यों व अधिकारों को कार्यान्वित करने की पद्धति भी स्थिर कर दी गई है।

फ्रांस में प्रशासन अधिनियम का इतिहास—फ्रांस में प्रशासन अधिनियम (कानून) बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। नैपोलियन ने इसे तत्कालीन स्थिति के अनुकूल होने के कारण अपने कोर्ट में स्थान दे दिया था। नैपोलियन ने दो सिद्धान्त स्थिर कर दिये थे। एक यह कि राज्य पदाधिकारियों के सामान्य नागरिकों से पृथक, कुछ विशेष अधिकार और विशेष सुविधायें उन्हें मिलनी चाहियें। दूसरा यह कि विधायिनी कार्यकारी

* मुनरो—गवर्नमेंट्स आफ यूरोप, पृ० ५२१।

व न्यायकारी सत्ता का ऐसा प्रथकीकरण हो कि न्यायपालिका राज्य कर्मचारियों के काम में हस्तक्षेप न कर सके अर्थात् कार्यकारी सत्ता न्यायकारी सत्ता से नियन्त्रित न हो। इन सिद्धान्तों के मान लेने से प्रशासन अधिनियम के चार सिद्धांत निसृत हुए और व्यवहार सें लाये जाने लगे। पहला, राज्य कर्मचारियों व नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों के नियामक सिद्धान्त उन सिद्धांतों से भिन्न हैं, जिनसे स्वयं नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्ध नियमित होते हैं। दूसरा, राज्य कर्मचारियों और सामान्य नागरिकों के बीच हुए झगड़ों का निबटारा सार्वजनिक न्यायालय में न होकर इस काम के लिये स्थापित विशेष न्यायालयों में होगा। तीसरा, कोई मामला प्रशासन अधिनियम के अन्तर्गत आता है या साधारण कानून के इस प्रश्न को राज्य का अध्यक्ष तय करेगा यानी व्यवहार में अध्यक्ष की ओर से कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) तय करेगी। चौथा, सार्वजनिक न्यायालय के प्रतिबन्ध से राज्य कर्मचारी इस आधार पर रक्षित है कि उसने राज्य का प्रतिनिधि रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने में कोई अपराध किया है।

नैपोलियन काल के समाप्त होने के बाद इस प्रशासन अधिनियम (कानून) में कुछ छोटे-मोटे परिवर्नन किये गये। विशेपतया यह परिवर्तन उस प्रणाली में किया गया जिससे यह कानून कार्यान्वित होता था। यह परिवर्तित प्रणाली अब भी चालू है।

प्रशासन अधिनियम और अधिनियम शासन में भेद—यह कहना कठिन है कि प्रशासन अधिनियम व अधिनियम शासन में कौन अधिक अच्छा है। दूसरे से सामान्य नागरिक अधिकारों की और उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा होती है, किन्तु इससे कानूनीपन बढ़ जाता है और राज्य के प्रति आदर-भाव निर्बल हो जाता है। पहले से राजकर्मचारियों की अधिक रक्षा होती है जो निर्भय होकर और स्थिर मन से शासन-कार्य करते हैं। किन्तु इससे सामान्य व्यक्ति को यह अवसर नहीं रहता कि वह इन राजकर्मचारियों के मनमौजी कानून कार्यों से अपनी रक्षा कर सके।

फ्रांस के न्यायालय—फ्रांस में न्यायालयों की पांच श्रेणियाँ हैं। सब से छोटा न्यायालय कुछ कम्यून समूहों या एक कैंटन के लिए होता है। इस न्यायालय का प्रधान जस्टिस आफ दी पीस (Justice of the Peace) होता है। इस प्रधान को प्रेसीडेंट न्यायमन्त्री की सिफारिश पर नियुक्त करता है। यह ऐसा व्यक्ति होता है जो साधारणतया विधि-अधिनियम शिक्षा का प्रथम प्रमाणपत्र लिये होता है। इसे २५०० से लेकर ५००० फ्रैंक्स

वार्षिक वेतन मिलता है। प्रत्येक कैंटन में एक ऐसा न्यायालय होता है। उसमें छोटे मुकदमे तय होते हैं जिनमें कम से कम ३०० फ्रैंक के मूल्य की सम्पत्ति का झगड़ा हो या जिनमें ५ फ्रैंक का जुर्माना होने वाले अपराध का अभियोग लगाया गया हो। इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एरोन्डाइज़मेंट के न्यायलय में अपील हो सकती है।

एरोन्डाइज़मेंट के न्यायालय—इसके ऊपर दूसरी श्रेणी में एरोन्डाइज़मेंट के न्यायालय (Courts of Arrondizements) होते हैं, प्रत्येक एरोन्डाइज़मेंट एक ऐसा न्यायालय होता है जिसमें एक प्रधान और अन्य न्यायाधीश होते हैं। इसमें नीचे के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती हैं और ३०० फ्रैंक से अधिक मूल्य वाले मुकदमों में इसे प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहता है। १५०० फ्रैंक से कम के मूल्य के मुकदमों में इसका निर्णय अन्तिम रहता है। जिन अपराध सम्बन्धी मुकदमों में ५ फ्रैंक से अधिक जुर्माना किया जा सकता है, वे मुकदमें यहीं सुने जाते हैं। अपराध सम्बन्धी मुकदमों (Criminal Cases) की जांच करते समय इस न्यायालय का नाम करैक्शनल न्यायालय (Correctional Courts) हो जाता है।

पुनर्विचारक न्यायालय—उपर्युक्त दोनों न्यायालयों से ऊँचा न्यायालय पुनर्विचारक न्यायालय (Courts of Appeal) है। ऐसे २७ न्यायालय हैं। ये सामान्यतया अपील सुनते हैं। प्रत्येक न्यायालय में तीन विभाग हैं, दीवानी, फौजदारी और अभियोगी। अन्तिम विभाग में यह निर्णय किया जाता है कि अमुक अपराधी पर मुकदमा चलाया जाय या नहीं।

एसाइज़ न्यायालय (Assize Courts)—इनसे ऊँचा न्यायालय एसाइज़ न्यायालय कहलाता है। इसकी बैठकें प्रमुख प्रान्तीय नगरों में बारी-बारी से होती हैं, इसलिये यह स्थायी न्यायालय नहीं है। इसमें न्यायमन्त्री से नियुक्त किये हुये दो न्यायाधीश और एक प्रधान होता है। यह फ्रांस का फौजदारी (अपराध सम्बन्धी) न्यायालय है जहां पंचों की सहायता से न्याय किया जाता है।

सर्वोच्च पुनर्विचार न्यायालय—न्यायालय के सोपान के सबसे ऊँचे सिरे पर सर्वोच्च पुनर्विचारक न्यायालय (Supreme AppellateTribunal) है। इस न्यायालय में दूसरे सब न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने की क्षमता रहती है।

राज कर्मचारियों के अपराधों की जाँच करने और दण्ड देने के लिये जैसा पहले कहा जा चुका है फ्रांस में पृथक न्यायालय हैं जिन्हें प्रशासन-न्यायालय (Administrative Courts) कहते हैं, इन न्यायालयों के स्थापित करने के कई सिद्धान्त हैं : (१) सरकार के कर्मचारियों को सरकारी योजनाओं को कार्यान्वित करने की पर्याप्त शक्ति देना (२) प्रशासकों को इस बात से भयातुर न करते हुये कि वे एक साधारण न्यायाधीश के द्वारा न्यायालय में अपनी सफाई देने के लिये बुलाये जा सकते हैं, प्रशासन की एकरूपता बनाये रखना। इस प्रकार राज्य का प्रत्येक कर्मचारी अपने राजकार्य में हो जाने वाले अपराधों के लिये सामान्य न्यायालयों में दिये जाने वाले दण्ड से बचा रहता है। इससे स्पष्ट है कि फ्रांस में नागरिकों की अपेक्षा राजकर्मचारियों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। इससे तुरन्त ही मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि फ्रांस में सामान्य नागरिक राज कर्मचारियों के विरुद्ध न्यायसम्बन्धी कोई कार्यवाही नहीं कर सकते और ये लोग जो चाहें सो कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें यह भय नहीं कि सार्वजनिक न्यायालय में उनके अपराध की जाँच होगी। इनके अपराध का निर्णय सार्वजनिक अधिनियम से न होकर उस कानून से होगा जो सरकार से नियुक्त प्रशासन न्यायालय बनाते हैं। किन्तु ऐसी बात वास्तव में नहीं है, यद्यपि यह ठीक है कि प्रशासन अधिनियम के नियम किसी संहिता में नहीं पाये जाते और केवल पूर्व उदाहरणों पर ही निर्भर हैं किन्तु फिर भी इनके विकास पर राजनैतिज्ञों का नहीं वरन् वकीलों का ही प्रभाव रहा है। ये प्रशासन-न्यायालय चाहे कितने ही सरकारी प्रभाव में हों किन्तु निश्चय ही वे सरकार के केवल शासन-विभाग होने से बहुत दूर हैं।"* आचार्य डायसी का कहना है कि इन प्रशासन-न्यायालयों के चाहे कुछ भी दोष हों फिर भी फ्रांस के लोगों में इस प्रणाली को जीवित इसलिये रहने दिया गया है कि वे लोग इसे लाभकारी ही समझते हैं। इसके कटु से कटु आलोचक भी मानते हैं, इस प्रणाली में कुछ व्यावहारिक उपयोगिता अवश्य है और यह फ्रांस की संस्थाओं की आधारभूत भावना के प्रतिकूल नहीं है।"[१] यदि शासन अधिनियम से सामान्य नागरिक राजकर्मचारी को न्यायालय के समक्ष समानता प्राप्त नहीं है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि राजकर्मचारी जो चाहे सो कर सकता है। फ्रांस के लोग राजकर्मचारी की इस युक्ति को अपने वैयक्तिक अधिकारों की रक्षा करने में बाधा नहीं सम-

---

* लौ आफ कंस्टीट्यूशन: पृ० ३७७-७८।

[१] लौ आफ कंस्टीट्यूशन: पृ० ३७७।

झते। इसके विपरीत वे इसे अपने अधिकारों की रक्षा का साधन समझते हैं। राजकर्मचारियों को भी भय रहता है कि स्वेच्छाचारिता के कारण वे अपने पद से हटा न दिये जायं, और अब तो इंगलैंड में भी रूल आफ लौ (Rule of Law) का महत्व कुछ समय से कम होता जा रहा है।

ये प्रशासन न्यायालय दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक प्रान्त में प्रिफेक्टोरियल कौंसिल (Prefectorial Council) होती है और उन सब के ऊपर सारे देश के लिये एक कौंसिल आफ स्टेट होती है। प्रिफेक्टोरियल कौंसिल में राज्य के कर्मचारियों के अभियोग की प्रथम सुनवाई होती है। इस सुनवाई से पहले सरकारी जाँच हो चुकती है। इस कौंसिल के सदस्य प्रेसीडेण्ट के आदेश से नियुक्त होते हैं। न इनको अधिक वेतन मिलता है न ये अधिक समय अपने पद पर रहते हैं, इसलिये योग्य व्यक्ति इस पद को स्वीकार नहीं करते। किन्तु कम से कम दस वर्ष की सरकारी नोकरी का अनुभव वाले और विधि-अधिनियम की शिक्षा पाये हुये व्यक्ति ही इन पदों पर काम करते हैं। कौंसिल आफ स्टेट का मान इससे अधिक वैभवपूर्ण होता है और वह सरकारी प्रभाव व नियंत्रण से अधिक स्वतन्त्र रहती है। इस कौंसिल में न्यायमंत्री व अन्य कुछ मन्त्री सदस्य भी होते हैं। किन्तु जब इन्हीं व्यक्तियों पर लगाये गये अपराध की जाँच होनी है तो ये कौंसिल के सदस्य नहीं रहते। दूसरे सदस्य वकालत करने वाले वकील होते हैं, जो तीन वर्ष तक सदस्य रहते हैं। कुछ महत्वपूर्ण बातों में कौंसिल आफ स्टेट को प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र मिला रहता है। इसके अतिरिक्त यह प्रिफेक्टोरियल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती है। यह मन्त्रिमण्डल को सलाह भी देती है।

स्थानीय शासन

किसी भी देश में स्थानीय शासन राज्यसंगठन का अनिवार्य अंग होता है। इतिहास ऐसा कोई उदाहरण नहीं बतलाता जहां कि एक केन्द्रीय सत्ता ने बिना अपने आधीन शासनाधिकारियों की सहायता से शासन किया हो। विभिन्न स्थानों की आवश्यकताओं को जानने और उन्हें पूरा करने के लिये स्थानीय शासन संस्थायें बड़ी उत्सुक होती हैं। कम से कम आधुनिक काल में एक व्यक्ति का शासन असम्भव है। फ्रांस भी इस नियम में अपवाद नहीं है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि क्रान्तिकारी केवल केन्द्रीय संगठन पर ही आक्रमण कर बदलने का प्रयत्न करते हैं, उसके स्थानीय संगठनों को जैसे का तैसा रहने देते हैं।

क्रान्ति के पूर्व—"सन् १७८९ की क्रांति के पूर्व फ्रांस का शासन केन्द्रित, कर्मचारियों के आधीन चलने वाला (Bureaucratic) अपव्ययी और अक्षम था"।* स्थानीय शासन की कोई प्रणाली प्रचलित न थी। सारा देश प्रांतों में बंटा हुआ था जिनकी स्वाधीनता निरंकुश राजाओं के आ जाने से नष्ट हो चुकी थी। जैनरलाइट (Generalite) ही प्रमुख शासन-जिला था जिसका अध्यक्ष इण्टेंडैंट (Intendant) नाम का एक सरकारी कर्मचारी होता था। वह ही सम्राट का प्रवक्ता होता था। सारी प्रणाली में सामंजस्य न था। वह इन जैनरलाइटों में विभिन्न क्षेत्रफल, जनसंख्या वाले व शासन-संगठन वाले कम्यून होते थे। राजसत्ता के स्थापित हो जाने से इनकी प्रतिनिधिक संस्थायें नष्ट हो चुकी थीं। राजा ने इन स्थानीय शासन पदों को बेचना आरम्भ कर दिया था। कभी-कभी इस पद पर रहने का अधिकार पैतृक भी रहता था जिससे शासन में अक्षमता और जनता में असन्तोष हो जाता था। क्रान्ति के पश्चात् लेखनी के एक झटके से सबको बदल दिया गया। कम्यूनों का फिर से निर्माण हुआ। प्रांतों और जैनरलाइटों के स्थान पर डिपार्टमेंट, डिस्ट्रिक्ट और कटन बनाये गये। इन इकाइयों की संस्थाओं में निर्वाचित व्यक्ति सदस्य बनाये जाने लगे। किन्तु यह जनतंत्रात्मक प्रणाली अधिक दिन न चली, क्योंकि जनता को इस ढंग की शिक्षा न मिल पाई थी। यह प्रणाली समय से कुछ आगे बढ़ी हुई थी जिससे अराजकता फैल गई और प्राचीन केन्द्रित प्रणाली पुनर्जीवित हो गई। सन् १७९५ में सब स्थानीय पदाधिकारी पेरिस की डाइरेक्टरी के आधीन कर दिये गये और अन्त में सन् १८०० से निर्वाचित न होकर वे ऊपर से नियुक्त किये जाने लगे। इसलिये अब फिर एक बार सारे संगठन की शक्ति केन्द्रीभूत है। इस स्थिति में समय के बदलने से परिवर्तन करने की कोई प्रवृत्ति भी नहीं दिखाई देती। फ्रांस में चाहे राजतंत्र रहा चाहे प्रजातंत्र, सभी फ्रांस की एकता की रक्षा करने के लिये चिन्तित रहे और इसका एक उपाय यही था कि सारे शासन-संगठन को पेरिस स्थित शक्ति के आधीन रखा जाय।

कम्यूनः उसकी कौंसिल की बनावट—स्थानीय शासन की सब से छोटी इकाई कम्यून (Commune) होती है। प्रत्येक नगर, कस्बे मोहल्ले और गांव में एक कम्यून होता है। सब की संख्या ३७, ९८३ हैं।[1] सब कम्यून बराबर पद के समझे जाते हैं। उनके विधान का रूप, शक्तियाँ और

---

* ओग—गवर्नमेंट आफ यूरोप, पृ० ४६५।

1 स्टेट्समैन ईयर बुक १९४९ पृ० ९२७।

कर्तव्य एक से हैं। केवल पैरिस और लीयोन्स नगर ही उस नियम में अपवाद-स्वरूप हैं। इन कम्यूनों का औसतन क्षेत्रफल ३६६५ है, कुछ इससे बड़े व कुछ छोटे भी होते हैं। प्रत्येक कम्यून में १० से ३६ सदस्यों तक की एक कौंसिल होती है। ये सदस्य चार वर्ष के लिये प्रौढ़मताधिकार प्रणाली से चुने जाते हैं। निर्वाचन के लिये वार्ड बनाये जाते हैं। २५ वर्ष से ऊपर की आयु वाला कोई भी करदाता कौंसिल की सदस्यता के लिये उम्मेदवार खड़ा हो सकता है। केवल पागल, दिवालिया, सरकारी कर्मचारी और अपराधी व्यक्ति सदस्य नहीं बन सकते। कौंसिल की वर्ष में चार बैठकें अवश्य होनी चाहियें। एक सत्र कम से कम १५ दिनों तक चलना चाहिये; बजट पर विचार करने के लिये यह ६ मास तक बढ़ाया जा सकता है। कम्यून-कौंसिल की कर लगाने व पुलिस रखने की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगे हुये हैं। अधिकतर आर्थिक प्रस्तावों पर प्रीफेक्ट (Prefect) की स्वीकृति होना आवश्यक है। फार्मों और बाजारों से सम्बन्धित मामलों में डिपार्टमेंट के कौंसिल जनरल की स्वीकृति होना आवश्यक है। प्रिफैक्ट कौंसिल को स्थगित कर सकता है। केन्द्रीय सरकार उसका विघटन कर सकती है।

कम्यून-कौंसिल की कार्यवाही—कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी एक को मेयर और या अधिक सहायक मेयर चुन लेते हैं। इनको कोई वेतन नहीं दिया जाता, परन्तु उन्हें कुछ अपरिहार्य कर्तव्य करने पड़ते हैं। जिस नगर में २५००० जन रहते हैं वहाँ मेयर की सहायता के लिये एक सहायक मेयर होता है और जिस नगर की जनसंख्या १००,००० होती है वहाँ दो सहायक मेयर होते हैं। अधिक बड़े कम्यूनों में प्रति २५००० की आबादी पर एक सहायक मेयर नियुक्त किया जाता है। अधिक से अधिक १२ सहायक मेयर हो सकते हैं, केवल लीयोंन्स नगर में १६ सहायक मेयर काम करते हैं। मेयर और सहायक मेयर प्रायः कई बार पुनर्निर्वाचित हो जाते हैं। यहाँ तक कि कोई-कोई मेयर ३० वर्ष तक काम करते रहते हैं। किन्तु ऐसा प्रायः ग्रामीण कम्यूनों में ही अधिक होता है, क्योंकि वहाँ के निवासी परिवर्तन नहीं चाहते। मेयरों के चुनाव में दलबन्दी अधिक होती पाई जाती है। यह कहा जाता है कि मेयर राजनीतिज्ञों का न कि मतदारकों का प्रतिनिधित्व करता है। मेयर कम्यून का सर्वोच्च नागरिक होता है और उत्सवों पर कम्यून का प्रतिनिधित्व करता है। मेयर दो हैसियतों में कार्य करता है। प्रमुखतया वह कम्यून का प्रधान रहता है किन्तु वह राज्य का कर्मचारी भी रहता है और इस हैसियत में वह किसी डिपार्टमेंट के प्रीफैक्ट (Prefect)

के आधीन रहता है। कम्यून का कार्यकारी अध्यक्ष होने के नाते वह म्यूनिसिपल कर्मचारियों को नियुक्त करता है। नियम उपनियमों को प्रकाशित करता है, अध्यादेश निकालता है, आय-व्यय की देखभाल करता है, पुलिस का संगठन व नियंत्रण करता है और न्यायालयों में कम्यून का प्रतिनिधि होता है। राज्य का कर्मचारी होने के नाते वह जन्म, विवाह और मृत्यु का रजिस्ट्रार रहता है। निर्वाचन सूचियों को तैयार करता है, सैनिक सेवा लेने का प्रबन्ध करता है। संक्षेप में अपने शासन में रहने वालों के जीवन, स्वास्थ्य, शांति—यहाँ तक उनकी तन्द्रा तक पर भी चौकीदारी करता है''वह किसी रूप में एक्यभाव का अवतार कहा जाता है। मेयर प्रायः अपने कर्तव्यों को अपने सहायकों में बांट देता है। प्रीफेक्ट एक मास तक के लिये और गृहमंत्री तीन मास तक के लिये उसे स्थगित कर सकता है। प्रेसीडेंट की आज्ञा से ही उसे अपने पद से हटाया जा सकता है।

कैन्टन—कई कम्यून जब निर्वाचन व न्याय-कार्य के लिये एक समूह में मिला दिये जाते हैं तो इस समूह का नाम कैंटन हो जाता है। सन् १९४६ में ३,०२८ कैंटन थे।

ऐरौंडाइज़मेंट—ऐरौण्डाइज़मेंट (Arrondizement) या डिस्ट्रिक्ट (District) डिपार्टमेंट का एक उपविभाग होता है। इसमें कम से कम ९ सदस्यों की एक कौंसिल होती है। ये सदस्य ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। जुलाई या अगस्त में होने वाली बैठकों में यह कौंसिल एरौण्डाइज़मेंट पर लगाये हुए करों में कौन कम्यून कितना कर एकत्र करके देगा यह निश्चय कर देती है। दूसरी बैठकों में डिपार्टमेंट के दूसरे मामले तय होते हैं। इसकी निजी न कोई सम्पत्ति होती है न कोई बजट। एरौण्डाइज़मेंट में उपप्रीफैक्ट की वही स्थिति होती है जो डिपार्टमेंट में प्रीफैक्ट की होती है। वह भी केन्द्रीय सरकार से नियुक्त होता है, किन्तु प्रीफैक्ट से दी हुई शक्तियों को ही काम में ला सकता है। सन् १९३६ में इनकी संख्या २८१ थी।

डिपार्टमेंट—सारा देश ९० डिपार्टमेंटों अर्थात् प्रांतों में बंटा हुआ है। प्रत्येक डिपार्टमेंट का एक अध्यक्ष होता है जिसको प्रिफेक्ट (Prefect) कहते हैं। वह केन्द्रीय सरकार से नियुक्त होता है किन्तु वास्तव में गृहमंत्री और बाहरी रूप से प्रेसीडेंट की आज्ञा से हटाया जा सकता है। वह सबसे महत्वपूर्ण स्थानीय शासक होता है और डिपार्टमेंट का कार्यकारी अध्यक्ष रहने के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि व कार्यकर्ता भी रहता है। वह डिपार्टमेंट के लगभग सभी मामलों की देख-रेख करता है और ऊपर के

अधिकारियों की बड़ी सहायता करता है व उन्हें आवश्यक सूचना देता रहता है। वह अपने आधीन कई कर्मचारियों की नियुक्ति करता और आध्यादेश तथा नियम बना कर लागू करता है। उसकी नियुक्ति अधिकतर राजनीति की दृष्टि से की जाती है। उससे यह आशा की जाती है कि वह तत्कालीन सरकार का राजनैतिक और निर्वाचन प्रतिनिधि रहे। तीन सदस्यों की एक कौंसिल और एक सेक्रेटरी जनरल उसको काम में सहायता देने के लिए होते हैं। कौंसिल के सदस्य प्रशासन कार्य में शिक्षा पाए हुए दक्ष व्यक्ति होते हैं। प्रिफैक्ट उनकी सलाह को मानने पर बाध्य नहीं है। इस कौंसिल का प्रमुख कर्तव्य प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार वाले प्रशासन न्यायालय की तरह काम करना है। कौंसिल-जनरल (Council-General) डिपार्टमेंट की प्रतिनिधिक संस्था है जिसमें १७-६७ सदस्य तक होते हैं। प्रत्येक कैंटन एक सदस्य चुन कर भेजता है। कार्यकाल ६ वर्ष है। आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। यह अपना सभापति स्वयं चुनती है और अपनी कार्यवाही के नियम बनाती है। इसकी बैठकें जनता के लिए खुली होती हैं। डिपार्टमेंट के टैक्सों को निश्चित करना, ऋण लेने की स्वीकृति देना, सड़कों व अन्य सार्वजनिक निर्माण-कार्यों को ठीक रखना, शिक्षालय, अनाथालय आदि का प्रबन्ध करना, ये सब इस कौंसिल-जनरल के कर्तव्यों में से कुछ हैं। यह राजनैतिक प्रश्नों को छोड़ कर अन्य मामलों में प्रस्ताव पास कर सकती है और केन्द्रीय सरकार से पूछे गये प्रश्नों पर अपनी राय दे सकती है, सरकार के आदेश से इसका विघटन हो सकता है। इसे प्रतिवर्ष एक डिपार्टमेंटल स्थायी समिति नियुक्त करनी पड़ती है जिसकी वर्ष में एक बैठक अवश्य होनी चाहिए। यह समिति कौंसिल-जनरल प्रदत्त शक्तियों को काम में लाती है। केवल कर लगाने या ऋण लेने के सम्बन्ध में यह कोई निर्णय नहीं कर सकती।

पेरिस (Paris)—संसार की अन्य राजधानियों के समान पेरिस का शासन फ्रांस के अन्य नगरों से भिन्न और विचित्र है, यहाँ मेयर नाम का कोई अफसर नहीं होता। इसका शासन सीन (Seine) डिपार्टमेंट जैसा है जिसमें पेरिस नगर के अतिरिक्त उसके चारों ओर का प्रदेश भी शामिल है। इस डिपार्टमेंट में दो कार्याध्यक्ष होते हैं, एक सीन का प्रिफेक्ट और दूसरा पुलिस का प्रिफेक्ट। प्रेसीडेंट इन दोनों को नियुक्त करता है और उन्हें उनके पद से हटा सकता है। ये दोनों गृहमन्त्री को उत्तरदायी रहते हैं।

दोनों मिलकर वही काम करते हैं जो किसी डिपार्टमेंट का एक प्रिफेक्ट करता है। पेरिस नगर में उनकी वे ही शक्तियां हैं जो अन्य नगरों में मेयरों की हैं। वास्तव में सीन के प्रिफेक्ट की नियुक्ति राजनैतिक दृष्टि से की जाती है, किंतु इसका यह अर्थ न लगाना चाहिए कि मंत्रिमंडल के बदलने से इस पद पर स्थित व्यक्ति भी बदल जाता है। प्रिफैक्ट और गृहमंत्री आपस में सद्भाव व मेल से रहते हैं चाहे वे दोनों दो विभिन्न राजनैतिक पक्षों के व्यक्ति ही क्यों न हों। प्रिफैक्ट मंत्रिमण्डल के आदेशों के अनुसार ही कार्य करता है। उसे स्वयं किसी नये कदम को उठाने की स्वतंत्रता नहीं होती। पुलिस से सम्बन्धित भाग को छोड़कर वह नगर का बजट बनाता है और डिपार्टमेंट की वह सार्वजनिक सम्पत्ति की देखभाल करता है। फ्रांस ही में नहीं परन्तु सारे योरुप भर में किसी स्थानीय अधिकारी को इतनी प्रशासन शक्तियां नहीं मिली हुई हैं जितनी सीन (Seine) डिपार्टमेंट के प्रिफैक्ट को प्राप्त हैं। वह अपने कार्यों के लिए कौंसिल को सीधा उत्तरदायी नहीं रहता। कौंसिल से झगड़ा होने पर वह कह सकता है कि "मुझे मंत्रिमंडल ने पहले ही से सहायता देने का विश्वास दिला रक्खा है"। पुलिस का प्रिफैक्ट सीन के प्रिफैक्ट का सहकारी होता है और वह भी कौंसिल को उत्तरदायी नहीं होता। वह पेरिस की पुलिस का अध्यक्ष होता है और उसके विभिन्न विभागों में काम करने वाले पुलिस कर्मचारियों के वेतन उन्नति व अनुशासन को सुव्यवस्थित रखता है।

कौंसिल की बनावट—पेरिस नगर में एक नगरपालिका कौंसिल है जिसमें ८० सदस्य होते हैं, इस कौंसिल को प्रायः वे सब शक्तियाँ प्राप्त हैं जो साधारणतया नगरपालिका कौंसिल (Municipal Council) को दी जाती हैं। सीन (Seine) के डिपार्टमेंट की कौंसिल पैरिस नगर की कौंसिल से बड़ी है। इसमें ६८ सदस्य होते हैं। किन्तु वास्तविक शक्ति केन्द्रीय सरकार के हाथ में रहती है न कि उस कौंसिल के हाथ में। पेरिस नगर की कौंसिल स्वयं अपने सभापति, उपसभापति, एक या अधिक सेक्रेटरी और एक उत्सव संचालक (Director of Ceremonies) को चुनती है। इसका कार्यकाल चार वर्ष हैं। निर्वाचन के लिये प्रशासन के लिये निश्चित हुये पैरिस के २० एरोण्डाइज़मेंटों को छोटे-छोटे भागों में बांट दिया गया है। यहां कम्यूनिस्ट और अन्य पक्ष भी हैं। साल में चार बार कौंसिल की नियमित बैठकें होती हैं। इसके अधिकांश काम को इसकी स्थायी समितियाँ निबटा देती हैं जिनकी संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ती रहती है। कुछ समय पहले यह संख्या छः थी। इन समितियों का संगठन करने के लिये

कौंसिल चार भागों में बँट जाती है और प्रत्येक भाग इन स्थायी समितियों के लिये दो, तीन या चार व्यक्तियों की सिफारिश करता है। कुछ समितियां ऐसी भी होती हैं जिनमें कौंसिल के सदस्य व अन्य नागरिक भी मिल कर काम करते हैं। समितियों के कर्मचारी पृथक पृथक नहीं हैं। उनका काम यह है कि वे प्रस्तावों की छानबीन कर कौंसिल के सम्मुख रखती हैं। उनकी सिफारशों को मानने के लिये कौंसिल बाध्य नहीं होती। कौंसिल प्रशासन अधिकारियों का निर्वाचन नहीं करती इसलिये उनकी नीति पर सीधा नियंत्रण भी नहीं रखती। कौंसिल का कोई प्रस्ताव तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकता जब तक सीन (Seine) का प्रिफैक्ट अपनी लिखित सम्मति न दे दे। कौंसिल के राष्ट्रीय नीति पर वाद-विवाद नहीं करने दिया जाता परन्तु प्राय: वह इस प्रतिबन्ध का उल्लंघन किया करती है। इसका मुख्य कार्य बजट पास करना है किन्तु इस काम में भी कानून ने इसके ऊपर कई प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। म्यूनिसिपल, सम्पत्ति के खरीदने, लाइसेंस फीस व बाजार चुङ्गी के बारे में नियम आदि बनाने और वसीयत द्वारा दान स्वीकार करने की विभिन्न शक्तियाँ इसे प्राप्त हैं किन्तु प्रत्येक बात में प्रिफैक्ट की सम्मति होना आवश्यक है। "संसार की अनेक नगरपालिका कौंसिल में पेरिस की कौंसिल सब से कम प्रभावशाली है"।* डाक्टर शौ के कथनानुसार जर्मनी और इंगलैंड के बड़े नगरों की कौंसिलों की अपेक्षा फ्रांस की नगरपालिका कौंसिलें कम सार-युक्त और उत्तरदायी हैं।

फ्रांस में स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन—राज्य के टैक्सों (करों) को स्थानीय संस्थायें उगाहती हैं। इन टैक्सों (करों) में ये संस्थायें कुछ प्रतिशत अपने लिये जोड़ सकती हैं, जिन टैक्सों (करों) में ये योग किया जा सकता है। वे भूमि-कर, मकान-कर, मकानों के किराये पर कर, द्वार व खिड़कियों पर कर, व्यवसाय व व्यापार लाइसेंस कर हैं। प्रत्येक स्थानीय संस्था अपना बजट तैयार कर उस पर विचार करती है। जिन नगरों की आय ३,०००,००० फ्रैंक होती है उनका बजट प्रेसीडेंट से स्वीकृत होता है। प्रेसीडेंट स्वीकृति देने से पूर्व गृहमंत्री से परामर्श कर लेता है। डिपार्टमेंट और कम्यून दोनों ३० वर्ष तक के लिये ऋण ले सकते हैं किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऋण का भार कानून से निश्चित की हुई मात्रा से अधिक न हो। यदि ३० वर्ष से अधिक अवधि वाला कोई ऋण लेना हो तो कौंसिल आफ स्टेट का आदेश लेना आवश्यक है।

* मुनरो: गवर्नमेंट्स आफ यूरोपियन सिटीज़।

सहायक-अनुदान—केन्द्रीय सरकार बहुत से कामो के लिये सहायक अनुदान देती है किंतु ये अनुदान उन्ही कामो मे निश्चित रीति से व्यय करना चाहिये। अपना प्रशासन चलाने के लिये प्रत्येक स्थानीय सस्था अधिकतर उन टैक्सों से वित्त उपार्जित करती है जो विभिन्न वस्तुओ पर लगाये जाते है।

केन्द्रीय नियंत्रण—"यूरोप मे केन्द्रीय सरकार को ही प्रारम्भिक व प्रमुख सत्ता माना जाता है। स्थानीय सरकार का अस्तित्व केन्द्रीय सरकार की सुविधा के लिये ही आवश्यक समझा जाता है न कि किसी स्थान विशेष को लाभ पहुँचाने के लिये।"[१] वास्तव मे केन्द्रीय सरकार अब भी स्थानीय शासन में सक्रिय भाग लेती है। मन्त्रियो को ऐसा करने से शक्तिलाभ नही होता वरन् प्राय. उनकी स्थिति कमजोर हो जाती है। फ्रास की पार्लियामेंट अधिनियम को बडी व्यापक भाषा मे शब्दबद्ध करती है जिससे उन्हे लागू करते समय सरकार को उसमे हेर-फेर करने का पर्याप्त अवसर रहता है।

प्रेसीडेंट और गृहमंत्री का नियंत्रण—गृह विभाग जो अधिकतर स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियंत्रण रखता है, स्थानीय विषयो से सम्बन्धित अध्यादेश और नियम तैयार कर प्रकाशित करता है। इन अध्यादेशो व नियमो पर प्रेसीडेट के हस्ताक्षर व गृहमंत्री की सम्मति लेकर इन्हे प्रिफैक्ट की मध्यस्थता से कम्युन के मेयर को भिजवा दिया जाता है। बहुत से मामलो मे प्रिफैक्ट प्रातीय आदेशों को प्रकाशित करता है। प्रत्येक स्थानीय इकाई के कार्यकारी अध्यक्ष को प्रेसीडेट ही गृहमंत्री की सम्मति से नियुक्त करता और पदच्युत करता है। इसलिये गृहमत्री का बडा कड़ा नियंत्रण रहता है। स्थानीय सस्थाओ को बहुत कम स्थानीय स्वतत्रता मिली होती है। कम्यून कौसिल के कुछ कार्यो के लिये प्रेसीडेट की पूर्वाज्ञा आवश्यक होती है। अन्य विषयों में गृह-विभाग की सम्मति अपरिहार्य होती है। वास्तव मे तो गृहमत्री की सम्मति ही सब विषयो मे आवश्यक होती है, क्योकि प्रेसीडेट का कोई उत्तरदायित्व नही होता। गृह-विभाग के सब कार्य उनके प्रतिनिधि प्रिफैक्ट व उप-प्रिफैक्ट किया करते है।

प्रिफैक्ट का नियंत्रण—डिपार्टमेंट का अध्यक्ष, प्रिफैक्ट (Prefect) कम्यूनो के मामलों की देख-रेख करता है और केन्द्रीय सरकार के आदेशो को स्थानीय सस्थाओ तक पहुँचाता है। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते प्रिफैक्ट कम्यून कौसिल की बैठक की तारीख (दिनाक) निश्चित करता है और यदि वह समझे कि कौसिल के सदस्य अपने अधिकार की

[१] हरमन फाइनर-इगलिश लोकल गवर्नमेंट।

सीमा के बाहर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं तो बैठक को स्थगित भी कर सकती है। केन्द्रीय सरकार शिक्षा प्रणाली का तो प्रबन्ध स्वयं ही करती है। विभिन्न प्रकार की शिक्षा विभिन्न स्थानीय संस्थाओं की देख-रेख में रख दी गई हैं। सरकार की ओर से गरीबों को जो सहायता दी जाती है उसके प्रबन्ध के लिये केन्द्रीय सरकार एक समिति नियुक्त करती है। पुलिस भी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में ही रहती है। पेरिस नगर में गृह-विभाग ही सीधा पुलिस का नियंत्रण करता है। सड़कें भी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में रहती हैं। कम्यून के बजट को कार्यान्वित करने से पूर्व उस पर डिपार्टमेंट के प्रिफैक्ट की स्वीकृति लेनी पड़ती है। जिस कम्यून का बजट ९० लाख फ्रैंक से अधिक होता है उस पर केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। यदि बजट में पुलिस, सड़कें आदि आवश्यक कार्यों के लिये पर्याप्त आयोजन नहीं होता तो प्रिफैक्ट अपनी समझ के अनुसार उसके लिये धनराशि का आयोजन बढ़ा देता है और यदि आवश्यकता हो तो इन आवश्यक सेवाओं के लिये टैक्सों (करों) की मात्रा बढ़ा सकता है। जो विषय बिलकुल स्थानीय प्रकृति के हों उनमें भी प्रिफैक्ट अपनी प्रतिषेधात्मक शक्ति का उपयोग कर सकता है। जब कम्यून-कौंसिल साधारण प्रस्ताव द्वारा किसी कार्य को करने का निर्णय करती है तो प्रिफैक्ट कोई भी कारण देकर उसे अस्वीकृत कर सकता है, किन्तु जब कौंसिल कोई उपविधि (Bye law) बनाती है तो प्रिफैक्ट अवैध होने के कारण ही उसे रद्द कर सकता है अन्यथा नहीं। सब ठेकों, व्यय या सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयोग के लिये प्रिफैक्ट की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। कौंसिल प्रायः साधारण प्रस्तावों से ही निर्णय किया करती है, इसलिए "हिज मैजेस्टी दी प्रिफैक्ट" की सम्मति के बिना वह कुछ भी नहीं करती। किन्तु यदि प्रिफैक्ट अत्याचार करने लगे तो कौंसिल गृहमंत्री से रिपोर्ट कर सकती है। यदि गृहविभाग के निर्णय से कौंसिल असन्तुष्ट रहे तो वह कौंसिल आफ स्टेट से अन्तिम निर्णय की अपील कर सकती है। उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि फ्रांस में स्थानीय शासन पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण कठोर है जिससे सुव्यवस्था की रक्षा होती है, अनाचार नहीं होने पाता और बहुसंख्यक अल्प-संख्यकों पर अत्याचार नहीं कर पाते। किन्तु इस प्रणाली में कई दोष भी हैं और यह लोकप्रिय नहीं है। "यदि विभिन्न छोटे-मोटे अफसर योग्य हों और भ्रष्टाचारी न हों तो केन्द्रीय नियंत्रण वाली प्रणाली स्यात् सबसे उत्तम और सस्ती भी पड़ती है। किन्तु इसमें एक तो नौकरशाही से अत्याचार बढ़ता है दूसरे भ्रष्टाचार होने लग जाता है। हमारे ऊपर उत्तम प्रकार से शासन करने के लिए हम जमींदारों या पूंजीपतियों

की अपेक्षा सरकारी अफसरों से अधिक आशा नहीं कर सकते।"⊙ यह दोष फ्रांस में भी देखने को मिल सकता है।

पाठ्य पुस्तकें

Partblemey, J.—The Government of France.

Buck, P. W. and Masland, J. W.—Governments of Foreign Powers (1947), chs. 9-12.

Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol. I, pp. 233-366.

Finer, H.—The Theory & Practice of Modern Government (Portions dealing with France).

Harris Montague.—Local Government in many Lands pp. 5-25.

Lowell, A. L.—Government and Parties in Continental Europe, Vol. 1, pp. 1-145.

Munro, W. B.—Governments of Europe.

Pioncar, R.—How France is Governed.

Wilson, W.—The State (Chapter on France).

Select Constitutions of the world pp. 385-424.

Statesman's Yearbook (Latest Issue).

⊙ जैनिग—लोकल गवर्नमेंट इन माडर्न कंस्टीट्यूशन, पृ ४५।

अध्याय २१

जापान की सरकार

"जीमूटैनो के सिंहासनारूढ़ होने वाले समय से अब तक जब कि अधिक से अधिक स्पष्टवक्ता समाजवादी भी राजा के विरुद्ध धीमी सी भी आवाज़ निकालने का साहस नहीं करते, सम्राट के प्रति निष्ठा जो आराधना का रूप धारण किये हुए है, जापान के शासन-विधान का ही सिद्धान्त नहीं, किन्तु जापानियों के राष्ट्रीय धर्म का भी सिद्धान्त है।" (जे० एच० लोंगफोर्ड)

"वास्तविकता तो यह है कि ऐतिहासिक युग के आरम्भ से अब तक जितनी अभद्रता से जापानियों ने अपने राजा के साथ व्यवहार किया है वैसा किसी और राष्ट्र या जाति ने अपने राजा के साथ नहीं किया है। जापान में सम्राटों को सिंहासन से हटाया गया, उनकी हत्या की गई। कई शताब्दियों तक हर बार जब राजतिलक हुआ, झगड़े-फिसाद भी हुए। सम्राटों को वनवास भी दिया गया। कुछ की वनवास करते समय हत्या की गई।" (जे० चैम्बरलेन)

"**पश्चिमी रंग में रंगी हुई बुद्धि को**—विशेषकर ब्रिटिश और फ्रांसीसी व्यक्तियों को—जिस निश्चयता से जापान के नेता जापानी नागरिकों से राज्य के लिये पूर्ण आत्म-समर्पण करने का विश्वास रखते हैं, वह बड़ी भयानक प्रतीत होती है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे एक जापानी करने को तैयार न हो, यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि राज्य उससे इस कार्य की आशा रखता है।"

(जी० डी० एच० कोल)

देश का परिचय—चार बड़े द्वीपों व ४०० से अधिक छोटे द्वीपों को मिलाकर हम जापान के नाम से पुकारते हैं। चार द्वीपों में होंडो या होंशू नाम का एक द्वीप है जिसका क्षेत्रफल ८७,३७३ वर्ग मील है। जापान का यह सब से बड़ा द्वीप है और इसमें बसने वालों की संख्या जापान के अन्य सब द्वीपों की जनसंख्या से अधिक है। इस द्वीप में पूर्व पुरुषों से प्राप्त

सारी न्यायनिष्ठा, उदारता, सत्यता, शुद्धता पाई जाती है। इसके निवासियों का देवाचार अन्य सब देशों के धर्माचरण से इतनी ऊँची श्रेणी का है कि उन्हें न किसी धर्मसंहिता की आवश्यकता पड़ती है न सिद्धान्त की और न चक्कर में डालने वाली नैतिकता की। यदि जापान के राजनीतिज्ञों को बड़े लम्बे पृथकत्व के पश्चात् अपने देश को सारे संसार में आदरणीय बनाने की अभिलाषा हुई, तो उसका श्रेय इसी धर्म को है जिससे वे प्रभावित थे। इसी अभिलाषा के वशीभूत होकर इन्होंने जापान को एशिया में ही सर्व शक्तिमान् बनाने का प्रयत्न नहीं किया किन्तु वे उसे सैन्यबल, कारोबार, व्यापार की दृष्टि से संसार का सब से महान् देश बनाना चाहते थे। किन्तु यह अभिलाषा पूरी न हुई।

शासन-विधान का इतिहास

प्राचीन काल—जापानी अपनी उत्पत्ति जीमो टेनो (ईसा से ६६० वर्ष पूर्व) बतलाते हैं जो सूर्य देवता की सन्तान था। सन् ५५२ ई० में वहाँ बुद्ध धर्म का प्रचार हुआ। सन् ६४५ ई० में चीनी प्रशासन पद्धति कुछ हेर-फेर के साथ जापान में चालू की गई। जब से लिखित इतिहास का पता चलता है जापान में एक ही राजवंश ने राज्य किया है। प्राचीनता में संसार का कोई राजवंश जापान से मुकाबिला नहीं कर सकता। लगभग १२०० वर्ष तक जापान में द्वयात्मक (Dual) शासन प्रणाली चालू रही।

पहले दरबार के प्रभावशाली एक-दो सामन्त ही शासन-सत्ता को अपने अधिकार में किये रहते थे। फिर फूजीवारा वंश ने शासन सत्ता को अपने हाथ में कर लिया। उनके बाद क्षत्रिय वर्ग (Military Class) ने उसे हस्तगत किया और ये ही अर्वाचीन काल तक उसका भोग कर रहे हैं। इस लम्बे समय में एक बार ही दो वर्ष के लिये सम्राट ने अपनी नाममात्र-की शक्ति को सबल व सक्रिय करने का प्रयत्न किया। यद्यपि समय-समय पर सम्राटों के साथ बुरा बर्ताव हुआ, प्रायः उनको सिंहासन से उतारा गया और निर्वासित किया गया, फिर भी किसी सामन्त का यह साहस न हुआ कि वह टेनो (Tenno) की उपाधि ग्रहण करता। टेनो का अर्थ सम्राट है। इस प्रकार की द्वयात्मक सरकार जो नैपाल में अभी तक प्रचलित है, पहले किसी विदेशी की समझ में नहीं आई। वैदेशिक मामलों में शोगून (Shogun) के नाम से कार्यवाही की जाती है। सन् १८५४-५८ की पहली आधुनिक संधि शोगून की ओर से की गई थी। विदेशियों की समझ में यह द्वयात्मक शासन बहुत दिनों बाद में आया।

तोकूगावा-शोगून काल—तोकूगावा-शोगून काल बड़ा शान्तिपूर्ण रहा। इस काल का आरम्भ सन् १६४१ से हुआ जब विदेशियों को जापान से बाहर निकाल दिया था। इस समय से दो शताब्दी तक जापान विश्व के अन्य देशों से बिल्कुल पृथक रहा और जब चीन, भारतवर्ष, यूरोप व अमरीका में हलचल मच रही थी, जापान में उस समय शान्ति का राज्य था। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी राज्यों ने जापान से सम्बन्ध जोड़कर उसे एकान्तवास से निकालने का प्रयत्न किया। उस समय आने-जाने के साधनों में उन्नति होने से नये समुद्री मार्ग खुल रहे थे और जापान बरबश अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के क्षेत्र में खिंचा जा रहा था। अंगरेजों व चीन के बीच प्रथम युद्ध के समाप्त होने पर जापान के बन्द द्वार पर विदेशियों की खटखटाहट अधिक दृढ़ता के साथ होने लगी। सन् १८४४-४६ तक सात असफल प्रयत्न किये गये। सन् १८५० में अमरीका ने कैलीफोर्निया (California) पर अपना अधिपत्य कर लिया और प्रशान्त महासागर से उसका सम्बन्ध हो गया। सन् १८५३ में एक अमरीकन बेड़ा कमोडोर पैरी की अध्यक्षता में जापान की येदो खाड़ी में जा पहुँचा। इसी समय जापानियों ने पहली बार भाप से चलने वाला समुद्रीपोत देखा था। कमोडोर पैरी ने जापान से शोगून के अफसरों को प्रेसीडेंट फिलमोर का एक पत्र दिया। डेम्योस (Damyos) का विरोध होते हुये भी येदो (Yedo) के अधिकारियों ने एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर किये जिससे शिमोडा और होकेडोर बन्दरगाह अमरीकन जहाजों के आने के लिये खोल दिये गये। इसी संधि से अमरीकन सरकार को इन दोनों में से एक में अमरीकी व्यापार राजदूत रखने का अधिकार मिला, पैरी के बाद तुरन्त ही अंगरेज, रूसी और डच लोग जापान में आये। सब ने जापान से वैसी ही संधियां कीं जैसी अमरीका और शोगून के बीच हुई थीं। दो सौ वर्ष के एकान्तवास के पश्चात् जापान का फिर विश्व से संसर्ग स्थापित हुआ। इन पश्चिमी राज्यों को जल्दी ही पता लग गया कि शोगून जापान की वास्तविक राजसत्ता नहीं है। इसलिये उन्होंने आर्थिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये सीधे क्योटो (Kyoto) के राजदरबार से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी बीच में सम्राट कोमी का जो विदेशी विरोधी पक्ष का नेता था देहावासन हो गया। उसका १४ वर्षीया पुत्र मुत्सुहितो, क्योटो के राजसिंहासन पर बैठा। तब सत्सुमा, चोशू, हिजेन और टोसा नाम के शक्तिशाली सामन्त घरानों के प्रमुख व्यक्तियों ने शोगून से पदत्याग करने को कहा। इस मांग को शोगून ने ३ नवम्बर सन् १८६७ को स्वीकार कर पदत्याग कर दिया। नौ दिन बाद सम्राट की एक विज्ञप्ति

निकली जिसमें यह कहा गया कि सम्राट ने तोकूगावा केकी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है कि प्रशासनाधिकार सम्राट की राजसभा को वापिस कर दिया जाय। जिस शक्ति को तोकूगावा शोगून ने १६०३ में हस्तगत किया उसे २६४ वर्ष के पश्चात् हस्तान्तरित कर दिया। यही नहीं किन्तु लगभग ७०० वर्ष के पश्चात् शोगून के जिस पद को योरीतोमो सम्राट ने ११९२ में बनाया वह समाप्त हो गया।

मीजी युग (The Meiji Era)—सम्राट मुत्सुहितो के राज्यकाल में, जिसे मीजी युग कहा जाता है, प्राचीनता का पुनर्स्थापिन और पूर्ण सुधार दोनों बातें साथ-साथ चलती रहीं। सन् १८६७ में शोगून संस्था के अन्त होने के पश्चात् सन् १८७१ में डेम्योस जागीरदारों को भी समाप्त कर दिया गया जिन जागीरदारों की जागीर छीनी गई उन्हें क्षतिपूर्ति के लिये पैंशन दे दी गई। बहुत से ऐसे जागीरदारों को नये कुलीन वर्गों में भी शामिल कर लिया गया। किन्तु सुधारक लोग इस बात पर तुले हुए थे कि जागीरदारों के हाथ की विकेन्द्रित शक्ति बिलकुल समाप्त कर देनी चाहिये। जागीरदारी के आधार पर देश का जो विभाजन चला आ रहा था और जिन पर डैम्योस शासन करते थे वह समाप्त कर देश को प्रान्तों व जिलों में बाट दिया गया और प्रत्येक का शासन करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासन करने वाले अफसर नियुक्त कर दिये गये। इस प्रकार सम्राट की जिस शक्ति को शोगून ने अपने हाथ में कर लिया था वह फिर सम्राट को समर्पित कर दी गई। किन्तु यह बात यहीं समाप्त नहीं हुई। मीजी राजनीतिज्ञों ने कुछ नवीन बातों को भी प्रवर्तन करना आरम्भ किया। सन् १८६८ में क्योटो से राजसभा हटाकर यदो नामक नगर में स्थापित की गई। इसी नगर का नाम पीछे जाकर टोकियो पड़ा। इस प्रकार सम्राट को पुरानी राजधानी के परिवर्तन-विरोधी प्रभाव से हटा लिया गया। इसके बाद नये राजनैतिक विचार और पद्धतियों को अपनाना आरम्भ हुआ। दूसरे ही वर्ष नये सम्राट ने एक राष्ट्रीय असेम्बली बुलाने का वचन दिया। सन् १८७३ में ईसाई धर्म के विरुद्ध निषेध हटा लिय गया सन् १८७५ में प्रथम असेम्बली (जैनरोइन या सीनेट) स्थापित की गई जिसमें व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हो सके। क्योंकि यह असेम्बली मनोनीत की गई थी, निर्वाचित न थी। उदार पक्ष वालों ने निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या बनाने के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। सन् १८८९ में सम्राट ने नया शासन-विधान स्वीकृत कर उपहार के रूप में प्रजा को दिया। इस नये संविधान में द्विगृही संसद या

डाइट (Diet) का आयोजन था। निचले सदन के सदस्यों को लोक निर्वाचन से लिये जाने का इरादा था। सिद्धान्ततः और अधिनियमरूपेण सम्राट ज्यों का त्यों साम्राज्य का निरंकुश शासक बना रहा किन्तु डाइट सरकार का एक महत्व पूर्ण अंग बन गई। प्रतिनिधियों द्वारा प्रकट किया हुआ जनमत अब मंत्रियों के निर्णयों पर अधिक प्रभाव डालने लगा। मीजी सुधारों ने जापान के शासन को जनतंत्रात्मक नहीं बनाया किन्तु उसमें जनतंत्र का पुट अवश्य ला दिया जिसका इनसे पूर्व कोई अस्तित्व न था।

जापान में पश्चिमी विचारों का प्रवेश—जापान की राज्य संस्थाओं के इस परिवर्तन से अधिक महत्वपूर्ण, विधि-अधिनियम, शिक्षा, उद्योग और व्यापार के सम्बन्ध में वे पश्चिमी विचार थे जो जापान में प्रवेश करने लगे, ज्यों ही जापान की सरकार ने यूरोपियन देशों से बिना किसी प्रतिबन्ध के संसर्ग स्थापित करने की नीति अपनाने का निर्णय किया। सन् १८७१ में पश्चिमी शिक्षालय पद्धति पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली स्थापित की जिससे आधुनिक जगत में जापान सब से अधिक साक्षर देश हुआ। रेल, तार, सरकारी डाकखाने और राष्ट्रीय बैंकें खोली गईं। कारखाने खुलने लगे। पुराने उद्योग-धंधों के स्थान पर आधुनिक ढंग के बड़े बड़े कारखाने स्थापित हुए, जिनसे जापान कुछ ही दिनों में संसार के बड़े उद्योगी राष्ट्रों में गिना जाने लगा। जागीरदारों की सेना के स्थान पर पश्चिमी ढंग से शिक्षित नये ढंग की सेना संगठित की गई। आधुनिक ढंग की नौसेना बनाने का काम भी आरम्भ हुआ। इस सब का यह फल हुआ कि जापान संसार में एक अत्यन्त शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र बन गया। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका से विशेषज्ञ इन सुधारों में सहयता करने के लिये बुलाये गये। पश्चिमी विज्ञान को सीखने के लिये जापानी विद्यार्थी पश्चिमी देशों में भेजे गये। पचास वर्षों में ही जापान ने अपने-आपको जागीरदारों के देश से बदल कर एक आधुनिक शक्तिशाली व प्रगतिशील राष्ट्र बना लिया।

पश्चिमी विचारों का प्रभाव—एशिया में जापान ही एक ऐसा देश जिसने पश्चिमी ढंग का लिखित शासन विधान सबसे पहले अपनाया था। यह शासन विधान सन् १८६० में बना और सन् १६४६ तक चालू रहा। प्रारम्भ में जैसे अंगरेजी सरकार निरंकुश और अत्याचारी थी, जिसका उदाहरण नार्मन व ट्यूडरवंशीय राजाओं की निरंकुशता में मिलता है, उसी प्रकार जापान में भी निरंकुश राजसत्ता थी। उन्नीसवीं शताब्दी में जब जापानियों ने विज्ञान, सेना संगठन, शिक्षा आदि क्षेत्रों में

पश्चिमी विचारों को अपनाया तो साथ-साथ राजनैतिक विचार भी पश्चिम से आकर धीरे-धीरे जापान पर अपना प्रभाव डालने लगे। पहले तो प्राचीन परम्परा का सहारा लेकर द्वयात्मक शासन संगठन के स्थान पर एक केन्द्रीय शासन स्थापित किया गया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे पश्चिमी विचारों ने अपना सिक्का जमाया और जापानियों का राजनैतिक जीवन पूरी तरह से पश्चिमी सांचे में ढल गया।

सम्राट् की शपथ का महत्व—सन् १८६८ में सम्राट ने जो शपथ ली उसे जापान का मैग्ना कार्टा (Magna Carta) कहा जाता है। इसी शपथ से जापान में वैधानिक विचार फूट निकले। इस शपथ के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया था कि "एक विचारक असेम्बली बनाई जायगी और सब योजनायें लोकमत से निश्चित होंगी। शपथ के इस वाक्य को जब राज-नैतिक संस्थाओं के रूप में परिणित किया गया तो शपथ के अभिप्राय से जापानी राजनीतिज्ञ बहुत आगे बढ़ गये। सन् १८८१ के अक्टूबर मास में सम्राट ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसमें सन् १८९० में एक राष्ट्रीय असेम्बली बुलाने का वचन दिया। इस प्रकार संसदात्मक सरकार स्थापित करने के लिए तत्कालीन शासन संगठन को उसके अनुकूल बनाने के लिए ९ वर्ष का समय मिला। राजनैतिक पक्षों का भी संगठन इसी समय में करना था जिससे वे पार्लियामेण्ट के निर्वाचित सदन में प्रवेश कर सकें। मार्च सन् १८८२ में सम्राट ने राजकुमार आइटो (Ito) को एक शासन-विधान का मसविदा तैयार कर सम्राट् की स्वीकृति के लिए उपस्थित करने का आदेश दिया। इस पर आइटो (Ito) और उसके सेक्रेटरी यूरोप गये जहां लगभग डेढ़ वर्ष तक उन्होंने यूरोप के प्रमुख राजतन्त्रों (Monarchies) के व्यावहारिक रूप का अध्ययन किया। वैधानिक राजतंत्र स्थापित करने के लिए फ्रांस और अमरीका के शासन-विधान से कोई शिक्षा न मिल सकती थी। लौटने पर आइटो और उसके सेक्रेटरियों ने विदेशी परामर्शदाताओं की सहायता से वैधानिक प्रस्ताव तैयार कर सम्राट की स्वीकृति के लिए भेजे। इसी समय जर्मनी की राजनैतिक प्रणाली का प्रभाव जापान पर पड़ने लगा था, आइटो का विश्वास था कि प्रशिया, बवेरिया और सैक्सनी आदि जर्मनी रियासतों में जापान जैसी परिस्थितियां वर्तमान थीं। इंगलैंड में वे न पाई जाती थीं क्योंकि वहां की राजनैतिक संस्थायें बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थीं और उनका विकास बड़े लम्बे समय के बाद धीरे-धीरे हुआ था।

जापानी संस्थाओं पर जर्मनी का प्रभाव—सन् १८८०-१८९० में

जापानी सेना का संगठन जर्मनी की सेना के ढंग पर किया गया। शासन-विधान नये व्यावहारिक व व्यापारिक अधिनियम संहितायें बनाने, विश्वविद्यालय की शिक्षा देने, विद्यार्थियों को सरकार द्वारा विदेश भेजने और अन्य योजनाओं में जर्मन प्रभाव प्रकट रूप से दिखाई पड़ता था। जिस पार्लियामेण्ट के बनाने का वचन दिया गया था उसकी तैयारी में सब से प्रथम जो राजनैतिक परिवर्तन किया गया वह नये पीयरों (Peers) का बनाना था।

पीयरों का बनाना—नये पीयर सन् १८८४ में बनाये गये और इनके बनाने के पीछे यही उद्देश्य था कि ऊपरी सदन के संगठन के लिए कोई आधार तैयार हो जाये। सबसे प्रथम अधिनियम के अनुसार ५०० पीयर बनाये गये जिनकी उपाधियाँ पश्चिमी उपाधियों के समान ही, प्रिंस, मारक्विस, काउण्ट, वाईकाउण्ट और बेरन थीं। नये पीयर प्राचीन कुज (Kuge) और डेमियों (Damiyo) जागीरदार वर्गों में से ही बनाये गये किन्तु जिन समुराईयों (Samurai) ने नई सरकार में ख्याति प्राप्त करली थी उनको भी पीयर बनाया गया। समुराई जागीरदारों के वेतनभोगी सैनिक हुआ करते थे।

मंत्रिपरिषद् का संगठन—सन् १८८५ में एक नई मन्त्रिपरिषद् का संगठन हुआ जिसमें एक प्रधानमन्त्री और नौ शासन विभागों के अध्यक्ष मन्त्री हुये। आइटो (Ito) प्रथम प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ। इसके आधिपत्य में शासन-विभागों की क्षमता में बड़ी वृद्धि हुई। अन्ततः, सन् १८८८ में प्रिवी कौंसिल बनाई गई जिससे सम्राट परामर्श कर सके। इस कौंसिल में थोड़े से अनुभवी व्यक्ति थे—अधिकतर अवकाश प्राप्त अफसर—जिनका यह काम था कि वे व्यवस्थापन सम्बन्धी व वैदेशिक संधियों के बारे में सम्राट् को अपने विचार बतावें और सम्राट् से पूछे जाने पर अन्य विषयों में अपनी राय दें। यह केवल संभव ही न था किन्तु कई बार ऐसा हुआ भी कि उनकी राय और मंत्रिमंडल की राय में अन्तर रहा। ऐसी परिस्थिति में सम्राट् संविधान के बाहर नियुक्त किए गये कुछ उच्च व्यक्तियों की सलाह से स्वयं अपना निर्णय दिया करता था। ये उच्च व्यक्ति जैनरो (Genro) अर्थात् वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ (Elder Statesman) कहलाते थे। सात वर्ष की परीक्षा और तैयारी के पश्चात् आइटो और उसके साथियों का कार्य पूरा हुआ। आइटो ने स्वयं आस्ट्रिया और जर्मन शासन प्रणालियों का अध्ययन किया था, क्योंकि उसे यह विश्वास था कि इंगलैंड की शासन प्रणाली इतनी अधिक प्रजातन्त्रात्मक थी कि वह जापान के लिए अनुपयुक्त थी। इसलिए जापान के शासन-विधान

पर आस्ट्रिया और जर्मन प्रणालियों की छाप अधिक पड़ी। ११ फरवरी सन् १८८९ को सम्राट ने अन्तिमतः शासन-विधान स्वीकार कर लिया जिसके अन्तर्गत पहला निर्वाचन जुलाई सन् १८९० में हुआ और नई पार्लियामेंट का पहला अधिवेशन उसी वर्ष नवम्बर मास में बुलाया गया।

प्राचीन राजतंत्र की परम्परा और नई वैधानिक पद्धति के मेल से ही सन् १८८९ का शासन-विधान तैयार हुआ था। सम्राट की शक्ति अधिक होने के कारण डाइट (Diet) की शक्ति संसार के अन्य विधान-मण्डलों की अपेक्षा बहुत कम थी। किन्तु दूसरी बातों में शासन-विधान में अर्वाचीन वैधानिक सिद्धान्तों में से बहुतों को अपना लिया गया था।

सन् १८८९ के शासन-विधान की विशेषतायें

लिखित प्रकार—जापान का सन् १८८९ का शासन-विधान लिखित प्रकार का था। लिखित प्रकार का शासन-विधान सब से प्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में अपनाया गया था। अब प्रायः सब नवीन शासन-विधान लिखित ही होते हैं। संविधानों के लिखे जाने की प्रथा इस मांग के परिणामस्वरूप प्रचलित हुई कि शासन अधिनियम (Law) का हो न कि व्यक्तियों का।

कठोरता (Rigidity)—संविधान में संशोधन करने की शक्ति अनन्यरूप से सम्राट के पास सुरक्षित की गई थी। सम्राट ही किसी संशोधन को कर सकता था। डाइट (Diet) स्वयं शासन-विधान का कोई प्रस्ताव न कर सकती थी न जनता ही उसके लिये प्रार्थना कर सकती थी। साधारण अधिनियम बनाने की क्रिया की अपेक्षा शासन-विधान में संशोधन करने की पद्धति अधिक पेचीदा थी। संकटकाल में संविधान में कोई संशोधन न किया जा सकता था चाहे उसकी कितनी ही अधिक आवश्यकता क्यों न होती। सन् १८८९ से लेकर सन् १९४६ तक जब नया शासन विधान बना, पुराने संविधान में कोई संशोधन हुआ ही नहीं। इसका पहला कारण तो यह था कि संशोधन के सूत्रपात करने की शक्ति सम्राट को ही दी हुई थी, दूसरे संविधान ने शासन सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्त ही निश्चित कर दिये थे, व्यौरे की बातें अधिनियम और अध्यादेशों द्वारा निश्चित किये जाने के लिये छोड़ दी गई थीं। किन्तु एक बात अवश्य थी, वह यह कि न्यायालयों को अवैधानिक अधिनियम को रद्द करने का अधिकार न था, अतएव, शासन-विधान में सामान्य अधिनियम से भी संशोधन हो सकता था यद्यपि विधान-निर्माताओं का कदापि यह अभिप्राय न था कि डाइट (Diet) विधान संशोधन के इस प्रतिबन्ध से

बच कर ऐसा अधिनियम बनावे जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संविधान के सिद्धान्तों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।

प्रचलित प्रथा का प्रभाव—वैधानिक विकास पर प्रचलित प्रथाओं का प्रभाव भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। जापान में भी कुछ रीति-रिवाज पहले से चले आ रहे थे जो यद्यपि वैध न थे और न्यायालय जिन्हें मान्य न समझते थे किन्तु राजकार्य में उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था। इन रीति-रिवाजों में जैनरो (Genro) के सब परामर्श सम्बन्धी कार्य गिने जा सकते हैं जैसे प्रधानमंत्री के नाम की सिफारिश करना, मंत्रियों के पारस्परिक उत्तरदायित्व की प्रथा और मंत्रिपरिषद् का डाइट के राजनैतिक दलों के साथ मिल कर कार्य करना। इन्हीं वैधानिक प्रथाओं से शासन-विधान के शुष्क ढांचे में प्राण का संचार हो सकता था। पार्लियामेंट के प्रति मंत्रिपरिषद् के उत्तरदायित्व की प्रथा बाद में पक्की हो गई थी।

सबल राजतंत्र—जापान की सरकार एकतंत्रात्मक ढंग की थी जिसमें सम्राट की शक्ति बहुत अधिक थी किन्तु वह शक्ति संविधान से मान्य थी। कुछ कुछ शक्ति-पृथक्कीकरण का सिद्धान्त भी जापान में मान लिया गया था किन्तु-अमरीका जैसा पृथक्कीकरण न माना गया था। कार्यपालिका और विधानमण्डल बिलकुल एक दूसरे से पृथक न किये गये थे।

केन्द्रित पद्धति—जापान की शासन-पद्धति कार्य की दृष्टि से व भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही केन्द्रित थी। शासन-विधान के शब्दों के अनुसार सरकार की सारी शक्ति सम्राट के हाथ में थी, संविधान में स्थानीय शासन का कोई उल्लेख न था। स्थानीय शासन अध्यादेशों व अधिनियमों से ही होता था। तत्कालीन पार्लियामेंटरी स्थिति को देखते हुए कुछ लोग इस शासन विधान को बहुत प्रगतिशील और उदार बतलाते थे। दूसरे इसे प्रतिक्रियात्मक कह कर कड़ी आलोचना करते थे। इस कड़ी आलोचना का एक आधार यह था कि जहां सम्राट के विशेष अधिकारों व स्वत्वों का स्पष्ट उल्लेख किया गया था वहाँ प्रजा के मूलाधिकारों का कोई वर्णन न था। इसके अतिरिक्त सम्राट की पूर्व स्वीकृति के बिना संविधान के संशोधन पर विचार न किया जा सकता था और मंत्रिमण्डल को निचले सदन के बहुमत के नियंत्रण में स्पष्टरूप से न रखा गया था। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि सन् १८८९ के बाद बिना संविधान में संशोधन किये ही राज्य प्रणाली में बहुत कुछ व्यावहारिक प्रगतिशीलता आ गई थी। जैसे-जैसे संसदात्मक प्रणाली का अनुभव बढ़ता गया जनता को अधिनियम द्वारा अधिकाधिक अधिकार दिये गये, यहां

तक कि सन् १९२६ में प्रौढ़ मताधिकार भी प्रजा को मिल गया यद्यपि संविधान में मंत्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कोई प्रावधान न था किन्तु आवश्यकता पड़ने पर इस उत्तरदायित्व को अस्वीकार न किया गया और निचला सदन मन्त्रिमण्डल के कार्यों पर नियन्त्रण रखता रहा।

जिस दिन शासन-विधान की घोषणा हुई उसी दिन चार बड़े-बड़े अधिनियम भी प्रकाशित हुए जिनमें वे ब्योरे की बातें दी गई थीं जिनका वर्णन संविधान में न किया गया था। इनमें से एक हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) से सम्बन्धित सम्राट् का अध्यादेश था, दूसरा दोनों सदनों के संगठन के बारे में अधिनियम था, तीसरा निर्वाचन से सम्बन्ध रखता था और चौथा अर्थ सम्बन्धी अधिनियम था। सन् १८९० में पहला निर्वाचन हुआ। जो वयस्क नागरिक २५ वर्ष की आयु के हों और १५ यैन (Yen) राष्ट्रीय टैक्स देते हों वे मत देने के अधिकारी थे। ४ करोड़ २० लाख की जनसंख्या में केवल ४६०,००० ही मतधारक थे अर्थात् केवल १ प्रति सैकड़ा से कुछ अधिक। सम्राट ने स्वयं डाइट के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन किया। तीन सौ सदस्य चार पक्षों में बँटे हुए थे। प्रथम असेम्बली में मंत्रिमण्डल के विरुद्ध १७० सदस्य थे जिनमें १३० उदार व अनुदार पक्ष के (Conservatives & Liberals) और ४० प्रगतिशील दल (Progressives) के सदस्य थे। अधिक से अधिक सरकार १३० सदस्यों का ही समर्थन प्राप्त कर सकती थी। काउन्ट यमागाता जो एक योग्य सेनानायक था प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त हुआ। आइटो (Ito) हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) का अध्यक्ष बना। विरोधी पक्ष ने सरकार द्वारा प्रस्तुत किये हुये बजट की कड़ी आलोचना की और ८० लाख यैन (Yen) की कटौती का प्रस्ताव किया। मन्त्रिमण्डल ने संविधान के ६७ वें अनुच्छेद को पढ़ कर सुनाया जिसके अनुसार सम्राट की वैधानिक शक्तियों के आधार पर निश्चित व्यय या वह सरकारी व्यय जो किसी अधिनियम के अन्तर्गत या वैधानिक बन्धन (Legal Obligation) के कारण अनिवार्य हो उसे डाइट बिना सरकार की सम्मति के न अस्वीकार कर सकती है न उसमें कमी कर सकती है। प्रतिनिधि-सदन (House of Representatives) तिस पर भी अपने कटौती के प्रस्ताव पर अड़ा रहा। अन्त में समझौता हुआ जिससे सरकार ने ६,३१०,००० यैन की कटौती स्वीकार कर ली। एक लम्बी वैधानिक लड़ाई का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ। यह लड़ाई तभी स्थगित हो जाया करती थी जब कोई राष्ट्रीय संकट आ पड़ता था और किसी युद्ध या सन्धि के

कारण विरोधी पक्ष सरकार की आलोचना करना उचित न समझता था। धीरे-धीरे दलबन्दी के आधार पर सरकार का संगठन करने की प्रथा प्रचलित हो गई और सरकार अपने पक्ष के सदस्यों के समर्थन के सहारे काम करने लगी।

पाश्चात्य राजनैतिक संस्थाओं का अपनाना—जापान की नई पार्लियामेंटरी प्रणाली और उसकी संस्थायें—जैसे असेम्बली, राजनैतिक पक्ष, प्रतिनिधिक संस्थायें, प्रिवी कौंसिल, शासन-विधान, स्थानीय शासन का ताना-बाना और न्यायालय आदि, या तो पश्चिमी राज्यों से ज्यों की त्यों लेकर अपनाली गई थी या इनके निर्माण करने में पश्चिमी रीतियों और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। फिर भी नये विचारों ने पुराने विचारों को बिलकुल ही न उखाड़ फेंका था। सारे राजनैतिक संगठन व शासन प्रणाली को चलाने में परम्परा से चले आने वाले रीति-रिवाजों ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया था। यह भी न समझना चाहिए कि जापानियों ने आंख मींच कर पश्चिमी संस्थाओं की नकल की थी। उन्होंने उन संस्थाओं को अपनी विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुकूल ही बना कर स्थापित किया। आधुनिक ब्रिटिश पार्लियामेण्ट से जापान की डाइट (Diet) की तुलना करके उसे तुच्छ ठहराना बिलकुल ही बेमतलब की बात होगी। आश्चर्य और प्रशंसा की बात तो यह है कि जागीरदारी की प्रथा के टूटने के ३० वर्ष के भीतर ही डाइट का निर्माण हो गया जिससे जनता के प्रतिनिधि राज्य के मन्त्रियों से अपनी इच्छानुसार कार्य कराने में समर्थ थे।

जैनरो—जापानियों ने पश्चिमी संस्थाओं को किस प्रकार अपनी संस्कृति और परम्परा के रंग में रंगा, इसके उदाहरण में "जैनरो" (या वृद्ध-राजनीतिज्ञ) का नाम उल्लेखनीय है। इसके स्थापित होने में हमें जापान की एक प्राचीन प्रथा की झलक देखने को मिलती है। जिस प्रकार गृहस्वामी घर के वृद्ध व्यक्तियों से बड़ी-बड़ी बातों में परामर्श लेता है उसी प्रकार सम्राट भी जो राज्य का अध्यक्ष था, कुछ ऐसे योग्य व्यक्तियों की राय लिया करता था जिनकी राजनिष्ठा और बुद्धिमानी में संदेह न होता था। यूरोपियन देशों में यह मान लिया गया था कि वैधानिक सम्राट अपने मंत्रियों की राय के अनुसार ही कार्य करेगा। किन्तु जापान में यह सम्भावना थी कि जैनरो की राय मन्त्रियों की राय के प्रतिकूल हो। ऐसा होने पर जैनरो की राय ही मानी जाती थी। इस प्रकार एक ऐसी परामर्श देने वाली संस्था बन गई जिसका प्रभाव मन्त्रिपरिषद् से भी अधिक हो गया। इन वृद्ध राजनीतिज्ञों में आइटो,

जिसने संविधान को जन्म दिया, यमागाता, इनौनी, ओयामा मत्सुकाता और सैगो जैसे विख्यात व्यक्ति थे। इन वृद्ध राजनीतिज्ञों की सलाह से ही प्रधान-मंत्री को पसन्द किया जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य के जितने बड़े प्रश्न होते थे उन पर ये लोग ही पहले विचार किया करते थे। ऊपर जिन वृद्ध राजनीतिज्ञों का नाम दिया गया है उनमें यमागाता और आइटो एक जाति के होते हुए भी प्रायः एक दूसरे का विरोध किया करते थे। संविधान का निर्माता आइटो उदार विचारों का व्यक्ति था। यमागाता, जिसने जापानी सेना का संगठन किया था सैनिक-वर्ग का मुखिया था। सन् १६०६ में आइटो की हत्या के पश्चात् यमागाता ही जैनरो में सब से प्रभावशाली व्यक्ति रह गया।

सन् १८८६ के शासन-विधान की उपक्रमा

जापान के शासन-विधान का रूप बहुत संक्षिप्त था। उसमें सरकार-संगठन की मोटी-मोटी बातें दी हुई थीं, अधिकतर विस्तार की बातें सामान्य अधि-नियमों द्वारा पूरी किये जाने के लिए छोड़ दी गई थीं। सामान्य शब्दावली के कारण शासन-विधान में व्याख्या के लिए पर्याप्त सामग्री थी।

जो विस्तार की बातें अर्वाचीन शासन-विधान में पाई जाती हैं उनको आइटो ने अपने शासन-विधान में शामिल न कर सामान्य अधिनियमों के लिए छोड़ दिया जिससे अवसर पड़ने पर सामान्य रीति से ही उनमें परिवर्तन हो सके और शासन विधान में संशोधन की पेचीदा कार्यवाही करने की आवश्यकता न रहे। संविधान के सातों अध्यायों में क्रम से सम्राट, प्रजा के कर्तव्य डाइट, मंत्री और प्रिवी कौंसिल न्यायपालिका, आय-व्यय और पूर्ति करने वाले नियमों का वर्णन था।

शासन-विधान सम्राट का उपहार—शासन-विधान के पहले अध्याय में सम्राट का वर्णन है। दूसरे अनुच्छेद के अनुसार सम्राट पवित्र और अलंघ्य है। सम्राट ने अपनी प्रजा को शासन-विधान की भेंट स्वेच्छा से ही की थी न कि परवश होकर। नीटोबे (Nitobe) ने इसलिए कहा है कि जापान का शासन-विधान इस अर्थ में एक अध्यादेश (Ordinance) है कि वह राजा-प्रजा का विभेद स्वरूप न होकर एक-पाक्षिक है और शासितों की इच्छा या सम्मति के बिना ही इसकी रचना हुई है।" ※ इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जापान के सम्राट को संविधान में इतना अधिक

※ जापान: मौडर्न वर्ल्ड सीरीज़।

व ऊँचा स्थान दिया गया। मंत्री सम्राट को न कि डाइट को उत्तरदायी रखे गये थे। सम्राट की जिन शक्तियों का वर्णन किया गया है वे सब ऐसी हैं जो अन्य राज्यों में राज्याध्यक्ष को सामान्यत: दी जाती हैं। इन शक्तियों में डाइट के अधिवेशन न होते रहने के समय अत्यावश्यकता होने पर अध्यादेश निकालने की शक्ति भी शामिल थी। किन्तु ऐसे आध्यादेश डाइट की अगली बैठक के सामने रखने पड़ते थे और यदि अस्वीकृत हो जाते तो वे रद्द समझे जाते थे।

सरकार की आध्यादेश निकालने की शक्ति—यह शक्ति बड़ी विस्तृत थी। इसके अन्तर्गत सरकार (१) किसी अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए (२) शान्ति, सुव्यवस्था रखने और जनता का सुख बढ़ाने के लिए (३) अपनी कार्यकारी शक्ति को कार्यरूप देने के लिए अर्थात् शासन के विभिन्न विभागों के संगठन, सेना की व्यवस्था, हाउस आफ पीयर्स की रचना आदि के लिए अध्यादेश निकाल सकती थी। किन्तु इन अध्यादेशों से किसी पूर्व-स्थित अधिनियम को बदला न जा सकता था केवल उसकी कमी को पूरा किया जा सकता था। यही नहीं, किन्तु यह भी प्रतिबन्ध था कि जो बातें अधिनियम द्वारा ही नियमित की जा सकती थीं वे आध्यादेश से व्यवस्थित न हो सकती थीं।

राजा की कार्यकारी शक्तियाँ—राजा स्वयं भी अनेक आज्ञायें निकाल कर कार्यसम्पादन किया करता था। यह ही शासन के विभिन्न विभागों का संगठन निश्चित करता था और शासन के सेना के कर्मचारियों की नियुक्ति कर उनका वेतन निश्चित करता था। राजा ही इन कर्मचारियों को उनके पद से हटा सकता था। राजा ही युद्ध की घोषणा करता, युद्ध समाप्त करने की आज्ञा देता और संधियां करता था। इन कामों के करने में उसे डाइट से सलाह लेने की भी आवश्यकता नहीं थी। इस भाँति द्वयात्मक शासन (Dual Government) की प्रथा चालू थी।

राजा की न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ—संविधान में लिखा था कि न्यायकारी शक्ति को न्यायालय सम्राट के नाम से अधिनियम के अनुसार कार्यान्वित करेंगे। सम्राट न्यायशक्ति का स्वामी भी था क्योंकि वही न्याय का निर्झर समझा जाता था। किन्तु इस शक्ति का उपयोग न्यायालयों के लिए ही छोड़ दिया गया था जिनका संगठन अधिनियमानुसार होता था।

राजा को कार्य करने की शक्तियां अवश्य दे दी गई थीं किन्तु उन पर यह प्रतिबन्ध अवश्य था कि उनके प्रयोग करने में यदि धन की आवश्य-

परिषद् की सामुदायिक जिम्मेदारी प्रचलित हो चुकी थी। यह जिम्मेदारी केवल राजनैतिक ढंग की थी। शासन विधान में मंत्रियों का वैधिक (Legal) उत्तरदायित्व न माना गया था। मंत्रियों पर राजनैतिक अपराधों के अभियोग लगाने और दण्ड देने की प्रथा जापान ने न अपनाई थी यद्यपि अन्य सब सभ्य देशों में इसे पक्की तरह से मान लिया गया था।

डाइट—डाइट विधायिनी और शासन कार्य में केवल देख-भाल करने वाली संस्था भर थी, क्योंकि जापान के राजनैतिक पक्षों का कोई पृथक-पृथक कार्यक्रम न था। वे मंत्रिपरिषद् की किसी भी निति को बिना किसी शर्त के मान लेते थे यदि वे उस मन्त्रिपरिषद् के समर्थक होते थे। किन्तु जापान में मंत्रिपरिषद् पर अंकुश रखने वाली, प्रिवी कौंसिल जैनरो जैसी अन्य संस्थायें थीं; और सब के ऊपर सेना का प्रभाव रहता था।

प्रिवी कौंसिल—जापान की प्रिवी कौंसिल ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल से भिन्न थी। ब्रिटेन में प्रिवी कौंसिल पुरानी संस्था थी जिसका रूप बदल कर मन्त्रिपरिषद् हो गया है। जापान में प्रिवी कौंसिल और मन्त्रिपरिषद् पृथक संस्थायें हैं, जो एक दूसरे के आधीन नहीं हैं। उनका निजी वैधिक स्वत्व है। मन्त्री अपने पद के कारण प्रिवी कौंसिल के सदस्य अवश्य रहते हैं। कुल सदस्यों की संख्या २४ थी। इनके अतिरिक्त एक सभापति और एक उप-सभापति भी रहता था। मंत्रियों की संख्या १२ थी। सम्राट ही सब सदस्यों को मनोनीत करता था। वह प्रधानमन्त्री की सलाह से ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करता था जो अच्छे शासक, कूटनीतिज्ञ, न्यायाधीश, शिक्षक, या सेनापति रहे हों। इस संस्था में राजनैतिक दलों के व्यक्ति न रखे जाते थे। प्रिवी कौंसिल की शक्तियों के बारे में शासन-विधान में यह कहा गया था कि "प्रिवी कौंसिल के सदस्य राज्य के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करेंगे जब सम्राट इन प्रश्नों पर उनकी सलाह लेना चाहेगा।" इस कौंसिल का काम केवल सलाह देना था, वह भी सम्राट के पूछे जाने पर। स्वयं कौंसिल किसी प्रश्न पर सलाह न दे सकती थी। किन्तु सम्राट के अल्पवयस्क होने पर यह कौंसिल स्वयं ही राजा के स्थान पर कार्य करने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी राय दे सकती थी। इसकी रचना करने वाले सम्राट के अध्यादेश के अनुसार जिन प्रश्नों को प्रिवी कौंसिल की राय के लिये भेजना आवश्यक था वे ये थे:—

(१) सम्राट के घर से सम्बन्ध रखने वाले कुछ प्रश्न,

(२) शासन विधान या उससे अनुषांगिक अधिनियमों के सम्बन्ध में

संदिग्ध प्रश्न। संविधान के आनुषांगिक अधिनियमों में प्रतिनिधि सदनों के निर्वाचन व अर्थ सम्बन्धी अधिनियम और हाउस आफ पीयर्स से सम्बन्धित सम्राट के अध्यादेशों की गिनती होती थी।

(३) घेरा पड़ने की स्थिति की घोषणा, शासन संविधान के आठवें अनुच्छेद के अन्तर्गत अध्यादेश और अन्य सम्राट के अध्यादेश जिनमें दण्ड की व्यवस्था की गई हो।

(४) अंतर्राष्ट्रीय संधियां और समझौते, और

(५) प्रिवी कौंसिल के संगठन व कर्तव्यों से सम्बन्ध रखने वाले सम्राट के अध्यादेश में संशोधन करने के बारे में प्रश्न।

लार्ड प्रिवीसील—(Lord Privy-Seal) लार्ड प्रिवीसील यद्यपि सम्राट के गृह-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति होता था किन्तु राज्यों के मामलों में भी वह सम्राट को सलाह दिया करता था। इस पद पर वृद्ध राज-नीतिज्ञों में से सब से चतुर व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे। इस कर्मचारी का मुख्य काम नये मंत्रिमंडल के बनाने में सम्राट को सलाह देना था। व्यवहार में केवल प्रधान मंत्री के संबंध में ही यह कर्मचारी सम्राट को सलाह दिया करता था। संविधान के अंतर्गत सम्राट निचले सदन में विभिन्न राज्यनैतिक पक्षों की शक्ति का ध्यान न रखते हुये भी अपने मंत्रियों को चुन कर नियुक्त कर सकता था। मंत्रियों की जिम्मेदारी का सिद्धांत पक्की तरह मान्य न हुआ था किन्तु प्रत्येक राजनैतिक नेता यह जानता था कि निचले सदन के बहुमत को अपने पक्ष में किये बिना सरकार को कभी कभी बड़े निराशजनक विरोध का सामना करना पड़ेगा। उदार विचार वाले नेताओं ने प्रिवी कौंसिल की कड़ी आलोचना की क्योंकि किसी भी राजनैतिक नियंत्रण से प्रतिबंधित न होने से यह कभी कभी सम्राट को मंत्रिपरिषद के प्रस्तावों को अस्वीकार करने की सलाह दे सकती थी।

विधान मण्डल

द्विगृही प्रणाली—डाइट में दो सदन थे—एक प्रतिनिधि सदन और दूसरा हाउस आफ पीयर्स। इस प्रकार जापान ने भी द्विगृही प्रणाली ही अपनाई थी। जहां तक बनावट और संगठन का सम्बन्ध है हाउस आफ पीयर्स अधिक वैज्ञानिक ढंग पर सुदृढ़ रूप से संगठित था और समाज के विभिन्न वर्गों का भली भांति प्रतिनिधित्व करता था। असल में लगभग आधे सदस्य पीयर्स न थे। कुछ लेखक जापान की शासन प्रणाली में हाउस आफ पीयर्स

(House of Peers) को ही सबसे अधिक सफलीभूत अंग कहने में नहीं हिचकते।

हाउस आफ पीयर्स में निम्नलिखित ६ श्रेणियों के दो सदस्य होते थे: (१) राजघराने के पुरुष जो वयस्क हो गये हैं। (२) वे प्रिंस और मारक्विस जिनकी आयु ३० वर्ष के ऊपर हो। (३) काउन्टों या वाइकाउन्टों और वैरनों द्वारा सात वर्ष के लिये चुने हुए प्रतिनिधि काउन्ट, वाइकाउन्ट और वैरन। (४) तीन वर्गों से सम्राट से मनोनीत प्रतिनिधि, पहले वे लोग जो राज्य की सेवा या विद्वता के कारण चुने गये हों, दूसरे सबसे अधिक कर देने वालों के प्रतिनिधि और तीसरे इम्पीरियल ऐकेडैमी के प्रतिनिधि।

सन् १९२५ से पूर्व यह प्रतिबन्ध था कि चौथी श्रेणी में सम्राट के मनोनीत व्यक्तियों की संख्या तीन बची हुई श्रेणियों के सदस्यों से अधिक न होनी चाहिये। सन् १९२५ में अधिनियम द्वारा यह प्रतिबंध हटा दिया गया और इम्पीरियल ऐकेडैमी प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ा दी गई। ऊपरले सदन के सदस्यों की संख्या आरम्भ में २०६ थी किन्तु यह संख्या ४०० तक पहुँच चुकी थी।

प्रतिनिधि सदन में ४६६ निर्वाचित सदस्य थे अर्थात् १३३,३०९ व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि होता था। सदन का कार्यकाल चार वर्ष था। प्रत्येक सदस्य को ३००० येन (Yen) वार्षिक वेतन और सरकारी रेलों में बिना टिकट चलने की सुविधा प्राप्त थी। सदन स्वयं स्पीकर और सेक्रेटरी को चुनता था। इस सदन की यह विशेषता थी कि सामान्यतः श्रद्धा के कारण और अनुभवी होने से लोग वृद्ध पुरुषों को ही सदन का सदस्य चुनते थे। सन् १९३० में १९६ सदस्य प्रथम बार चुने गये थे। २८६ ऐसे थे जो पहले भी डाइट के सदस्य थे और ५९ पूर्व की डाइटों में भी सदस्य रह चुके थे। कृषिजीवी से जब देश अधिकाधिक उद्योगजीवी हुआ तो सदन के सदस्य भी भिन्न प्रकार के होने लगे। वकील सदस्यों की संख्या दूनी हो गई थी। सन् १९३० में विश्वविद्यालय के स्नातकों की संख्या अन्य सदस्यों से कहीं अधिक थी।

विधानमण्डल की शक्ति—प्रिंस आइटो का कहना था कि "डाइट का यह काम है कि वह राज्य के अध्यक्ष को अपना कर्तव्य पालन करने योग्य बनावे और राज्य की इच्छाशक्ति को सुदृढ़, अनुशासित और स्वस्थ रखे.......डाइट का यह कर्तव्य है कि वह सलाह दे और सम्मति दें।" सम्राट विधायिनी सत्ता का उपभोग डाइट (Diet) की सम्मति से करता

था। दोनों सदनों से सरकार में प्रस्तुत किये विधेयकों पर विचार हो सकता था। दोनों सदनों को समान अधिकार दिया गया था, केवल ऊपरी सदन को वार्षिक बजट पर विचार करने के लिये कम समय मिला हुआ था, किन्तु हाउस आफ पीयर्स को यह अधिकार था कि प्रतिनिधि सदन से अस्वीकृत पर्या-दान को पुनः प्रतिष्ठित कर दे। सिद्धांततः सब अधिनियम डाइट की सम्मति से बनते थे, संधियां और अध्यादेश ही इस नियम में अपवाद थे। डाइट शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव न कर सकती थी। सरकारी विधेयकों पर अन्य विधेयकों की अपेक्षा पहले विचार किया जाता था।

सरकार की अध्यादेश जारी करने की शक्ति इतनी विस्तृत थी कि उससे पार्लियामेंट की विधायनी शक्ति पंगु बनी रहती थी। हालांकि संवि-धान में यह प्रावधान था कि अध्यादेशों से अधिनियम को नहीं बदला जा सकता फिर भी संकटकालीन अध्यादेशों से अधिनियम बदला जा सकता था और अपनी इच्छापूर्ति करने वाली शक्तिशाली कार्यपालिका की चालों के सामने डाइट निस्सहाय की तरह मुंह देखती रह जाती थी। डाइट को यह भी विश्वास न रहता था कि उसका बहुमत कार्यपालिका की अनुचित कार्य-वाही का विरोध करेगा या नहीं और सदन के विघटन किये जाने का भी भय डाइट को अधिक दृढ़ बनने से रोके रहता था।

आय-व्यय पर नियन्त्रण—राज्य की आय और उसका व्यय डाइट के आधीन था। वार्षिक बजट के द्वारा आय-व्यय के लिये डाइट की सम्मति ली जाती थी। राज्य की आय अधिनियमानुसार ही एकत्र की जा सकती थी। बजट में आय के दिखाने और बजट के पास हो जाने का यह मतलब न होता था कि सरकार कर लगा कर आय वसूल कर सकती है। ऐसा करने के लिये पृथक अधिनियम द्वारा सरकार शक्ति ले सकती थी। क्षतिपूर्ति के बतौर जो आय होती थी, जैसे प्रशासन सम्बन्धी फीस इत्यादि, उसके लिये डाइट की सम्मति की आवश्यकता न थी। डाइट बजट प्रस्तुत न कर सकती थी। उसकी शक्ति केवल यहीं तक सीमित थी कि वह सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट में कुछ संशोधन कर दे या उसे अस्वीकृत कर दे। संशोधन करने में भी डाइट व्यय को बढ़ा न सकती थी। स्वयं शासन-विधान में कुछ ऐसे व्यय की सूची निश्चित कर दी गई थी जिसे डाइट सरकार की सम्मति के बिना न बदल सकती थी न रद्द कर सकती थी। उस सूची में निम्नलिखित मदें थीं (१) सम्राट की कार्यकारी शक्ति के कार्यान्वित करने में जो व्यय हो, जैसे संधियों व सम्राट के अध्यादेशों द्वारा बढ़ा हुआ व्यय। पर इसमें प्रतिबन्ध यह था कि पूर्ववर्ष के

बजट में मदें रखी गई हों और उस प्रकार डाइट से ये स्वीकृत हो चुकी हों। सेना, नौसेना व शासन-सम्बन्धी व्यय भी इसी श्रेणी में आते थे, (२) ऐसा व्यय जो किसी अधिनियम के पास हो जाने से अनिवार्य हो गया हो, जैसे पेंशन। यह सिद्धांत मान लिया गया था कि एक बार जब कोई अधिनियम सम्राट ने डाइट की सम्मति से पास कर दिया हो तो डाइट उस अधिनियम से प्रतिबन्धित है और इसलिये उसको कार्यान्वित करने में डाइट आवश्यक अनुदान अस्वीकृत करके अड़ंगा नहीं लगा सकती, (३) वह व्यय जो कि सरकार के वैधिक (Legal) ऋण या दातव्य (liability) के कारण हुआ हो, जैसे राष्ट्रीय ऋणों पर व्याज, क्षति पूर्तियां इत्यादि।

राजनैतिक पक्ष

जापान में राजनैतिक दलबन्दी सन् १८९० से पूर्व भी प्रचलित थी। किन्तु १८९८ में दो बड़े-बड़े राजनैतिक पक्षों के मिल कर हो जाने से एक वैधानिक सरकारी पक्ष (सियूकाई) (Constitutional Government Party) का जन्म हुआ। इस पक्ष के बनाने का उद्देश्य तत्कालीन सरकार को शक्ति प्रदान करना था और इसके बन जाने से पहली बार पक्ष के आधार पर मंत्रिपरिषद् का संगठन हुआ जिसका प्रधानमंत्री काउण्ट ओकूबा बना जो इस नये पक्ष का नेता था। तब से लेकर सन् १९२३ तक मंत्रिपरिषदों के रूप और उसके राजनैतिक पक्षों की स्थिति कुछ अधिक अच्छी नहीं रही। किन्तु उसके बाद मंत्रिपरिषद् राजनैतिक पक्षों के ही आधार पर बनने लगी। प्रतिनिधि सदन में कई पक्ष थे, उसमें से कुछ इतने निर्बल थे कि उनको मिला कर एक शक्तिशाली पक्ष बन सकता था। अप्रैल ३० सन् १९३७ को जो निर्वाचन हुआ उससे निर्वाचित डाइट के सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी:—

मिनसिटो	१७९
सीयू-काइ	१७५
श्रमिक दल	३६
स्वतंत्र	२९
शोआ-काई	१८
कोकूमिण्डम	११
दूसरे	१८
कुल	४६६

हाउस ग्राफ पीयर्स में कोई दलबन्दी न थी किन्तु फिर भी इसके सदस्य ६ श्रेणियों में बांटे जा सकते थे, क्यू-क्य-काइ, कोसी-काइ, कोयू कलब, चावा-काइ, दोसी-काइ और मुशोजोकू-पक्ष।

न्यायपालिका

राजनीतिज्ञ ब्राइस का कथन है कि "किसी सरकार की परख जितनी उसकी न्याय प्रणाली से हो सकती है उतनी किसी अन्य बात से नहीं, क्योंकि साधारण नागरिक का यह विश्वास कि उसके साथ निश्चय ही और शीघ्रातिशीघ्रम् न्याय किया जायगा, उसकी सुरक्षा और हित में सबसे अधिक प्रभावशाली कारण होता है। जापान में न्याय-निर्णय ऐसे न्यायालय करते थे जो अधिनियम द्वारा स्थापित किये जाते थे और जो सम्राट के नाम से अधिनियम के अनुसार न्याय करते थे। शासन के न्यायकारी अंग की स्वतन्त्रता संविधान ने पक्की कर दी थी, किन्तु व्यवहार में यह कार्यपालिका की आधीनता में ही रहकर कार्य करता था। संविधान में यह कहा गया था कि कोई भी न्यायाधीश सिवा अपराध का दण्ड देने के लिये या अनुशासनहीनता का दण्ड देने के लिये अन्य किसी प्रकार अपने पद से न हटाया जायगा। कार्यपालिका इन दोनों बातों में कुछ न कर सकती थी। किन्तु न्याय कर्मचारियों को तरक्की देने की शक्ति इसके हाथ में थी और इस शक्ति का प्रयोग वह अपना प्रभाव जमाये रखने में किया करती थी। अपराध सम्बन्धी (फौजदारी) मामलों में कार्यपालिका के निर्देश से लोक अभियोक्ता (Public Prosecutor) यह स्थिर किया करते थे कि किसी अपराध के लिये मुकदमा चलाया जाय या न चलाया जाय जिससे राज्य की दण्डनीति में एकरूपता रहे। न्यायपालिका को यह अधिकार था कि वह अवैध अध्यादेशों को काम में न लावे किन्तु वे संघ न्यायालय के समान डाइट के पास किये हुए किसी अधिनियम के वैध-अवैध होने का प्रश्न न उठा सकते थे। इसके अतिरिक्त राजा क्षमादान देने का अधिकारी था और दण्ड की कठोरता भी कम कर सकता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जापान में विधायिनी सत्ता सर्वोच्च थी, कार्यकारी व न्यायकारी सत्तायें विधायिनी सत्ता के अधीन रहती थीं। अमरीकी ढंग का जापान में शक्ति-विभाजन न था। शासन विधान सर्वोच्च अधिनियम न माना गया था।

न्यायालय के प्रकार—यूरोपियन प्रणाली के अनुसार ही जापान में न्यायालयों को दो श्रेणियों में बाँटा गया था, एक सामान्य न्यायालय और दूसरे प्रशासन न्यायालय। कुल ३४० सामान्य न्यायालयों में २८१ स्थानीय

न्यायालय, ५१ जिले के न्यायालय, ७ पुनर्विचारक न्यायालय थे और इन सब के ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय था। न्यायाधीश विश्वविद्यालय की शिक्षा पाये हुए व्यक्ति होते थे। वे सिविल सर्विस के नियमों के अन्तर्गत परीक्षा द्वारा छांट कर नियुक्त किये जाते थे। ये ६७ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते थे। सर्वोच्च न्याचालय का अध्यक्ष ६५ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता था। सब सामान्य न्यायालयों में मुख्तार भी नियुक्त किये जाते थे। जिनका न्याय-शासन से बड़ा निकट सम्बन्ध रहता था। ये मुकदमों में प्रारम्भिक छान-बीन करते और सार्वजनिक मामलों मे जनता के हित का प्रतिनिधित्व करते थे।

पंच-प्रणाली—जापान में पंच-प्रणाली भी प्रचलित थी किन्तु इसका कार्यक्षेत्र अन्य देशों की अपेक्षा बड़ा संकीर्ण था। सन् १९२३ के अधिनियम की प्रथम धारा इस प्रकार थी "अपराध सम्बन्धी (फौजदारी) मुकदमों में इस अधिनियम के अनुसार कोई न्यायालय पंचों की राय लेकर वास्तविकता के आधार पर अपना निर्णय दे सकता है।" तीस या उससे अधिक आयु वाले १२ पुरुष पंच बनाये जाते थे। प्रिफैक्ट के न्यायालयों में केवल अपराध सम्बन्धी (Criminal) मुकदमों में ही उनकी राय ली जाती थी।

सैनिक न्यायालय—सामान्य न्यायालयों के अतिरिक्त सैनिक-न्यायालय, पुलिस-न्यायालय और दूसरे विशेष न्यायालय भी थे। सैनिक न्यायालयों में सामान्य न्यायाधीश और सेना के अफसर न्याय करते हैं। सेना के लोगों के विरुद्ध अपराधों की ही ये न्यायालय जाँच करते थे। पुलिस न्यायालयों में पुलिस के अफसर न्याय करते थे। ये लोग साधारण रक्षा सम्बन्धी मुकदमे मामूली पूछ-ताँछ करके तय किया करते थे। इन मुकदमों में २० दिन से अधिक कारावास या २० यैन से अधिक जुर्माने का दण्ड न दिया जा सकता था। उनके निर्णय के विरुद्ध सामान्य-न्यायालयों में अपील की जा सकती थी। विशेष न्यायालयों में तरुण अपराधियों के न्यायालय (Juvenile courts), सामरिक न्यायालय (Martial courts) आदि होते थे।

स्थानीय शासन

"जापान में लोकतंत्र स्वयंजात होकर नीचे से विकसित न हुआ था किन्तु उसका भरण-पोषण दूर-दर्शी नेताओं ने चोटी पर ही किया था।" जापान में स्वायत्त शासन का सिद्धांत किसी बड़ी राष्ट्रीय जागृति के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वायत्त शासन- प्रणाली

सन् १८८८ के अधिनियम पर आधारित थी। टोकियो, क्योटो और ओसाका नगरों का स्थानीय शासन सन् १८९८ अधिनियम के अनुसार होता था। फ्रांस की तरह यहां स्थानीय शासन केन्द्रित और श्रेणीबद्ध था। यहां दो प्रकार की स्थानीय शासन संस्थायें थीं, एक प्रिफैक्चर्स और बड़े नगरों की और दूसरी छोटे नगरों और गांवों की।

प्रिफैक्चर—शासन की दृष्टि से जापान ४६ प्रिफैक्चरों अर्थात् प्रांतों में बंटा हुआ था प्रिफैक्चर में कार्यकारी-अध्यक्ष गवर्नर या प्रिफैक्ट कहलाता था। फ्रांस के प्रिफैक्ट के समान वह दो अवस्थाओं में कार्य करता था। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते स्थानीय शासन पर उसे पूरा अधिकार था। यह स्थानीय शासन अनन्यरूप से न मंत्री के अधीन था न स्थानीय शासन-संस्था के। निर्वाचन, शिक्षा, निर्धनों की सहायता, पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य, उद्योगों की रक्षा, सेना में भर्ती, कर्मचारियों की देखभाल आदि सब मामले प्रिफैक्ट के अधिकार-क्षेत्र में पड़ते थे। प्रान्त का प्रमुख कार्याध्यक्ष होने के कारण वह उन सब बातों का प्रबन्ध करता था जो विधानमंडल की सम्मति से स्थानीय प्रबन्ध के लिये छोड़ दिये जाते थे। वह गृहमंत्री को उत्तरदायी रहता था। टोकियो के प्रिफैक्चर में पुलिस का शासन दूसरे प्रिफैक्चरों में पुलिस के शासन से भिन्न व निराले ढंग का था। वहां मैट्रोपोलिटन पुलिस बोर्ड की आधीनता में पुलिस काम करती थी। प्रिफैक्ट में एक असेम्बली और एक कौंसिल अधिनियम बनाती थी।

बड़े नगर—जापान के ४६ प्रांत या प्रिफैक्चर (Prefectures) १० बड़े नगरों, १९८५ छोटे नगरों और १०४४ गांवों में विभाजित हैं। ये सब सन् १९२४ तक रहने वाली ६३६ काउन्टियों में से बनाये गये थे। प्रिफैक्चर की तरह इन छोटी इकाइयों की भी अधिनियम बनाने वाली व कार्यपालिका संस्थायें थीं। बड़े नगरों में एक असेम्बली और एक कौंसिल होती थी। असेम्बली चार वर्ष के लिये लोकमत से निर्वाचित हुआ करती थी। इसके सदस्यों की संख्या नगर की जनसंख्या के अनुसार विभिन्न नगरों में विभिन्न थी। मेयर (Mayor) इसकी बैठकों को बुलाता था और समाप्त करता था। असेम्बली की कुछ सेलेक्ट समितियां (Select Committees) थीं किंतु स्थायी समितियां (Standing Committees) न होती थीं। बड़े नगरों की असेम्बलियों की शक्तियां प्रान्तीय असेम्बलियों की शक्तियों से अधिक होती थीं।

ग्राम और छोटे नगर—छोटे नगरों और ग्रामों की शासन प्रणाली

में केवल नाम का ही अन्तर था। ग्राम या छोटे नगर की असेम्बली कर्मचारियों को स्वयं चुनती थी। इन कर्मचारियों की नियुक्ति प्रिफैक्ट अर्थात् प्रांत के गवर्नर की पूर्व स्वीकृति से ही हो सकती थी। नगर-असेम्बली के ढाँचे पर ही इन ग्राम-असेम्बलियों का संगठन हुआ करता था। कुछ ग्रामों में गवर्नर की पूर्व सम्मति से विशेष परिस्थितियों में सब मतधारकों की, न कि उनके प्रतिनिधियों की असेम्बली बनाई जा सकती थी। यह असेम्बली स्विट्जरलैंड के छोटे कैन्टनों की "लैंड्सजैमेंडे" (Landsgemeinde) के समान थी या न्यू इंगलैंड (New England) की नगर शासन प्रणाली से मिलती जुलती थी। कभी कभी गवर्नर की पूर्व-सम्मति से सड़क, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई के साधन, पुल, शिक्षा आदि सर्व हितकारी कामों के लिये नगरों और ग्रामों की सिंडिकेट (Syndicate) बन जाती थी।

केन्द्रीय नियंत्रण—केन्द्रीय सरकार का स्थानीय इकाइयों पर बड़ा नियंत्रण रहता था, विशेषकर इसलिये क्योंकि प्रांत का गवर्नर सरकार का कर्मचारी होता था। सरकार का नियंत्रण गृही-विभाग के द्वारा रखा जाता था। इसी विभाग को उन बातों में अन्तिम अधिकार रहता था जो केन्द्रीय सरकार के किसी अन्य अधिकारी को न सौंपी हुई होती थीं। यह बात निस्संदेह है कि गृह-विभाग (Home Ministry) का ऐसा नियंत्रण रहने से स्थानीय शासन में एकरूपता व्यवस्था, शांति और एकता रहती थी, किंतु प्रांतीय गवर्नर का पद राजनैतिक ढंग का होने से कार्य की क्षमता न रह पाती थी। जो बात आचार्य मुनरो ने फ्रांस के स्थानीय शासन के बारे में कही थी वह जापान के लिये भी सत्य थी। आचार्य मुनरो ने कहा है कि "केन्द्रीकरण ही इसकी मूल प्रकृति है।.......सारी शक्ति भीतर और ऊपर की ओर संसृत होती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसका मानचित्र एक पिरैमिड के रूप का होगा।" किंतु बाद में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देने लगी थी।

सन् १९४६ का शासन-विधान

टोकियो खाड़ी में संयुक्त-राज्य के मिस्सूरी नामक जलपोत के ऊपर २ सितम्बर सन् १९४५ को जापानियों ने द्वितीय महायुद्ध में पूर्णतया पराजित होकर विधिपूर्वक आत्म-समर्पण कर दिया। पोट्सडम घोषणा के अनुसार जापान के प्रधान भू-भाग पर मित्रराष्ट्रों के सेनानायक जनरल मैकार्थर ने अधिकार कर लिया। संयुक्त राज्य की सरकार ने जनरल मैकार्थर को दो

उद्देश्यों को प्राप्त करने का आदेश दिया, पहला यह कि "जापान फिर संयुक्त-राज्य अमरीका के लिये और विश्व की शांति और सुरक्षा के लिए विपत्तिदायक न होने पावे" और दूसरा यह कि "अन्तिमतः ऐसी शांतिप्रिय और उत्तरदायी सरकार स्थापित हो जो दूसरे राज्यों के स्वत्वों का उचित आदर करे और संयुक्त-राज्य के उन आदर्शों और सिद्धांतों का समर्थन करे, जो संयुक्त-राष्ट्र (United Nations) के चार्टर में दिये हुए हैं।" नई सरकार प्रजातन्त्रात्मक सिद्धांतों के अनुकूल बने और स्वतन्त्र- जनमत के ऊपर स्थित रहे। अतएव जितने सैनिक नियंत्रण जापान की शासन-व्यवस्था में लगे हुए थे, वे मिटा दिये गये, शिंटो-राज्य को अप्रतिष्ठित कर दिया गया, शिक्षालयों में सेना की शिक्षा समाप्त कर दी गई, राजनैतिक बन्दी छोड़ दिये गये, और जनमत के प्रकट होने के लिए उचित आयोजन कर दिया गया।

नया संविधान कैसे बना—जापान के मंत्रिमण्डल ने जिसका प्रधान-मन्त्री शिडेहरा था, जनरल मेकार्थर से सलाह करके ६ मार्च सन् १९४६ के शासन-विधान का एक मसविदा तैयार किया। इसको कुछ परिवर्तनों के बाद डाइट ने स्वीकार कर लिया और अन्त में सम्राट ने उसकी ३ नवम्बर सन् १९४६ को घोषणा कर दी। यह शासन-विधान सन् १८८९ के विधान से बिल्कुल भिन्न है। इसकी प्रस्तावना में कहा गया है कि "हम जापानी लोग राष्ट्रीय डाइट में विधिपूर्वक चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा कार्य करते हुए यह दृढ़ संकल्प करके कि हम अपने लिये और अपनी संतान के लिए सब राष्ट्रों से मेल रखने से प्राप्त हुए फल को ग्रहण करेंगे और यह दृढ़ प्रतिज्ञा करते हुए कि सरकार के कार्यों से हम फिर कभी युद्ध की भीषणता का सामना न करेंगे, यह घोषणा करते हैं, कि सर्वोच्च सत्ता प्रजा के हाथ में है और इस शासन-विधान को स्थापित करते हैं। सरकार जनता का पवित्र संगठन है जिसका अधिकार जनता से ही प्राप्त है, जिसकी शक्ति जनता के प्रतिनिधियों द्वारा कार्यरूप होती है और जिसका सुख जनता ही भोगती है। यही मानव जाति का सार्वभौमिक सिद्धांत है जिसकी नींव पर यह संविधान खड़ा किया गया है। हम उन सब विधानों, अधिनियमों, आध्यादेशों और विज्ञप्तियों को रद्द करते हैं जो इस सिद्धांत के प्रतिकूल हों।"

संविधान में जनता के अधिकार—शासन-विधान के तीसरे अध्याय में जनता के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख है। इनका उल्लेख ३० अनुच्छेदों में विस्तारपूर्वक किया गया है। जिन मूलाधिकारों का वर्णन

संविधान में किया गया है उनको अलंघ्य माना गया है। इस संविधान से पूर्व नागरिकों के मूल अधिकार अधिनियमों की सीमा के भीतर ही भोगे जा सकते थे। यह प्रतिबन्ध अब नये संविधान से हटा दिया गया है। संक्षेप में मूलाधिकार ये हैं:—सब लोगों के व्यक्तित्व का आदर किया जायगा। अधिनियम बनाने में और अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में उनके जीवन सुख व उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा ही सर्वोच्च उद्देश्य रहेगा, यदि ऐसा करने से सार्वजनिक हित में बाधा न पड़े। अधिनियम के अन्तर्गत सब व्यक्ति समान हैं और जाति, सम्प्रदाय, लिङ्ग, सामाजिक मान या वंश के आधार पर उनके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में भेदभाव न रखा जायगा। पीयरों और उनकी उपाधियों का कोई मान न होगा। जनता को अपने शासन कर्मचारियों के चुनने व उन्हें पद से हटाने का पूर्ण अधिकार है जिसको किसी प्रकार भी उनसे छीना नहीं जा सकता। प्रौढ़मताधिकार सुरक्षित रहेगा। निर्वाचनों में गुप्तशलाका का ही सर्वदा प्रयोग होगा। निर्वाचक मत देने में अपनी पसन्द के लिये किसी प्रकार भी उत्तरदायी न होगा। प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्वक अपनी क्षतिपूर्ति कराने, शासन कर्मचारियों को हटाने और अधिनियमों या अध्यादेशों को रद्द कराने या उनमें संशोधन कराने की प्रार्थना करने का विचार होगा। किसी राज्य-कर्मचारी के द्वारा यदि किसी व्यक्ति की हानि हुई हो तो वह अधिनियमानुसार उस राज्य कर्मचारी पर या राज्य पर मुकदमा चला सकता है। सिवाय दण्ड के रूप में किसी व्यक्ति को बन्धन में न रखा जायगा। विचारों की व आत्मा की स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को मान सकता है। राज्य किसी धर्मविशेष को सुविधा न देगा। समुदाय बनाने, वक्तृता देने और समाचार-पत्र निकालने की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी। चिट्ठी-पत्रियों को खोलकर न पढ़ा जायगा जब तक लोकहित में बाधा न पड़े। प्रत्येक व्यक्ति को अपना निवास-स्थान और व्यवसाय पसन्द करने और बदलने की स्वतन्त्रता रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति विदेशों में जा सकता है और अपनी नागरिकता बदल सकता है, कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विद्या या शिक्षा प्राप्त कर सकता है। विवाह बंधन में सम्पत्ति के ऊपर स्त्री-पुरुष का समान अधिकार होगा। वसीयत करने, नागरिकता अपनाने, विवाहोच्छेद आदि के सम्बन्ध में जो अधिनियम बनाये जायेंगे वे स्त्री-पुरुष की वैयक्तिक प्रतिष्ठा और उनकी समानता के दृष्टिकोण को सामने रखकर ही बनाये जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अधिनियमानुसार अपनी योग्यता के अनुकूल शिक्षा पाने का

अधिकारी होगा। वह एक निश्चित परिमाण में सुखमय व सांस्कृतिक जीवन बिताने का अधिकारी होगा, तदर्थ राज्य जीवन के सब क्षेत्रों में स्वास्थ्य व जीवन निर्वाह की उचित व्यवस्था करेगा। प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क होगी। सब व्यक्तियों का यह कर्तव्य और अधिकार होगा कि वे काम करें। अधिनियम से मजदूरी, काम करने के घंटे, विश्राम आदि के बारे में व्यवस्था की जायेगी। बच्चों से मजदूरी न कराई जायेगी। मजदूरों को संगठन बनाने और सामुदायिक रूप से मजदूरी तय करने का अधिकार होगा। वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित रहेगा। सम्पत्ति के अधिकार की व्याख्या लोकहित को ध्यान में रख कर अधिनियम से होगी, वैयक्तिक सम्पत्ति क्षतिपूर्ति देकर राज्य द्वारा सार्वजनिक कार्य के लिये ली जा सकती है। किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता या उसके जीवन से वंचित न किया जायेगा न उसे अपराध के लिये दण्ड दिया जायेगा जब तक इस सम्बन्ध में अधिनियमानुसार आवश्यक कार्यवाही न हो जाय। बिना वारंट के न तलाशी ली जायेगी न कोई व्यक्ति बिना वारंट के पकड़ा जायेगा। सब फौजदारी (अपराधी) अभियोगों में जल्दी से जल्दी एक पक्षपातरहित न्यायालय से जांच करायी जायेगी।

विधानमण्डल

संविधान ने डाइट (Diet) को राज्यशक्ति की प्रमुख संस्था माना है और अधिनियम बनाने का अधिकार केवल इसी संस्था को दिया है।

द्विगृही मंडल—विधानमंडल में दो सदन हैं, एक का नाम प्रतिनिधि सदन और दूसरे का कौंसिल सदन है। दोनों सदनों में निर्वाचित व्यक्ति ही सदस्य बनते हैं। सदस्यों की संख्या अधिनियम से निश्चित की जाती है। प्रतिनिधि सदन के सदस्य चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं। कौंसिलर्स ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। उनमें से आधे प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। निर्वाचन क्षेत्र, मतदान प्रणाली आदि मामले अधिनियम द्वारा निश्चित होते हैं। एक व्यक्ति दोनों सदनों का एक ही समय सदस्य नहीं रह सकता। दोनों सदनों के सदस्यों से अधिनियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। यदि अधिनियम के प्रतिकूल नियम न बनाया हो तो प्रत्येक सदस्य को यह सुविधा रहेगी कि जब डाइट की बैठक हो रही हो उसे किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। यदि बैठक होने से पूर्व किसी सदस्य को पकड़ लिया गया हो तो सदन के कहने पर बैठक के समय भर के लिये उसे स्वतन्त्र कर दिया

जायगा। सदनों के भीतर भाषणों में जो-जो बातें कही जायँ या जिस प्रकार प्रस्तावों पर मत-दान किया जाय उसके लिये किसी सदस्य को कानून-बद्ध नहीं किया जाता ।

डाइट का अधिवेशन—वर्ष में डाइट का एक अधिवेशन अवश्य किया जाना चाहिए। मंत्रिपरिषद् विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है। जब एक चौथाई या अधिक सदस्य विशेष अधिवेशन करने की मांग उपस्थित करें तो मंत्रिपरिषद् को विशेष अधिवेशन बुलाना पड़ता है। प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या ४६६ है, जो ४ वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। कौंसिलर्स के सदन के सदस्यों की संख्या २५० है, जिनमें से १०० सारे राज्य से और १५० प्रिफैक्टी जिलों से निर्वाचित होते हैं।

प्रतिनिधि सदन का विघटन—मंत्रिपरिषद् की सम्मति से जब सम्राट प्रतिनिधि सदन का विघटन कर दे तब विघटन होने के चालीस दिन के भीतर नये सदस्यों का निर्वाचन होना चाहिए और निर्वाचन होने वाले दिन से ३० दिन के भीतर डाइट का अधिवेशन होना चाहिए। जब प्रतिनिधि सदनों का विघटन हो जाता है तो साथ-साथ ऊपरी सदन अर्थात् हाउस आफ कौंसिलर्स बन्द हो जाता है। किन्तु संकटकाल में मंत्रिपरिषद् ऊपरी सदनों का अधिवेशन इस विघटन काल में भी कर सकती है। इस अधिवेशन में जो योजनायें तैयार हों वे स्थायी रहती हैं और यदि अगले अधिवेशन में डाइट इन योजनाओं को दस दिन के भीतर स्वीकार नहीं करती तो ये योजनायें रद्द समझी जाती हैं।

कार्य पद्धति—प्रत्येक सदन अपने सदस्यों की योग्यता सम्बन्धी प्रश्नों को स्वयं तय करता है। कोई सदस्य अपने स्थान से तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक कि उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई मत से इस विषय का प्रस्ताव पास न हो जाय। एक तिहाई या अधिक सदस्यों की उपस्थिति होने पर ही सदन का कार्य हो सकता है सिवाय जहां संविधान के अनुसार अधिक बहुमत की आवश्यकता हो सदनों के निर्णय सामान्य बहुमत से होते हैं। जब दोनों पक्ष में मत बराबर हों तो सदन का प्रधान प्रश्न का निर्णय करता है। प्रत्येक सदन अपने प्रधान व अन्य कर्मचारियों को चुनता है। सदनों की बैठकें सब के लिये खुली होती हैं। किंतु यदि उपस्थित सदस्यों की दो तिहाई इस विषय का प्रस्ताव पास करे तो गुप्त बैठकें भी हो सकती हैं। सदनों की कार्यवाही का लेख रखा जाता है और प्रकाशित किया जाता है। यदि गुप्त बैठक की कार्यवाही को गुप्त

समझा जाता है तो उसे प्रकाशित नहीं किया जाता। कार्यपद्धति के अन्य नियम प्रत्येक सदन स्वयं निश्चित करता है।

अधिनियम कैसे बनते हैं—जब कोई विधेयक (Bill) दोनों सदनों में पास हो जाता है तो वह विधि (Law) बन जाता है। यदि कोई विधेयक प्रतिनिधि सदन से पास होने पर ऊपरी सदन में जाये और वहाँ वह स्वीकृत न हो तो वह विधेयक तभी अधिनियम बन सकता है जब वहां से लौटने पर प्रतिनिधि सदन फिर दो-तिहाई या अधिक मत से उसे पास कर दे। यदि ऊपरी सदन किसी विधेयक के पाने पर ६० दिन के भीतर कोई निर्णय न करे तो वह विधेयक उस सदन से अस्वीकृत समझा जाता है। यदि प्रतिनिधि सदन चाहे तो ऐसा मतभेद होने पर दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है जिसमें इस मतभेद पर विचार हो सके यदि ऐसी संयुक्त बैठक का आयोजन अधिनियम द्वारा कर दिया जाये।

बजट प्रतिनिधि सदन में ही प्रस्तुत किया जाता है। विचार करने के पश्चात् यदि ऊपरी सदन ऐसा निर्णय करे जो प्रतिनिधि सदन के निर्णय से भिन्न हो या जब संयुक्त-बैठक में भी कोई एकमत न हो सके या जब बजट के पाने से ३० दिन के भीतर ऊपरी सदन कोई अन्तिम निर्णय न पावे, तो प्रतिनिधि सदन का बजट के सम्बन्ध में निर्णय डाइट का निर्णय समझा जाता है। यही क्रम संधियों में विचार करने पर भी अपनाया जाता है।

प्रत्येक सदन सरकार के सम्बन्ध में जांच कर सकता है और इस जांच में उल्लेख पत्रों को मंगा सकता है और गवाहों को बुला सकता है। प्रधानमन्त्री व अन्य मन्त्री दोनों सदनों में से किसी में भी उपस्थित रह सकते हैं और भाषण दे सकते हैं चाहे वे सदन के सदस्य हों या न हों। यदि सदन में किसी प्रश्न का उत्तर देने या सफाई देने के लिए उन्हें बुलाया जाये तो आवश्यक है कि वे उपस्थित हों।

डाइट दोनों सदनों के सदस्यों में से न्यायाधीशों पर लगाये गये अभियोगों की जांच के लिए एक विशिष्ट न्यायालय स्थापित कर सकती है।

संविधान संशोधन—पूर्व संविधान में संविधान का संशोधन सम्राट ही कर सकता था। नये संविधान में यह आयोजन है कि संविधान संशोधन का प्रस्ताव डाइट में रखा जाय और दोनों सदनों में जब यह प्रस्ताव कुल सदस्यों के दो-तिहाई मत से स्वीकार हो जाये तब लोक निर्णय के लिए

प्रस्तुत किया जाये। लोक निर्णय में जितने मत पड़ें उनमें से बहुसंख्यक मत पक्ष में होने से संशोधन स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार स्वीकृत होने पर तुरन्त ही सम्राट जनता की ओर से उसे घोषित कर देता है। इस प्रकार सर्वोच्च अधिनियम के संशोधन में जनता की सर्वोच्च सत्ता और सम्राट की प्रतिष्ठा दोनों का समुचित आदर हो जाता है।

कार्यपालिका

सम्राट—जापान का शासन-विधान कार्यपालिका के शोभनार्थ और कार्यार्थ अंगों में स्पष्ट रूप से भेद करता है। सम्राट राज्य और प्रजा की एकता का प्रतीक माना गया है जिसको सर्वोच्च सत्ता की स्वामिनी प्रजा ने अपनी इच्छा से ऊँची पदवी प्रदान की है। डाइट से पास किये हुये राजघराने के अधिनियम के अनुसार राजा के उत्तराधिकारी निश्चित होते हैं। सम्राट केवल वैधानिक रूप से राज्य का अध्यक्ष है, क्योंकि राज्य के प्रत्येक कार्य में मंत्रिपरिषद् की स्वीकृति होना आवश्यक है जो उसके लिये जिम्मेवार रहती है। शासन क्षेत्र में सम्राट को कोई शक्ति नहीं दी गई है। उसके सारे अधिकार राज्य की अध्यक्षता से ही सम्बन्ध रखते हैं। सम्राट डाइट से मनोनीत व्यक्ति को प्रधान-मन्त्री नियुक्त करता है। इसी प्रकार वह मंत्रिमंडल से मनोनीति व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश नियुक्त करता है। मंत्रिपरिषद् की सलाह और सम्मति से सम्राट निम्नलिखित राज-कार्य करता है: विधान-संशोधनों, अधिनियमों, मन्त्रिपरिषद् के आदेशों और संधियों को घोषित करना जिससे उन पर कार्य हो सके, डाइट का अधिवेशन बुलाना, प्रतिनिधि सदन का विघटन करना, डाइट के सदस्यों का सामान्य निर्वाचन करने का आदेश देना, मंत्री व अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति या पदच्युति का अधिनियमानुसार साक्षी होना, मंत्रियों व राजदूतों के अधिकारपत्रों पर साक्षी होना, सामान्य या विशेष क्षमादान-पत्र पर या दण्ड का रूप बदलने वाली आज्ञा पर साक्षी रूप से हस्ताक्षर करना, उपाधियां प्रदान करना, विदेशी राजदूतों का स्वागत करना और उत्सवों पर अध्यक्षरूप से उपस्थित होना।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि नये संविधान से जापान का सम्राट ब्रिटिश सरकार के समान ही बन गया है। दोनों में से किसी को शासन करने का अधिकार नहीं है, किन्तु प्रत्येक राष्ट्र का चिन्हरूप से अध्यक्ष है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि ब्रिटिश सम्राट अपने विशेषाधिकार १७ वीं

शताब्दी में ही खो चुका था। तभी से अनेकों झगड़ों तथा रक्तपात के बाद प्रजा के प्रतिनिधियों की वर्तमान प्रतिष्ठा और उनके अधिकार प्राप्त हो पाये हैं। जापान में सम्राट् की शक्ति को नये संविधान में लेखनी के एक झटके से समाप्त अवश्य कर दिया है किन्तु मानव संस्कार इतनी जल्दी नहीं मिटते, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि जापान का सम्राट अपनी नई स्थिति से संतुष्ट रह सकेगा और प्रजा कहाँ तक अपनी नई प्राप्त की हुई शक्ति की रक्षा करने में समर्थ हो सकेगी। जापान में सम्राट की शक्ति यहाँ तक सीमित कर दी गई है कि संविधान के आठवें अनुच्छेद के अनुसार जापान के राज-घराने को डाइट की अनुमति के बिना किसी सम्पत्ति को बेचने या पुरस्कार स्वरूप देने का अधिकार भी नहीं है।

मन्त्रिपरिषद्—राज्य की कार्यपालिका शक्ति मंत्रिपरिषद् में विदित की गई है जिसमें प्रधानमन्त्री अध्यक्ष होता है और अधिनियमानुसार नियुक्त किये गये मन्त्री सदस्य बनते हैं। जापान के पूर्व इतिहास को ध्यान में रख कर ही शायद यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रधानमन्त्री और अन्य मन्त्री सब असैनिक नागरिक होंगे। जापान में सम्राट के ऊपर यह नहीं छोड़ा गया है कि वह लोक सभा के बहुसंख्यक पक्ष के नेता को बुलाकर मन्त्रिपरिषद् बनाने का आदेश दे। यहाँ डाइट ही अपने सदस्यों में से प्रस्ताव द्वारा किसी का नाम नियुक्त करती है, जिसे सम्राट घोषित कर देता है। यदि इस नाम के विषय में दोनों सदन एकमत न हों और संयुक्त बैठक करने के पश्चात् भी उनमें समझौता न हो या ऊपरी सदन प्रतिनिधि सदन के प्रस्ताव को १० दिन के भीतर स्वीकार न करे तो प्रतिनिधि सदन का निर्णय ही डाइट का निर्णय समझ लिया जाता है। मंत्रिपरिषद् सामुदायिक रूप से शासन सम्बन्धी विषयों में डाइट को उत्तरदायी है। प्रधानमन्त्री अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। अधिकतर मन्त्री निचले सदन में से ही चुने जाते हैं। प्रधानमन्त्री किसी भी मन्त्री को हटा सकता है, यदि डाइट अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या विश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे तो मन्त्रिपरिषद् को या तो पद त्याग करना पड़ता है या दस दिन के भीतर प्रतिनिधि सदन का विघटन कराना पड़ता है। नये प्रधानमन्त्री के नियुक्त होने तक दोनों अवस्थाओं में पुराने मन्त्री कार्य चलाते रहते हैं।

प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् की ओर से डाइट के सामने सब विधेयकों और घरेलू तथा परराष्ट्र सम्बन्धी रिपोर्टों को प्रस्तुत करता है और शासन के विभिन्न विभागों पर नियन्त्रण रखता है और उनके काम की देख भाल

रखता है। सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् निम्नलिखित कार्य करती है।

अधिनियमों को कार्यान्वित करना—राज्य के सब प्रबन्ध को चलाना परराष्ट्र सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करना, संधि करना, इस कार्य में उसे पहले ही या बाद में डाइट की स्वीकृति लेनी पड़ती है, अधिनियम से निर्धारित आदर्शों के अनुसार सिविल सर्विस का प्रबन्ध करना, बजट तैयार करके डाइट के सामने रखना, विधान व अन्य अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये परिषद् के आदेश निकालना, सब बन्दियों को छोड़ने का, दण्ड के रूप को बदलने का और किसी शक्ति के अधिकारों को उसे वापिस देने का निश्चय करना। मन्त्रिपरिषद् के सब आदेशों और सब अधिनियमों पर सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षर होते हैं और प्रधानमन्त्री के समर्थन सूचक हस्ताक्षर होते हैं। प्रधानमंत्री की सम्मति के बिना किसी मंत्री के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये की उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार ही नहीं है।

न्यायपालिका

न्यायकारी सत्ता एक सर्वोच्च न्यायालय और अन्य निम्न श्रेणी के न्यायालयों में विहित की गई है। ये न्यायालय अधिनियम द्वारा स्थापित किये जाते हैं। असामान्य न्यायालय स्थापित नहीं किये जा सकते न कार्यपालिका या उसके किसी प्रतिनिधि को अन्तिमतः न्याय करने की शक्ति दी जा सकती है। सब न्यायाधीश अपने काम करने में स्वतन्त्र रहते हैं, उन पर केवल संविधान का और अनेक अधिनियमों का ही प्रतिबन्ध रहता है। न्याय पद्धति के नियमों को सर्वोच्च न्यायालय निर्धारित करता है। सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश और अधिनियम से निश्चित संख्या में अन्य न्यायाधीश होते हैं। प्रधान न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों को मंत्रिपरिषद् नियुक्त करती है। छोटे न्यायालयों के न्यायाधीश सर्वोच्च-न्यायालय द्वारा तैयार की हुई सूची में से मंत्रिपरिषद् द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। ये सब १० वर्ष तक के लिये नियुक्त किये जाते है किन्तु उनकी पुनर्नियुक्ति हो सकती है। सब न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन दिया जाता है जो उनके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता।

सर्वोच्च न्यायालय के सब न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद जो प्रतिनिधि सदन के लिये प्रथम निर्वाचन होता है उसमें उनके कार्य का निरीक्षण किया जाता है और ऐसा करने के प्रति दस वर्ष बाद सामान्य निर्वाचन में

फिर निरीक्षण होता है। यदि इस निरीक्षण में बहुसंख्यक मतदाता किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने के पक्ष में होते हैं तो वह न्यायाधीश अपने पद से हटा दिया जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति—सर्वोच्च न्यायालय न्याय करने वाली अन्तिम संस्था है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान से यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अधिनियम, आदेश, नियम या सरकारी कार्य के वैध-अवैध होने का निश्चय कर सके। संविधान में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि संविधान राष्ट्र का सर्वोच्च अधिनियम है और कोई भी अधिनियम, सम्राट की विज्ञप्ति या अन्य सरकारी कार्य जो संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध होगा वह अवैध समझा जायेगा इसी संविधान की कसौटी पर अधिनियमों के जांचने का काम सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। जापान का सर्वोच्च न्यायालय इस प्रकार संयुक्त-राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान ही शक्तिशाली है।

स्थानीय शासन

नये संविधान मे स्थानीय संस्थाओं के कार्यकारी अफसरों का निर्वाचन आवश्यक कर दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपनी जायदाद का स्वयं प्रबन्ध करें और अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं नियम बना कर करें।

आर्थिक प्रावधान

संविधान के सातवें अध्याय में आर्थिक विषयों के बारे में कुछ प्रावधान दिये हुए हैं। उनके अनुसार डाइट को ही राष्ट्रीय आय-व्यय का प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया है। डाइट की सम्मति के बिना किसी प्रकार का खर्चा नहीं किया जा सकता। डाइट मन्त्रिपरिषद् के आधीन एक सुरक्षित कोष रख सकती है जिसमें से मंत्रिपरिषद् पहले से न जाने हुये खर्चे कर सकती है। इस खर्चे की स्वीकृति बाद में डाइट से लेनी पड़ती है। इसी अध्याय में कहा है कि राजघराने की सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति है। राजघराने का खर्चा डाइट बजट के साथ मंजूर करती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सार्वजनिक मुद्रा या अन्य सम्पत्ति किसी ऐसी धार्मिक संस्था को न दी जायगी या किसी शिक्षा या दान के ऐसे काम में न लगाई जायगी जो सरकार के आधिपत्त में न हो। वर्ष में कई बार या कम से कम एक बार मन्त्रिपरिषद् डाइट और जनता के सामने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। पूर्व-विधान के प्रतिकूल अर्थ सम्बन्धी मामलों में डाइट की शक्ति बहुत बढ़ गई है। जापान के इस नयें संविधान ने सेना की

शक्ति को कम कर दिया और सम्राट की निरंकुशता समाप्त कर दी है। नये संविधान से अब न परामर्श देने वाली संस्थायें, जैसे प्रिवीकौंसिल, राजघराने का मंत्री, वृद्ध रानैतिज्ञ (जैनरो) आदि समाप्त हो गई और सेना पर सम्राट का सर्वोच्च आधिपत्य भी न रह गया। इससे अब एक वास्तविक प्रजातंत्र शासन की स्थापना हो गई। इस शासन का रूप संसदात्मक है। इसमें कार्यपालिका पार्लियामेंट को उत्तरदायी है और अन्तिम शक्ति जनता के हाथ में है।

पाठ्य-पुस्तकें

Allen, G. C.—Modern Japan and its Problems (George Allen and Unwin).

Pigelow, P.—Japan and Her Colonies (Arnold).

Buchan, J. C. (Editor)—Japan (Nations of Today series).

Buck, P. W. and Masland, J. W.—Governments of Foreign Powers (1947), Chapters 23-26.

Cole. G. D. H. and M. I.—Modern Politics (Gollancy) pp. 248-265.

Cubbins, J. H.—Making of Modern Japan (London 1922).

McGorern, W. M. Modern Japan (London 1920).

Naokitchi Kitazawa—The Government of Japan (Princeton University Press).

Nitobe—Japan (Modern World Series).

Quigly, H. S.—Japanese Government & Politics (The Century Co.)

Statesman Year Book (Latest Edition).

Treat, P. J.—The Far East (Harper Bros.)

Upebara G. E.—The Political Development of Japan (London 19[illegible]).

Wilson, Woodrow—The State (New Edition) pp. 526-533.